हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन (1980–2008)

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की
पी–एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध – प्रबन्ध

: अनुसंधित्सु :

पारुल एल. सिंह
शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग
म.स.विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

: निर्देशक :

डॉ मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला
आसिस्टन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
म.स.विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

2013

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा की पी–एच.डी

उपाधि हेतु प्रस्तावित शोध–प्रबंध

विषयः

हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन (1980 से 2008)

: अनुसंधित्सु :

पारुल एल. सिंह
शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग
म.स.विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

: निर्देशक :

डॉ. मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला
आसिस्टन्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
म.स.विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

प्राक्कथन

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति विभिन्न कालों में और विभिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न प्रकार की रही है। वैदिक काल में उसे शक्ति, ज्ञान एवं संपत्ति के प्रतीक के रुप में क्रमशः दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी के रुप में माना गया। उत्तर वैदिक काल में भी समाज में उनका समुचित आदर एवं स्थान था, साथ ही उन्हें धार्मिक एवं वैवाहिक जीवन में काफी स्वतंत्रता थी। उत्तर वैदिक काल के अंतिम वर्षों से स्त्रियों की स्थिति में अवनति प्रारंभ हो गयी। मनुस्मृति में सर्वप्रथम स्त्रियों की स्वतंत्रता पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाये गये। धर्मशास्त्रों के काल में स्त्रियों की स्थिति निम्न से निम्नतर होती गई। इस काल में वे नितांत परतंत्र एवं निःसहाय समझी जाने लगीं। अनमेल विवाह, बहुपत्नीत्व प्रथा, अशिक्षा आदि संकीर्णताएँ इस युग में प्रवेश पा चुकी थीं। मध्यकाल में धर्म के नाम पर स्त्रियों का सबसे ज्यादा शोषण हुआ। पर्दाप्रथा, विधवाओं के पुर्नविवाहों पर प्रतिबंध, सतीप्रथा, बालविवाह का प्रचलन, बहुपत्नी विवाह जैसी निर्योग्यताएँ स्त्रियों पर थोपी गयीं। आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन के कारण धर्म एवं समाज की रक्षा हेतु धार्मिक, सामाजिक कुछ आंदोलन हुए जिसके कारण स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार हुए। ऐसे समाज सुधारक महानुभावों में राजा राममोहन, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती आदि मुख्य हैं। बाद में ज्योतिबा फूले, महात्मा गांधी तथा डॉ. बी. आर.आंबेडकर आदि भी इस क्षेत्र में आये।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि सदियों से पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को परजीवी बना रखा है। आज जब नारी मुक्ति एवं समाजवादी, साम्यवादी आंदोलन के द्वारा उन्हें बराबरी का कानूनी दर्जा दे दिया गया है, जिससे वे काफी आगे बढ़ी हैं, तो भी ये शिक्षित स्त्रियाँ वस्तु बनकर पुरुषों के शोषण का शिकार हो रही हैं। शिक्षित सवर्ण स्त्रियों की स्थिति से भी अधिक दयनीय स्थिति दलित स्त्रियों की है। सवर्ण और दलित स्त्रियों की कुछ समस्याएँ जरुर सांझी हैं, जैसे परिवार द्वारा उसकी अवहेलना, उस पर बरती जानेवाली हिंसा या यौन शोषण, लेकिन दलित स्त्री होने के नाते उसकी समस्याएँ जातीय हो जाती है और वह स्त्री के खेमे से हट कर जाति के खेमे मान ली जाती है। दलित स्त्री तिहरे शोषण का अभिशाप झेलती है। सवर्ण और संपन्न समाज का अत्याचार वह स्त्री होने के नाते सवर्ण और संपन्न समाज के साथ–साथ अपने ही समाज के दलित पुरुषों की हिंसा, शोषण और बलात्कार का शिकार भी होती है। समाज की नज़र में और स्वयं नारियों की नज़र में भी दलित नारी मनुष्य नहीं एक वस्तु मानी जाती है, जो सबके उपयोग के लिए बनी है। ऐसी ही दलित स्त्रियों के प्रश्नों, उनकी समस्याओं, वेदनामय जीवन, आत्मपीड़ा, आकांक्षाओं आदि का अध्ययन ही मेरे इस शोध–प्रबंध का विषय है।

विद्यार्थी के लिए गुरु उनका आदर्श होते हैं, मेरे विद्यार्थी जीवन में भी शिक्षा के प्रति मेरी गंभीरता के कारण गुरुजनों का सदैव प्रेम एवं प्रोत्साहन मिला। एच. एस.सी में विनियन शाखा में स्कूल में प्रथम आने पर मेरा उत्साह शिक्षा के प्रति और अधिक बढ़ गया। गुजरात युनि. संलग्न नवजीवन आर्ट्स एण्ड़ कोमर्स कॉलेज, दाहोद के कला संकाय में प्रवेश लेकर हिन्दी विषय के साथ स्नातक की परीक्षा में संपूर्ण हिन्दी विभाग में प्रथम आने के उपलक्ष्य में पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मेरे परिश्रम एवं लगन को देखते हुए मेरे परिवार ने मुझे अनुस्नातक की उपाधि प्राप्त करने हेतु गुजरात युनि. अहमदाबाद के भाषा भवन में प्रवेश दिलाया। अहमदाबाद में युनि. होस्टल में रहकर

एवं आदरणीय डॉ.रंजना अरगडे, डॉ. आलोक गुप्त, डॉ.रधुवीर चौधरी, स्व. भोलाभाई पटेल आदि से शिक्षा प्राप्त करके हिन्दी साहित्य के प्रति मेरी रुचि में अधिक गंभीरता आने लगी। परिणामस्वरुप अनुस्नातक की परीक्षा में वर्ष 2001 में मैंने गुजरात युनिवर्सिटी में प्रथम स्थान प्राप्त करके उस समय के राज्यपाल श्री सुंदरसींग भण्डारी के हाथों से तीन स्वर्ण पदक प्राप्त किए। इसी उपलक्ष्य में मुझे गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद की ओर से भी सम्मानित किया गया। एम.ए. के दूसरे वर्ष में एक पेपर के रुप में डॉ.आलोक गुप्त, के निर्देशन में ''दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यास **'कोहरे'** और **'प्रतिध्वनियाँ'** का अध्ययन'' विषय पर लधु शोध प्रबंध लिखा।

एम.फिल. में प्रवेश लेकर डॉ.आलोक गुप्त के निर्देशन में ''कलाकार एवं सत्ता के संबंध के परिप्रेक्ष्य में **'आषाढ़ का एक दिन', 'आँठवा सर्ग'** और **'हानूश'** नाटक का अध्ययन'' विषय पर शोध प्रबंध लिखा। इस तरह हिन्दी साहित्य की विधाओं में से उपन्यासों एवं नाटकों पर मैं अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत कर चुकी थी। बचपन से ही मेरी रुचि कहानियों के प्रति अधिक थी। इसलिए मैंने पी.एच.डी. में विषय के तौर पर कहानियों का चयन किया। बाल्यकाल से ही मुझे ऐसी कहानियाँ पसंद आती थीं, जो मनोरंजन मात्र न होकर संदेश प्रधान, समस्या प्रधान, मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई, यथार्थवादी हुआ करती थीं। प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानियाँ मेरे हृदय को सदैव स्पर्श करती थीं जैसे– **'पूस की रात', 'क़फ़न', 'घाँसवाली',ठाकुर का कुआँ, 'सद्गति',** आदि कहानियों में वर्णित पात्रों की दयनीय स्थिति, विवशता, पीड़ा मेरी अंर्तआत्मा को उनकी सहायता करने के लिए एवं उन्हें न्याय दिलाने के लिए विवश करती थी। उस समय मैं नहीं जानती थी, कि मैं एक साधारण व्यक्ति आखिर दलितों के लिए सहायक किस रुप में बन सकती हूँ।

गुजरात युनिवर्सिटी में अध्ययन करने के कारण अन्य किसी भी युनिवर्सिटी से मेरा कोई संपर्क नहीं हुआ, किन्तु यह मेरी किस्मत थी, कि एम.एस. युनि. के गुजराती विभाग के प्राध्यापक डॉ.कान्ति मालसतर ने पी.एच.डी. करने की मेरी तीव्र महत्त्वाकांक्षा को पहचाना एवं अपने परम मित्र आदरणीय डॉ.अज़हर ढेरीवाला जी से मेरा परिचय करवाया। पी.एच.डी. के लिए जैसे गुरु की कल्पना मैंने की थी, वैसे गुरु मुझे डॉ.अज़हर ढेरीवाला के रुप में सही वक्त पर मिल गए। मेरी गुरु की खोज खत्म हो गई, किन्तु अब पी.एच.डी. के विषय चुनाव के लिए मनो मंथन शुरु होने लगा। तब डॉ.कान्ति मालसतर एवं डॉ.अज़हर ढेरीवाला से विचार–विमर्श करने के पश्चात् मेरा पी.एच.डी. शोध प्रबंध का विषय **''हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन''** निश्चित कर लिया। अध्ययन की सुविधा के लिए सन् 1980 से लेकर 2008 तक की समय–सीमा को भी निर्धारित किया गया।

विषय–चुनाव के उपरांत उन्होंने हिन्दी और गुजराती कथा साहित्य से सम्बद्ध कुछ ग्रंथों को देख जाने के लिए कहा, जिनमें 'दलित विमर्श की भूमिका' (कँवल भारती), 'दलित साहित्य दशा और दिशा' (माता प्रसाद), 'शोषित समाज की दशा और दिशा : समग्र मूल्यांकन' (सं. डॉ.आर.एम.एस.विजयी), 'शुद्रों का प्राचीन इतिहास' (रामशरण शर्मा), 'भारतीय समाज क्रान्ति के जनक महात्मा ज्योतिबा फुले' (डॉ.मु.ब.शहा), आदि। तत्पश्चात् उक्त विषय को लेकर पी.एच.डी. उपाधि के लिए पंजीकरण हो गया।

दलित साहित्य से मेरा विषय जुड़ा हुआ है, अतः दलित साहित्य किसे कहते हैं ? उसका उद्भव, विकास, आदि अध्ययन अति आवश्यक था, इसलिए हिन्दी और गुजराती के ग्रंथों का अध्ययन करना भी आवश्यक था। अतः 'हिन्दी साहित्य में

दलित अस्मिता' (डॉ.कालीचरण स्नेही), 'दलित नारी एक विमर्श' (सं.ज्ञानेन्द्र रावत), 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार' (रमणिका गुप्ता), 'दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषाएँ' (राजमणि शर्मा), 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'समकालीन दलित साहित्य एक अध्ययन' (डॉ.जीतूभाई मकवाणा), 'गुजराती साहित्य में दलित कलम' (सं.रमणिका गुप्ता), 'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण' (डॉ.मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला), 'दलित कथाविमर्श' (डॉ. कान्ति मालसतर), 'दलित चिन्तन का विकास' (डॉ.धर्मवीर) आदि।

मैंने जब से दलित महिलाओं के जीवन एवं उनकी समस्याओं का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन किया है, तब से एक प्रश्न मेरे अंर्तमन में बार–बार उठता रहा, कि आखिर दलित नारी आज़ादी के 65 वर्ष के बाद भी सामाजिक–आर्थिक एवं शैक्षिक रुप से अति पिछड़ी क्यों हैं ? जीवन में तिरस्कार, अपमान, घृणा, गुलामी और बंधन की जंजीरों में कब तक बंधी रहेंगी ? भारत में दलित नारी का इतिहास क्या था ? और वर्तमान में उनकी क्या स्थिति है ? आदि प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए मैंने कई ग्रंथों के अध्ययन द्वारा दलितों एवं दलित नारी की नाना स्थितियों पर चिंतन–विमर्श किया। समानान्तर सन् 1980 से सन् 2008 तक के अट्ठाइस वर्षों की कहानियों का चयन एवं अध्ययन भी जारी था। जैसे–जैसे दलित कहानियों का गहराई से अध्ययन एवं चिंतन किया वैसे–वैसे इस तथ्य से मैं अवगत होती गई, कि हमारे समाज में स्त्री और उसमें भी दलित स्त्री की स्थिति काफी दयनीय है। दलित नारियाँ दोहरी दलित हैं, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। अस्पृश्यता, भेदभाव, छुआछूत, ऊँच–नीच आदि को मैंने अपने जीवन में कभी नहीं महसूस किया था, किन्तु इन कहानियों का अध्ययन करते हुए मैं उन सभी अनुभवों से स्वयं गुजरी जो कहानी के पात्रों के जीवन में घटित हुए। इसके पश्चात् ही मैं स्वयं को उन दलित नारियों की संवेदना को प्रस्तुत करने योग्य बन पायी। अपने अध्ययन की सुविधा तथा शोध–प्रबंध की समुचित नियोजना हेतु इसे निम्नलिखित छः अध्यायों में विभक्त किया हैः–

1.– भूमिका।
2.– हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना।
3.– गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना।
4.– हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन।
5.– विशेष नारी पात्र।
6.– उपसंहार।

प्रथम अध्याय भूमिका का है, जिसे पाँच उपविभागों में विभक्त किया गया है। 'दलित' कथा साहित्य से मेरा विषय जुड़ा होने के कारण इस शब्द का शाब्दिक अर्थ, लक्षणार्थ तथा संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी शब्दकोशों में प्रस्तुत किये गये अर्थ की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की गई है। दलित साहित्य का क्या अर्थ है ? इस विषय पर संक्षेप में चर्चा की गई है। तदुपरांत दलित साहित्य लिखने का प्रयोजन क्या है ? इस विषय पर संक्षिप्त रुप में प्रकाश डाला गया है। साथ ही हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव और विकास किस तरह हुआ एवं अन्य साहित्य की तरह आज दलित साहित्य का साहित्य में क्या स्थान है ? इसकी चर्चा करने के पश्चात्

दलित साहित्य का अपना सौन्दर्यशास्त्र क्या है ? कलावादी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र से वह किस तरह अलग है ? दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी दलित कहानियों में नारी–संवेदना को चित्रित करने का उपक्रम है। इस अध्याय में सन् 1980 से लेकर सन् 2008 तक की दलित कहानियों का विवेचन आलोच्य विषय के परिपेक्ष्य में हुआ है। इन कहानियों में 'अम्मा' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'बदबू', 'साजिश' (सूरजपाल चौहान), 'सिलिया' (सुशीला टाकभौरे), 'सुमंगली' (कावेरी), 'जंगल की रानी' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'हम कौन हैं' 'सुनीता' (रजत रानी 'मीनू'), 'मंगली' (कुसुम मेघवाल), 'अन्तिम बयान' (कुसुम वियोगी), 'दर्द' (मोहनदास नैमिशराय), 'मरीधार' (विजय कान्त), 'पहली रात का अंत' (उमेश कुमार सिंह), 'लाठी' (जय प्रकाश कर्दम), 'फुलवा' (रत्न कुमार सांभरिया), 'क्रान्ति' (राज वाल्मीकि), 'नई धार' (अनिता भारती), 'कर्फ्यू' (अखिलेश कुमार), 'खटिया की जाति' (सुरेन्द्र नायक), 'हिरजन' (प्रेम कपाडिया), 'उपमहाद्वीप' (अजय नावरिया), 'बंदरिया' (लखनलाल पाल), 'अब का समय' (प्रहलाद चन्द्र दास), 'यूज एण्ड थ्रो' (डॉ.पूरन सिंह), 'लोकतंत्र में बकरी' (उषा चन्द्रा), 'रात' (शिव कुमार कश्यप), 'जोजना' (दीपक कुमार 'अज्ञात'), 'आतंक' (राजेश कुमार बौद्ध) आदि के साथ कुल 62 कहानियों को लिया गया है। इसी अध्याय में इन कहानियों के परिप्रेक्ष्य में दलित शिक्षित महिलाएँ, दलित अशिक्षित महिलाएँ, दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण, पारिवारिक शोषण का शिकार हुई महिलाएँ, आर्थिक स्वतंत्रता की चाह, परिवार में पति की भूमिका, परिवार में पिता की भूमिका, दलित नारी का विद्रोह, इस तरह आठ उपविभागों में विभक्त करके दलित नारी की संवेदनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में गुजराती दलित कहानियों में नारी संवेदना को प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी की तरह इस अध्याय में भी सन् 1980 से लेकर सन् 2008 तक की गुजराती की दलित कहानियों का विवेचन आलोच्य विषय के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। इन कहानियों में 'दायण' (हरीश मंगलम्), 'गंगामां' (दलपत चौहान), 'मंकोडा', 'मेना', 'जोगन', 'जेल की रोटी', 'राती रायण की रताश', 'शहर की बहू' (बी.केशरशिवम्), 'सांकडा', भूल किसी की भोगे कोई', 'शैली का व्रत', (विट्ठलराय श्रीमाली), 'होड' (अरविन्द वेगडा), 'नरक', 'जलनवह', (धरमभाई श्रीमाली), 'लाखु' (मधुकान्त कल्पित), 'थडी', (मोहन परमार), 'सोमली' (हरिपार), 'नवी' (योगेश जोशी), 'सपायडो' (विट्ठलराय श्रीमाली), 'मेली मथरावटी' (राघवणी माधड), 'वंटोड' (भी.न.वणकर), 'छगना को न समझ में आते सवाल' (जोसेफ मेकवान), 'गाठाण' (प्रवीण गढवी), 'मुंझारो' (दलपत चौहान), 'रोकड़ी' (चन्द्रा बहन श्रीमाली), आदि लगभग 64 कहानियों का अध्ययन किया गया है। इसी अध्याय में इन कहानियों के परिप्रेक्ष्य में दलित स्त्री का जातीय शोषण, सवर्णों की स्वार्थपरता का शिकार दलित महिलाएँ, परंपरा के प्रति विद्रोह, शोषण के प्रति दलित स्त्री का विद्रोह, दलित महिलाओं का पारिवारिक शोषण, दलित महिलाओं की आर्थिक समस्याएँ, इस तरह छः उपविभागों में दलित महिलाओं की संवेदनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों की समस्याओं की साम्यता और विषमता को विश्लेषित किया गया है। अध्याय के प्रारंभ में जातीय शोषण संबंधित समस्याओं एवं कारणों पर प्रकाश डाला गया है। दलित महिलाओं की आर्थिक समस्याएँ, दलितों की जातिगत हीन भावना की समस्याओं को भी विश्लेषित किया गया है। इस अध्याय में हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों के परिवेश को भी प्रस्तुत किया गया है।

इस अध्ययन के दौरान दलित नारी के विभिन्न रुपों और मुद्राओं से गुजरने का अवसर मिला। जहाँ एक तरफ नारी का शोषित, दमित, पीड़ित रुप मिला, वहाँ इन सबके बावजूद कुछ ऐसी तेज–तर्रार, जुझारु, विद्रोही, आत्मविश्वासी, स्वाभिमानी, परिश्रमी, और संघर्ष–दीप्त नारियाँ भी मिली जिनकी विपरीत परिस्थिति में संघर्ष की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। पंचम अध्याय में ऐसी कुछ नारियों को अलगाने और विश्लेषित करने का यत्न हुआ है। क्रांति (क्रांति), सिलिया (सिलिया), मंगली (मंगली), सुनीता (सुनीता), शान्ता (साजिश), अंगूरी (अंगूरी), सुकिया (जोजना), अम्मा (अम्मा), चन्द्रो (सनातनी), रम्पो (रम्पो का चेहरा), रेवी (थडी), सोमली (सोमली), सीमा (राजीनामा), बेनीमां (दायण), शैली (शैली का व्रत) आदि ऐसे नारी चरित्र हैं जो अपने विशिष्ट गुणों से पाठकों को मुग्ध कर सकते हैं। उन पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। उनकी बुद्धि–प्रतिभा, संघर्ष क्षमता तथा अदम्य साहस उन्हें और नारी–पात्रों की भीड़ से अलगाते हैं।

अंतिम अध्याय 'उपसंहार' का है, जिसके अंतर्गत समग्र प्रबंध का समग्रावलोकन देते हुए उसके कतिपय निष्कर्षों को रेखांकित किया गया है। यहाँ पर अति संक्षेप में प्रस्तुत शोध की उपादेयता और उपलब्धियों को समेकित करते हुए उसकी भविष्यत् संभावनाओं के कुछ बिन्दुओं को उकेरा गया है। यथासंभव अध्याय के अंत में निष्कर्षों को दिया गया है। शोध–प्रबंध के अंत में संदर्भिका (Biblography) के अंतर्गत विभिन्न परिशिष्टों के तहत सहायक ग्रंथों तथा पत्र–पत्रिकाओं की सूची अकारादि क्रम से प्रस्तुत हैं।

प्रस्तुत शोध–कार्य के माध्यम से हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों में नारी की संवेदना, समस्या, दशा, संघर्ष स्थितिओं के प्रश्न उजागर करने के लिए मैंने अपनी संपूर्ण क्षमता, शक्ति–मति, बुद्धि–प्रतिभा से प्रयत्न किया है। अपनी मर्यादाओं का अहसास मुझे है, अतः विद्वज्जनों के सम्मुख अपनी क्षतियों के लिए पहले ही नतमस्तक हूँ। यदि मेरे इस शोध–कार्य से हिन्दी एवं गुजराती दलित कहानियों की आलोचना के कुछ नये आयाम खुलते हैं और अध्येता तथा अनुसंधित्सु इससे किंचित्मात्र भी लाभान्वित होते हैं, तो मैं अपने इस परिश्रम को सार्थक समझूंगी। इस शोध निबंध के प्रबंधन में प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से जिन विद्वानों के बहूमूल्य ग्रंथों व लेखों से मैंने लाभ उठाया है, उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरे इस शोध प्रबंध के कार्य में शुरु से अंत तक मुझे हर समय सहयोग देने वाले डॉ. कान्ति मालसतर जी के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, क्योंकि उनके समुचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन के बिना यह महापर्व पार करना मेरे लिए दुष्कर

होता। डॉ. भरत मेहता जी ने मुझे शोध–प्रबंध का विषय चयन करने में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया, जिसके लिए मैं उनका आभार व्यक्त करती हूँ।
अदरणीय फारुक शाह जी ने विविध पुस्तकों की प्राप्ति के हेतु मुझे आवश्यक जानकारियाँ देने में अपना विशेष सहयोग दिया, जिसके लिए मैं उनका भी आभार व्यक्त करती हूँ। हिन्दी विभाग की अध्यक्षा आदरणीय डॉ.शैलजा भारद्वाज का भी मैं हृदय से आभार मानती हूँ। हिन्दी विभाग के सभी अध्यापकों के सहयोग के लिए भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इस पूरी प्रक्रिया में मेरे पति, मित्र, एवं परिवार के सभी सदस्य सदैव मुझे हौंसला देते रहे। उनकी कृपा तथा स्नेह का ही यह परिपाक है।

अंत में मेरे निर्देशक डॉ. मुहम्मद अज़हर ढेरीवाला जी को मैं अपने शतशः प्रणाम निवेदित करती हूँ, क्योंकि उनके बहुमूल्य मार्गदर्शन के अभाव में यह पहाड़–सा कार्य कभी सम्पन्न न होता। उनके निर्देशन में पी–एच.डी. का शोध–प्रबंध प्रस्तुत करने वाली मैं पहली अनुसंधित्सु हूँ, उन्होंने मुझ पर जो विश्वास के साथ मुझे यह अवसर प्रदान किया है, उसके लिए भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। डॉ. साहब की ज्ञान निष्ठा, उदारता स्नेहसिक्तता, लक्ष्य–प्रति श्रुतता तथा शोध–अनुसंधान के क्षेत्र में उनकी पकड़ विद्वानों में विश्रुत है। अतः उनके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती।

दिनांक–

विनीत,

(पारुल एल. सिंह)

अनुक्रमाणिका

1. प्रथम अध्याय –

भूमिका
प्रस्ताविक
दलित शब्द का अर्थ
दलित साहित्य अर्थात् क्या?
दलित साहित्य का प्रयोजन क्या है ?
हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव और विकास
दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र
निष्कर्ष
सन्दर्भानुक्रम।

2. द्वितीय अध्याय –

हिन्दी दलित कहानियों में नारी–संवेदना का अध्ययन
प्रस्ताविक
दलित शिक्षित महिलाएँ
दलित अशिक्षित महिलाएँ
दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण
पारिवारिक शोषण का शिकार हुई महिलाएँ
आर्थिक स्वतंत्रता की चाह
परिवार में पति की भूमिका
परिवार में पिता की भूमिका
दलित महिलाओं का विद्रोह
निष्कर्ष
संदर्भानुक्रम।

3. तृतीय अध्याय –

गुजराती दलित कहानियों में नारी–संवेदना का अध्ययन
प्रस्ताविक
दलित स्त्री का जातीय शोषण
सवर्णों की स्वार्थ–
परता का शिकार दलित महिलाएँ
परंपरा के प्रति विद्रोह
शोषण के प्रति दलित स्त्री का विद्रोह
दलित महिलाओं का पारिवारिक शोषण
दलित महिलाओं की आर्थिक समस्याएँ
निष्कर्ष
संदर्भानुक्रम ।

4. चतुर्थ अध्याय – हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन
प्रस्ताविक
समस्याओं की साम्यता और विषमता
परिवेश
निष्कर्ष
संदर्भानुक्रम।

5. पंचम अध्याय – विशेष नारी पात्रः
प्रस्ताविक
लगभग 20 विशिष्ट नारी चरित्रों का विश्लेषण
निष्कर्ष
संदर्भानुक्रम।

6. षष्ठ अध्याय – उपसंहार
समग्रावलोकन पर आधारित कतिपय निष्कर्ष

सन्दर्भिका –

1. **परिशिष्ट –** मूल आधार ग्रंथों की सूची हिन्दी–गुजराती
2. **परिशिष्ट –** समीक्षात्मक सहायक ग्रंथों की सूची हिन्दी–गुजराती
3. **परिशिष्ट –** कोश ग्रंथों की सूची
4. **परिशिष्ट –** पत्र–पत्रिकाएँ हिन्दी–गुजराती

प्रथम अध्याय

''भूमिका''

अध्याय–1

1.1 'दलित' शब्द का अर्थ :–

भारत में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक 'दलित'शब्द पर विभिन्न मत–मतांतर प्रवर्तमान रहे हैं। भारत में आठ दशक पूर्व से 'दलित' शब्द का प्रयोग प्रारंभ हुआ है। आरंभ से लेकर अब तक इस शब्द की व्याप्ति को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है। विभिन्न शब्द कोशों में दलित शब्द का अर्थ इन रुपों में मिलता हैं :

1."दल–(अक) विकसना ,फटना, खण्डित होना,द्विधा होना।
दल–(सक) चर्ष करना,टुकड़े करना, विदारना।
दल–(नपृ.) सैन्य,लश्कर,पत्र,पत्ती।"[1]

2. 'दलित' शब्द 'दल' धातु+कुत प्रत्यय से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–

"टूटा हुआ,चीरा हुआ,फाड़ा हुआ,टुकड़े–टुकड़े किया हुआ,फैलाया हुआ।"[2]

दलित समाज या दलित वर्ग भारतीय समाज का वह भाग है जिसे अभिजात्य वर्ग के लोगों ने सदियों से दबाकर रखा। भारतीय समाज व्यवस्था के संदर्भ में 'दलित' शब्द का अर्थ है–ऐसा जन समुदाय जिसे प्राचीनकाल से तथाकथित सभ्य सवर्ण समाज ने दबाकर रखा है, जिसे धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाओं से वंचित बनाये रखा। दलित शब्द को व्यापक अर्थ में समझने के लिए यहाँ भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर का मंतव्य अधिक ध्यान देने योग्य है–उनके अनुसार दलित शब्द गूँगा नहीं है, वह स्वयं अपनी परिभाषा देता है। उनके द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ही चोटदार और सटीक है। उन्हीं के शब्दों में–

> **"दलित शब्द मूक नहीं है, यह अपनी परिभाषा स्वयं उद्‌भाषित करता है। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो, उत्पीड़न किया गया हो। उपेक्षित,अपमानित,प्रताड़ित,बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जतिवाद से अभिशप्त दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीड़ित व्यक्ति आते हैं, वहीं सदियों से प्रताडित,उपेक्षित,अपमानित,शोषित, सामाजिक बंधनों में बाधित एवं बच्चे भी इसी श्रेणी में शामिल हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही हैं।"**[3]

उपरोक्त मंतव्य से हमें 'दलित' शब्द का व्यापक स्तर पर अर्थ देखने को मिलता है, उसमें छुआछूत या वर्ण व्यवस्था से भी आगे तमाम उपेक्षित, वंचित, शोषित, पीड़ित,गरीब, मजदूरी, पर जीवन बिताने वाले लोगों को शामिल किया गया है।

'दलित' शब्दकोशकारों की दृष्टि में :–

1. संस्कृत भाषा में :–

शुद्र चौथे वर्ण का पुरुष (कहा जाता है कि वह पुरुष या ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न हुआ–'पदभ्यां' शुद्रो अजायतः') आर्यों के चार मुख्य वर्णों में से अंतिम वर्ण का पुरुष।[4]

2. हिन्दी भाषा में:–

संस्कृत शब्दकोश की तरह हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ– विनष्ट किया हुआ ऐसा ही दिया हुआ है, जैसे–
"दलित(वि सं.)" स्त्री दलिता

1.''मसला हुआ, मर्दित
2.दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ।
3.खण्डित
4.विनष्ट किया हुआ"[5]

डॉ.भोलानाथ तिवारी नें 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है–

1."दलित–कुचला हुआ ,मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ,
2.पस्त हिम्मत, हतोत्साह,
3.अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लाइ।"[6]

अंत्यज– **अंतिम वर्ण में पैदा हुआ शुद्र।** [7]

अस्पृश्य– **जो छूने योग्य न हो।** [8]

दलित शब्द का अर्थ मानक हिन्दी शब्द कोश में इस प्रकार दिया गया है–

''दलित (भूतकृदंत) (संदल + क्त)
1.जिसका अर्थ दलन हुआ है।
2.जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया हो
3.टुकड़े–टुकड़े किया हुआ।चूर्णित।
4.जो दबाया गया हो। जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो। हीन अवस्था में पड़ा हुआ।
5.ध्वस्त या नष्ट किया हुआ''। [9]

श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने शब्द को इस रुप में परिभाषित किया है–

''दलित शब्द भाषागत,जातिवाद और क्षेत्रवाद को नकारता है और पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।''[10]

डॉ. पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी के शब्दों में–

> **''समता के अस्मितादर्शी, प्रगतिशील समाज के मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षशील लोग ही दलित हैं। आज पिछड़े वर्ग,अनुसूचित जाति,जनजाति ही अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं,इसलिए इनके मत से हम सहमत हैं।''**[1]

दलित शब्द की व्याप्ति आज मीडिया तथा समाचार पत्र आदि भी स्वीकार कर चुके हैं, परंतु इस शब्द का चलन भारत में 1919 के लगभग आरंभ हुआ। पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट में इस शब्द का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि–

> **''ब्रिटिश सरकार के शासन के दौरान मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिफार्मेस द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग के लिए अनेक सरकारी निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया तथा उसी अनुरुप 1919 में सरकारी भाषा में दलित वर्ग सर्वग्राही शब्द बन गया था, जिसमें अनुसूचित जन जातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोग शामिल थे।''**[12]

अतः ब्रिटिश शासन काल में ही दलित शब्द शुद्रों के लिए प्रयुक्त होना मान्य हो गया था।

3. <u>गुजराती भाषा में:–</u>

दलित– **''कचडायेलु, दलायेलु, पीडित, डिप्रेस्ड''**[13]
(कुचला हुआ, चूर्णित)

दमित– **''जेनु दमन करवामां आव्युं छे तेवुं''**[14]
(जिसका दमन किया गया हो वह)

पददलित– **1.''पग निचे कचडायेलु**
(पैरों तले कुचला हुआ)
2.नीची कक्षानुं गणवाने कारणे परेशान थयेलुं"[15]
(निम्नस्तर में गिनती के कारण जो त्रस्त हुआ हो वह)

<u>शोषित</u> – **''सूकववामां आवेलुं, चूसवामां आवेलुं, कचडायेलुं, पजवायेलुं"**[16]
(सूखा किया हुआ, चूसा हुआ, प्रताड़ित किया हुआ)

> **''1937–38 में गुजराती साहित्य परिषद के 13 वें अधिवेशन में प्रमुख स्थान से श्री कनैयालाल मुनशी ने अपने प्रवचन में दलित शब्द का प्रयोग किया है।''** [17]

> **''साथ ही मेघाणी के 'युगवंदना' (1935) काव्य संग्रह में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।''** [18]

इस प्रकार गुजराती साहित्य में 1935 में 'दलित' शब्द मिलता है। आज संविधान के दर्शाए गए 'अनुसूचित जाति' के समाज–समूल के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

4. अंग्रेजी भाषा में:–

1.दलित–Dalit (s) Adsj
(1)broken or turn to pieces
(2)crushed,ground: trompled
(3)oppressed.19

2.शोषित–Sosit (s) M
(1)made dry
(2)absorbed
(3)exploited.20

3.अछूत–A.chut
(1)Not to be touched, untouchable
(2)M. an untouchable (caste person) ca+u>m
improvement of the condition of the scheduled caste"21

4.अंत्यज–Adj.&M.born in the lowest caste(s)Untouchable.22

5.पददलित–Downtrodden 23

6.अस्पृश्य,अछूत–Untouchable. 24

''सर्व प्रथम फ्रेंच भाषा और बाद में अंग्रेजी शब्द डिप्रेस्ड का उपयोग सरकारी भाषा में इस वर्ग के लिए किया गया था,जिसका हिन्दी रुपांतर दलित शब्द के रुप में आया तथा डिप्रेस्ड क्लासेस का अर्थ दलित के रुप में सरकारी भाषा में अंगीकृत किया गया।''25

इस प्रकार चारों भाषाओं के कोशों में 'दलित' शब्द एवं उसके पर्याय शब्दों के अर्थ दिये हुए हैं। निष्कर्षतः दलित शब्द का अर्थ होता है जिसका दमन या दलन किया गया हो अथवा जिसे सदियों से पैरों तले रौंदा,मसला,कुचला गया है। साथ ही जो स्पर्श के योग्य न हो तथा शोषित,पीड़ित,उपेक्षित एंव वंचित है।

1.2. दलित साहित्य अर्थात् क्या ?

समय के साथ समाज–जीवन बदलता है, लोगों के जीवन की रस–रुचि बदलती है, जीवन शैली बदलती है,उसके मूल्य और संदर्भ बदलते हैं। प्रत्येक युग अपने आदर्शों अपनी भावनाओं, मूल्यों और अपने यथार्थ की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्य का सृजन करता है।

आज का युग विषमता (संक्षुब्धता) और विच्छिन्नता का युग है। समाज की संकीर्ण मनोवृति, विषम परिस्थिति, अन्याय, अत्याचार के इस युग में दबे हुए, कुचले हुए, पीड़ित, शोषित और तिरस्कृत व्यक्ति की पीड़ा,वेदना, यातना, भावना, अपेक्षा और आदर्शों की समीक्षा और समस्याओं इतना ही नहीं उसके अस्तित्व की पहचान और अस्मिता की परख करने वाले सामाजिक संचेतना और संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले नवोन्मेष के स्वरुप में प्रकट हो रहे विद्रोही साहित्य को 'दलित साहित्य' के रुप में पहचान मिली है।

परंपरागत साहित्य में राजाओं उच्च पदाधिकारी,ब्राह्मण,क्षत्रीय एवं उच्च वर्ण के वैभव की भव्यता और रम्यता की कहानियाँ थीं, जिसमें 'मानव' नहीं थे, और दरकिनार दलितों का तो नामोनिशान नहीं था। इस साहित्य में देवताओं का गुणगान था, किन्तु 'मानव' नहीं था, जबकि दलित साहित्य के केन्द्र में 'मानव' है। जो दलित, पीड़ित, शोषित है उसकी मनोवेदना है, उसके प्रति हो रहे अन्याय और अमानुषिक व्यवहार की बात है। उसके अस्तित्व और अस्मिता के स्वीकार के साथ परंपरा का इन्कार,प्रस्थापित मूल्यों के समक्ष विद्रोह है, जिसमें प्रस्थापित सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को छोड़कर प्रतिबद्धता पूर्वक मानवीय संवेदना के आर्विभाव की अभिव्यक्ति है। साहित्य की इस नवोन्मेष की धारा में नवयुग का आविष्कार है, दलित–पीड़ित की यातना का आर्विभाव है, दलितों की अस्मिता, अस्तित्व और गरिमा का प्रादुर्भाव है।

डॉ. कालीचरण 'स्नेही' के अनुसार –

> **''दलित साहित्य, मानव मुक्ति का साहित्य तो है ही, साथ ही यह शास्त्र से मुक्ति की चेतना का साहित्य भी है। इस साहित्य में दलितोत्थान की मूल चेतना के साथ–साथ आम सरोकार आदि को नए सिरे से अभिव्यक्त करने का आग्रह है। दलित को सुस्थिर और प्रतिष्ठित होते देखकर कुछ कलावादी और वर्णवादी साहित्यकार उग्र और व्यग्र हैं। उन्हें दलित लेखकों की मेघा से मुठभेड़ करने में काफी ऊर्जा नष्ट करनी पड़ रही है। वे नहीं चाहते कि दलित वर्ग–अपनी कथा–व्यथा, स्थिति–परिस्थिति को साहित्य के माध्यम से मुखरित करे।अक्षरों को अंगार में ढ़लते देख उन्हें असह पीड़ा होती है। वे तो सौन्दर्य और श्रृंगार की उपासना के अभ्यस्त हैं। इसलिए चाहेंगे कि हम भी उसी कल्पना लोक में विचरण करें। लेकिन दलित साहित्यकार का अपना कटु अनुभव संसार है, सदियों की दासता और गुलामी का ब्यौरा है, उसे यदि वह अभिव्यक्त करता है, तो किसी को आपत्ति और आफत क्यों ? हमें अपनी तकलीफें और दूसरों की क्रूरता लिपिबद्ध करने की इजाजत होनी चाहिए। भला कोई भी सतर्क सवर्ण साहित्यकार अपने पूर्वजों द्वारा दलितों पर किए गए क्रूरता अमानुषिक अत्याचार कागज पर क्यों आने देगा ? ऐसा होने से वह अपने पूर्वजों को, अपने आपको कठघरे में खड़ा पाता है। कटघरा किसे पसन्द है ? आज दलित साहित्यकारों ने लामबद्ध होकर ऐसे गुनहगारों को कठघरों में लाना आरंभ कर दिया है, जिन पर आदमी को पद दलित करने के आरोप हैं, वे अब बचाव की मुद्रा में उठखड़े हुए हैं और ऐसी हर कोशिश को निरस्त करने में जुट गए हैं। दलित साहित्य के बढ़ते प्रभाव से बड़े–बड़े नामी साहित्यकार वकील (समीक्षक) वर्ण व्यवस्था पोषक और सामन्ती सोच तथा साँचे–ढ़ाँचे के हिमायती हैरत में पड़ गए हैं।''**[26]

दलित साहित्य के विषय में विद्वानों ने विविध मत प्रकट किए हैं। वसन्त पाटणकर ने स्पष्ट कहा है। कि–

> **''एक विशिष्ट मिट्टी में जन्मे हुए व्यक्ति की रचना दलित साहित्य नहीं कही जा सकती। सवर्णों द्वारा दलितों के बारे में चाहे जितनी आस्था हो उसमें जीवन्तता हो किन्तु उनके द्वारा निर्मित साहित्य भी दलित साहित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह आस्था कितनी भी उत्कट और जीवन्त होते हुए भी उसमें से दलित चेतना व्यक्त नहीं हो पाती। अतः जन्मना, दलित व्यक्ति द्वारा निर्मित, दलितों के जीवन पर दलित संवेदनशील अनुभूति का चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। इस प्रकार के लेखों में समूह भावना का एहसास व्यक्त होगा तथा प्रकट–अप्रकट रुप से प्रत्यक्ष–परोक्ष रुप से विद्रोह तथा रुढ़िगत समाज–रचना के प्रति नकारात्मक भावना व्यक्त होगी।''**[27]

हिन्दी क्षेत्र में जन्में डॉ. राममनोहर लोहिया पहले राजनीतिक समाजवादी हैं, जिनके अनुसार–

> **''दलित श्रेणी में हरिजन, शुद्र, आदिवासी, जुलाहा, धुनिया और आदि को स्वीकार किया। श्रमिक दलितों का उस समय विकास नहीं हो पाया था। किसान जो सदियों से पीड़ित रहा, वह भी दलित वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है, बशर्ते मजदूर किसान हो। सच तो यह है कि गरीबी रेखा के नीचे जीनेवाला हर व्यक्ति दलित है, चाहे वह किसी भी वर्ग में जन्मा हो। दलित की जाति–जन्मना नहीं होती। इस प्रकार आर्थिक–समाजिक दृष्टि से पीड़ित, शोषित, पिछड़े सभी दलित श्रेणी में आएँगे और इनका गान ही दलित साहित्य कहलाएगा।''** [28]

हिन्दी दलित लेखक और दलित चेतना के संवाहक सच्चिदानन्द का मत उल्लेखनीय है–

> **''जिस साहित्य में मनुष्य समाज की पीड़ा, दर्द और इनकी कुछ न कर पाने की बेबसी का चित्रण मिलता है वह सब दलित साहित्य है। चाहे वह गैर–दलितों द्वारा दलितों के जीवन को लेकर लिखा गया ही क्यों न हो।''**[29]

प्रो.राजमणि शर्मा की दृष्टि में भी–

> **''दलित रुप में जन्में व्यक्ति द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य कहना एक अतिवादी सोच है। सत्य तो यह है कि साहित्य रचना एक विशेष प्रकिया और प्रतिभा की अपेक्षा करती है। अतः सभी व्यक्ति दलित साहित्य सृजन में सफल नहीं हो सकते। फिर वही साहित्य दलित साहित्य कहलाएगा जो दलित संवेदना, सौन्दर्य–बोध से जुड़ा हो,वही दलित दलित रचनाकार कहलाएगा जो उसकी अभिव्यक्ति का दावा लेकर चला हो, भले ही वह किसी भी जाति या वर्ग में जन्मा हो।''**[30]

दलित शब्द तथा उसके स्वरुप के संदर्भ में जन्मा विवाद साहित्य के स्वरुप तथा मान्यता के संदर्भ में भी विवाद पैदा कर गया। कट्टरवादी 'दलित' रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की मान्यता है कि–

> **''दलित द्वारा दलित जीवन पर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है।''**[31]

उनकी यह मान्यता है कि दलित साहित्य किसी 'आनन्द' या 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए नहीं, आदमी को आदमी की तरह जिन्दा रखने के लिए,उसकी अपनी निजता को स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया है।
जयप्रकाश कर्दम के अनुसार–

> **''दलित लेखन दलितों द्वारा अपने दुख–दर्द, उपेक्षा, उत्पीड़न तथा उसके विरुद्ध संघर्ष और जिजीविषा की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।.....दलित लेखकों द्वारा लिखित दलित चेतनोन्मुख साहित्य ही दलित साहित्य है।''**[32]

रमणिका गुप्ता, श्यौराज सिंह बेचैन, तेज सिंह जहाँ वाल्मीकि एवं कर्दम के समर्थक हैं, वहीं रजनी तिलक, राजकुमार सैनी दलित चेतना को लेकर गैर–दलित द्वारा लिखे गए साहित्य को भी दलित साहित्य मानने के पक्षधर हैं, बशर्ते उसमें अनुभूत संवेदनात्मक यथार्थ हो। प्रगतिशील तथा मार्क्सवादी खेमे के चिन्तक भी यही मानते हैं। नारायण सर्वे, बाबू राव बागुल भी इसी मत के हैं। स्वयं बुध्द भी जन्मना दलित नहीं थे और आदि कवि वाल्मीकि के मुख से जब कविता स्वयं प्रस्फुटित हो उठती है तब स्वयं वाल्मीकि भी भोक्ता नहीं थे। वह उनका भोग यथार्थ नहीं था अनुभूत यथार्थ ही था। जिस रचना में दलित जीवन, दलितों के पश्न केंद्रीय हो वह दलित साहित्य है। इस बात पर सभी सहमत रहें लेकिन इसका लेखक कौन होगा इस पर बहस छिड़ी। बहस छेड़ने वाला एक वर्ग सवर्ण–अवर्ण सभी के लिखे गए साहित्य को दलित स्वीकरता था। जबकि दलित साहित्यकारों के अनुसार जन्मना दलित ही दलित साहित्य की रचना कर सकता है। जो जन्मना दलित नहीं है जिन्होंने अछूतपन का दंश नहीं झेला है, जो समाज से उत्पीड़ित, बहिष्कृत नहीं रहे हैं जब वे लिखेंगे तो सहानुभूति के सहारे ही। उनका लेखन यथार्थ पर नहीं बल्कि कल्पना पर आधारित होगा। जब यथार्थ भोगा हुआ नहीं हो तो उसे प्रामणिक रुप से कैसे लिखा जा सकता है ? दलित साहित्य की व्याख्या करते हुए कंवल भारती का कहना है–

> **''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्यसे है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है। अपने जीवन संधर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''**[33]

यह बात अवश्य कहीं जा सकती है कि दलित समुदाय में पैदा हुए व्यक्ति का कुछ भी लिखा दलित साहित्य नहीं है, दूसरी बात यह है कि दूसरे को देखकर, समझकर, संवेदना के जरिए प्राप्त ज्ञान, अप्रत्यक्ष अनुभव एवं कल्पना के आधार पर लिखा साहित्य

झूठा नहीं कहा जा सकता। मुंशी प्रेमचंद के दलितों पर लिखे साहित्य को इस परिभाषा के आधार पर आंकना अनुचित होगा।

अंत में कहा जा सकता है। कि वे सभी रचनाएँ जो अंशतः या पूर्ण दलित चेतना को उजागर करती हैं, उसे दलित–साहित्य के अन्तर्गत माना जा सकता है। ज्यादातर दलित लेखकों का यह मानना है कि दलित–साहित्य केवल दलित जाति से आया हुआ रचनाकार ही लिख सकता है अर्थात् जब दलित जाति का लेखक अपने वर्ग के लोगों की समस्याओं को आधार बनाकर किसी प्रकार के साहित्य का सृजन करे तब वह दलित–साहित्य कहलायेगा। पर प्रश्न यह है कि वे गैर–दलित लेखक जिनके भीतर दलितों के प्रति संवेदना के स्तर पर सहानुभूति है और करुणा या दयावश अगर वे दलित–समुदाय को आधार बनाकर कोई रचना करते हैं तो उसे क्या कहा जायेगा ?

जनवादी, प्रगतिवादी साहित्य की तरह ही दलित साहित्य भी दरअसल मानसिकता बदलने वाला साहित्य है। यह समाज की गलतियों को चिह्नित करने का और बदलने का साहित्य है। यह मानव मानव की बराबरी और न्याय की मांग करने वाला, सामाजिक दमन के विरुद्ध तर्क करने वाला, विज्ञान पर आधारित विद्रोह का प्रतिबद्ध नायक है। यह भगवान और भाग्य को नकारता है, रुढि,विकृत परंपरा, आडंबर और अंधविश्वास के प्रभंजन का साहित्य है। दलित साहित्य का उपयोग मात्र व्यक्ति नहीं, समाज को बदलने की प्रक्रिया में किया जा सकता है, चूँकि यह समाज के बहिष्कार, दमन व पीड़ा से उपजा है। यह मनुष्य को मनुष्य न मानने की चोट का, वर्ण के बन्द कमरों में कैद एक बड़ी आबादी के मुक्ति का द्वार खोलने का साहित्य है। वास्तव में यह समकालीन साहित्य परिदृश्य में एक बड़ी चुनौती का सक्षम उत्तर है।

1.3. दलित साहित्य का प्रयोजन क्या है ?

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है, जैसा समाज हो वैसा उसका सीधा प्रतिबिम्ब साहित्य है। किन्तु जब हम लोगों ने साहित्य पढ़ा, सोचा तब लगा कि समाज का प्रतिबिम्ब जिस दर्पण में दृश्यमान होता, है उसमें तो कुछ निश्चित वर्ण के लोग ही हैं। उसमें गरीबी, दलित, पीड़ित समाज तो है ही नहीं। ब्राह्मण और क्षत्रियों ने अपनी कथा कही। दलितों के बारे में लिखा गया, पर थोड़ी देर से और वह भी सहानुभूतिजन्य रहा, यथातथ्य किसी ने भी कभी भी नहीं लिखा। यही ठेस के चलते दलितों ने कलम उठायी। अनुकरण नहीं, अपने मार्ग स्वयं बनाए। जैसा लगा वैसा लिखा।

वास्तव में दलित साहित्य में जैसा जीवन वैसा चित्रण किया । दुःख, शोक, विडम्बना, भूख, अपमान जो भी गैर दलित समाज ने दलित समाज को दिया उनका निरुपण करना है। दलित समाज के प्रति गैर दलित समाज की घृणा, अपमान बोध ही दलित साहित्य बना। दलित साहित्य का मूल प्रयोजन व्यक्ति को अस्तित्व बोध कराते हुए उसे अस्मिता प्राप्ति करवाना है। मानव को विचारों से परिष्कृत करके उसके जीवन को महत्तम उच्चता प्रदान करना है, जो दलित साहित्य कर रहा है।

दलित साहित्य यथार्थ पर आधारित है। दलितों ने जैसा नारकीय और पाशविक जीवन जिया है, जितनी यातनाएँ अपमान और जिल्लत को भोगा है, उन सबका यथातथ्य चित्रण तथा उसकी आशा, अभिलाषा, संघर्ष, जिजीविषा तथा उपलब्धियों की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। चूँकि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं उसके पथ–प्रदर्शन का भी कार्य करता है। वह समाज को प्रेरणा और दिशा देता

है। दलित साहित्य समाज की अनिवार्यता है तथा तब तक समाज में असमानता, अन्याय शोषण होता रहेगा तब तक दलित साहित्य की अनिवार्यता बनी रहेगी।

दलित साहित्य जीवनानुभिमुखी साहित्य है, जीवनवादी साहित्य है, मानव और केवल मानव उसके केन्द्र में है, मानव मूल्यः मानव धर्म, मानव कर्म उसके केन्द्र में है, न्याय और विवेक उसके केन्द्र में है, तर्क और प्रमाण उसके केन्द्र में है, "कला कला के लिए" नहीं "कला जीवन के लिए" का विचार और उसकी चिंताएँ उसके केन्द्र में है। उसका जीवन से सीधा सरोकार है, जीवन की समस्याओं, कठोर और निर्मम वास्तविकताओं से जूझने का मुद्दा उसमें है। यथास्थितिवाद के प्रति विद्रोह की भावना दलित साहित्य में है और यही उसका प्रयोजन है।

दलित साहित्य चेतना एवं सृजना का सीधा संबंध दलितों की मानवीय प्रतिष्ठा और उनकी अस्मिता से है, जिसका प्रयोजन यथास्तितिवादी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा भय, भाग्य व भगवान की भूमिका वाले तिलस्म को तोड़ना है। तत्पश्चात् ही बहुजन दलित समाज को मानवीय अधिकारों की प्राप्ति एवं जीवन मूल्यों की खोज कर जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सकता है। जो सृजन शोषित–प्रवंचितों या दलितों में आत्म–बल और 'आत्म–सम्मान' की भावना जागृत कर सके वही दलित साहित्य का प्रयोजन है। यही विभाजन रेखा अन्य प्रकार के साहित्य प्रयोजन से दलित साहित्य के प्रयोजन की पृथक पहचान को रेखांकित करती है।

समाज में फैले अत्याचार शोषण गरीबी, छूआछूत, उपेक्षा जो मानवीय अस्तित्व को नकारती है, वह दलित साहित्य की धरोहर है। विश्व में कोई भी देश या प्रान्त नहीं होगा जहाँ पर यह विषमता भारत जैसी हो। जब इस विषमता को नज़र अंदाज करना नामुमकिन है तो उसके परिणाम 'साहित्य सर्जना' को भी नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। प्रभुत्ववर्ग की विचार धारा से प्रेरित साहित्य सर्जना पर बात करते हुए शंभूनाथजी ने लिखा है कि–

> **"प्रभुत्वशाली वर्ग की विचार धारा ही साहित्य रुपों को प्रभावित ,नहीं करती। उस वर्ग को चुनौती देने वाली दलित–विचार–धारा ' भी नये साहित्य रुपों को जन्म देती है।"**[34]

अर्थात् प्रभुत्व वर्ग की विचारधारा समाज की सच्चाई की ईमानदारी पूर्ण चित्रित नहीं करेगी। उसमें ज्यादातर प्रतिष्ठा, आडंबर, खोखले आदर्शों, प्रदर्शनकारिता आदि को प्राथमिकता दी जायगी, जबकि दलित–वर्ग की विचारधारा समाज की विषमता एवं विसंगतियों का यथातथ्य, सहज, सजीव, वास्तविकता परक चित्रण करेगी। दूसरे शब्दों में उसका प्रयोजन यही रहेगा कि इस शोषण को नाम शेष करवाने हेतु यथार्थ को उसके नग्न रुप में चित्रित करने में जरा भी हिच–किचाहट महसूस न हो।

यह सर्वथा निश्चित है कि आदमी की आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्तर पर मुक्ति ही दलित–साहित्य का मुख्य स्वर है। वह निःसंदेह सामाजिक परिवर्तन का स्त्रोत है। आज का दलित साहित्य हमारे युग राष्ट्र एवं जीवन के सामाजिक तथा आर्थिक जगत के परिवर्तित तथा वास्तविक मूल्यों को सच्ची, सार्थक, निःस्पृह अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है, वह हमारी बदलती परिस्थिति का सूचक है। कुलीन, आडंबर, कृत्रिम तथा बनावटी साहित्यिक संस्कारवादिता का उसने छेदन करके आदमी के पास बैठा दिया है। वह दलित पीड़ित समस्त उपेक्षित उसी तरह विस्तृत जन–जीवन का यथार्थ

चित्रण करता है। वह जनशक्ति का हथियार है। वह ज़िन्दगी की तलहटी में बैठा है। आज का साहित्य समाज से दूर राजनीति का अनुयायी बन गया है।

'समाज सेवा ' के संपादक और सुपरिचित लेखक श्री मनमोहन मदारिया के अनुसार–

> **''मैं मानता हूँ वहाँ तक दलित समाज जीवन की समस्याओं को चित्रित करने वाला साहित्य दलित साहित्य है। जो कि ऐसा साहित्य कई वर्षों पहले से लिखा जा रहा है, परंतु आज उसकी पहचान दूसरी ही तरह से शुरु हो रही है। यह सत्य है कि साहित्य प्रथम दृष्टि में कलात्मक होता है और कलात्मक होना भी चाहिए परंतु उसका स्वयं का प्रयोजन होता है और जहाँ तक दलित साहित्य का संबंध है, उसमें दलित वर्ग का जितना प्रामाणिक चित्रण होगा उतना प्रामाणिक होगा। इससे यदि वह प्रामाणिक साहित्य होगा तो वह दलित वर्ग की समस्याओं के प्रति स्वाभाविक रुप से हमारा ध्यान खींचेगा और वह समस्याओं के समाधान के लिए हमें परिवर्तन का स्त्रोत देख सकते हैं। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का वास्तविक अर्थ दलित वर्ग के उत्थान का ही है।''**[35]

दलित साहित्य जनता का साहित्य है। जनता के साहित्य का अर्थ है–

> **''ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों को जनता के जीवनादर्शन को प्रतिस्थापित करता हो उसी तरह उसे मुक्ति पथ पर ले जाता हो, उस मुक्तिपथ का अर्थ राजनैतिक मुक्ति से लेकर अज्ञात की मुक्ति तक है। इससे उसमें प्रत्येक प्रकार का साहित्य समाविष्ट हुआ है। शर्त इतनी ही है कि वह वास्तव में ही उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करेगा।''**[36]

उपरोक्त विचारों के अंत में स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य का केन्द्रबिंदु मनुष्य है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का एक मात्र प्रयोजन है।

1.4. हिन्दी दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की विधा बहुत पुरानी नहीं है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना रखने वाले हमारे देश के ऋषी–मुनियों ने तो संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रुप में स्वीकार किया था। हमारे ऋषी–मुनियों ने वैश्विक दृष्टि का परिचय दिया। जहाँ एकता, समानता, प्रेम, होता है वहाँ ऊँच–नीच, भेदभाव, बड़े–छोटे की भावना के लिए अवकाश नहीं होता। किन्तु जब इस भावना की अवहेलना की गई, ऊँच–नीच, छूत–अछूत, सवर्ण–असवर्ण की कलुषित भावना शुरु हुई तभी से दलित विमर्श की शुरुआत हुई, ऐसा कहा जा सकता है। दलित विमर्श उस समाज व्यवस्था की देन है जिसमें जाति और वर्ण के आधार पर मनुष्य मात्र में अंतर किया जाता है और समाज के एक बड़े तबके को अछूत मान लिया जाता है। दलितों के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि–

''हमारे पूर्वज इस देश के मूल निवासी थे। उनका ही देश में एक छत्र राज्य था। मध्य एशिया से आर्य आये और उन्होंने यहाँ सभ्यता और संस्कृति पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। कालान्तर में मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों के माध्यम से वर्ण–व्यवस्था का षड़यन्त्र रचकर मानव को मानवेत्तर बना डाला। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों को शिक्षा क्षत्रियों को रक्षा, वैश्यों को धन तथा शुद्रों को उत्पादन और सेना संबधी जिम्मदारी सौंपी गई थी। उच्च कहलाने वाले तीनों वर्ण अपनी जिम्मेदारी का ठीक तरह से निर्वाह करने में असफल रहे जिसका परिणाम हमारे सामने है। यह देश, शिक्षा, रक्षा और आर्थिक दृष्टि से खोखला होता गया और होता जा रहा है। मात्र शुद्र वर्ग ही अपने कर्त्तव्य का निर्वाह ठीक ढंग से पालन करता रहा और आज भी कर रहा है।''[37]

भेदभाव पूर्ण समाज व्यवस्था के कारण 'उच्च वर्ण' को सदैव सभी संभव सुविधाएँ व अधिकार प्राप्त हुए हैं, जबकि 'निम्न वर्ण' को हमेशा अधिकारहीन और सेवा तक सीमित रखकर उनके साथ अन्याय हुआ है। यह सिलसिला शताब्दियों तक जारी रहा। देश में आदिकाल से ही सवर्णों का बोलबाला रहा है। समाज व्यवस्था और सारे नियम–कानून उन्हीं लोगों के द्वारा निर्मित हुए, उन्हीं के द्वारा फैलाये हुए जाति–पाँति, ऊँच–नीच, छुआ–छूत के भेदभाव का ही परिणाम है, बौद्ध धर्म का आगमन। श्री सुरेशचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी में दलित साहित्य के प्रारंभ को भक्ति काल से माना है। उन्हीं के शब्दों में–

''भारतीय समाज में आदिकाल से ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व रहा है। जिन्होंने अपनी इच्छानुसार समाज को व्यवस्था दी, जिसमें कुछ बातें सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य रहीं, तो अनेक ऐसी रहीं जो भेदभाव मूलक तथा शोषण को बढ़ावा देने वाली थी। सवर्ण–असवर्ण के बीच में ऊँच–नीच और अस्पृश्यता आदि की भावनाएँ ऐसी ही थी, इसी आधार पर अन्त्यजनों का शारीरिक, बौद्धिक एवं आर्थिक शोषण भी किया जाता था। कहना न होगा यहाँ का बौद्ध धर्म इसी की प्रतिक्रिया में आया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने समता मूलक दृष्टि की स्थापना की। चौरासी सिद्धों में सिद्ध सरहपा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। अपने समय में इस विद्वान सवर्ण ने असवर्ण स्त्री से विवाह किया। भेदभाव दूर करने का यह इनका पहला प्रयास दिखाई देता है। यह तो इनके हृदय की साहित्यिक भावना मानी जा सकती है। किन्तु दक्षिण के महाराष्ट्री सन्त तथ उनकी प्रेरणा एवं परिणाम के फलस्वरुप उत्तर भारत के अनेक हिन्दी संतों ने प्रतिक्रिया स्वरुप ऐसी भावनाएँ एवं उद्‌गार व्यक्त किए हैं जिन्हें दलित चेतना की देन माना जा सकता है। हिन्दी दलित साहित्य के इतिहास के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि दलित चेतना का आरंभ सबसे पहले मराठी साहित्य में हुआ। यह रजनीतिक चेतना की देन है। उत्तर भारत में यह कुछ देर से आई, किन्तु हिन्दी दलित साहित्य का मूल स्वर अस्पृश्यता, वर्णवाद, जातिवाद तथा आर्थिक शोषण के विरुद्ध रहा है। अतः यदि यह कहा जाए कि यहाँ दलित चेतना का विकास भक्तिकाल से शुरु हो गया था तो अनुपयुक्त न होगा।''[38]

आधुनिक काल में दलितों ने शुद्र, अन्त्यज, अछूत, पंचमवर्ण, हरिजन आदि शब्दों को नकारकर अपने लिए 'दलित' शब्द अपनाया और तथा कथिक उच्च जाति के लोगों से रियायत मांगने के स्थान पर समाज के आमूल परिवर्तन की मांग उठायी गई। यह मांग राजनीति में उठी और साहित्य में भी, दलित साहित्यकारों ने विद्रोह और आक्रोश भरी रचनाओं के जरिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय का स्वर बुलंद किया तथा दलित समुदाय में आत्मगौरव का भाव भरने का अभियान चलाया। आज दलित–विमर्श की चर्चा के बिना कोई भी साहित्य–सांस्कृतिक कार्यक्रम अधूरा माना जाता है। दलित लेखकों की बढ़ती संख्या, सर्जनात्मकता में गुणात्मक सुधार और व्यापक स्वीकृति के चलते यह मुख्य विमर्श बन गया। दलित विमर्श का संबंध वर्ण–जाति व्यवस्था के अस्वीकार से है।

हिन्दी में दलित साहित्य के प्रारंभ को लेकर काफी चर्चा–विचारणा होती है। श्री बुद्धशरण हंस के अनुसार–

> **''हिन्दी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में दलित साहित्य नाम की कोई विधा न पायी जाती है और न प्रदर्शित होती है। शौर्य और श्रृंगरी–वर्णन से हिन्दी साहित्य की यात्रा प्रारंभ हुई है। चारण, भाट अपने राजाओं के दरबार में तुकबंदी, पहेली, कविता कहकर इनाम, बक्शीस पाते थे। दरबारी कवि अपने आकाओं का युद्ध वर्णन, प्रशस्तिगान करते थे। नायिकाओं का नख–शिख वर्णन कर साहित्यिक रसधारा बहाते थे। राजपूतों के शासनकाल में हिन्दी साहित्य का जन्म हुआ है। उस समय भी समाज में बहुसंख्यक दलित थे। जिनके शोषण पर राजाओं का शासन था। जिन राजाओं ने दलितों का जितना अधिक शोषण किया उनका उतना ही प्रतापी शासनकाल कहा गया। राजतंत्रीय परिवेश में शौर्य और श्रृंगार के सिवाय दलित चेतना की न कोई गुंजाइस थी न गरिमा समाज में दलित बेसुमार थे, किन्तु साहित्य में दलितों की भावना नगण्य थी। इस काल को हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है। साहित्य का अदिकाल दलित साहित्य का शून्यकाल है।''**[39]

दलित साहित्य का स्रोत वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि का गहराई से अध्ययन करने पर दिखाई देता है। वेदों में कुछ उदाहरण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के है तो कुंछ में दलितों को हीन भी माना गया है। उपनिषदों, रामायण, तथा पुराणों में भी ऐसे कई प्रसंग आए हैं जिनमें दलित चेतना बलवती है। मनुस्मृति के प्रणेता मनु ने दलितों के लिए जो नियम निर्धारित किए वे काफी सख्त हैं, जिसके अंतर्गत दलितों को सभी उच्च वर्ण की सेवा सदैव करने की बात कही है। मनुस्मृति में जातीयता, अस्पृश्यता जैसी विषयमताओं को देखा जा सकता है।

पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, सभी भाषाओं के काव्य में दलित–साहित्य के सूत्र दिखाई दे जाएँगे। मध्यकाल में ही पूर्णरुपसे दलित साहित्य अपने संपूर्ण लक्षणों के साथ देखने को मिलता है। राजनैतिक परिवर्तनों के कारण हिन्दू राजाओं का स्थान मुस्लिम राजओं ने लिया। परिणम स्वरुप सत्ता परिवर्तन से हिन्दू राजाओं की ठेस पहुँची साथ ही दलित चेतना में जागृति आई। इसी संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए बुद्धशरण हंस लिखते हैं कि–

''हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारतीय राजनीति की पराधीनता का काल है। निरंकुश हिन्दू राजाओं का शासन समाप्त हुआ और मुसलमान राजाओं का शासनकाल प्रारंभ हुआ। मुसलमान राजाओं से भारत की स्वाधीनता आक्रान्त हुई, किन्तु दलित चेतना की जागृति इसी काल से प्रारंभ हुई। मुसलमान राजाओं के काल में बेसुमार सूफी सन्त जन–जन के बीच जाकर इस्लाम का प्रचार करने लगे। इस्लाम की शिक्षा, समता, स्वतंत्रता तथा भाईचारा ने दलितों को आकर्षित किया। सूफियों के प्रभाव बेशुमार दलित, पीड़ित उपेक्षित लोग मुसलमान बन गए। जो नहीं बने उन दलितों के दिलों में हिन्दू–व्यवस्था के विरुद्ध घृणा और भी घनीभूत हो गयी।

सूफीसंत कवि, गायक, उपदेशक बहुत कुछ थे। इसी काल में दलित साहित्य का जन्म हुआ। दलित समाज से इस्लाम कबूल किए लोगों ने प्रथम बार ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया। गैर, मुस्लिम दलितों को भी शिक्षा का थोड़ा–बहुत अवसर और अधिकार मिला। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्यकार उभरे और दलित चेतना मुखर हुई। कवि संत गुरु सरहपा, कोणहप्पा, नामदेव, दादू, पलटू, नानक, कबीर, रविदास इसके प्रमाण हैं। मध्यकाल में दलित साहित्यकार (सन्तों और गुरुओं) ने ईश्वर का सहारा लेकर दलितों को सम्मान और सुरक्षित करने की युक्ति निकाली।''[40]

हमारे यहाँ पहले वर्ग विभाजन जाति के आधार पर नहीं कर्म के आधार पर होता था। किन्तु मनुवादी संस्कृति के आने पर वह वर्ग विभाजन जन्म के आधार पर हो गया।

भक्ति आंदोलन भारत की प्रतिरोधी परंपरा का ऐतिहासिक दौर है। भक्ति काल में निर्गुण परंपरा के अधिकांश रचनाकार अवर्ण तबकों से आए थे। इनमें कबीर, रविदास, सेन, सदना, दादू आदि थे। आज की दलित कविता का पूर्ववर्ती रुप इन कवियों की कविता में देखा जा सकता है। मध्ययुगीन संत कवियों ने दलितोद्धार की जो परंपरा शुरु की आगे चलकर नवजागरण कालीन समाज सुधारकों ने इसे आगे बढ़ाया। जिसमें **स्वामीदयांनद सरस्वती, आचार्य विनोबा भावे, ज्योतिबा फूले, महात्मा गाँधी, डॉ. बाबा साहब आम्बेडकर** आदि के नाम मुख्य रुप से दिये जा सकते हैं।दलित समाज में जागृति लाने और संपूर्ण समाज में मानवीय गरिमा तथा स्वाभिमान का आंदोलन छेड़ने में महात्मा ज्योतिबा फूले (1927–1890) तथा बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर (1891–1956) मे अपना संपूर्ण जीवन वर्ण–जाति के खात्मे व जनतांत्रिक समाज की रचना में लगा दिया। हिन्दी में दलित शब्द का प्रयोग मराठी के बाद में हुआ। मराठी में इस शब्द का प्रयोग करने वाले महात्मा ज्योतिबा फुले थे।

डॉ. ए.पी. शिवाजी ने लिखा है–

''भारत में प्रथम बार महात्मा ज्योतिबा फूले (1827–1890) द्वारा जागृति का दीप प्रज्वलित किया गया। पहली बार उन्होंने जाति बहिष्कृतों और अस्पृश्यों के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया। माली जाति के होते हुए भी सन् 1873 में सत्य शोधक समाज का निर्माण कर दलितों के मसीहा के रुप में चेतना को जाग्रत किया। जिसके प्रभाव के कारण अंग्रेज सरकार सन् 1935 में पद दलित अभिव्यक्ति को हटाकर 'अनुसूचित जाति' का प्रयोग किया और सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद 'अनुसूचित और

अनुसूचित जनजाति' शब्दों को भारतीय संविधान में समाविष्ट किया गया। राजनैतिक आधार पर दलितों को उठाने पर बहुत से कार्य–क्रम प्रस्तुत किये गये। परंतु ऊँचे वर्गों के लोगों के हृदय में दबे हुए लोगों के प्रति समभाव, समानता का प्रत्यय उदय नहीं हुआ। दलितों को दलित बनाकर रखने का दुश्चक्र चलता रहा। भारतीय राजनीति में मंडल, मंदिर, मस्जिद के प्रश्न उछलते रहे। साथ ही यह नारा 'तिलक, त्रिशुल, तलवार : इनको मारो जूते चार' आकाश में तैरते रहे। डॉ.बी.आर. आम्बेडकर ने दलितों के उद्धार का प्रयत्न किया और परिणति उनके द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने में हुई।''[41]

बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर ने जिन व्यक्तियों से प्रेरणा हासिल की थी ज्योतिबा फुले उनमें से एक थे। फुले ने एकसाथ कई भूमिकाएँ अदा की। वे एक लेखक थे और शिक्षक थे। फुले की रचनाओं में शोषक तबके के खिलाफ जबरदस्त आक्रोश है। उनकी प्रमुख रचनाओं में **'ब्राह्मण की चालाकी' (1869), 'गुलामगीरी' (1873), 'किसान का कोड़ा' (1883),** उल्लेखनीय है। फुले ने 'सत्यशोधक समाज' (सन् 1873) की स्थापना की। फुले के साथ ही उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने भी स्त्रियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले और कई विरोधों को झेलते हुए अपने समाज में नारी जागृति के कार्य एवं अपने अभियान को जारी रखा। ज्योतिबा फुले ने दलितों में जागृति का दीप प्रज्वलित किया उसे कालान्तर में बाबा साहब ने अपने ढंग से आगे बढ़ाया। सवर्णों के अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहारों ने अत्याचारों ने भीमराव को ठेस पहुँचाई थी। समाज से यह भेदभाव के वातावरण को खत्म करने के लिए उन्होंने सर्वप्रथम दलित समुदाय को जागृत करने का अथक प्रयास किया। डॉ. आम्बेडकर की प्रमुख किताबों में **'भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति', 'हिन्दू धर्म की पहेलियाँ', 'शूद्रकौन थे', 'बुद्ध और उनका धम्म', 'जाति प्रथा का उन्मूलन'** आदि हैं। उनके द्वारा संचालित 'दलित साहित्य सेवा संघ' में दलितों से संबंधित जो भी लेखन हुआ, उसे दलित साहित्य संज्ञा से अभिहित किया गया। उनके द्वारा चलाएँ गए प्रमुख आंदोलनों में महाड़ सत्यागह (1927) तथा नासिक कालाराम मंदिर प्रवेश (1930) के नाम लिए जा सकते हैं। दलित साहित्यकारों ने बाबा साहब के संघर्षपूर्ण जीवन एवं दलितोद्धार के कार्यों से प्रेरणा लेकर उनके हर कार्य को लिपिबद्ध किया है साथ ही उन्हें अपना पथ–प्रदर्शक माना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी दलितों को न्याय नहीं मिल पाया। परिणामस्वरुप बड़े पैमाने पर असंतोष बढ़ा। हिन्दी कविता में साठोत्तरी काल को विद्रोही पीढ़ी, भूखी पीढ़ी आदि नाम दिए गए हैं। इस दौर में दलित साहित्य में कुछ इसी तरह की पीढ़ी आई थी। आधुनिक काल में मुंशी प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यापन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, फणीश्वरनाय रेणु, आदि तमाम कवियों एवं रचनाकारों ने दलित साहित्य का समृद्ध किया है। आज़ादी के खोखलेपन को उद्घाटित करती, ब्राह्मणशाही के आंतक का बयान करती इस पीढ़ी का प्रतिनिधि स्वर मराठी दलित कवि नामदेव ढसाल के यहाँ सुना जा सकता है।

जिन दिनों बाबा साहब का संघर्ष महाराष्ट्र की जमीन पर चल रहा था उन्हीं दिनों हिन्दी क्षेत्र में भी दलित समुदाय के चिंतक लेखक नए सिरे से संगठित और सक्रिय हो रहे थे। इनकी आवाज में पूरे समुदाय की सम्मिलित आकांक्षा प्रतिध्वनित थी। बीसवीं सदी के दूसरे–तीसरे दशक में सक्रिय ऐसे दलित रचनाकारों ने हीरा डोम,

अछूतानंद 'हरिहर', केवलानंद आदि हैं। हीरा डोम की एक ही कविता आज प्राप्त है। **'अछूत की शिकायत'** शीर्षक से यह कविता 'सरस्वती' पत्रिका में वर्ष 1914 में छपी थी। यह कविता पहली दलित काव्य रचना कही जा सकती है। भोजपुरी में 40 पंक्तियों की यह कविता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में प्रकाशित हुई जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

''डोम जाति हमनी के छुए से डरेहले।
हमनी के राति दिन मेहनत करीले जा,
दुइगो रुपयवा दरमहा में पाइवि।
ठाकुरे के सुखसेत घर में सुतलबानी,
हमनी के जाति–जाति खेतिया कमाइबि।
हमनी के रातदिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुहाइबि।
हमनी के दुख भगवनओं न देखत जे,
हमनी के कनुले कलेसवा उठाबि।''[42]

अछूतानंद ने दलितों के लिए 'आदि हिन्दू' आंदोलन चलाया था। लोक छंदों में रचना करने वाले अछूतानंद डॉ. आम्बेडकर की लेखनी से परिचित और उनके कार्यों से प्रेरित–प्रभावित थे। स्वामी अछूतानंद ने गीता–गज़लों के अतिरिक्त नाटक भी लिखे। उनका लिखा नाटक **'मायानंद बलिदान' (1926)** उल्लेखनीय है।

सन् 1950 से लेकर 1990 तक के समय को हिन्दी में दलित लेखन का दूसरा चरण कहा जा सकता है। दलितों को उनके अतीत और वर्तमान के प्रति सजग करना है इस दौर के लेखन का मुख्य उद्देश्य था। डॉ. भीमराव आम्बेडकर से प्रभावित दलित लेखक विषम परिस्थितियों में भी संघर्ष करने के लिए तत्पर थे। डॉ. आम्बेडकर के दिए सूत्र **'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो'** को दलित लेखन का मुख्य सूत्र बनाकर उनके संदेश को जन–जन तक ले जाने का प्रयास इस समय के लेखकों ने किया। इसी चरण में डॉ. भीमराव आम्बेडकर के जीवन पर आधारित तीन प्रबंध काव्य हिन्दी में प्रकाशित हुए– **'भीमायण'(बिहारीलाल हिरत, 1973), 'भीम सागर'(लक्ष्मीनारायण सुधारक, 1985)** तथा **'भीम कथामृत्म्'(रामदास निमेष, 1990)** इन रचनाओं में तार्किकता और वैज्ञानिकता के साथ श्रद्धा और अंधश्रद्धा का पुट भी है। इस दौरान के दलित रचनाकरों ने 'कला' की विशेष चिंता किए बगैर ही दलित सामज पर सदियों से होने वाले अत्याचार अन्याय को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया। जो कार्य तलवार नहीं कर सकती वह कलम कर सकती है, अर्थात् अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित साहित्यकारों ने दलितों के उत्पीड़न के परंपरागत सिलसिले को लेखन के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया साथ ही इसे रोकने के लिए भी लोगों में जागृति लाने का प्रयास किया। अप्रैल–मार्च 1981 में 'निर्याणयक भीम' की पत्रिका में छपी ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में बेलछी, शेरपुर, पारसद्विधा, नारायण पुर स्थल पर दलितों पर हुए अत्याचार, अमानवीय कृत्य को प्रस्तुत किया गया। दलितों पर होने वाले प्राणघातक हमले एवं उन पर होने वाले अत्याचार को दलित साहित्य में आक्रोश के साथ प्रस्तुत किया गया। यह आक्रोश बेवजह नहीं था।

महाराष्ट्र में जन्में ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने वहाँ समाज सुधार का आंदोलन छेड़ा, जिससे मराठी दलित लेखन पर उसका प्रभाव

स्वाभाविक रुप से देखा जा सकता है। हिन्दी दलित लेखन पर इसी का प्रभाव देखा जा सकता है। मराठी दलित लेखकों से प्रेरणा और दिशा प्राप्त कर हिन्दी दलित लेखकों ने रचनाएँ लिखीं। मराठी के आंदोलन धर्मी दलित युवा लेखकों ने **'दलित पैंथर'** का निर्माण किया दलित पैंथर का घोषणापत्र 1973 में आया अपनी स्थापना के एक वर्ष बाद। दलित पैंथर ने अपने शुरुआती दिनों में महाराष्ट्र के गाँव–गाँव में बहुत सघन प्रतिरोधी अभियान चलाए। पैथर के कार्यकार्ताओं ने सभी तरह के अन्याय–अत्याचार का जमकर विरोध किया। पैंथर के घोषणापत्र से दलित साहित्य के बारे में एक मुकल्लम दृष्टि बनी। इन सबका प्रभाव हिन्दी के दलित लेखकों पर भी पड़ा।

दलित लेखन को व्यापक चर्चा में लाने का कार्य 'सारिका' पत्रिका ले किया। इसके संपादक कमलेश्वर ने 1975 में अप्रैल और मई अंक मराठी दलित लेखन को समर्पित किए। इस पत्रिका के माध्यम से बाबूराव बागूल, अर्जुन डांगले, अरुण कांवले, बन्धु माधव, प्रा.ई.सोन कामले से हिन्दी पाठकों को परिचित कराया गया और दलित रचनात्मकता की शक्ति का एहसास भी कराया गया। दिसंबर 1981 में संपादक महीपसिंह द्वारा प्रकाशित पत्रिका संचेतना के चौथे अंक में 'मराठी दलित साहित्य विशेषांक' में करीब पच्चीस दलित रचनाकरों को शामिल किया। इससे हिन्दी में दलित साहित्य की चर्चा को व्यापकता तथा कुछ हद तक स्वीकृति मिली साथ ही हिन्दी के दलित रचनाओं में इससे नया जोश आया।

सन् 1990 तक आते–आते राष्ट्रीय परिदृश्य पर बहुत से बदलाव घटित हुए। जैसे– सरकारी नौकरियों में आरक्षण हेतु मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू होना, आरक्षण–व्यवस्था का बड़े पैमाने पर उग्र विरोध किया जाना। दलितों तथा पिछड़े तबकों पर सवर्णों द्वारा हिंसक आक्रमण किए जाना। भारत वैश्वीकरण और आर्थिक उदारिकरण की दौड़ में शामिल होना। दलित साहित्य पर इन सब का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ा। इस पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षरों में **ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारतीय, सी. बी. भारती, कुसुम मेघवाल, कर्मशील भारती, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, श्यौराज सिंह बेचैनद्वजयप्रकाश लीलवान** आदि हैं। वर्तमान समय में इन साहित्यकारों के अतिरिक्त कई नए दलित साहित्यकार जुड़ते जा रहे हैं। अन्याय का विरोध अपनी कविताओं के माध्यम से दलित कवियों ने किया है। सदियों से सर पर मैला ढ़ोने वाला दलित ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में पूछता है समाज से–

''जब भी देखता हूँ मैं
झाडू या गंदगी से भरी बाल्टी
कनस्तर / किसी हाथ में
मेरी रगों में दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।''[43]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **''बस्स बहुत हो चुका।''** कविता में उन्होंने अपनी कुंठा और कुढ़न को सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है। जैसे–

''कभी नहीं मांगी बालिश्त भी जगह
नहीं मांगा आधा राज भी
मांगा है सिर्फ न्याय.....
थोड़ा–सा बचपन

थोड़ा–सा अपनापन
जब–जब भी कुछ मांगा
वे गोलबंद होकर टूट पड़े
मैं अवका।''[44]

राजनीति के क्षेत्र में भी दलित साहित्य की आज मुख्य भूमिका है। परिवर्तन, सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के औजार के रुप में दलित साहित्य का प्रयोग किया जा रहा है। आरक्षण के मुद्दे, राजनीति में भागीदारी, रोजगार और आर्थिक समृद्धि में समान अवसर पाने की बात को इसके माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है। आरक्षण और बराबरी की हिस्से दारी के मुद्दे पर कटाक्ष करते हुए जयप्रकाश कर्दम कहते हैं–

''तुम्हारा आरक्षण उचित है
और मेरा अनुचित
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रुप से हिस्सेदारी
शासन प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जूती गांठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता।''[45]
(गूंगा नहीं था मैं)

दयानंद बटोही का विश्वास है कि–

''दलित कविता आज के माहौल को चकाचौंध नहीं करती
बल्कि नई ऊर्जा देती है।''[46]

ओमप्रकाश वाल्मकीकि कहते हैं–

''जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे,
वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा,
गतिशीलता की संवाहक है।''[47]

दलित कविताओं में प्रतिशोध की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। जिन पर जुल्म हुआ हो वे विवेक कब तक बनाए रखेंगे। गैर दलितों द्वारा दलितों पर होने वाले अत्याचार के प्रति दलितों का प्रतिशोध आक्रोश के रुप में कंवल भारती 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या मेली' शीर्षक कविता में इस प्रकार उभरता है–

''क्रान्ति की भाषा सुंदर नहीं होती
जैसे कि अखबार
जो तुम्हें रोज़ गुदगुदाते हैं
ये बताओ बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी ?''[48]

दलित वर्गों पर सदियों से रुढ़ियों, कुप्रथाओं मनुस्मृति जैसे कायदे, कानूनों की जो मार पड़ती रही है, उसी की आहें कराहें दलित कविता बनी है। लेकिन स्त्री जो दलित में भी दलित है और संख्यात्मक दृष्टि से वह इस वर्ग का आधा हिस्सा है। वह इस रचना विषय में भी कम ही कवियों का विषय बन पाई है। श्री एन. आर. सागर अपनी कविता में दलितों की दुर्दशा और उत्पीड़न पर दृष्टिपात करते हुए कहते हैं कि यदि यही दशा गैर दलितों की होती तो उन्हें कैसा लगता ?

''यदि तुम्हारी बहिनों–बेटियों को
सर्वप्रथा निर्वस्त्र कर घुमाया जाये
गली–गली नचाया जाये,
कसे जायें गंदे फिकरे,
और किया जाये बलात्कार
सड़कों–चौराहों पर,
सामने तुम्हारे,
तब, तुम्हे कैसा लगेगा ?''[49]

दलित साहित्य आम आदमी के उत्थान और उन्नयन का हिमायती रहा है। अधिकार युद्ध कविता में श्री लक्ष्मी नारायण सुधाकर स्पष्ट घोषणा करते हुए कहते हैं–

''यदि मिले नहीं अधिकार हमें तो ईंट से ईंट बजा देंगे।
अन्यायी–अत्याचारी के शोणित से नदी बहा देंगे।
हम आदिवासी भारत के कुछ करके अब दिखला देंगे।
अब तक तो दास–गुलाम रहे, अब गिन–गिन कर बदला लेंगे।
'मनु' के पोते–पड़पोते तुम' अब भी आ जाओ बाज यहाँ
धन–धरती पर कुण्डली मार, कर सकते तुम नहीं राज यहाँ।
यह देश हमारे पुरखों का, पहला अधिकार हमारा है।
सम्मान और धन–धरती का, होगा फिर से बंटवारा है।
हम देख चुके नेताओं को, करते वे वादे छिछले हें।
इसलिए आज शोषित–पीड़ित, सर बांध कफन अब निकले हैं।
आम्बेडकर वादी फौलादी, समता का मिशन हमारा है।
'अधिकार–युद्ध' का बिगुल बजा, संघर्ष हमारा नारा है।
हिंसा और अहिंसा का अब प्रश्न नहीं पैदा होगा।
जैसे भी हो इस शोषण का, कर अन्त कोई सौदा होगा।''[50]

दलित साहित्य को कई बार इसीलिए सिर्फ वेदनाका साहित्य कहा जाता है। वेदना का चित्रण इस समाज के पारंपरिक साहित्य में पहले भी होता रहा है लेकिन दलित वेदना अजनानी चीज रही। इसे लोगों के सामने रखते हुए प्रखर दलित कवि मलखान सिंह लिखते हैं।–

''गाँव के दक्खिन में
पोखर की पार से सटा यह डोम वाड़ा है।
जो दूर से देखने में

ठेठ मेंढक लगता है
और अंदर घुसते ही
सूअर की खुडारों में बदल जाता है।
यहाँ की कीचभरी गलियों में पसरी
पीली अलसाई धूप देख
मुझे हर बार लगा है कि–
सूरज बीमार है या–
यहाँ का प्रत्येक बाशिन्दा
पीलिया से ग्रस्त है
इसीलिए उनके जवान चेहरों पर
मौत से पहले का पीलापन
और आंखों में
ऊसर धरती का बौनापन
हर पल पसरा रहता है।''[51]

इस तरह की तमाम कविताएँ हमें दलित कवियों ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, असंग घोष आदि के काव्य संग्रहों में मिलती हैं। जिनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार हैं–

हिन्दी दलित कविता संग्रह

क्रम	**कविता संग्रह**	**कवि का नाम**
1.	'दलित पचासा'	एस.आर.विद्रोही
2.	'आग और आंदोलन'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'कब होगी भोर'	सूरजपाल चौहान
4.	'क्यों विश्वास करुँ'	सूरजपाल चौहान
5.	'कोंचे हूँ में'	डॉ. श्योराजसिंह बेचैन
6.	'गूंगा नहीं था मैं'	जयप्रकाश कर्दम
7.	'टुकड़े–टुकड़े दंश'	कुसुम वियोगी
8.	'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती'	कँवल भारती
9.	'तुमने उसे कब पहचाना'	सुशीला टाकभौरे
10.	'ार पर दस्तक'	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
11.	'परतों का दर्द'	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
12.	'परिचय सतसई'	माता प्रसाद
13.	'पलकें सुलग रही हैं'	दामोदर मोरे
14.	'विरांगना झकारीबाई'	बिहारी लाल हरित
15.	'शम्बूक का बलिदान'	आर. बी. सुमन
16.	'शोषित नामा'	मनोज सोनकर
17.	'सदियों का संताप'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
18.	'ये अक्षर नहीं अंगारे हैं'	रणजीत पंथी
19.	'यह तुम भी जानो'	सुशीला टाकभौरे
20.	'सदियों के बहते जख्म'	दामोदर मोर
21.	'दखल देती कविता' आदि।	पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

कविता के बाद हिन्दी साहित्य में जिस विधा में सबसे ज्यादा सृजन हुआ वह है कहानी। हिन्दी दलित साहित्य की पहली कहानी कौन सी है ? इस पर विशेष चर्चा अभी तक नहीं हुई है। इस दिशा में शोध की आवश्यकता है, किन्तु वर्तमान दौर में **ओमप्रकाश वाल्मीकि** और **मोहनदास नैमिशराय** की कहानियाँ ही सबसे पहले देखने को मिलती हैं। इनके बाद **दयानंद बटोही, सूरजपाल चौहान, कुसुम वियोगी, विपिन बिहारी, कावेरी, बुद्धशरण हंस, पारसनाथ, जयप्रकाश कर्दम, सत्यप्रकाश, सुशीला टाकभौरे, रजतरानी 'मीनू', अनीता भारती'** आदि उल्लेखनीय कथाकार के रुप में सामने आये हैं। अभी प्रकाशित रुप में सामने आये कहानी संग्रहों में–

कहानी संग्रह

क्रम	**कहानी संग्रह**	**लेखक का नाम**
1.	'सलाम'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
2.	'घुसपैठिए'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
3.	'आवाजें'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'हमारा जवाब'	मोहनदास नैमिशराय
5.	'सुरंग'	दयानंद बटोही
6.	'चन्दमौलि का रक्त बीज'	सत्य प्रकाश
7.	'जुडते दायित्व'	कुसुम मेघवाल
8.	'एक और राज्याभिषेक'	सत्य प्रकाश
9.	'रसायन'	सत्य प्रकाश
10.	'तीन महाप्राणी'	बुद्धशरण हंस
11.	'हैरी कब आएगा ?'	सूरजापाल चौहान
12.	'टूटता वहम'	सुशीला टाकभौरे
13.	'अनुभूति के घेरे'	सुशीला टाकभौरे
14.	'संघर्ष'	सुशीला टाकभौरे
15.	'सत्य का सफरनामा'	जियालाल आर्य
16.	'प्रेरणाचार्य एक नहीं'	कावेरी
17.	'अपना मकान 'पुनर्वास'	विपिन बिहारी
18.	'साज और अन्य कहानियाँ'	टी. पी. राही
19.	'चार इंच की कलम'	कुसुम वियोगी
20.	'जहरीली जड़ें'	रुपनारायण सोनकर
21.	'तलाश'	जयप्रकाश कर्दम
22.	'दृष्टिकोण'	अरविंदकुमार राही
23.	'हुकुम की दुग्गी'	रत्नकुमार सांभरिया
24.	'हिस्से की रोटी' आदि।	शत्रुध्न कुमार

दलित कहानियों के कुछ संपादित कहानी संग्रह भी सामने आए हैं। इस दिशा में कुसुम वियोगी और एन. सिंह की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी सूची निम्नप्रकार है–

संपादित कहानी संग्रह

क्रम	कहानी संग्रह	सम्पादक का नाम
1.	'चर्चित दलित कहानियाँ'	कुसुम वियोगी
2.	'प्रतिनिधि दलित कहानियाँ'	कुसुम वियोगी
3.	'दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ'	कुसुम वियागी
4.	'काले हाशिए पर'	डॉ. एन. सिंह
5.	'यातना की परछाइयाँ'	डॉ. एन. सिंह
6.	'चिंगारी'	डॉ. कुसुम मेघवाल
7.	'समकालीन दलित कहानियाँ'	डॉ. कुसुम मेघवाल
8.	'दलित जीवन की कहानियाँ'	गिरीराज शरण
9.	'दूसरी दुनियाँ की यथार्थ'	रमणिका गुप्ता
10.	'जातिदंश की कहानियाँ'	सुभाषचन्द्र कुश्वाहा
11.	'हासिए से बाहर'	रजतरानी 'मीनू'
12.	'हिन्दी दलित कथाकारों की पहली कहानी' आदि।	सूरजपाल चौहान

हिन्दी दलित उपन्यास

क्रम	उपन्यास	उपन्यासकार का नाम
1.	'माटी की सौगंध'	प्रेम कपाड़िया
2.	'जय तस भई सवेर'	सत्य प्रकाश
3.	'मुक्ति पर्व'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'छप्पर'	डॉ. जय प्रकाश कर्दम
5.	'करुणा'	डॉ. जय प्रकाश कर्दम
6.	'नया ब्राह्मण'	सूरजपाल चौहान
7.	'सुबह के लिए रण'	कैलाश चन्द चौहान
8.	'भाँवर'	कैलाश चन्द चौहान
9.	'हिडींबा'	एस. आर. हरनोट
10.	'ठंडी आग'	प्रेम कपाड़िया
11.	'हम दलित'	प्रेम कपाड़िया
12.	'धरती पुत्र'	राणा प्रताप
13.	'मिस रमिया'	कावेरी
14.	'थमेगा नहीं विद्रोह'	उमराव सिंह जाटव
15.	'आक्रोश'	रघुवीर सिंह
16.	'दलित दहन'	एस. के. पंचक
17.	'गिरे हुए लोग'	नवल वियोगी

18.	'झलके आँसू भीगे आँचल'	रामशिरोमणी
19.	'आग पानी आकाश'	रामधारी सिंह दिवाकर
20.	'कर्मवीर अम्बेडकर'	के. एल. कमल
21.	'किस्सा गुलाम'	रमेश चन्द्र शाह
22.	'एक टुकडा इतिहास'	गोपाल उपाध्याय
23.	'ज्योति पुंज महात्मा फुले'	जीयालाल आर्य
24.	'सीता' आदि।	रमणिका गुप्ता

दलित नाटकों

क्रम	नाटक	नाटकार का नाम
1.	'अंतिम अवरोध'	एन. आर. सागर
2.	'तड़प मुक्ति की'	डॉ. माता प्रसाद
3.	'अंतहीन बेड़ियाँ'	डॉ. माता प्रसाद
4.	'धर्म परिवर्तन'	डॉ. माता प्रसाद
5.	'वीरांगना झलकारी'	डॉ. माता प्रसाद
6.	'संकल्प'	शिवनाथ शिलबोधी
7.	'होले कामरेड'	मोहनदास नैमिशराय
8.	'अदालत नामा'	मोहनदास नैमिशराय
9.	'छू नहीं सकता'	सूरजपाल चौहान
10.	'रंग और व्यंग्य'	सुशीला टाकभौरे
11.	'नंगा सत्य'	सुशीला टाकभौरे
12.	'एकलव्य'	राम अवतार सिंह
13.	'दो चेहेरे'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
14.	'महानायक'	रुपनारायण सोनकर
15.	'कठौती में गंगा'	डॉ. एन. सिंह
16.	'संवाद के पीछे'	मनोजकुमार केन
17.	'शंबूक वध'	लल्लन सिंह
18.	'सच बोलने वाला शुद्र है' आदि।	सूरजपाल चौहान

दलित आत्मकथाएँ :–

क्रम	आत्मकथा	आत्मकथाकार का नाम
1.	'अपने–अपने पिंजरे'	मोहनदास नैमिशराय
2.	'दो भाई'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'जूठन'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
4.	'दोहरा अभिशाप'	कौशल्या बैसंत्री
5.	'तिस्कृत'	सूरजपाल चौहान
6.	'संतप्त'	सूरजपाल चौहान
7.	'नागफनी'	रुपनारायण सोनकर
8.	'मैं भंगी हूँ'	डॉ. भगवानदास

9.	'मेरा बचंपन मेरे कंधों पर'	श्योराज सिंह बेचैन
10.	'शिकंजे का दर्द'	सुशीला टाकभौरे
11.	'एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी'	प्रो. श्यामलाल
12.	'मेरा सफर मेरी मंजिल'	डॉ. डी. आर. जाटव
13.	'झोंपड़ी से राजभवन'	डॉ. माता प्रसाद
14.	'राज सतसई :एक दलित की आत्मकथा' आदि।	डॉ. राजपाल सिंह 'राज'

सब पर ऊँगली उठाने वाले दलित लेखकों ने अपने भीतर झांकने की भी हिम्मत दिखाई। उनके आत्मकथनों में आत्मलोचन की प्रवृत्ति विशेष तौर पर दिखाई देती है। आत्मलोचन के तीन मुख्य बिंदु रहे हैं– वैयक्तिक स्तर पर अपनी विफलओं, चुकों का स्वीकार, आंतरिक जातिवाद की समस्या पर विचार और दलित स्त्री की तिहरी दुर्दशा पर चिंता। दलित रचनाकारों ने सबसे पहले अपने व्यक्तित्व के उन पहलुओं पर ध्यान दिया जो दलित समाज से जुड़ने तथा उसके लिए लड़ने में बाधा उत्पन्न करते हैं।

आलोचना साहित्यः–

क्रम	आलोचना	लेखक का नाम
1.	'दलित पत्रकारिता में साहित्यिकसांस्कृतिक चिंतन'	मोहनदास नैमिशराय
2.	'अपने–अपने पिंजरे : समीक्षात्मक अध्ययन'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'दलित चिंतन के विविध आयाम'	अ. ला. ऊके
4.	'दलित साहित्य और सामजिक न्याय'	डॉ. पुरुषोतम सत्यप्रेमी
5.	'परिवर्तन ज़रुरी है'	सुशीला टाकभौरे
6.	'साहित्य और सामाजिक क्रांति'	डॉ. दयानंद बटोही
7.	'दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य'	कालीचरण स्नेटी
8.	'हिन्दी साहित्य में दलित चेतना'	डॉ. आनंद भास्कर
9.	'मेरा दलित चिंतन'	डॉ. एम. सिंह
10.	'आज का दलित साहित्य'	डॉ. तेजसिंह
11.	'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
12.	'चिंतन परंपरा और दलित साहित्य'	डॉ. श्योराजसिंह बैचेन एवं डॉ. देवेन्द्र चौबे
13.	'दलित विमर्श साहित्य के आईने में'	जयप्रकाश कर्दम
14.	'दलित साहित्य की भूमिका'	हरपालसिंह अरुष
15.	'दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर' आदि।	विमल थोरात

संस्मरण

क्रम	संस्मरण	लेखक का नाम
1.	'कुछ यादे : डॉ भीमराव आम्बेडकर'	रामगोपाल भारतीय
2.	'डॉ. आम्बेडकर : जीवन के अंतिम कुछ वर्ष'	नानक चंद रत्तू
3.	'बाबा साहब के संपर्क में पच्चीस वर्ष' आदि।	सोहनलाल शास्त्री

जीवनीः–

क्रम	जीवनी	लेखक का नाम
1.	'भारत के सामाजिक क्रांतिकारी'	देवेन्द्र कुमार बैसंत्री
2.	'छत्रपति साहुजी'	कुसुम मेघवाल
3.	'मानवतावादी काशीराम'	अशोक गजदिये
4.	'सावित्रीबाई आम्बेडकर'	शांतिस्वरुप बौद्ध
5.	'रमाबाई आम्बेडकर'	शांतिस्वरुप बौद्ध
6.	'बाबु जगजीवनराम'	ओमप्रकाश मौर्य
7.	'महान दलित क्रांतिकारी योद्धा मातादीन'	सूरजपाल चौहान
8.	'भारत रत्न डॉ. भीमराव आम्बेडकर'	मोहनदास नैमिशराय
9.	'शोषित समाज के क्रांतिकारीप्रवर्तक'	चरणसिंह भण्डारी
10	'भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुलें आदि	रजनीतिलक

एकांकी :–

क्रम	एकांकी	लेखक का नाम
1.	'संकल्प'	शिवनाथ 'शीलबोधि'
2.	'बारात नहीं चढ़ेगी' आदि	मनोजकुमार एन

महाकाव्य :–

क्रम	महाकाव्य	लेखक का नाम
1.	'अग्नि सागर'	डॉ. श्यामसिंह राशि
2.	'दिग्विजयी रावण'	डॉ. माता प्रसाद
3.	'युग पुरुष'	डॉ. दयानंद बटोही
4.	'बुद्ध सागर' आदि	लक्ष्मी नारायण सुधाकार

अन्य :–

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
1.	'मीडिया और दलित'	श्योराजसिंह बेचैन एवं एस. एस. गौतम
2..	'दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान'	मोहनदास नैमिशराय
3..	'1857 की क्रांति में दलितों का योगदान'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'चमार जाति का गौरवशाली इतिहास'	सतनामसिंह
5.	'सफाई देवता : वाल्मीकि समाज की ऐतिहासिक सांस्कृति, सामाजिक पृष्ठभूमि'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
6.	'निर्गुण नाम भक्ति और दलित जातियाँ'	राजदेव सिंह
7.	'दलित समाज और संस्कृति'	तेजसिंह
8.	'जातियों का जंजाल'	डॉ. माता प्रसाद
9.	'वर्ण व्यवस्था और जातिभेद'	एस. एल. सागर
10.	'वर्ण व्यवस्था या मरण व्यवस्था ?' आदि	भदंत आनंद कौशल्यायन

इस प्रकार आज दलित साहित्य में विभिन्न विधाआं में विकास कि ओर अग्रसर हो राह है। समाज में जो कुछ घटित होता है वह उसी रुप में साहित्यकार के द्वारा साहित्य में सामहित कर लिया जाता है। इसलिए **''साहित्य सामज का दर्पण है''** यह कथन बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण है। भारतीय समाज में दलितों की स्थिति से हम बखूबी परिचित हैं। उनके शोषण–अत्याचार तथा उन पर गुजारे गयं जुल्मों का कच्चा चिट्ठा साहित्य ही प्रस्तुत करता है। भारतीय साहित्यकारो ने अपनी –अपनी भाषा के साहित्य में दलितों की पीड़ा को बखूबी चित्रित किया है। चाहे वह प्रेम चंद की कहानी **'सद्‌गति'** व **'ठाकुर का कुँआ'** या फिर नागर्जुन का **'बलचनमा'** सभी भारतीय समाज की उस विडंबना को रेखाकित करते है। दलित साहित्य के उद्‌भव के संदर्भ में हम देख चुके हैं कि इस शब्द को प्रयोग भले ही नया है किन्दु इस साहित्य की जड़ बहुत पहले से चली आती हुई दिखाई देती है। यह साहित्य जब से भारतीय साहित्य समाज स्थापित हुआ तभी से इस साहित्य की नींव पड़ गई है ऐसा कहाजा सकता है। दलित साहित्य का वह एक दौर था कि जब वह अपने अस्तित्व के लिए, पहचान के लिए जूझ रहा था किन्तु सवर्णों के भागे वह विफल होता रहा। कुछ सवर्ण जो मार्क्स, तथा लेनिन की विचारधाररराओं से प्रभावित थे, दलित वर्ग की व्यथा को साहित्यिक रुप पदान कर रहे थे, किन्तु दलित वर्ग में उस समय उतना सामर्थ्य नहीं था की वह अपनी वकालत कर सकें। धीरे–धीरे समय बदलता गया। उस वर्ग में भी शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ और उसमें अपनी बात कहने का साहस आ गया। हिन्दी दलित साहित्य के संबंध में कंवल भारती ने अपनी पुस्तक **'संत रैदास एक विश्लेषण'** के निवेदन में कहा है कि–

> **''दलित साहित्या ने अभी घुटनों के बल फिर से चलना शुरु किया है वह जब प्रौढ़ होकर हिन्दी साहित्य के समकक्ष खड़ा होगा, तो मुझे विश्वास है कि विद्वान उसकी प्रतिबद्धता के मूल्य को एक दिन पहचानेंगे।''**[52]

आज धीरे–धीरे दलित साहित्य अपनी जड़ जमाने लगा और उसके सुदृढ़ होने के आसार नज़र आने लगे हैं। हिन्दी में दलित साहित्य की स्थितियों को दर्शाते हुए भी राजेन्द्र नामदेवजी लिखते हैं कि–

> **''जब हिन्दी में दलित साहित्य की बात आती है तो जहाँ तक मेरा मानना है कि दलित वर्ग पर तो साहित्य शताब्दियों से लिखा जाता रहा है, पर उसमें शब्दों का परिवर्तन अवश्य आया है। अगर हम मध्य युग के साहित्य से ही बात कहें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मध्युग में भी विद्वान–संत–महात्मा दलितों की समस्या को लेकर चिंतित थे और उन्होंन साहित्य में भी स्थान दिया। उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के बीच मैत्री भी करायी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है गौस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' जिसमें राम सभी वर्गों को लेकर चलते हैं। पर 'रामचरित मानस' में भी कुछ विद्वान तुलसी की एक चौपाई ढूँढ लेते हैं, वही–''ढोल गंवार शुद्र पशुनारी सकल ताड़ना के अधिकारी।''**[53]

भारतीय समाज का आधुनिक युग काफी परिवर्तनों को लेकर आया। इस युग में जहाँ समाज धर्म और राजनीति के क्षेत्र में बदलाव आया वहीं साहित्य का क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहा। वैसे भी साहित्य की तमाम विधाएँ आधुनिक में नया आकार ग्रहण करती है। कविता, कहानी, उपन्यास आदि तमाम समाज के जिस वर्ग का वर्चस्व

समाज पर अधिक होता है, लोगों का समर्थन भी ज्यादातर उसी ओर जाता है। लेकिन उसी संबंध में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो अल्प संख्यक वर्ग का समर्थन करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में देखें तो कबीर, रैदास, प्रेमचंद, नागाार्जुन, मुक्तिबोध तथा आधुनिक तमाम साहित्यकार दिखाई देते हैं। जो दलित न उपेक्षित वर्ग का समर्थन करते हैं। भारतीय सामाज में दलित साहित्य की स्थिति नहींवत् या बहुत कम थी। किन्तु आधुनिक भारतीय समाज में धीरे–धीरे परिवर्तनों के चलते दलित वर्ग की स्थिति सुदृढ़ होती गई, जिसमें हमारी सरकार का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि दलित कौन है ? यह दलित–विमर्श की आधारभूत बहस है। विभिन्न विद्वान अपने–अपने ढ़ंग से दलि शब्द का अर्थ देते है। मेरी दृष्टि में दलित वह है जिस पर सवर्णों द्वारा जबरन गंदे कार्य कराए जाते हैं। जिस सवर्णों पर आश्रित रहना पड़ता है। जो सदियों से पीड़ित, कुंठीत, विवश एवं लाचार हैं। जिसका शोषण हुआ हो। दलित साहित्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जिस साहित्य में दलित समाज के लोगों के जीवन, उनकी संवेदना, उनकी पीड़ा, उनके प्रश्न, उनकी स्थिति, उनकी उपेक्षाओं का यथार्थ चित्रण हो वही दलित साहित्य है। चाहे वह दलित या गैरदलित साहित्यकार द्वारा लिखा गया हो, उसे दलित साहित्य का प्रयोजन है दलितों में नई चेतना, जागृति, आत्मसम्मान की भावना, स्वाभिमान से जीवन व्यतीत करने की इच्छ जागृत करना आदि के माध्यम से अपनी स्थिति, अवस्था में सकारात्मक सुधार ला सकें। अपने जीवन को दलित बेहतर एवं सम्मान जनक बना सकें। हिन्दी और गुजराती के दलित साहित्य का उद्‌भव और विकास के अंतर्गत् हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव कब एवं किन परिस्थितियों में हुआ। कौन–कौन से विद्वानों ने इसके विकास एवं समृद्धि में अपना योगदान दिया यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दलित साहित्य दलितों के वेदनामय जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से लिखा जाता रहा है। इसी का परिणाम है कि इसमें शिल्प और कला को प्राथमिकता नहीं दी गई है बल्कि उसकी अन्तर्वस्तु को ही प्राथमिकता दी गई है। परिवर्तनकामी दलित साहित्य कलात्मकता की ज्यादा परवाह नहीं करता। उसके लिए विषय या विचार ही महत्त्वपूर्ण होता है। यह मनोरंजन के लिए नहीं लिखा जाता बल्कि दलितों के जीवन की कटु सच्चाई से सामज के सभी वर्गों को परिचित कराना चाहता है। समाज में आवश्यक, बड़ा, एवं महत्त्वपूर्ण बदलाव लाने का उद्देश्य ही उसका सौन्दर्यशास्त्र है।

गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

भारत में सर्वप्रथम महाराष्ट्र में आंदोलन के रुप में दलित साहित्य लिखने की शुरुआत हुई। वैदिक काल में चार वर्णों में विभाजित भारतीय समाज व्यवस्था में दलित समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजकीय स्वतंत्रता से सदैव वंचित रखा गया। दलितों को केन्द्र में रखकर साहित्य रचना की जाना एक नयी धारा का विकास कहा जा सकता है, जो प्रचलित धारा की प्रवृत्ति तथा उसके मूल्यों एवं मान्यताओं के प्रति असहमति प्रकट करता हो। किसी भी साहित्य का उद्‌भव, उद्देश्य और आवश्यकता के पीछे उसके समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ–साथ उसकी धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या परंपरा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

दलितों को हमारे परंपरागत साहित्य में सदैव पृथक एवं हाशिये पर रखा गया। उनकी सदियों पुरानी दासता यातनामय जीवन उपेक्षा पूर्ण व्यवहार की पीड़ा को वाचा देने के लिए दलित साहित्य का निर्माण हुआ है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए दलितों को ऐसे साहित्य के सृजन की नितांत आवश्यकता थी, जो दलितों को उनकी अस्मिता से परिचित कराए, अज्ञान के अंधेरे को बाहर निकालकर उन्हें ज्ञान का सूर्य दिखाए। चेतना से हीन इस दलित सामाज की सुशुप्त आत्मा को झकझोरने का कार्य सर्वप्रथम ज्योतिबा फुले ने किया। फुले ने सामाजिक विषमता को खत्म करने, ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करने, सभी के लिए शिक्षा के द्वार खोलने आदि कार्यक्रमों को लेकर आंदोलन किए थे। उन्होंने 'गुलामगीरी' (1873) नाटक भी लिखा था।

एक ओर रशियन क्रान्ति की सफलता और दूसरी ओर अफ्रिका से गाँधीजी के 1915 में भारत आगमन से भारत की शोषित प्रजा सतर्क हुई। भारत लौटने पर गाँधीजी ने 'अस्पृश्यता निवारण' आंदोलन चलाया। परिणामस्वरुप पीड़ित, शोषित, दलित जनता सक्रीय हुई उनमें चेतना का संचार हुआ। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का दूषण माना। रमणिका गुप्ता के शब्दों में–

> **''हालांकि गुजरात की धरती में स्वामी दयानंद से गाँधीजी तक जातीय भेदभाव के खिलाफ मुहिम छेड़ने वाले समाज सुधारक पैदा हुए, जिन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर मुहिम चलाई। इसका प्रभाव गुजराती साहित्य और वहाँ के लोकसाहित्य पर भी पड़ा। वह मुहिम वर्णव्यवस्था के दायरे में रहते हुए अस्पृश्यता का विरोध तो करती थी पर जातियता को समूल नष्ट करके समानता, भाइचारे और आजादी का मुद्दा उसमें शामिल नहीं था। वह मुहिम धर्म से मुक्त नहीं थी। अपने वर्तमान स्वरुप में दलित चेतना का आंदोलन बाबा साहब ने ही चलाया। महाराष्ट्र से सटा हुआ गुजरात है बल्कि उन दिनों गुजरात महाराष्ट्र में ही था। महाराष्ट्र में दलित साहित्य की जब लहर आई तो वह गुजरात के दलित मन को भी भींगा गई और दलित लेखक की वाणी कलमबद्ध होने लगी। आहत और पीड़ित मन ने पहले कविता का रास्ता ही चुना जो मनुष्य आदिकाल से चुनने का आदी रहा है। बाद में वह साहित्य की सभी विधाओं में उकिर आने लगी..... ।''**[54]

महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले और गुजरात में गाँधीजी की विचारधारा का प्रभाव गाँधी युग के गुजराती साहित्यकारों पर भी पड़ा। र.व.देसाई (ग्रामलक्ष्मी, दिव्यचक्षु, सुन्दरम्, भंगडी, माजावेला की मृत्यु), झवेरीचंद मेघाणी (चमारना बोले, भाई), रा.वि.पाठक (खेमी), ईश्वर पेटलीकर (बावड़ी का पानी, वट, पारसमणी, अंतरपट) इत्यादि ने अपनी कुछ कृतियों में दलितों की वेदना का निरुपण किया। किन्तु गुजराती आलोचक डॉ.भरत महेता के अनुसार–

> **''जैसे–जैसे आज़ादी नजदीक आती गयी वैसे–वैसे दलितों को डर लगने लगा कि सवर्ण पूर्ववत व्यवहार करेंगे तब ? कुछ घटनाएँ भी उसी प्रकार की घटित हुई। हिन्दू होने का गौरव स्वीकार करने से गाँधीजी की हिन्दू के हाथ से हत्या हुई, अस्पृश्यता दूर करने के लिए लड़ने वाले गाँधीजी**

को अस्पृश्यों के नेता डॉ. बाबा साहब आंबेडकर के साथ विवाद हुआ। संविधान के निर्माता डॉ.आंबेडकर आज़ाद भारत को 'राष्ट्र' के रुप में मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन दिनों में पुनः दलित पीड़ित की संवेदना गुजराती साहित्य में से लुप्त होने लगी। सुन्दरम्, पन्नालाल पटेल जैसे लेखकों का पांडिचेरी प्रस्थान शुरु हुआ। शुभ दिन आने की प्रतीक्षा करने वाले उमाशंकर जोशी ने, 'देश आज़ाद होते हो गया', या 'छिन्न भिन्न हूँ' जैसे निराशावादी विचार व्यक्त किये।''[55]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि देश का अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्रता मिल गई किंतु स्वराज नहीं मिला। स्वतंत्रता के पश्चात् भी दलितों के जीवन में आंशिक परिवर्तन ही आया। दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार एवं उनका शोषण निरंतर जारी रहा। स्वराज निरर्थक सिद्ध हुआ। ऐसी भी परिस्थिति आई कि अंग्रेजों के शासन काल को बेहतर कहा गया।

ई.स. 1975 के बाद सरकारी योजनाएँ दलित वर्ग के लिए जो आयीं उनके द्वारा दलितों का विकास संभव था किन्तु इन योजनाओं का उद्देश्य दलितों का कल्याण करने के बजाय दलितों की वोट बैंक लेने का विशेष महत्त्व का था। परिणामस्वरुप वे योजनाएँ तिल का ताड़ बनी। इतनी अधिक योजनाओं के होने पर भी अधिकांश दलित वर्ग की स्थिति जस की तस बनी रही। दलित समाज अपने ही देश में पराया और अछूता कर दिया गया। चिनु मोदी के 'काला अंग्रेज' उपन्यास का नायक मनसुख बहुत ही गंभीर–मार्मिक बात करता है–

''गाँधी अंग्रेजों को खदेड़ सके, क्योंकि वे तो परदेसी थे, किन्तु हमारे देशवासियों को कैसे खदेड़ सकेंगे ?''[56]

डॉ. अम्बेडकर का सपना था एक सुदृढ़, समुन्नत और सुखी–सम्पन्न राष्ट्र और समाज का जहाँ बौद्ध धर्म के तीन तत्त्व स्वतंत्रता, समानता और न्याय हो। इन्हीं तीन तत्त्वों को उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन के लिए मुख्य उद्देश्य बनाया, जिससे आंदोलन अधिक सक्रीय बना। उनका यह भी कहना था कि अधिकार कभी भी मांगने से नहीं मिलते, अधिकार छीने जाते हैं। इसलिए अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया जाना चाहिए।

शताब्दियों से दलितों के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण उनका अशिक्षित होना ही रहा, अशिक्षा ने उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा। जिस वैदिक हिन्दु धर्म ने और जाति प्रथा ने अंधकारमय जीवन जीने के लिए दलितों को विवश किया और सत्ता–सम्पत्ति और शिक्षा से वंचित रखा ऐसे धर्म और विचारधारा के विरुद्ध उन्होंने आंदोलन किया। ई.स. 1920 में 'मूकनाक' नामक पत्रिका द्वारा उन्होंने क्रांतिकारी विचार दलितवर्ग के समक्ष रखे थे।

24 दिसंबर ई.स.1927 के दिन डॉ. आम्बेडकर द्वारा 'मनुस्मृति' के दहन और इसके माध्यम से दलित मुक्ति का संग्राम छेड़ा गया। इसी के साथ महाड़ के चवदार तालाब का सत्याग्रह, नासिक का प्रसिद्ध कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह इस संघर्ष की बाद की कड़ी थी। डॉ.अम्बेडकर द्वारा दलितों के लिए औरंगाबाद में मिलिंद विश्वविद्यालय की स्थापना से दलितों में शिक्षा के प्रति जागृति एवं अपने अधिकारों, कर्त्तव्यों, एवं मनुवादी मानसिकता से मुक्ति पाने की झटंपटाहट होने लगी।

भारत में जैसी स्थिति दलितों की थी, वैसी ही स्थिति अमेरिका में नीग्रो की थी। दासता का जीवन जीने वाले नीग्रो ने गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष किया था और अपने साहित्य की स्वयं रचना की। नीग्रो लेखक ने 'Black panthers' की स्थापना 1966 में की थी 'Black panthers' से प्रेरणा लेकर महाराष्ट्र में 9 जुलाई 1972 में दलित साहित्य के प्रेरक परिबल के रुप में 'दलित पेंथर' का जन्म हुआ। दलित पेंथर एक आम्बेडकरवादी युवा संगठन था। मराठी दलित साहित्य को इस संगठन से महत्त्वपूर्ण वेग मिला।

सन् 1981 और 1985 के व्यापक प्रकार के आरक्षण के आंदोलनों का प्रभाव दलित साहित्यकारों पर पड़ा। सवर्ण एवं दलितों के बीच हिंसक घटनाएँ होने लगीं जिससे गोलाणा या सांबरड़ा जैसी घटनाएँ घटी। आज भी शंबूकवध या खांडववन जलाने की प्रक्रिया बन रही हैं उनकी प्रतीति होने लगी। ऐसी घटनाओं ने दलित युवकों को विचार के लिए बाध्य कर दिया। गुजरात में दलित साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ था, किन्तु आश्चर्य की बात है कि कहानी में दलित संवेदना का इस प्रकार निरुपण हुआ कि आज दलित कहानियाँ मुख्य प्रवाह की सशक्त धारा आरक्षण के आंदोलनों ने दलितों में एकता स्थापित करने का कार्य किया, दलित चेतना को आगे बढ़ाया। 'गुजरात दलित साहित्य अकादमी' और गुजरात की दलित पत्रिकाओं ने भी दलित चेतना के विकास में अपनी भूमि अदा की। 'आक्रोश' के अतिरिक्त 'काला सूरज', 'दलित शक्ति', 'दलित चेतना', 'अधिकार', 'दिशा', 'समाजमित्र', 'नयामार्ग' और अकादमी की पत्रिका 'हयाती' तथा अन्य कई पत्रिकाएँ ऐसी हैं जिन्होंने दलित साहित्यकारों को मंच देने, उनका विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दलितों एवं गैरदलितों के द्वारा व्यापक रुप से दलित साहित्य लिखा गया। कविता (संपादन 11, संग्रह 36) कहानी (लगभग 250) उपन्यास 30, रेखाचित्र, नाटक,एकांकी निबंध, आत्मकथा जैसे विभिन्न रुपों से दलित साहित्य लिखा गया।

दलित कविताः–

गुजराती में दलित कविता का प्रथम सबल आविष्कार 14 वीं अप्रैल के ऋतुपत्र 'आक्रोश' द्वारा हुआ। प्रारंभ में दलित कविता के संपादन हुए हैं। गुजराती दलित कविता का प्रथम संपादन गणपत परमार मनीषी जानी द्वारा 1981 में दलित कविता प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् 'विस्फोट' (1982) संपादक–चंदु महेरिया, बालकृष्ण आनंद, 'अस्मिता' (1983) संपादक–चंदु महेरिया, 'वूगियो बजे' (1984) संपादक–हरीश मंगलम् 'संकलनगीता' (1986) संपादक–राजु सोलंकी, 'एकलव्य का अंगूठा' (1987) संपादक–नीलेश कापड़, 'मनुष्य' (1982) संपादक–वसंत पुरणी, 'गोरंभो' (1994) संपादक–चंद्राबहन श्रीमाली, 'दुंदभि' (2001) संपादक–दलपत चौहान, हरीश मंगलम्, प्रवीण गढ़वी, 'दलित गीत गज़ल' (2006) संपादक–हरीश मंगलम् जैसी दलित काव्य के महत्त्वपूर्ण संपादन समय–समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। के.बी.पंडया का 'चिनगारी' (1982), दलपत चौहान 'तोफिर (1983), 'कहाँ है सूर्य ?' (2000), साहिल परमार–'व्यथा पचीसी' (1984), 'मथामण' बबलदास चावड़ा 'अत्याचार होने दो' (1984), 'बतीके उजाले' (1991), रमण वाघेला–'स्पर्श की महक' (1984), प्रवीण गढ़वी–'बेयोनेट'(1987), 'पड़छायो' (1986) 'आसवद्वीप' (1986), राजु सोलंकी–'मशाल' (1987), गणेश सिंधव–'विषादिता' (1987), हरीश मंगलम्–'प्रकंप', यशवंत वाघेला–'हम अंधेरे में निकली पर छाइयाँ', शिवजी रुखड़ा 'फूल का पर्याय' (1990), बिपिन गोहिल–'घिसते मनुष्य को घूंटता हूँ'

(1992), 'उघाड़ जैसा खुलता मनुष्य' (2000), नरसिंह उजम्बा 'धम्मवंश (1996), नीलेश कापड़ 'अग्निकण'(1999), शामत परमार 'ज्वालामुखी' (1999), चन्द्रबहन श्रीमाली 'ओवारण (2000), 'मिजाज' (2001), भी. न. वणकर–'ओवर ब्रीज़', के.के.बैष्नव–'आँख', ए.के. डोडिया–सूर्योन्मुख', किसन सोसा–'अनौरस सूर्य', पथिक परमार–'बहिष्कृत (2003), नीरव पटेल–'बहिष्कृत फूलो' (2006), नरेन्द्र वेगड़ा का 'आपका पारस आप' (2006) इत्यादि काव्य संग्रह मिलते हैं। इनके अतिरिक्त जयंत परमार, मधुकान्त कल्पित, मौन बलोली, चंदु महेरिया, मोहन परमार, हिम्मत खाट सुरिया, विनोद गाँधी, उज्जमशी परमार, इत्यादि कवियों ने दलितों की पीड़ा, संवेदना, वेदना को कहीं संयत तो कहीं आक्रोश के रुप में अपनी कविता से अभिव्यक्ति दी है।

दलपत चौहान की कविता 'अस्पृश्य' में अछूत होने की पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

''पाठशाला का प्रथम प्रवेश था साक्षात् प्रलय का
काँपते हाथों से एकहरा नहीं
जलते हुए सहर की
अंगार भूमि सी छाती में
लिखी अपनी जात
तब से मैं
अछूत हूँ अस्पृश्य हूँ, अस्पर्श्य हूँ
गूंजता रहा जीवन में अण–अणु में
सहस्त्र बिच्छुओं का डंक
वेदना का परिचय
हिमालय की दुर्गम
ऊँचाई सा पार किया
वर्ग की देहली को
सबसे दूर–उस कोने के किनारे
शंकर की एकाकी सा मिला
आवास
नेत्र में त्रिपुरारी का तांडव
तभी जन्मा था
और घूमता रहा चारों ओर
फटी हुई थैली में टूटी हुई
पटरी का
महारवजाना लेकर बैठता
थरथराता समय
एक दम खाली आकाश..... ।''[57]

अछूत बच्चे को पाठशाला में प्रवेश लेते समय होनेवाली अनुभूति का यहाँ तीक्ष्ण रुप से कवि ने चित्रण किया है। दलित बालक को पाठशाला की देहली पार करने से सहज ढंग से तो होना चाहिए किंतु इसके बजाय वह हिमालय चढ़ने जैसी थकान महसूस करता है। कमरे में भी उनको कोने में बैठाया जाता है तब उसका त्रिपुरारी की तरह अक्रोश व्यक्त होता है।

जयंत परमार की 'पोट्रेट' कविता में सफाई कर्मचारी की दयनीय स्थिति एवं उसके सम्पूर्ण जीवन की व्यथा को इस प्रकार चित्रित किया गया है–

''मैं उसकी पसलियाँ ठीक से गिन सकता हूँ
गली कूचों में झाड़ू लगाकर
घीस गई है उसकी रीढ़ की हड्डी
सुनहरे ख्वाब कचरे के कूड़े में दफन हो गए
फिर भी किसी ने उसे
हाफ नेकेट मेन नहीं कहा
अनगिनत जुल्मों के चिथड़े लग हैं
उसकी जिन्दगी की कमीज पर।''[58]

प्रियंका कल्पित की 'परिपाक' कविता में दलितों के परंपरागत शोषण को चित्रित किया गया है। सदियों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी दलित अत्याचार सहन करते आएँ हैं, परिणामस्वरुप उन पर अत्याचार बढ़ता ही गया है।

''हमारे पूर्वजों ने
पसीना बोया था
बदले में
हमने पाई
गुलामी की फसल
जितना भी सहन किया
बढ़ते गये उतने ही
पीठ पर घाव।''[59]

आज़ादी के 65 वर्ष के पश्चात् भी हमारा समाज दलित मनुष्य को उनकी सही मेहनत के बदले में खलिहान का आधा भाग, दे सका है क्या ? उत्तर है, नहीं। इसलिए ही 'शस्त्र सन्यास' कविता में प्रवीण गढ़वी खलिहान के आधे भाग की माँग तार्किक दृष्टि से करके, आरक्षण के लाभ को भी अस्वीकार करके मानवीय अधिकार की बात करते हैं। द्रौपदी और चित्रांगदा के पौराणिक पात्रों की मदद से वर्गभेद को गहनरुप से अभिव्यक्त किया है। आरक्षण विरोधियों को यह कविता चुनौती देती है।

''चलो हम शस्त्रों को छोड़े
और गोलमेज परिषद भरें
हमको कोई देश नहीं, वेश नहीं
जमीन जोतने के लिए खेत नहीं, रहने के लिए झोंपड़ी नहीं।
आर्यावर्त के काल से यह आज एक तुमने
घासफूस का तिनका हमारे लिए रहने नहीं दिया।''[60]

इस प्रकार गुजराती दलित कविता में दलितों की वेदना, पीड़ा, उनकी व्यावसायिक प्रवृत्तियों के शब्दचित्र, मनुवादी वर्णव्यवस्था का विरोध, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजकीय असमानता के सामने संघर्ष, अंधश्रद्धा, समानता–समरसता, अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष, न्यायी समाज रचना की अवश्यकता, पुराण पात्र और

पुराणकथाओं का नवीन अर्थघटन इत्यादि देखा जा सकता है। अनुभूति की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। दलितों की पीड़ा कहीं संयत, तो कहीं विद्रोह के स्वरुप में तो कहीं दोनों के समन्वित रुप में प्रकाशित हुई है। दलित कविता में ग्रामीण बोली का भी विनियोग सशक्त ढ़ंग से हुआ है। अधिकतर कविताएँ मुक्तक है। गीत–गज़ल के द्वारा भी दलित संवेदना का अंकन हुआ है। गुजराती दलित कविता के बारे में जयंत परमार का विचार दृष्टव्य है–

> **''गुजराती दलित कविता जीवन की नयी लय को लेकर आयी है। प्रामाणिक यथार्थ लेकर आयी है, क्रान्ति मूलक अभिव्यक्ति लेकर आयी है, इस कविता में वेदना, यातना, व्यथा है, विद्रोह है, स्वानुभव है और अस्मिता की खोज है। पुराने रुपकों और प्रतीकों की परंपरा को छोड़ा गया है। गिद्ध, नाग, कुत्ता, कौआ, चमगादड़, गरुड़, ऊँट, सांड, छूरी, झाडु, तीसरी बांह, काला सूरज, काला लहूँ जैसे नए प्रतीक दलित कविता में अपनाये हैं। अब तक हिन्दू धर्म ने राम, सीता, राधा वगैरह को ही अवतार और देवता का रुप दिया था, रावण, शंबूक, एकलव्य, कर्ण, गांधारी, तुंगभद्रा जैसे पात्रों के लिए सहानुभूति इस विद्रोह की विशेषता है।''**[61]

दलित कहानीः–

गुजराती में दलित साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ था, किंतु कहानी में दलित संवेदना इतनी यथार्थ रुप में निरुपित हुई है कि आज दलित कहानियाँ मुख्य प्रवाह से सशक्त धारा बन गयी हैं। जोसेफ मेकवान की 'जीवादोरी' '(1956) को प्रथम गुजराती दलित कहानी माना गया है। यह कहानी महागुजरात आंदोलनकाल के अंतर्गत लिखी गई थी। इसके पश्चात् 1959 में 'चाँदनी' में बी. केशरशिवम् की राती रायण की रताश प्रकाशित हुई। ये दोनों कहानियाँ गुजरात में दलित साहित्य की सृजन प्रवृत्ति की शुरुआत से पहले की हैं।

जोसेफ मेकवान, प्रवीण गढ़वी, बी. केशराशिवम्, दलपत चौहान, हरीश मंगलम् आदि दलित कहानीकारों की पहली पीढ़ी ने सशक्त कहानियाँ दीं, जिनके प्रभाव से कई नवयुवकों के संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें धरमाभाई श्रीमाली, भी. न. वणकर, दशरथ परमार, राघवजी माधड़, मावजी महेश्वरी, चंद्रबहन श्रीमाली, मौलिक बोरीजा, विट्ठल श्रीमाली, अमृत मकवाना इत्यादि मुख्य हैं।

आज गुजराती के दलित साहित्य में कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जैसे 'गुजराती दलित कहानी' संपादक–मोहन परमार, हरीश मंगलम् 'दलित गुजराती कहानी' सं–अजित ठाकोर, राजेन्द जाड़ेजा, 'प्रतिनिधि दलित कहानी' सं.–हरीश मंगलम्, 'वणबोटी कहानियाँ' सं.–दलतप चौहान, 'दलित वार्ता सृष्टि' सं.–मोहन परमार, 'वार्तालोक' सं.–हरीश मंगलम्, मधुकान्त कल्पित, पथिक परमार, अरिविंद वेगड़ा इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त प्रवीण गढवी का 'अंतरव्यथा', हरीश मंगलम् का 'तलब', दलपत चौहान, का मुंझारो, बी. केशरशिवम् का 'राती रायण की रताश', 'चनीबोर' और अन्य कहानियाँ 'जन्मोत्सव', भी. न. वणकर का विलोपन', धरमाभाई श्रीमाली का 'नरक', मौलिक बोरिजा का 'भींस', अमृत मकवाणा का 'लिसोटा' आदि संग्रहों में भी दलित कहानियाँ संग्रहित हुई हैं।

गुजराती दलित कहानियों मे विषय की विविधता देखी जा सकती है। दलितों का शोषण यहाँ सदियों से हो रहा हो, जहाँ दलित होना किसी गुनाह से कम नहीं, जिन्होंने परंपरागत रुप से शोषण सहा हो, जहाँ सवर्ण समाज अपने भव्य अतीत एवं सुनहरे भविष्य की बात कहता हो, किंतु दलित समाज हाथ में झाडू और पीठ पर मशक बँधे हुए इतिहास को दोहराने पर विवश किया जाता है। दलित चाहे गाँव में रहे या शहर में, मजदूर हो या प्रथम श्रेणी का अफसर हो किंतु उन्हें दलित होने का कारण अवहेलना एवं अपमानित होना पड़ता है।

गुजराती दलित कहानियों की विशेषताओं के विषय में मोहन परमार का वक्तव्य ध्यान देने योग्य है–

> **''अस्पृश्यता, विद्रोह, आक्रोश, वेदना, जैसे दलितों के मूलभूत प्रश्नों को दलित कहानी उद्‌घाटित करती है। जो संवेदना आज तक गुजराती साहित्य में प्रकट नहीं हुई, वे दलित कहानी में उद्‌घाटित हुई है। इस दृष्टि से भी दलित समाज की बात हो, और दलित परिवेश में ही घटना के आरोह–अवरोह चलते हों, लेकिन दलित चेतना को जागृत करने वाले संवेदनों का अभाव कहानी को दलित कहानी बनने से रोकती है। अर्थात् मूल प्रश्न यह है कि गुजराती साहित्य में दलित कहानी की जो नयी धारा उपस्थित हुई है उसके मूल्यांकन के साधन भी नवीनतम होने चाहिए।''**[62]

ऐसे ही दलितों की पीड़ा को गुजराती कहानियों में देखा जा सकता है। **दलपत चौहान की–**'गंगा माँ', 'कातोर', 'चांल्लो', 'घर' 'रोटलो', 'कातोर', 'दरबार', 'न्याय', 'ना खपे', 'डर', **मोहन परमार की–**'कोह', 'थडी', 'नकलंक', 'हिरवणु', 'लाग', 'रढ़', 'आंधु', 'खली', **प्रवीण गढवी की–**'जी साहब', 'सँप', 'जूती पहनने की इच्छा', 'वशीकरण', 'एकलब्य', 'दरुपदी', 'मत्स्यगंधा', **दशरथ परमार की–** 'पाट', 'जाट', 'संधाणी', 'रमत', **हरीश मंगलम् की–** 'दाई', 'प्रेम यही सत्य', 'दलो ऊर्फ दलसिंह', 'पगदंडी', **धरमाभाई श्रीमाली की–** 'वरयात्रा', 'सामैयु', 'भवाई', 'दाझवुंते', 'भात', **बी. केशरशिवम् की–** 'घूरा', 'जेल की रोटी', 'मंकोड़ा', **मावजी महेश्वरी की–** 'पारसो', 'तापणु (अलाव), **उ.दा.राघवजी माधड़ की–** 'छेह', 'सिक्को', **यंशवत वाघेला की–** 'अंध', 'सूर्यनारायण', **जयंती दाफड़ा की–** 'दो एकर जमीन', 'स्वप्नील', **विनोद गाँधी की–** 'प्रसाद', **हसमुख वाघेला की–** 'झाल', **एम.बी.परमार की–** 'ढोल बजा', **अनिल वाघेला की–** 'लोभ', **केशुभाई देसाई की–** 'बोटेली वस', **स्वप्नील मेहता की–** ' कदाच, **प्रवीण सरवैया की–** 'मोहल्ला'(फलीयु), **रमेश वमणि की–** 'मारण', **पुष्पा माधड़ की–** 'गोमती', **मफत ओझा की–** 'नीला कुआँ', **दिनेश परमार की–** 'चक्रवात', **पथिक परमार की–** 'उधाडे पैर', **माय डियर जयु की–** 'प्रवेश', **रमण वाघेला की–** 'धंधो (व्यवसाय), **भी.न वणकर की–** 'विलोपन', **भरत महेता की–** 'तालो' आदि। इन में से अधिकतरर कहानियों में कलात्मकता नहीं है, किंतु दलित वर्ग में से आनेवाले लेखक जैसे–जैसे कला के विषय में अधिक जागृत होते जाएँगे वैसे–वैसे वे शोषण की कहानी को भी मुखर की जगह कलात्मक रुप में प्रस्तुत करेंगे।

गुजराती दलित उपन्यासः–

गुजराती दलित साहित्य में गाँधीयुग (1915–1947) में ईश्वर पेटलीकर की 'कल्पवृक्ष' जैसे अपवादरुप उपन्यास के अतिरिक्त दलित संवेदना को उपन्यास में अधिक अवकाश नहीं मिला। नवें दशक में गुजरात में आरक्षण आंदोलन होने से दलितों पर संकट के बादल घिरने लगे। गोलाणा एवं सांबरडा की घटनाएँ घटी थी, अतः इसका आघात दलित लेखकों पर एवं उनकी संवेदनशीलता पर भी पड़ा था। इसी समय में जोसेफ मेकवान ने 'आंगलियात'(1986) उपन्यास दलित युवक का केन्द्र में रखकर लिखा। इसके बाद 'मारी परणेतर', जोसफ मेकवाना 'मलेक (1999), 'गीध', 'भलभांखलुं', दलपत चौहान 'तिराड', 'चौकी', हरीश मंगलम् की 'शूल' (1995), 'मूल और धूल', बी. केशरशिवम् की 'नेलियुं', 'प्रियतमा' (1995) भाग 1, 2, 'डाया वश की वाडी', मोहन परमार 'अस्तित्व', गणेश आचार्य 'शोष', दक्षा दामोदर, 'शैलबाला', आइ.ए.एस.' (2003), विट्ठलराय श्रीमाली, 'चींटीने खोरबारा खाया' दिनु भद्रेसरिया, 'दिपावली के दिन', प्रागजी भाम्भी, 'गेबीटींबो' कांतिलाल परमार, 'मैला' मावजी महेश्वरी इत्यादि उपन्यास प्राप्त होते हैं।

1975 के पश्चात् और गैर दलित लेखकों द्वारा रचित लगभग नौ जितने उपन्यास मिलते हैं। जिनमें रामचन्द्र पटेल की 'वराल' (बाष्प) 1979, दिलीप रणपुरा की 'आँसू ना उजास' (19984), चिनुमोदी की 'काला अंग्रेज', जयंत गाड़ीत की 'बदलाती क्षितीज' (1986), 'प्रशमु' (2002), किशोर सिंह सोलंकी की 'मशारी (1980), रघुवीर चौधरी की 'इच्छावर'(1987), मणिलाल ह. पटेल की 'अंधेरा' (1990) और डॉ. प्रदीप पंड्या की 'मंजिल अभी दूर है'(2006)।

इला आरब मेहता की 'राधा' और दर्श की 'कुरुक्षेत्र' में पौराणिक संदर्भों के लिए दलित चेतना अंकित हुई है। यहाँ पौराणिक कथानक, पात्रों को नवीन अर्थघटन के साथ वाचा देने का प्रयत्न किया गया है।

'पारी परणेतर', 'मनखाकि', 'दरार', 'शोष', 'शैलबाला आइ. ए. एस.', दलित नारी चेतना से संबंधित उपन्यास है।

दलित चेतना को निरुपित करने वाले लेखक अपनी विषय वस्तु को सरलकरण कर डालते हैं। जिनमें 'बाष्प'(रामचंद्र पटेल), 'मशारी'(किशोरसिंह सोलंकी) 'नेलियु'(खपरैल), मोहन परमार की गिनती होती है।

'बाष्प', 'चौकी', 'मशारी', 'इच्छावर', 'शोष', 'प्रियतमा', इत्यादि उपन्यासों में समाज जीवन के कठोर सघन वास्तविकता के स्थान पर प्रतिविंबित वास्तव प्रस्तुत हुआ है।

'बदलाती क्षितिज', 'प्रमामुं', 'शूल', 'मूल और धूल', 'मंजिल अभी दूर है', 'शैलबाला आइ.ए.एस.', में उय समय के समाज के प्रश्नों का निरुपण हुआ है। इसके अतिरिक्त अधिकतर उपन्यासों की समय सीमा तानाशही समय की है। दलितों में उभरा हुआ 'ब्राह्मणवाद' कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। 'काला अंग्रेज', 'मलक', 'चौकी', 'दरार', इत्यादि उपन्यासों में जीवन के उत्साह के अतिरिक्त कहीं भी विशेष तौर पर नहीं प्राप्त होत ! लेकिन अधिकांश उपन्यासों में देशज बोली का प्रभाव पड़ा है।

गुजराती दलित नाटक–एकांकीः–

गुजराती दलित साहित्य में दलित नाटक, एकांकी बहुत कम लिखे गए हैं। फिर भी उल्लेखनीय हैं। दलपत चौहान का 'अनार्यावर्त'(2000), में प्रकाशित नाटक है, जिसमें महाभारत की प्रसिद्ध कथा का नवीन अर्थघटन के साथ निरुपण हुआ है। दलपत चौहान की 'हरीफाई' एकांकी संग्रह 2003 में प्रकाशित हुआ, जिसमें 'दीवारो' नामक एकांकी में हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण सवर्ण और दलित समाज के बीच बनाई गई दीवार की बात है। डॉ. मोहन परमार के 'बहिष्कार' एकांकी संग्रह में से 'बहिष्कार', 'शाप मुक्ति', 'सत्यनारायण की कथा' और 'उदरशूल' एकांकियों की कथावस्तु दलितों पर है।

आत्मकथाः–

गुजराती में बी.केशरशिवम् की 'पूर्ण सत्य' और पी.के.वालेरा की 'थोरके' (थूहरा फूल) आत्मकथा मिलती है। 'पूर्ण सत्य' में लेखक के जन्म, बचपन, शिक्षा से लेकर सरकारी नौकरी से निवृत्ति तक की एवं साहित्यिक योगदान की बात है। प्रस्तुत आत्मकथा का गुजरात सरकार का 'दासी जीवण' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

रेखाचित्रः–

अभी तक हिन्दी दलित लेखन में भी जो विधा नहीं अपनाई वह गुजराती लेखकों ने अपनाई है, वह है रेखाचित्र। गुजराती में भोगे हुए अनुभावों की अभिव्यक्ति के लिए जोसेफ मेकवान जैसे दलित लेखकों ने रेखाचित्र विघा क उपयोग बड़ी ही सफलता से किया है। जोसेफ मेकवान द्वारा रचित 'व्यथा के वीतक', 'स्नेह के व्यर्थ प्रयन्न', 'मेरी भिल्लु', और 'जनम', 'जलाम', 'मनुष्य होने की यंत्रणा', 'न ये चाँद होगा', 'राम के रखोपे', जैसे रेखाचित्रों के संग्रह प्राप्त होते हैं। जोसेफ मेकवान का 'व्यथा का वीतक' तो सिर्फ दलित साहित्य में ही नहीं, लेकिन संपूर्ण गुजराती साहित्य में अविस्मरणीय संग्रह है। जोसेफ मेकवान के पात्र अपना अलग विशिष्ट व्यक्तित्व रखते हैं। चन्दुमहेरिया द्वारा संपादित 'माडी मुझे सांभरे रे' में दलित रचनाकारों ने अपनी माँ के बारे में लिखे हुए रेखाचित्र हैं, तो दलित शक्ति में दलित रचनाकारों के पिता के बारे में रेखाचित्र प्रकाशित हुए हैं। भोगे हुए यर्थाथ की अनुभव बहुलता भी सहजता से रेखाचित्रों में प्रकट की जा सकी है।

गुजराती दलित साहित्य में नाटक एकांकी आत्मकथा की तरह निबंध क्षेत्र में भी नगण्य जैसा कार्य हुआ है। बी.केशरशिवम् का 'गाय का पड़ाव' निबंध संग्रह मिलता है।

गुजराती दलित विवेचनः–

गुजराती दलित विवेचन क्षेत्र में भी अधिक मात्रा में काम हुआ है। विवेचन ग्रंथों में हरीश मंगलम् का 'संविति', 'विदित' (मोहन परमार के साथ), 'एकवचन', प्रतिध्वनि', मोहन परमार का 'अणसार' भी. न. वणकर का 'प्रत्यायन', 'अनुसंधान', 'नवोन्मेष', 'पर्याय', दलित साहित्य दलपत चौहान का 'पदचिह्न', भरत मेहता का 'प्रतिबद्ध', पथिक परमार का 'सांप्रत' दलित साहित्य अरविंद वेगड़ा का 'दर्पण', 'गुजराती दलित साहित्यः स्वाध्याय और समीक्षा', संपादक मोहन परमार हरीश मंगलम् प्राप्त होते

हैं। लेकिन मराठी में शरणकुमार लिम्बाले का और हिन्दी में ओमप्रकाश वाल्मिकी का 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' जैसे सिद्धांतलक्षी ग्रंथ गुजराती में नहीं प्राप्त होते।

इस प्रकार की विशेषताओं मर्यादाओं समेत का गुजराती दलित साहित्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि, गुजराती साहित्य समृद्ध बना है, क्योंकि उसमें दलित साहित्य का आगमन हुआ है। आज बहिष्कृत भी परिष्कृत हो रहा है। गुजरात साहित्य अकादमी, गुजराती साहित्य परिषद और दिल्ली साहित्य अकादमी द्वारा गुजराती दलित रचनाओं को पुरस्कार प्राप्त हुआ है। हम कल्पना तो ऐसे भविष्य की करते हैं, कि जहाँ समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता को इस प्रकार महत्त्व दिया जाए, जिससे शोषण का अंत लाया जा सके और किसी के द्वारा दलित साहित्य लिखने की आवश्यकता ही न रहे।

1.5. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र

दलित साहित्य यह दलित समाज का विशेष साहित्य है। समाजिक प्रतिबद्ध साहित्य है। यह समाज में समानता, जागृति लाने के लिए लिखा गया है। दलित साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है। और वह मनुष्य को महानता प्रदान करता है। इस प्रकार दलित साहित्य समाजिक चेतना लाने वाला साहित्य कहा जा सकता है। दलित साहित्य तमाम क्षेत्र में दलितत्व को निर्मूल करने के लिए कटिबद्ध है और दूसरी और उसकी अपनी स्वतंत्र मशाल जला रहा है। दलित साहित्य का परंपरागत मूल्यों के समक्ष विद्रोह है। अन्याय के समक्ष आक्रोश है, ऐसे में दलित साहित्य परंपरागत मूल्यों और मापदंडो पर आधारित सौन्दर्य शास्त्रीय समीक्षा को कैसे स्वीकारे ? उसके लिए अलग समीक्षा जरुरी है। वर्तमान समय में जो दलित साहित्य प्रस्तुत है वह अन्याय, यातना और अत्याचार के समक्ष इन्कार, आक्रोश, विद्रोह का साहित्य है। यह आनंद के लिए नहीं जागृति के लिए ही लिखा गया है, इसलिए दलित लेखकों का यह मानना है कि उनके साहित्य की समीक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से होनी चाहिए और समाजशास्त्रीय समीक्षा में सौन्दर्य की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों की चर्चा अधिक होना लाजमी है।

सहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है वह जिस वर्ग में जन्म लेता है और जीता है उस वर्ग और समाज का ही उसे अनुभव होता है। इस तरह कला को समझने के लिए कलाकार को समझना पड़ेगा (कार्ल मार्क्स) कलाकार को समझने के लिए वह किस वर्ग का, किस समाज का सदस्य है इतना ही नहीं, इतिहास के किस समय का वह सदस्य है, यह देखना पड़ेगा। साहित्यकार की सामाजिक भूमिका क्याहै ? उसकी परवरिश किस वातावरण में हुई है ? कलाकार की कृति सामाजिक जीवन में क्या भूमिका अढ़ा करती है ? आदि प्रश्नों को समीक्षक को जानना जरुरी है। कलाकार भी समाज का एक सदस्य है। स्वाभाविक रुप से वह समाज में चली आ रही मान्यताओं के अनुसार अपने अनुभव को देखता है। अपने समाज की मान्यताओं, भावनाओं आदि को स्वाभाविक रुप से वह स्वीकार कर लेता है। जीवन परिवर्तनशील है उसी तरह अनुभव का, 'यथार्थ', भी परिवर्तन शील है। दलित साहित्य सामाजिक 'यथार्थ' से संबंधित है। भूखे मनुष्य को रोटी में ही जीवन की यथार्थता समझ में आती है। इस प्रकार "दलित साहित्य यह तीसरी दूनिया का साहित्य है..... तीसरी दूनियाँ का सौन्दर्य–शास्त्र यातना, संघर्ष और स्वप्नों के आधारस्तम्भ के ऊपर खड़ा है।"(अंक 2/96,संपां राजेन्द्र यादव) साहित्य के मानदडं तो संस्कृत साहित्य की परंपरा है। वह अंग्रेजी साहित्य की आयात है जो युगों पुरानी है, परंपरागत रुढ़ बन गई है और दलित साहित्य आधुनिक युग की

उपज है। युग बदलता है उसी के साथ प्रजा की रस–रुचि बदलती है, वैसे ही साहित्य का स्वरुप भी बदलता है साथ–साथ कला की संकल्पनाएँ भी बदलनी चाहिए। साहित्य की अवधारणा अस्थिर और परिवर्तनशील होती है। इस प्रकार युग–युग में कला के मानदंड बदलते हैं वैसे–वैसे शुष्क और जड़ मानदंड़ों द्वारा दलित साहित्य को नकारते रहना अब ज्यादा समय तक चलेगा नहीं।

पिछले कुछ वर्षों में सभी सवर्ण लेखकों ने दलित साहित्य के सौन्दर्य को लेकर सवाल उठाया है कि दलित रचनाकार शिल्प और रचना सौन्दर्य की दृष्टि से सफल नहीं है। ठीक यही सवाल बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में अमेरीका में अनेक रचनाकारों की कृतियों को लेकर उठाए गए थे और एडिसन गायलर (जू.) जैसे अश्वेत विचारकों ने 'दि ब्लैक ईस्थोटिक्स' जैसी किताबें लिखीं थी। हिन्दी में भी मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मिकी जैसे लेखकों ने दलित साहित्य के स्वायत सौन्दर्यशास्त्र पर विचारात्मक लेखन किया। दलित लेखक का जोर सौन्दर्यबोध पर नहीं जातीय समाजशास्त्र पर रहा है और यही समाजशास्त्रीय विवेक उसके लेखन की पहचान रहा है। दलित रचनाकार का आदर्श कबीर रहे हैं जो सामाजिक व्यवस्था ही नहीं रचना के ढ़ाँचे को भी तोड़ते हैं। इस विषय में डॉ.शरण कुमार लिम्बाले का मानना है कि–

> **"सामाजिक मूल्य ही दलित साहित्य के सौन्दर्य मूल्य हैं और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम की कल्पना भेदमूलक है। यह सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए की गई थी और वह दलितों को असत् अशिव और असुंदर मानकर चलती है। दलित का शोषण उनके लिए कल्याणकारी है, दलित की कुरुपता उन्हें सुंदर बनाती है और दलित का असत् यानी उसका अपमान–अभाव और विनाश उनके लिए सत्य है। इसलिए डॉ. लिम्बाले ने इसकी व्याख्या बदलने की जरुरत महसूस करते हुए उसे सामाजिक और ऐहिक बनाने पर बल दिया। उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व को सत्यम्, उसकी स्वतंत्रता को शिवम् तथा उसकी मनुष्यता को सुंदरम् कहकर व्याख्यापित किया है और समता बंधुत्व और स्वतंत्रता की चर्चा को ही दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की चर्चा माना है। इस प्रकार उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र की एक नई परिभाषा देकर उस एक नया मानदण्ड प्रस्तुत किया है।"**[63]

दलित साहित्य आनंद पर आधारित न होकर व्यथा या वेदना पर आधारित है। दलित साहित्य में व्यक्त हुई वेदना और विद्रोह पढ़कर पाठक बेचैन या कुपित हो जाता है न कि आनंदित। दलित साहित्य में सामाजिक विषमता, निरुपता को प्रस्तुत किया जाता है दलित की यातना और अन्याय का निरुपण करता है। इसी के परिणामस्वरुप दलित साहित्य का सौन्दर्य निखरता है। वही दलितों द्वारा सहे जा रहे सदियों की पीडा, संताप यथार्थ रुप में अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। इस तरह–

> **"दलित साहित्य के लिए स्वयं के मानदंड निर्धारित नहीं है न ही पूर्व–पश्चिम के कलावाद का कोई आधार ही। दलित साहित्य को केन्द्रबिंन्दु मनुष्य है। आंबेडकर दर्शन दलित साहित्य की गंगोत्री है। स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की स्थापना का साहित्य अर्थात् दलित साहित्य। इस तरह दलित साहित्य का सौन्दर्य इसमें नहीं है कि उसकी**

भाषा कितनी उच्च कोटि की है, बल्कि साहित्य, जीवन के साथ कितना जुड़ा हुआ है, मानवीय संवेदना और समस्याओं को कितना महत्त्व देता है उसी तरह सामाजिक परिवर्तन और विकास में कितना सहायक और उपयोगी है।"[64]

इस तरह कहना चाहिए कि हमें सुदंरता की कसौटी बदलनी चाहिए। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्लु पकड़े रहना चाहता था, उसकी दृष्टि महलों की ओर थी। झोंपड़ी और खंडंहरों के प्रति वह उपेक्षित था। वह परिधि के बाहर नहीं जा सकता था। उसके लिए सौन्दर्य सुंदर स्त्रियों में था। गरीब और दरिद्र माता में नहीं–जो बच्चे को खेत के किनारे सुलाकर पसीना बहाती है। बिखरे बालों, सूखे होठ और सुखी त्वचा वाले गाल में उसका सौन्दर्य कहाँ प्रवेश कर सकता ?

दलित सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हुए रमाणिका गुप्ता ने लिखा था–

"दलित साहित्य ने नए बिम्ब गढ़, पौराणिक मिथकों की भाषा बदल ड़ाली। नए मिथक बनाए, गौरवान्चित झूठ और आस्था पर चोट की और चमत्कार को तोड़ा। यह वर्तमान साहित्य के लिज–लिजेपन और बासीपन तथा एक रुपी रसवादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है। इसके दायरे में अंधविश्वास, भाग्य, पूर्व–जन्म के कर्म, धर्म तथा भगवान नहीं आते।"[65]

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है–

"दलित साहित्य में अनुभवों से उत्पन्न आशय निष्ठा है ही अधिक है। पारम्परिक साहित्य ने जिसे त्याज्य और निषिद्ध माना है, दलित साहित्य ने उसे अपने अनुभवों के आधार पर प्रमुखता दी है। उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के मूल्यांकन के लिए पारम्परिक समीक्षा के मानदण्ड गलत निष्कर्ष देगें।"[66]

इस प्रकार दलित साहित्य का मूल्यांकन साहित्य के सदियों पुराने सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर नहीं किया जा सकता। अतएव दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र अलग होगा ही। निराला, प्रेमचंद, धूमिल, नागार्जुन आदि कुछ ऐसे साहित्यकार हुए हैं। चूँकि शेष सभी साहित्य उन लोगों द्वारा लिखा गया है जिन्होंने दलितों से मनुष्य का हक छीना और उन्हें साहित्य में भी चर्चा के दायरे से बाहर रखा अगर चर्चा में रखा भी तो घृणा का पात्र बनाकर।

दलितों का सौन्दर्यशास्त्र उनकी रचनात्मकता एवं कृतियों के साथ–साथ ही निर्मित हो रहा है। वे अपने नये प्रतीक नये बिम्ब एंव मिथक गढ़ रहे हैं। इतना ही नहीं वे नये मिथक के साथ–साथ पुराने मिथकों को भी अपने अनुरुप परिभाषित कर रहे हैं, इसलिए रामायण के राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रुप का मिथक तोड़कर–उसे शम्बूक हंता, पत्नीत्यक्ता घोषित कर रहे हैं। दलित साहित्य के युधिष्ठिर सत्यवादी धर्मराजा नहीं रहा–वह पत्नी को दाँव पर लगाने वाला जूएबाज है। आज बहादूरी के प्रतीक के रुप में फूलन देवी उभर आई थी, जो बलात्कारियों को सजा देने की हिम्मत रखती थी। आज सावित्री जो अपने पति के प्राण एवं अपने लिए पुत्र और परिवार के लिए धन का वरदान

लेने के लिए निकली थी–मिथकीय पात्र नहीं रही। आज तो सावित्री बाई फूले महान हैं, जिन्होंने सारे विरोधों के बावजूद शिक्षा ग्रहण की और महिलाओं को पढ़ाना शुरु किया। यहाँ तक कि सवर्णों की विधवाओं की अवैध संतान को भी बचाया, जिंदा रखा, पाला–पोसा और पढ़ाया, संतान का वर उन्हें दिया जो इस देवता कही जाने वाली जाति के हाँथों मार दिये जाने वाले थे। उन्होंने विधवाओं को जीने की राह दिखाई, पढ़ाया उन्हें वेश्या बनने से बचाया और दिया एक सामूहिक परिवार के सुख का वरदान। सावित्री के वरदान उसके अपने लिए थे, लेकिन सावित्री बाई फूले का वरदान सामूहिक है। अस्पृश्यता से जिसने उनकी परछाई को भी अछूत बना दिया था,को नकारना है, उसे अपनी पीड़ा और वेदना के माध्यम से अभिव्यक्ति देना है। कुरुपता को मिटाने के वरदान पूरे समाज के लिए थे। इसलिए दलितों का सौन्दर्यशास्त्र अलग होगा ही।

दलित साहित्य की पहचान उसकी 'कला–साधना' से न होकर विषय वस्तु से हुई। शिल्प और कला का सवाल उसके लिए प्राथमिक नहीं है, प्राथमिक है अन्तर्वस्तु। असल में जब भी कोई परिवर्तनकामी साहित्य रचा जाता है तो वह कलात्मकता की ज्यादा परवाह नहीं करता। उसके लिए विषय या विचार सांचे से बाहर रखे जाने का जोखिम उठाकर निर्मित किया जाता है। आम तौर से माना जाता है कि साहित्य मनोरंजन या आनंद के लिए होता है 'काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'। यहाँ विनोद मनोरंजन के पर्याय के रुप में समझा जाता रहा है। लेकिन, दलित साहित्य में यह मान्यता स्वीकारी नहीं जाती। ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

> **''एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुख, वेदना से साक्षत्कार करता है, वह आनंददायक कैसे हो सकता है ? दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है इसलिए उसकी श्रेष्ठता शब्दजीवी नहीं है, न शाब्दिक चमत्कारों तक सीमित है। अर्थगाम्भीर्य दलितो का स्वीकृत, जीवन मूल्य है, जिस पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र टिका है।"**[67]

हमारे देश में साहित्य तो शताब्दियों से लिखा जाता रहा है लेकिन दलितों जीवन संघर्ष को साहित्य में वाणी नहीं दी गई। महाकवियों की अटूट शृंखला भी शूद्र और अंत्यज बस्ती को निकट से देखने से बचती रही इसलिए शंबूक जैसे पात्रों को हासिए से बाहर ही रखा गया। जब दलित साहित्यकारों ने 'गौरवशाली और विशाल वाड़ गमय' में अपने को अनुपस्थित पाया तो इस अधूरेपन को पूर्णता देने अर्थात् अपने होने का अहसास उन्हें दिलाने के लिए उन्होंने प्रयत्न किए। अपने वेदनामय जीवन का शब्दों के जरिए प्रकट करने के कारण कई बार दलित साहित्य को सिर्फ वेदना का साहित्य कहा जाता है। वेदना को प्रकट पहले भी साहित्य में किया गया था, किन्तु दलितों की वेदना समाज के पारंपरिक साहित्य से अलग थी। यहाँ वेदना में कुरुपता थी घुटन थी। छटपटाहट थी, अनुसुनी चीख थी जिसे दलित साहित्यकार पारंपरिक साहित्य के शिल्प और कला के माध्यम से प्रकट नहीं करते हैं बल्कि कलात्मकता की चिंता किए बगैर ही अपने लेखन के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करते हुए पाठकों के हृदय तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। इसमें सौन्दर्य कितना था और कितना नहीं, इसकी उन्हें फिक्र नहीं। दलित साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र के प्रश्नों की खींचतान में पड़कर वे अपने मूल उद्देश्य से भ्रमित नहीं होना चाहते। मूल उद्देश्य के सिद्ध हो जाने पर इस विषय में बाद में भी सोचा जा सकता है।

संदर्भ

1. पाइअसद्दमहण्णवो (प्राकृत शब्दकोश) सं. न्याय व्याकरणातीर्थ पूं. हरगोविन्ददास, टी. शेठ
2. संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश–वामन शिवराम आप्टे, पृ. सं. 451
3. दलित साहित्य ब्राह्मणवाद के खिलाफ खुला विद्रोह–डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर पृ. सं. 1
4. संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश–वामन शिवराम आप्टे, पृ. सं. 1026
5. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर,सं.रामचन्द्र वर्मा एवं कोश संस्थान, श्रोत हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, सप्तम संस्करण, डॉ.आनंद वास्कर, पृ. सं. 17–18
6. हिन्दी पर्यायवाची कोश डॉ. भोलानाथ तिवारी पृ. सं.. 260
7. उच्चतर–हिन्दी कोश–डॉ.हरदेव बाहरी पृ. सं. 14
8. वही पृ. सं. 46
9. मानक हिन्दी कोश तीसरा खंड सं. रामचंद्र शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग पृ. सं. 35
10. दलितायन,अवन्तिका प्रसाद मरमट पृ. सं. 4
11. आज की कविता–डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 14
12. पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट,भाग–1 1.2.(1980) पृ. सं. 4
13. बृहद गुजराती कोश–अध्या.के.शास्त्री–खडं पृ. सं. 1129
14. वही पृ. सं. 1124
15. वही पृ. सं. 1356
16. वही पृ. सं. 2150
17. परिषद प्रमुखों के भाषणः गुजराती साहित्य परिषद, 13 वें अधिवेशनः कनैयालाल मुनशी पृ. सं. 515
18. युगवंदनाः जवेरीचंद मेघाणी प्र.आवृत्ति 1935
19. The oxford Hindi- English Dictionary- R. S. mc. Geogor,Page No. 6
20. वही पृ. सं. 956
21. वही पृ. सं .16
22. वही पृ. सं. 06
23. अंग्रेजी–हिन्दी कोश–फादर कामिल बुल्के पृ. सं. 192
24. वही पृ. सं. 808
25. दलितायन–अवंतिका प्रसाद मरमट, पृ. सं. 1
26. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता–डॉ. कालीचरण स्नेही, पृ. सं. 8
27. 'दस्तावेज' अप्रैल–जून,1993
28. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषा राजमणि शर्मा पृ. सं. 82
29. वही पृ. सं. 83
30. वही पृ. सं. 83
31. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषाएँ–राजमणि शर्मा पृ. सं. 118
32. वही पृ. सं. 118
33. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. सं. 14–15
34. प्रलंब पंथ–बिनाकिनी दवे पृ. सं. 2
35. दलित साहित्य आंदोलन सं. डॉ. चन्द्रकुमार नरठे अनु. डॉ. आर.एच.वणकर पृ. सं. 64

36. वही पृ. सं. 64
37. दलित अपना प्राचीन इतिहास जाने और अपनी असलियत पहचाने सं. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर–हिमायती–दलितों प शोषितों का पक्षिक पत्र नवम्बर 1999 पृ. सं. 1
38. हिन्दी दलित साहित्य एक इतिहास–सुरेशचन्द्र शुक्ल, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 21–22
39. हिन्दी दलित साहित्य : रचना और विचार सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 49
40. वही पृ. सं. 49–50
41. मसीही धर्मनुसार दलित शब्द की व्याख्या डॉ. ए.बी. शिवाजी दलित साहित्य सृजन के संदर्भ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 134–135
42. शिखर की ओर (श्री माता प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ) सं. डॉ. एन. सिंह लेख दलित साहित्य श्री माता प्रसाद 'मित्र' पृ. सं. 290–291
43. दलित चेतना : साहित्यिक एवं समाजिक सरोकार सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 38
44. वही पृ. सं. 88
45. वही पृ. सं. 90
46. वही पृ. सं. 108
47. वही पृ. सं. 109
48. वही पृ. सं. 84
49. शिखर की ओर सं. डॉ. एन. सिंह पृ. सं. 207
50. दलित साहित्य : वार्षिकी 1999 सं. डॉ. जयप्रकाश कदर्म पृ. सं. 281–282
51. 'सुनो ब्राह्मण' मलखान सिंह, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, द्वितीय संस्करण 1997 पृ. सं. 12 'सफेद हाथी' शीर्षक कविता
52. हिन्दी दलित साहित्य में कविता की रचना प्रक्रिया और विचार डॉ. ठाकुर प्रसाद रही से उद्धृत–''दलित साहित्य रचना और विचार'' डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 31
53. हिन्दी दलित साहित्य : आस्वाद के धरातलपर–राजेन्द्र नामदेव 'कुमार' ''दलित साहित्य रचना और विचार'' डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 63
54. गुजराती साहित्य में दलित कलम सं. रमणिका गुप्ता भूमिका संपादकीय से
55. प्रतिद्ध डॉ. भरत मेहता प्रथम संस्करण 2005, रावत प्रकाशन पृ. सं. 190
56. काला अंग्रेज पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद पृ. सं. 241
57. 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही रचर' सं. विमल थोरात, सूरज बडत्या, प्रकाशन–रावत पब्लिकेशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2008 पृ. सं. 177
58. वही पृ. सं. 151–152
59. वही पृ. सं. 148
60. वही पृ. सं. 161
61. युद्धरत आमआदमी गुजराती साहित्य में दलित कलम सं. रमणिका गुप्ता अंक 55 पृ. सं. 207
62. युद्धरत आमआदमी सं. रमणीका गुप्ता अंक 53 पृ. सं. 236
63. दलित सा. का सौन्दर्यशास्त्र सं. डॉ. शरण कुमार लिम्वाले पृ. सं. 20
64. गुजराती दलित साहित्य भी. न. वणकर पृ. सं. 55
65. नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ सं. मुद्राराक्षस पृ. सं. 6
66. वही पृ. सं. 6
67. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. सं. 50

द्वितीय अध्याय

''हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना''

अध्याय–2

हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना

'यत्रनार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' एवं 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीबयसी' अर्थात् 'जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते हैं, तथा 'हे जन्मदात्री धरती माँ, तू स्वर्ग से भी महान है' ऐसा कहे जाने वाले देश में स्त्रियों को बदहाल जिंदगी जीने को विवश किया जाता है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक भारतीय दलित नारी की सामाजिक यात्रा पर अगर हम गौर करें, तो हम पाएँगे कि दलित नारी को अनेकानेक बंधनों एवं बर्बर अत्याचारों के दौर से गुजरना पड़ा है। आज महिलाओं में जो भी जागृति आई है, वह बाबा साहब डॉ.आंबेडकर की देन है। आज दलित महिलाओं में कुछ शिक्षित हैं, किंतु अधिकतर अशिक्षित हैं। किसी का परिवार उसके साथ उसके संघर्ष में सहयोगी है, जबकि किसी का परिवार उसकी प्रगति, शिक्षा, विचारों, स्वतंत्रता का विरोधी है। सदियों से दलित महिलाओं का जातीय शोषण सवर्णों द्वारा किया जा रहा है, उस शोषण, अन्याय के प्रति आज कुछ दलित महिलाओं ने विद्रोह करना शुरु कर दिया है। इस विद्रोह में, इस पहल में कुछ पिता या पति उसके साथ हैं, तो कुछ नहीं भी हैं। दलित समाज की महिलाएँ अपने परिवार और समाज में नाना प्रकार के शोषण का शिकार हैं, क्योंकि वे नारी है। यह दोहरी मार दलित समाज की महिलाएँ झेल रही है। हिन्दी दलित कहानियों में दलित नारी के विविध रुप, समस्या, स्थिति, परिवेश, संघर्ष, विद्रोह, जातिगत हीनबोध, पीड़ा, विवशता, अस्पृश्यता, आर्थिक संकट, आदि को दलित एवं गैरदलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रकट किया है। दलित महिलाओं की संवेदनाओं उनके अस्तित्व, अस्मिता एवं स्वतंत्रता आदि के प्रश्नों को उपरोक्त मुद्दों के माध्यम से दूसरे अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

2.1. दलित शिक्षित महिलाएँ

1. 'बदबू'– सूरजपाल चौहान

दलित स्त्री शिक्षित होते हुए भी उसे दलित होने के कारण कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दलित समाज में स्त्री शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया जाता। वे तो बेटी को पराया धन मानकर जल्द से जल्द अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में विश्वास करते हैं। प्रस्तुत कहानी में **संतोष** के साथ भी यही होता है। संतोष अपने कस्बे के दलित परिवार की पहली लड़की थी, जिसने इंटर कॉलेज की परीक्षा सत्तर प्रतिशत में पास की थी। उसके साथ की दूसरी सवर्ण लड़कियाँ उच्च शिक्षा पाने शहर में जाती हैं। संतोष भी आगे पढ़ना चाहती है, किन्तु उसके पिता किशोरी उसे आगे नहीं पढ़ाना चाहते, वे तो उसकी शादी के लिए उतावले हो जाते हैं। संतोष लाख मिन्नतें करती है, किन्तु किशोरी नहीं मानता। दो वर्ष हो जाते हैं लेकिन उनकी बिरादरी में दसवीं पास लड़का भी नहीं मिल पाया। संतोष की माँ अपना सारा गुस्सा उस पर उतारते हुए कहती है–

> **''तुझे इतना पढ़ा–लिखाकर तो हमने आफत मोल ले ली, अब बिरादरी में तेरी बराबर पढ़ा–लिखा लड़का ही नहीं मिलता.....हमारी तो किस्मत ही फूट गई।''**[1]

हरिजन समाज में आज भी शिक्षा का अभाव है। लड़के हों या लड़कियाँ ऐसे परिवार बहुत कम होंगे जो अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाते हैं। संतोष जैसी होशियार पुत्री पाकर किसी भी माता–पिता को खुशी होती, किन्तु दलित माता–पिता होने के कारण उन्हें खुशी तो दूर बल्कि अधिक चिंता होने लगती है, कि इसके योग्य वर कहाँ से ढुँढा जाए। संतोष के योग्य लड़का तो नहीं मिलता, लेकिन 9वीं फेल रजिन्दर से उसका विवाह तय हो जाता है। रजिन्दर दिल्ली में एम.सी.डी. में सफाई कर्मचारी का काम करता था। संतोष के पिता हरिजन थे, किंतु उन्होंने कभी सफाई काम नहीं किया था, न ही संतोष के परिवार ने ही ऐसा काम किया था। जब उसे इस बात का पता चलता है कि उसकी शादी एक सफाई कर्मचारी से हो रही है, तो उसने विवाह करने से इन्कार कर दिया, इस पर परिवार वाले कहने लगे–

''बेटी धन को अधिक पढ़ाना–लिखाना अच्छा नहीं है, इस लड़की को देखो सभी के सामने कतर–कतर जुबान चलाती है....इसने तो सारी लाज–शर्म ही उतारकर रख दी।''[2]

शिक्षा पाने से व्यक्ति जागरुक बनता है। उसे अपने अधिकार का ज्ञान होता है, साथ ही अपने कर्त्तव्य को भली–भाँति करने में वह सक्षम बनता है। लेकिन जहाँ सारे अशिक्षित लोग हों वहाँ संतोष के मनोभावों को भला कौन समझता ? आखिर संतोष का विवाह हो जाता है। वह दिल्ली अपनी ससुराल पहुँच जाती है।

संतोष का ससुराल एक झोपड–पट्टी में था, जहाँ चारों ओर गंदगी–ही–गंदगी थी। उसकी सास मोहल्ले में मल–मूत्र ढोने का काम करती थी और ननद झाड़ू–पोंछा करती थी। घर के सामने ही उन्होंने कुछ सुअर पाल रखे थे। गाँव के शुद्ध वातावरण में रहने वाली संतोष का इस दुर्गधमय वातावरण में साँस लेना भी मुश्किल था। बदबू के कारण उसका दम घुटता था।

शादी के दस–पन्द्रह दिन भी नहीं हुए थे कि, उसकी सास और पति उसे सफाई काम करने के लिए कहते हैं। संतोष यह काम कतई करना नहीं चाहती थी। सास के साथ जब वह जाती है, तो उसे इस गंदे काम को देखकर ही उबकाई आने लगती है। इस पर सास उसे डपटते हुए कहती है–

''देख बहू–काम से नफरत ना करें, यह तो म्हारा खानदानी काम है..यदि यह काम हम नहीं करेगें तो भला कैसे गुजारा होगा म्हारा (हमारा)।''[3]

संतोष ने यह काम पहले कभी देखा भी नहीं था, उसकी सास गंदगी भरे मल–मूत्र की सफाई के इस काम को बड़े रुआब से अपना खानदानी काम बताती है। उसने इस काम को अपने जीवन में सहर्ष स्वीकार कर लिया था, इसलिए वह संतोष पर दबाब डालती है, कि वह भी इसे करके अपना गुजारा करे। संतोष सोचती है कि चाहे उसकी जान चली जाए लेकिन वह ऐसा काम हरगिज नहीं करेगी। वह पढ़ी–लिखी है, उसके माता–पिता ने भी ऐसा काम नहीं किया है। पति के समक्ष जब वह तर्क–वितर्क करती है, तो वह कहता है–

''पढ़ी–लिखी है तो क्या हुआ, ऐसी कौण–सी अनोखी बात है.....मैभी तो नवीं फेल हूँ बीस हजार रिश्वत के दिए थे काम पाने के बदले तब कहीं

जाकर लगी म्यूनिस्पल्टी में झाड़ू की नौकरी, अरे हम भंगी है भंगी.... म्हारा पेशा ही है झाड़ू लगाना।''[4]

संतोष की पढ़ाई से न तो उसके मायके वाले खुश थे और न ही उसके ससुराल वाले ही। बल्कि ये तो उनकी समस्या बन जाती है। सफाई कर्मचारी की नौकरी में भी रिश्वत देकर रजिंदर को काम मिलता है। हमारे देश में बेरोजगारी इतनी है कि ऐसे काम के लिए भी लोग रिश्वत देने को तैयार हैं। संतोष सोच में पड़ जाती है कि–

''दूसरे समाज के पढ़े–लिखे तो दूर अनपढ़ होकर भी यह काम नहीं करते..... वे दूसरा अन्य काम करके अपना जीवन यापन कर लेते हैं। लेकिन यह गंदगी से भरा काम कतई नहीं करते, आखिर, हमारी जाति बिरादरी के लोग ही यह काम क्यों करते हैं ?''[5]

संतोष का यह प्रश्न वर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाता है। आखिर शुद्र ही ऐसा काम क्यों करते हैं ? क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? सवर्ण और उनमें ऐसा क्या अंतर है, जिससे वे इस गंदगी भरे कार्य को करने के लिए आज भी मजबूर हैं। मनुष्य होकर मनुष्य का मैला ढ़ोना कहाँ तक उचित है। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करके भी आज दलित समाज कितना पिछड़ा हुआ है। संतोष जैसी पढ़ी–लिखी युवती को मजबूरन मैला उठाने का कार्य करना पड़ता है। इस कार्य को करने के बाद उसे जो रोटी–सब्जी मिलती है। उसे खाकर अपना पेट भरना पड़ता है।

जब से संतोष ने सफाई काम शुरु किया था, तब से वह गुमसुम बनकर रहने लगती है। उसे अपने ही शरीर से बदबू आती हुई महसूस होती है। हर वस्तु में उसे मलमूत्र नज़र आने लगता हैं, यहाँ तक कि पति का स्पर्श भी उसे आनंद की अनुभूति नहीं, बल्कि बदबू का अहसास कराता है। अनचाहे इस काम से संतोष की हालत दिन–प्रतिदिन खराब होने लगती है। वह अपने को इस दिनचर्या में सहज नहीं कर पाती। उसके जीवन में आनंद और खुशियों के स्थान पर उदासीनता और बदबू फैल जाती है।

2. 'सूरज'– जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित प्रस्तुत कहानी की नायिका **सुमन** एक शिक्षित दलित युवती है। वह साइन्स की छात्रा है। एक बार गाँव के सीधे–सादे दलित युवक सूरज की रेगिंग उसके सीनियर करते हैं। वे सूरज का कहते हैं कि वह सुमन से जाकर 'आई लव यू' कहे। सहमा, डरा सा सूरज उनकी बात मानने के लिए विवश हो जाता है और सुमन से यह बात कह देता है। सुमन को पहले तो बड़ा गुस्सा आता है, किंतु बाद में वह सूरज के भोलेपन को देखकर समझ जाती है, कि उसकी रेगिंग की जा रही है। सुमन को विचार आया कि–

''दलित छात्र–छात्राओं के साथ गैर–दलितों का व्यवहार वैसे ही काफी द्वेषपूर्ण होता है। पिछले वर्ष की ही बात है जब एक दलित छात्र को रेगिंग के बहाने इतना उत्पीड़ित किया गया था कि उसने आत्महत्या कर ली थी।''[6]

सुमन कॉलेज में दलित छात्र–छात्राओं पर हो रहे अत्याचार को देख चुकी है। दलित होने के कारण उन्हें सवर्ण छात्रों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है अपशब्द कहे जाते हैं। सुमन नहीं चाहती थी कि सूरज को दूसरे छात्र परेशान कर रहे हैं, तो वह भी उसके साथ कठोरता से व्यवहार करे। उसे डर था कि सूरज कहीं अपनी पढाई ही न छोड दे। कई दलित छात्र ऐसी रेगिंग के बाद अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं, और अपना केरियर चौपट कर देते हैं। सुमन सूरज को 'आई लव यू टू' कहकर इस बात को आगे नहीं बढ़ाती। सूरज ने कल्पना नहीं की थी, कि सुमन उसे कोई सजा नहीं देगी।

इस घटना के बाद सुमन ने सूरज को समझाया, कि यदि इस कॉलेज में पढ़ना है, तो निडर बनकर आत्मविश्वास के साथ आँख से आँख से मिलाकर बात करना सीखो। यूँ डरकर तुम कुछ नहीं कर पाओगे। सुमन की सलाह का परिणाम जल्द ही उसे मिला। कुछ दिनों में सूरज अपनी कॉलेज में सबका चहिता बन गया। खासकर दलित छात्रों का वह नेता बन गया। किसी छात्र की समस्या का समाधान सूरज के लिए छोटी–सी बात बन गई। सूरज के होंसले और उत्साह के कारण कॉलेज में दलित छात्रों ने मिलकर पहली बार आम्बेडकर जयंती जोर–शोर से मनायी।

सुमन सूरज में आए बदलाव से बहुत प्रसन्न थी। एक दलित छात्र इतने कम समय में इतना प्रसिद्ध हो गया, कि सवर्ण छात्रों को उससे ईर्ष्या होने लगी। सुमन को डर था, कि कहीं वे लोग सूरज को कोई हानि न पहुँचाएँ। सूरज अब निडर बन गया था। इसीलिए जब एक सवर्ण छात्र ने उस पर 'चमार' कहकर कोई टिप्पणी कर दी, तो सूरज ने झेंपने की बजाए उस लड़के को कड़ककर जवाब दिया–

> **''मैं चमार हूँ। जानता है, चमार क्या करते हैं ? रॉपी से पेट चीरकर कतरनी से आंत बाहर खींच लूंगा साले की।''[7]**

सूरज अपनी जाति को अपनी कमजोरी नहीं, अपनी ताकत बनाकर उसका उपयोग करता है। वह कुछ दिनों में ही समझ गया था, कि सच्चे इंसान को अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कभी पीछे नहीं हटना चाहिए।

सुमन अब सूरज के अधिक नजदीक आ गई थी। सूरज के संकोच और दब्बूपन को दूर होता देख उसे बहुत अच्छा लगता था। वह सोचती है–

> **''हमारे समाज के युवओं को इसी तरह से बोल्ड बनकर रहना चाहिए।''[8]**

वह सूरज में अब परिपक्व और समझदार व्यक्ति के गुण देखकर सोचती है, कि यदि हमारे समाज के युवाओं में इतनी बोल्डनेस आ जाए, तो हमारी स्थिति सुधर सकती है। कोई उन्हें प्रताड़ित नहीं कर सकता।

सुमन, सूरज के लिए चिंतित हो रही थी क्योंकि सवर्ण छात्र उसे रास्ते का काँटा समझने लगे थे। वह सूरज से सावधान रहने को कहती है। इस पर सूरज कहता है –

> **''सुमन, हमारी जिन्दगी एक जंग है हम जी नहीं रहे हैं, एक जंग लड़ रहे हैं। कोई भी जंग जमीन से पहले दिमाग में लड़ी जाती है। यदि हम मानसिक रुप से हार जाते हैं, हमारा मनोबल गिर जाता है तो हम मैदान में कोई जंग नही जीत सकते इसलिए हमारा मानसिक या आंतरिक रुप से दृढ़ रहना जरुरी है। यदि तुम डरोगे, सहमोगे या चुप**

रहोगे तो लोग तुम पर हावी हो जांएगे, तुम्हारा जीना–दूभर कर देंगे। निर्भय होकर ईंट का जबाब पत्थर से दोगे तो किसी की हिम्मत नहीं पड़ेगी तुम्हें कुछ कहने की। और फिर मरना तो एक दिन है ही, फिर डर कर क्यों रहे हम। बहादुरी से क्यों न रहें ?''[9]

सूरज ने तय कर लिया था, कि वह चाहे जितने दिन जिए स्वाभिमान की जिंदगी जीएगा। किसी के सामने झुकेगा या गिड़गिडाएगा नहीं।

सुमन की शंका सही निकलती है, एक दिन सूरज की लाश कॉलेज के स्विमिंग पुल में से मिलती है। कुछ लोग इसे आत्महत्या और एक्सिडेंट कह रहे थे। सुमन इसे हत्या कहती है, क्योंकि सूरज को तैरना अच्छी तरह आता था। पुलिस आश्वासन देती है, कि यदि यह हत्या है तो दोषी को सजा जरुर मिलेगी। दलित छात्रों ने अपने युवा नेता को खो दिया था। सुमन, सूरज को ईंसाफ दिलाने के लिए आगे आती है, तो सभी दलित छात्र उसका साथ देते हैं।

3. 'एक दलित लडकी'– डॉ. रामसिंह यादव

लक्ष्मी एक शिक्षित दलित युवती थी। अभावों और तंगाइयों को झेलकर छात्रवृत्ति एवं स्कालरशिप की बदौलत वह एम.फिल में एडमिशन पाती है। उसके जीवन का एक सपना था, कि पढ़–लिखकर अपने पैंरो पर खड़ी हो जाए। अपने सपने को साकार करने के लिए वह पूरे मन और लगन से अध्ययन में जुटी रहती। वह जिस होस्टल में रहती थी, उसमें सम्पन्न घर की लड़कियों की संख्या ज्यादा थी। लक्ष्मी के वस्त्र भले ही साधारण थे किंतु उसका रुप नैसर्गिक था। वह शहरी लड़कियों से भी अधिक आकर्षक थी। उसके सुन्दर, सहज और स्वभाव से सभी लड़कियों की वह चहिती भी बन गयी थी।

लक्ष्मी के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर डॉ. रोमेश शर्मा भी लक्ष्मी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। लक्ष्मी की सादगी, सरलता एवं परिश्रमी स्वभाव से उनका झुकाव लक्ष्मी की ओर बढ़ने लगा। डॉ. रोमेश का प्रभाव एवं दबदबा विश्वविद्यालय के प्रशासन पर भी था। जो छात्र उनकी खुशामद करते थे, उन्हें वे प्रथम मैरिट दिलवा देते थे। लक्ष्मी भी डॉ. रोमेश के व्यक्तित्व से प्रभावित होती है। वह देख चुकी थी कि प्रेम में छोटा–बड़ा नहीं देखा जाता, जाति–पाति के भेदभाव, ऊँच–नीच की भावना प्रेम मिटा देता है। स्वयं डॉ. रोमेश ने उससे कहा था–

''लक्ष्मी तुम भाग्यशाली हो खुशकिस्मत कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ और उस मीरा जोशी की तरह मैं भी तुमसे विवाह समय आने पर करुँगा।''[10]

दलित मीरा ने जोशी के साथ विवाह किया था। लक्ष्मी को रोमेश यही उदाहरण देकर फुसलाता है, कि मैं भी तुमसे विवाह करुँगा। रोमेश विवाह का लालच देकर लक्ष्मी से अनैतिक संबंध बनाता है, किंतु जब यह खबर फैलने लगती है, तो वह लक्ष्मी को अपने रास्ते से हटा देना चाहता है। रोमेश लक्ष्मी के विश्वास की धज्जियां उड़ाकर साफ–साफ शब्दों में कह देता है कि–

''लक्ष्मी तुम आज के बाद मुझसे कभी नहीं मिलोगी। मेरा कोई सरोकार नहीं। तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं तुमको चाहता हूँ, पसंद करता

हूँ, तुम एक दलित हो नीची जाति की लड़की, क्या मै एक दलित से विवाह कर लूं। बेहतर है तुम्हारे लिए कि तुम अपनी औकात में ही रहो।''[11]

डॉ. रोमेश के एक–एक शब्द लक्ष्मी की उम्मीदों पर पानी फेर देते हैं। रोमेश ने लक्ष्मी से छल किया था। उसे विवाह के सपने दिखाकर उसका शारीरिक शोषण किया, और बाद में उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया। लक्ष्मी को दलित कहकर उसके प्रेम को ठुकरा दिया। रोमेश ने उससे यह भी कहा था कि–

''एक बात और लक्ष्मी तुम यह समझ लो कि पढ़ने लिखने, उच्च शिक्षा अर्जित कर लेने व डिग्रियाँ प्राप्त करने से या कोई बड़े पद औहदे पर यदि कोई तुम्हारी जाति का दलित बैठ भी जाए तो वह महान और बड़ा नहीं बन जाता। उसके संस्कार, परिवेश कभी नहीं बदलते, नीच तो सदा नीच ही रहेगा और उच्च कुल सदैव उच्च रहेगा।''[12]

डॉ. रोमेश एक शिक्षित व्यक्ति थे, किंतु दलितों के प्रति उनके हृदय में हीन भाव छिपा रहता है। वे लक्ष्मी को इस्तेमाल करने की एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझते थे।

लक्ष्मी ने जीवन में सबसे बड़ा धोखा खाया था, वह भी अपने शिक्षक से। उससे यह दुख न सहा जा रहा था, न किसी से कुछ कहा जा रहा था। उसे चिंता थी कि स्त्री रोग विशेषज्ञ को वह अपनी बीमारी बतलाएगी तो अपने अविवाहित होने की बात कैसे छुपाएगी। वह एक बार तो आत्महत्या करने के लिए भी सोचती है। आखिर उसे उस होस्पिटल में डॉ. धवन मिल जाता है, जो लक्ष्मी के बचपन का मित्र था। धवन लक्ष्मी को वर्षों से चाहता था। लक्ष्मी का वह इलाज करवाता है। सारी सच्चाई जानने के बाद भी वह लक्ष्मी को अपना जीवन साथी बनाने के लिए तैयार हो जाता है। लक्ष्मी, धवन के प्रस्ताव को स्वीकार लेती है।

डॉ. रोमेश शर्मा को कुलपति बर्खास्त कर देते हैं। 'एक दलित लड़की' की अवमानना करने के अपराध में उसे जेल की हवा खानी पड़ती है। इस प्रकार लक्ष्मी एक शिक्षित युवती होते हुए भी सवर्ण पुरुष के शोषण का शिकार बनती है।

4. 'नई धार'– अनिता भारती

अनिता भारती की प्रस्तुत कहानी **'नई धार'** वर्तमान समय की दलित शिक्षित रमा के आत्मविश्वास को प्रस्तुत करती है। **रमा** दलित भेदभाव विरोधी समिति की सदस्य है। दलित महिलाओं पर महाराष्ट्र में हुए अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाकर उनकी समिति उन पीड़ितों को इंसाफ दिलाना चाहती है। इसके लिए अपनी समिति के अन्य सदस्यों की इच्छा के विरुद्ध जाकर रमा अभिव्यक्ति नामक महिला को मुख्यवक्ता के रुप में बुलाना चाहती है। रमा जानती है, कि अभिव्यक्तिजी स्वयं एक गरीब परिवार में पली–बढ़ी हैं, इसलिए गरीब दलितों की समस्याओं से भलिभाँति परिचित हैं। सवर्ण अभिव्यक्तिजी को अपने कार्यक्रम में बुलाकर महाराष्ट्र के शैरलाँजी गाँव में दलित भोतमाँगेकर पत्नी सुरेखा और बेटी प्रियंका के बलात्कार एवं हत्या पर दलित और गैरदलित बुद्धिजीवियों और लेखकों के समर्थन में विरोध प्रकट करने का निर्णय लिया गया था। अभिव्यक्तिजी एक अच्छी सामाजिक कार्यकर्ता के साथ–साथ

लेखिका भी थी। दलित–आदिवासियों के मुद्दों पर उन्होने कई बार अपना समर्थन दलितों के पक्ष में दिया था। रमा की दृष्टि में दलित महिलाओं की हत्या और बलात्कार के विरोध में किए जा रहे इस कार्यक्रम में आभिव्यक्तिजी सबसे उचित वक्ता होंगी।

कई बार जो व्यक्ति हमें जैसा दिखता है, वह वैसा होता नहीं है। रमा का अभिव्यक्तिजी के विषय में जो विचार था, वह भ्रम साबित हो जाता है। जब वह स्वयं उनके पति एवं मित्र के माध्यम से उन तक यह संदेश पहुँचाती है, कि दलित भेदभाव विरोधी समिति में उन्हें एक कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रुप में बुलाया जा रहा है। अभिव्यक्तिजी इस कार्यक्रम में उपस्थिति देना पसंद करती हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि दलित समिति के कार्यक्रम में गरीब, पीड़ितों, शोषितों के अतिरिक्त कोई नहीं जाता, मीडिया, पत्रकार भी ऐसे कार्यक्रम को हाईलाइट नहीं करते। जबकि प्रगतिशील डेमो क्रेटिक राइट थिंकिग फोरम के कार्यक्रम में प्रोफेसर से लेकर इतिहासकार, बड़े वकील और मीडियाकर्मी मौजूद रहते हैं। अभिव्यक्तिजी अपनी इमेज में इज़ाफा हो ऐसी जगह पर जाना उचित समझती हैं। रोते–तड़पते लोगों की भीड़ के बीच उन्हें क्या फायदा होता।

कहानी में शांति देवी नामक दलित महिला अकेले ही गाँव के गुंडा तत्त्वों के खिलाफ लड़ते हुए अपना जमीन खोती है, इज्जत खोती है और पति को भी खो देती है। वह हिम्मती, बहादुर और लोकप्रिय बन जाती है, किंतु राजनैतिक पार्टी में प्रवेश करने की चाह में वह अवसरवादी बन जाती है। गाँव की गरीब दलित औरतों के बजाय पार्टी के बड़े–बड़े नेताओं के साथ दिखने में वह अपना बड़प्पन समझती है। रमा इस विषय में सोचती है कि–

> **''बाबासाहब का नाम लेकर गरीब, भोली, मासूम और भावुक दलित जनता को इन राजनैतिक पिछलग्गुओं ने खूब छला है। ऐसे लोग दलित आंदोलन में छल–कपट और अवसरवाद की विकृत परिपाटी डाल रहे हैं।''**[13]

शांतिदेवी जैसी दलित महिलाएँ अपने निजी स्वार्थ के लिए अपने कर्तव्य को भूल जाती हैं। दलित आंदोलन को ऐसे स्वार्थी दलित कमजोर बनाते हैं। प्रस्तुत कहानी में सवर्ण अभिव्यक्ति और दलित शंति देवी दोनों ही स्त्री ऐसी हैं जिसे समाज में मान–सम्मान एवं ऊँच स्थान मिलता है, किंतु दोनों में से कोई भी रमा की दलित समिति के कार्यक्रम की मुख्य वक्ता नहीं बन पाती। इसका कारण यह है, कि जिस अभिव्यक्तिजी को रमा बुलाना चाहती है, वे दलितों की समिति से दूर रहकर उच्च वर्ग से संबंधित कार्यक्रम में उपस्थित रहने में गौरव का अनुभव करती हैं। जबकि शांति रमा की दृष्टि में आदर्श दलित महिला है ही नहीं रमा अभिव्यक्तिजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रभाव से बाहर आ जाती है और यह जान जाती है कि यदि दलितों का उद्धार करना है, तो उसके लिए किसी सवर्ण या अन्य के स्थान पर दलितों को स्वयं एकजूट होकर लड़ना होगा। रमा स्वयं पढ़ी–लिखी है। उसके हृदय में दलित मुद्दों के प्रति समर्पण और प्रतिवद्धता की गहराई है। उसके विचारों को प्रस्तुत करने के लिए बड़े मंच या मीडिया की आवश्यकता नहीं है। इसलिए सागर जो कि रमा का मित्र था उसकी सलाहानुसार रमा स्वयं इस कार्यक्रम की वक्ता बनने को तैयार हो जाती है। रमा को एक कड़वा अनुभव होता है किंतु इससे वह कमजोर नहीं पड़ती बल्कि आत्मविश्वास और दृढ़ता बढ़ जाती है। वह कहती है–

''यह कार्यक्रम ज़रुर होगा, महिला वक्ता भी ज़रुर होगी हमें किसी के रहमोकरम की ज़रुरत नहीं, हम अपनी लड़ाई खुद लड़ सकते हैं।''[14]

एक शिक्षित व्यक्ति में इतना साहस होना चाहिए, कि वह अपने अधिकारों के लिए स्वयं लड़ सके। दलित रमा नए ज़माने की शिक्षित युवती है। वह जानती है–

''जब कोई दलित ग्रुप दलित मुद्दों पर अपनी बात रखता है तो ये तथाकथित प्रगतिशील लोग उसे जातिवादी घोषित कर देते हैं और यही प्रगतिशील लोग दलित और उनके मंचों की उपेक्षा कर अन्य मंचों से दलितों के बारे में बोलते हैं तो प्रगतिशील डेमोक्रेटिक और मानव अधिकारवादी कहलाते हैं।''[15]

वास्तव में दलितों द्वारा किए जाने वाले कार्यक्रम का समर्थन सवर्ण नहीं करते और न ही अपने कार्यक्रम में उन्हें उनके मुद्दों को कहने का मौका देते हैं, ऐसी स्थिति में दलितों की समस्या का समाधान कैसे संभव है ? जाति की संकीर्ण दीवारों को तोड़े बगैर समानता की बात नहीं की जा सकती।

कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर देखें तो प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु वर्तमान समय की दलित रमा की समस्या और उसके संघर्ष को चित्रित करती है। वातावरण एवं देशकाल की दृष्टि से यह वर्तमान समय को चित्रित करती है। भाषा सरल एवं सुबोध है। उद्देश्य स्पष्ट है कि दलित शिक्षितों को स्वयं अपना आत्मविश्वास के साथ अपना मार्ग बनाना होगा। अपने अधिकारों एवं समस्याओं के लिए किसी के सहारे पर आश्रित न होकर स्वयं लड़ना होगा। 'नई धार' शीर्षक बिलकुल उचित है, दलितों द्वारा बनाया जाने बाला नया मार्ग, जिसपर चलकर, आगे बढ़कर वे अपनी मंजिल को पा सकते हैं।

5. 'क्रान्ति'– राज वाल्मीकि

शिक्षा अज्ञान रुपी अंधकार को दूर करती है। दलितों में शिक्षा का अभाव पाया जाता है, जिसकी वजह से अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार, शोषण के समक्ष प्रतिकार करने की शक्ति उन्हें नहीं मिलती। **'क्रान्ति'** कहानी की नायिका **क्रान्ति** उन्नीस वर्षीय दलित शिक्षित युवती है। बचपन से ही अपने माता–पिता के झगड़े होते देखती है, पिता के अन्य स्त्री के साथ संबंध थे और वे उसे लेकर दूसरे शहर में घर बसा लेते हैं। क्रान्ति की माँ बड़ी तकलीफों को सहते हुए भी उसे बेटे की तरह आज़ादी और शिक्षा देती है, ताकि भविष्य में उसे किसी पर निर्भर न रहना पड़े।

समाजसेवा, पेंटिग, लेखन क्रान्ति के शौक थे। अपने ननिहाल की औरतों को वह सरकार के सफाई कर्मचारी के बारे में 1993 का एक्ट समझाती है, जैसे मैला ढ़ोने की प्रथा गैर कानूनी है और इस पर प्रतिबंध है। मैला ढ़ोने वाली औरतों को सरकार की स्कीम के अंतर्गत पुनर्वास करवाकर मैला ढ़ोना छुडवाया ताकि वे भी अन्य सम्माननीय कार्य कर सकें।

क्रांति का जैसा नाम था, वैसे ही गुण उसमें थे। अपना परिचय देते हुए वह निशांत से कहती है कि–

''अन्याय एवं शोषण के खिलाफ मेरे मन में एक आक्रोशं एक आग भरी हुई है। जब भी मैं अन्याय–शोषण देखती हूँ तो मेरा खून खौलने लगता है। मुझसे रहा नहीं जाता और मैं बीच में कूद पड़ती हूँ। हालाँकि मुझे परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पर मैं हिम्मत हारने वाली नहीं। अभी तो मेरे संघर्ष की शुरुआत है। अभी मुझे बहुत पढ़ना है। अपने समाज के लिए बहुत कुछ करना है। अपनी जैसी बहनों को जागरुक करना है। अनपढ़ माँ–बहनों का अंधविश्वास दूर करना है। उनके फिजूल के खर्चे कम कराने हैं। उन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाना है। मेरी बस्ती में महिलाएँ पहले लड़का–लड़की में भेदभाव करती थीं। मैंनें उन्हें समझाया कि यह गलत है। लड़का–लड़की बराबर हैं। व्यवहार में बेटियाँ बेटों से ज्यादा वफादार होती हैं। मेरे समझाने पर उन पर सकारात्मक असर पड़ रहा है। अपने वंचित समाज को स्वाभिमान के साथ जीना सीखाना है। यही मेरे जीवन का लक्ष्य है।''[16]

क्रान्ति एक आदर्श दलित शिक्षित युवती है। उसके जीवन का लक्ष्य गरीब, अनपढ़, शोषित दलितों को स्वाभिमान के साथ जीना सीखना है। यदि हर दलित युवती में क्रान्ति जैसे समाज सुधार के विचार हों तो वह दिन दूर नहीं होगा, जब ऊँच–नीच का भेद रह पाएगा। अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए हर व्यक्ति को स्वयं ही प्रत्यन करना पड़ता है। बाबा साहब का मूल मंत्र "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।" को क्रान्ति ने अपने जीवन में उतार लिया था। वह लोगों के मन का अज्ञान–अंधेरा दूर करती है और उन्हें स्वतंत्रता, समता, लैंगिक समानता, बंधुता, आत्मसम्मान का पाठ पढ़ाती है। दलितों के वंचित समाज में क्रान्ति एक नई क्रान्ति की लहर जगाने का प्रयास कर रही है, उसका यह मार्ग कठिन है, लेकिन उसमें जोश की कमी नहीं है।

शिक्षा और संघर्ष से मनुष्य और अधिक शक्तिशाली बनता है। क्रान्ति के पास यह दोनों अनुभव छोटी से उम्र में थे। वह जीवन अपने लिए नहीं अपने लोगों के लिए जीती है। दलित युवती का इतना शक्तिशाली रुप बहुत कम देखने को मिलता है। क्रान्ति जिस, दलित बस्ती में रहती है, उसमें वह कीचड़ में कमल के समान है। वह चाहती तो स्वयं की शोभा बनाए रखने के लिए कीचड़ से दूर हट सकती थी, जैसे कि अधिकतर लोग करते हैं, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि वह अपनों के जीवन से यह कीचड़ रुपी गंदगी साफ करने के लिए स्वयं कीचड़ में कूद पड़ी है।

प्रस्तुत कहानी में संवाद की दृष्टि से देखें तो संवाद छोटे नहीं कहे जा सकते किंतु पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने जैसा गुण उसमें है। भाषा शैली वातावरण और देशकाल एवं पात्रों के अनुरुप है। कहानी का शीर्षक 'क्रान्ति' वास्तव में क्रान्ति का जैसा नाम वैसा काम है। कहानी का उद्देश्य स्पष्ट है कि दलित शिक्षित क्रान्ति के माध्यम से दलितों में सजगता लाना। यह जागरुकता हर क्षेत्र में लाने की आवश्यकता हैं।

6. 'इस समय में'– राज वाल्मीकि

राज वाल्मीकि द्वारा रचित **'इस समय में'** शीर्षक कहानी में कहानीकार ने इक्कीसवीं सदी के छात्रों में आए बदलाव को प्रस्तुत किया है। कथानायक शहर में रहने

वाला मध्यमवर्गीय समाज में रहता है। वह जाति का दलित है, किन्तु अपनी जाति इसलिए लोगों से छिपाना चाहता है, क्योंकि उनकी जाति जानकर लोग उन्हें हीन दृष्टि से देखेंगे। बीस वर्ष का पुत्र हर्ष और सोलह वर्षीया बेटी मिली दोनों ही आशावादी और बिन्दास प्रवृति के हैं। दोनों में मासूमियत एवं मैच्योरिटी दोनों का संगम देखा जा सकता है।

हर्ष और मिली जब प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे, तब स्कूल के शिक्षकों एव विद्यार्थियों द्वारा दलित विद्यार्थियों का उपहास किया जाता था। सात वर्ष का हर्ष अपने पिता से पूछता है–

> **''पापा, वाल्मीकि सफाई कर्मचारी होते हैं न ?'' प्रश्न सुनकर मैं हतप्रभ रह गया। मैंनें पूछा –''तुम से कौन कह रहा था ?''**
> **''आज हमारी मैडम कह रही थीं कि वाल्मीकि सफाई कर्मचारी हा हैं। हर्ष भी वाल्मीकि जाति का है। इस पर सब बच्चे हँस पड़े थे। मुझे बहुत फील हुआ। पापा आप तो झाड़ू नहीं लगाते फिर हम वाल्मीकि क्यों हैं ?''**[17]

कथानायक को विश्वास नहीं होता है, कि गाँव की तरह शहर की स्कूलों में भी दलित छात्रों के प्रति शिक्षक स्वयं भेदभाव का व्यवहार रख सकते हैं। मिली छः वर्ष की थी, तभी उसके साथ ऐसी ही घटना घटती है। वह कथानायक के पास आकर पूछती है–

> **''पापा, एक गन्दी–सी लड़की को मैंनें भंगन–सी कह दिया था, तो गुप्ता मैडम ने डांटते हुए कहा था। ऋचा शर्मा भंगन नहीं पंडित है। दूसरों को भंगन कहती हो जबकि तुम खुद भंगन हो। मैं इतनी साफ–सुथरी रहती हूँ, फिर भी मैडम ने मुझे भंगन कहा..... ।''**[18]

जाति–दंश दलितों का पीछा कहीं नहीं छोड़ता। स्कूल–कॉलेज, सोसायटी, गाँव, शहर आदि जगह पर दलितों को उनकी जाति का नाम लेकर अपमानित किया जाता है। सवर्ण अपनी सरनेम (टाइटल) बताने में गर्व महसूस करते हैं, जबकि दलित उन्हें जहाँ तक हो सके छिपाने में भलाई समझते हैं। आखिर ऐसा करने के लिए वे क्यों मजबूर हैं ?

मिली एक शिक्षित युवती है। इक्कीसवीं सदी के इस दौर में वह शिक्षा को दलितों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। जाति–विमर्श पर वह पिता से कहती है–

> **''पापा, आज हम सब एक साथ मिलकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। पढ़–लिखकर जागरुक बनेंगे, अच्छा कैरियर बनाएंगे : इन्टरकास्ट मैरिज करेंगे तो धीरे–धीरे जाति डिमोलिश हो जाएगा। पति कहेगा, मैं बच्चों के साथ अपना टाइटल लगाऊंगा और पत्नी कहेगी कि मैं अपना टाइटल लगाऊंगी। अंत में निर्णय लिया जाएगा कि किसी का टाइटल न लगाया जाए। इस तरह जाति का विनाश हो जाएगा। लेकिन उन सो– काल्ड दलित राइटर्स के लेखन से कुछ नहीं होगा जो सिर्फ अपने दलितपन को अपने पुरखों पर हुए अत्याचारों का रोना रोते रहते हैं। वैसे भी अगर**

आपको अपने अधिकार पाने हैं तो स्ट्रगल कीजिए। अपना दुःख रोने से अधिकार नहीं मिलते।''[19]

शिक्षा से मिली को आत्मविश्वास के साथ–साथ संघर्ष करने की क्षमता भी मिलती है। उसे विश्वास है कि एक दिन ऐसा ज़रुर आएगा जब युवा पीढ़ी इस जाति–भेद की समस्या को जड़ से उखाड़ फैंकेगी। उसके अनुसार दलित लेखकों को पुरानी बातें, एवं इतिहास को दोहराना छोड़कर ऐसी बातें लिखनी चाहिए, जिससे दलितों में जागरुकता एवं परिवर्तन आए। मिली आधुनिक, शिक्षित दलित युवती है, अच्छे वातावरण, अच्छी शिक्षा, परवरिश, माता–पिता के सहयोग से वह अपने उज्ज्वल भविष्य के निर्णय लेने में सक्षम है। प्रस्तुत कहानी में मिली के द्वारा लेखक ने यह सद्धि किया है, कि दलित किसी से कम नहीं है, इसलिए ज़रुरत है कि वे इस बात को साबित करके दिखाएँ। जब तक वे डरते रहेंगे, रोते रहेंगे तब तक उन्हें हीनता की दृष्टि से देखा जाएगा। जब वे आत्मविश्वास के साथ अपनी योग्यता सिद्ध करेंगे, तब अपने आप उन्हें अधिकार, सम्मान और जीवन में सफलता मिलेगी। कहानीकार ने रोती–बिलखती दलित नारी से विपरीत आत्मविश्वासी, निडर, सजग दलित मिली का चित्रण करके आधुनिक दलित, नारी को वाचा दी है। कहानी का शीर्षक 'इस समय में' इक्कीसवीं सदी की और संकेत करता है। इस समय की दलित युवा पीढ़ी अपने माता–पिता की अपेक्षा अधिक मैच्चोर है। अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग कहानी में किया गया है, जो वातावरण एवं समय के अनुरुप है। संवाद छोटे एवं अर्थपूर्ण हैं।

7. 'युज एंड थ्रो'– डॉ. पूरन सिंह

'यूज एंड थ्रो' कहानी में सवर्णों द्वारा दलितों का इस्तेमाल करके फेंक देने की आदत पर प्रकाश डाला गया है। कहानी की नायिका **श्यामा** एक दलित शिक्षित युवती है जिसे उसकी माँ राजो ने पाँच वर्ष की उम्र से अकेले ही पाला–पोसा है। श्यामा पढ़ लिखकर अफसर बन जाती है, जिससे राजो के जीवनभर के कष्ट भूल जाती है। राकेश एक शिक्षित दलित युवक है, जो श्यामा से अथाह प्रेम करता है। श्यामा और राजो दोनों राकेश की भावनाओं की कद्र करते हैं।

शिक्षित होने के कारण श्यामा का मेलजोल कई सवर्णों से बढ़ने लगता है। शांडिल्य, शर्माजी, गुप्ता जी आदि ऐसे सवर्ण व्यक्ति थे, जो अवसरवादी थे। श्यामा की प्रतिभा से परिचित होकर वे उसे दुर्गावाहिनी नामक महिला दल का उच्चपद देते हैं और बदले में उसके कंधे पर बंदुक रखकर अपने दुश्मनों पर वार करना चाहते हैं। श्यामा इस षड़यंत्र से अनभिज्ञ थी। किंतु राजो को जब पात चलता है, कि श्यामा दुर्गावाहिनी की महिलाओं को साथ लेकर मंदिर के पास बनने वाले मस्जिद को रोकने के लिए मोर्चा लेकर जाने वाली है, वह भी शांडिल्य के कहने पर। राजो के पुराने ज़ख्म ताज़ा हो जाते हैं। राजो अपनी एकमात्र बेटी को खोना नहीं चाहती। वह घबराकर बेहोश हो जाती है। चेतना लौटने पर वह राकेश और श्यामा को पच्चीस वर्ष पहले की एक घटना बताती है। श्यामा उस वक्त राजो के पेट में थी।

राजो के पति श्यामलाल का सुअरों का बाड़ा था। वे स्वयं यह कार्य नहीं करते थे, बल्कि नौकरों से करवाते थे। धन की कोई कमी नहीं थी। विवाह के कई वर्षो के बाद पिता बनने की ख़बर से राजो और श्यामलाल इतने अधिक प्रसन्न हो गए, जिसमें दलितों का जाना निषेध था, उस मंदिर में वे प्रवेश करते हैं। श्यामलाल के मंदिर

प्रवेश से गाँव में हंगामा हो गया, सभी सवर्ण उसे दंड देने के लिए उतावले हो गए। आर्थिक दंड श्यामलाल के लिए बड़ी बात नहीं थी। धूर्त ब्राह्मण यह जानते थे। सवर्ण ब्राह्मण शुक्ला और श्यामलाल के बीच का संवाद सवर्णों की अमानवीयता और दलित की दयनीयता पर प्रकाश डालता है–

> **''अच्छा, श्यामा तू बता कि शिव मंदिर की कितनी सीढ़ियाँचढ़कर तू मंदिर में घूसा था'' वह शुक्ला जिसकी सूरत से ही मुझे चिढ़ थी बोला था।**
> **''मालिक ढंग से तो मुझे पता नहीं है लेकिन शायद पाँच सीढ़ियाँ चढ़कर ही हम मंदिर में पहुँचे थे। तेरे पापा भुलक्कड़ तो थे ही।''**
> **''ठीक है, पाँच सीढ़ियाँ चढ़कर शिव मंदिर में पहुँचा था तो तुझे ब्राह्मणों के जूतों में पानी होगा।''**[20]

सवर्णों का दलित पर अत्याचार करना उनके अहंकार को शांत करता है, साथ ही दलित यदि आर्थिक रुप से समृद्ध हों, तो उसे ऐसे षड़यंत्र में फँसाया जाता है, जिससे उसे यह ऐहसास दिलाया जाए कि वह कभी भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। श्यामलाल को जबरन जूतों में पानी भरकर पिलाया जाता है। लंबा–चौड़ा शरीर का जवान श्यामलाल इस घटना से टूट जाता है। राजो अपने पति को ठीक करने का हर प्रयास करती है। सारी पूँजी और व्यापार खत्म हो जाता है। श्यामा के जन्म के बाद ही श्यामलाल पुरानी बातों और ज़ख्मों को भूल नहीं पाते हैं।

पाँच वर्ष बाद उनके घर में फिर खुशहाली लौट आई। जिन लोगों ने श्यामलाल का अपमान किया था, वे लोग श्यामलाल को कहते हैं–

> **''श्री श्यामलाल जी, आज हम सभी गाँव वाले बहुत मुसीबत में फँस गए हैं। नागों ने अपने–अपने फन फैला दिए ये हैं। तुम बहुत ही बहादुर और बुद्धिमान हो। आज पूरे समाज को तुम्हारी ज़रुरत है हिन्दू धर्म और हम सभी खतरे में हैं। मुसलमानों ने पाकिस्तान के इशारे पर हमारे शिव मंदिर को तोड़ने की साजिश रची है। वे दो एक दिन में ही शिव मंदिर को धराशायी कर देना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हम सभी को एक साथ रहना होगा। यहाँ कोई जाति–पाँति नहीं है, सिर्फ प्यार का मसला है। तुम नहीं साथ दोगे तो हम लोग किसी का क्या कर लेंगे। हम जानते हैं कि तुम्हारे इशारे पर सभी वल्मीकि एक हो जाएँगे।''**[21]

सवर्णों की सोच बदलने का कारण यही था, कि आज उन्हें अपने बचाब के लिए एक ऐसे समूह की आवश्यकता थी, जो अपनी जान पर खेलकर उनकी रक्षा कर सकें और ऐसा कार्य भोले–भाले दलित ही कर सकते थे। जो उनके षड़यंत्र को नहीं जानते, समझते थे। राजो के लाख समझाने पर भी श्यामलाल उनका साथ देने चले जाते हैं। मासूम और बेबस असहाय लोगों के भोलेपन का फायदा सदियों से सवर्ण समाज उठाता आया है। मंदिर को बचाना एक धोखा था, वास्तव में मस्ज़िद गिरानी थी। लोगों की भीड़ मस्ज़िद को तोड़ने गई, जिससे दंगा भड़क गया, पुलिस की फायरिंग में लाशों के अंबार लग गए थे। जिसमें से एक लाश श्यामलाल की थी। सबसे बड़ी और ज़रुरी बात यह थी कि मारे गए लोगों में सभी जाति के लोग थे, किन्तु ब्राह्मण एक भी नहीं था।

साम्प्रदायिक झगड़ों में उच्च वर्ग के लोग दलितों का इस्तमाल अपने बचाव में करते आए हैं। क्योंकि इनकी मदद के बिना वे स्वयं अपना बचाव करने में असमर्थ हैं। ब्राह्मणों का स्वार्थ सिद्ध हो जाता है, किंतु राजो अपनी बेटी को लेकर शहर आ जाती है। मेहनत–मजदूरी करके वह अपनी बेटी को शिक्षित बनाती है। वर्षों बाद आज जब वह यह देखती है, कि दुबारा वैसी ही घटना उसकी बेटी के साथ घटने जा रही है, तो वह अपने आपको नहीं रोक पाती। श्यामा अपने माता–पिता के कड़वे अतीत को जानकर सवर्णों के वास्तविक रुप को समझ जाती है। 'यूज एंड़ थ्रो' की बात जो वर्षों पहले उसके पिता के साथ की गई थी, वह अब स्वयं के साथ नहीं होने देगी। वह राजो को विश्वास दिलाती है, कि शांडिल्य की बात में न आकर स्वयं की बुद्धि से स्वयं निर्णय लेगी। वह शिक्षित युवती है और अपने निर्णय अब वह भावनाओं में बहकर नहीं बल्कि सोच–समझकर लेगी।

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने सवर्णों द्वारा दलितों का 'यूज एंड़ थ्रो' की वर्षों से चली आ रही नीति को प्रकट किया है, आज की नई पीढ़ी भी उनके षडयंत्र में फँसती जा रही है। आवश्यकता है, उन्हें जागरुक करने की, ताकि राजो की तरह उन्हें जीवन भर पछताना न पड़े कहानी की भाषा सरल एवं बोधगम्य है। कहानी का वातावरण शहर का है, किन्तु फ्लेशबेक की घटनाओं के चित्रण में गाँव के रुढ़िचुस्त, परंपरावादी, अस्पृश्यता को महत्त्व देने वाले समाज का चित्रण है। संवाद छोटे हैं किन्तु अपने गुणों से युक्त हैं।

7. 'और वह पढ़ गई' डॉ. कुसुम वियोगी

डॉ. कुसुम वियोगी द्वारा रचित प्रस्तुत कहानी की नायिका **चेतना** पन्द्रह वर्षीय लड़की है। वह दसवीं कक्षा में पढ़ती है। उसकी माँ श्यामो मोहल्लों में मैला ढ़ोने का काम करती है। श्यामों का पति शराबी, जुआरी है। घर का खर्च श्यामों के कामकाज से चलता है। ऐसी स्थिति में श्यामों चेतना को भी अपने कार्य से जोड़ने के लिए मोहल्लों में ले जाती है। चेतना शिक्षित लड़की है, इसलिए उसे इस मैला ढ़ोने वाले कार्य से घृणा होती है। इस पर श्यामों उसे झाड़ू से मौहल्ले के बीच पीटने लगती है। लेखक उसे बचाते हैं और पढ़ने की उसकी ललक देखकर उसे स्वावलंबी एवं उच्च शिक्षा पाने की सलाह देते हैं, ताकि ऐसे घृणित कार्य उसे जीवन में कभी न करने पड़ें।

चेतना को अच्छी सलाह देने वाला पूरी बस्ती में कोई नहीं है, क्योंकि वाल्मीकि बस्ती में कोई शिक्षित है ही नहीं। चेतना लेखक से अपनी बस्ती के वातावरण का वर्णन करते हुए कहती है–

> **''कोई सलाह देने वाला नहीं है, अंकल ! हमारी बस्ती तो दारुबाजों की, जुआरियों की बस्ती है। आये दिन सुअरों की टांगे पकड़ पेट में छुरी घुच्च.....रोज–रोज की चीं–चीं, चिल्ल–पों सुन–सुन मेरे कान पक से गये हैं। कौम की दाढ़ में खून जो लग गया है मांस–मट्टी का, झाड़–फूस जलाकर गली के बीचों–बीच सूअरों को भूनना, कितना अजीब–सा लगता है अंकल ! और हां, तुम तो नाक पर हाथ रखकर निकल भी नहीं सकते, मोहल्ले में घुसना तो दूर। मर्दों की टोली द्वारा हुक्के की गुड़गुड़ाहट, सारा दिन चिलम के धुएं में फूंक देना, कैसी अजीब–सी दिनचर्या है। मर**

भी तो नहीं सकती। मैं तो पढ़ना चाहती हूँ लगन तो आखिर लगन ही होती है।''[22]

वाल्मीकि समाज की बस्ती में चेतना जैसी समझदार, शिक्षित, जागरुक लड़की को घुटन महसूस होती है। शिक्षा के लिए वातावरण का बहुत महत्त्व है, ऐसे घृणित वातावरण में चेतना के विचारों को समझने वाला कोई नहीं है। लेखक की सलाह से चेतना में आत्मविश्वास जागता है। वह लगन से दिन–रात पढ़ाई पर ध्यान देने लगती है।

एक बार वह बीमार पड़ती है। अंधविश्वासी उसके समाज में बीमारी को दवाईयों से नहीं झाड़–फूँक से दूर करने के लिए चेतना की दुर्गती कर देते हैं। लेखक जब उसका हाल–चाल पूछने उसके घर पहँचते हैं, तो कह उठती है–

''अंकल मुझे बचाओ। ये लोग मुझे मार देंगे मैं बीमार हूँ, कभी झाड–फूंक, कभी टोटका, तो कभी ढोल–डमरुओं की आवाजें सुन–सुकर माथा फट–फट पड़ता है। उकता गई हूं, रोज–रोज की झाड–फूँक से कोई 'भूतनी' कोई 'चुड़ैल' का साया बताता है मेरे ऊपर अंकल ! मेरे बाल नोंच–नोंच डाले हैं। इन कमीने स्याने जादूगरों ने, देखो तो सही।''[23]

आज भी हमारे समाज में शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों में अंधविश्वास देखा जा सकता है। शिक्षित की तुलना में अशिक्षितों को ओझा (स्याने) अधिक मूर्ख बनाते हैं, धन वसूलते हैं। ऐसी स्थिति में बीमार व्यक्ति ठीक तो नहीं होता बल्कि मृत्यु के निकट पहुँच जाता है। अविद्या किसी नरक के समान है, जो व्यक्ति को ऐसे फंसाती है कि, उससे बाहर आना कठिन हो जाता है।

चेतना को लेखक का सहारा मिलता है, इसलिए उसकी जान बच जाती है। यही चेतना बड़ी होकर बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करती है। लेखक की आँखों में खुशी के आंसू छल–छला आए क्योंकि "और वह पढ़ गई।" इतने संघर्षों के बाद ऐसे अनपेक्षित वातावरण में भी चेतना अपने लक्ष्य की प्रप्ति करने में सफल होती है।

प्रस्तुत कहानी में श्यामों एक दलित स्त्री है, जिसके परिश्रम से घर चलता है। उसकी तरह ही उस समाज की अधिकतर स्त्रियाँ मौहल्ले में मैला ढ़ोने का काम करती हैं, अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करती हैं। जबकि पुरुष अधिकतर शराबी, जुआरी, मार–पीट करने वाले, स्त्रियों पर अत्याचार करने वाले होते हैं। आर्थिक रुप से पुरुष उतनी गंभीरता से परिवार को सहायक रुप नहीं बनते, जितना उन्हें बनना चाहिए। दलित स्त्री स्वयं तंबाकू खाती है और अपनी पुत्री चेतना को गालियाँ देती है, मारती है क्योंकि वह मैला ढ़ोने में उसकी सहायता नहीं करती। श्यामों की भाषा उसके पात्र के अनुसार ली गई है वही चेतना भी उसकी ही पुत्री है, किन्तु शिक्षित है, इसलिए उसकी भाषा शुद्ध है।

चेतना जैसे पात्र से हमें एक बात सीखने को मिलती है, कि व्यक्ति चाहे जैसे भी वातावरण में रहता हो, यदि उसके विचार शुद्ध हों तो वातावरण की गंदगी उसका स्पर्श नहीं कर सकती। उसे लक्ष्य तक पहुँचने से नहीं रोक सकती।

8. 'रिश्वत'– कावेरी

कावेरी जी द्वारा रचित **'रिश्वत'** कहानी में लेखिका ने आत्मकथात्मक शैली में बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार एवं दलितों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। नायिका स्वयं सुशिक्षित महिला है। अपने ससुराल और मायके को जीवनभर मदद करने वाली नायिका अपने पति के साथ मिलकर यह सपना देखती है, कि उसके दोनों पुत्र इन्जीनियर और डॉक्टर बनेंगे। बड़ा बेटा जब पढ़ रहा था। तब उनके सहकर्मी एवं परिचित मिलते तो व्यंग्यबाण छोड़ते–

> ''**आपके बेटे पढ़ने में अच्छे हैं। ऊपर से आरक्षण नौकरी तुरंत मिल जाएगी।''**[24]

अधिकतर लोगों के विचार ऐसे होते हैं, कि जिन्हें आरक्षण मिलता है, उन्हें नौकरी में कोई परेशानी नहीं होती, किन्तु नायिका के बड़ा बेटे को इंजीनियरिंग पास किए आँठ वर्ष हो गए थे। परंतु ढंग की नौकरी नहीं मिली थी। हर जगह रिर्टन एक्जाम में पास होने पर भी, मौखिक में पुत्र की असफलता देखकर, आरक्षण में भी आरक्षण की बात स्पष्ट हो जाती है। बिना रिश्वत और ऊँची पहचान के स्वयं के बलबूते पर सिलेक्शन नहीं होता है। नायिका का बड़ा पुत्र तो शांत स्वभाव का था, किन्तु छोटा अपनी असफलता का कारण अपनी माँ को समझता है। फोन पर अपनी माँ से कहता है–

> **''माँ ! तुमने सिर्फ पैसा कमाया और हम लोगों को देती रही हो। कभी सोचा है आजकल कैसे नौकरी मिलती है। चौकन्ना रहना पड़ता है, पैरेन्टस को। मैं क्या कर रहा हूँ या नहीं कर रहा हूँ, कभी ख़बर ली। मुझे अब कोई नौकरी करनी है। पहले हाथ में जॉब रहेगा, बाद में तैयारी।''**
>
> **मैंनें कहा, ''बेटा तुम लोग खुद समझदार हो गए हो। अपने कैरियर के बारे में खुद निर्णय लेने लायक हो जो कुछ करना चाहते हो मै तैयार हूँ।''**
>
> **उसने कहा–''अब वह समय नहीं रहा, माँ। गार्जियन को जागरुक होना पड़ेगा। भैया के लिए क्या सोचा। अब बिना पैरवी और रिश्वत के नौकरी का सपना छोड़ दो। एन. टी. पी. सी. की लिखित परीक्षा में भैया पास हो गया है। साक्षात्कार के लिए तैयार हो जाओ, कम से कम पाँच लाख लगेगा।''**[25]

गार्जियन की जागरुकता आज इसी को कहा जाता है, कि अपने बच्चों के भविष्य के लिए उन्हें मार्गदर्शन के साथ–साथ उनकी नौकरी के लिए, उज्ज्वल भविष्य के लिए रिश्वत की मोटी रकम इकट्ठी करके रखें। आवश्यकता पड़ने पर मंत्री, आला अधिकारी को रिश्वत देकर अपने माता–पिता होने का कर्त्तव्य निभाएँ। सुनने में यह बात कड़वी लगती है, किंतु यह सत्य है। आज के समय में योग्यता के साथ–साथ रिश्वत भी होना ज़रुरी है, अन्यथा योग्य होने के बावजूद आप अयोग्य हैं।

नायिका स्वयं जीवन में परिश्रम के बल पर नौकरी करके अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करती है। भाग्य और भगवान पर नहीं, वह अपनी मेहनत पर

भरोसा करती है, उसने अपने बच्चों को भी यही शिक्षा दी, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। पति शिक्षक थे, छोटी–सी नौकरी में पूरे परिवार की जिम्मेदारी के बीच अपने दोनों बेटों को उच्च ओहदे पर नौकरी करते देखना चाहते थे। आज बेटों के लिए सिफारिश करते दर–दर घूमने को मजबूर हैं, क्योंकि नौकरी के लिए रिश्वत भी दें तो किसी दें, ये वे नहीं जानते। कई जगह बच्चों को नौकरी और पढ़ाई के लिए रिश्वत दी भी गई लेकिन रुपये दूब गए। नायिका की उम्मींदे उस समय बरगद के समान विशाल थीं, जब बच्चे अच्छी तरह पढ़ रहे थे। वह सोचती थी कि जीवन के अंतिम दौर में सुखद दिन काटेगी, लेकिन उसके यह सपने चूर–चूर हो जाते हैं। रिश्वत के लिए दस लाख की मोटी कीमत एकत्र करना सरल नहीं है। जीवनभर जिन्हें मदद दी वे आज मुकर गए हैं, ऐसी स्थिति में वह स्वयं बीमार पड़ जाती है। इलाज में लाखों रुपये लग जाते हैं। कहानी का शीर्षक 'रिश्वत' शुरु से अंत तक कहानी की समस्या के रुप में हमारे समक्ष रहता है। आरक्षण मिलने पर भी, रिश्वत देने पर ही अच्छी नौकरी मिलती है, ऐसा आज हमारे समाज का वातावरण है। सवर्ण युवकों को प्राइवेट नौकरी भी जान–पहचान के कारण मिल जाती है, जबकि दलित युवकों को योग्य ताके बावजूद कैम्पस सलैक्शन में नहीं लिया जाता। कैम्मस सलैक्शन भी वहीं होते हैं, जिस कॉलेज में आला अधिकारीगण के बच्चे पढ़ रहे हों।

भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अस्पृश्यता जैसे दूषण को प्रस्तुत कहानी में देखा जा सकता है। नायिका अपने परिवार एवं बच्चों के लिए पहले भी संघर्ष कर रही थी और बच्चों के योग्य बनने के बाद भी उनकी नौकरी और रिश्वत एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्ष कर रही है, उस पर भी आरक्षण का ताना तो सुनना ही पड़ता है।

9. 'सिलिया'– सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे की प्रस्तुत कहानी एक दलित शिक्षित युवती **शैलजा ऊर्फ सिलिया** की है। यह एक दलित चेतना की कहानी है, जिसमें पढ़ी–लिखी युवती सिलिया अपने अछूत होने का कारण जानना चाहती है। वह उन परंपराओं के कारणों का पता लगाना चाहती है, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। जाति भेद मिटाने के लिए वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके आत्मसम्मान से जीवन जीने की अभिलाषा रखती है।

ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ने वाली सिलिया साँवली–सलोनी, मासूम, भोली, सरल और गंभीर स्वभाव की थी। उसके माता–पिता, बड़ा भाई और नानी उसे खूब पढ़ाना चाहते थे। सिलिया भी पढ़ने में अच्छी थी। सन् 1960 वर्ष में 'नई दुनिया' में विज्ञापन, छपा था, जिसमें लिखा था 'शूद्र वर्ण की वधू चाहिए।' मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के जाने माने युवा नेता सेठी जी किसी अछूत कन्या से विवाह करके समाज के समक्ष एक आदर्श रखना चाहते थे। वे मैट्रिक पास दलित युवती से विवाह करने को तैयार थे।

सिलिया होशंगाबाद जिले के छोटे से गाँव में रहती थी। इस विज्ञापन को पढ़कर गाँव के पढ़े लिखे लोग, ब्राह्मण, बनियों ने सिलिया का विवाह सेठी जी से करवाकर उसका कल्याण करने की सलाह दी। किन्तु सिलिया की माँ इस तरह के विवाह को राजनीति ही मानती है। वह ऐसे घर में अपनी बेटी का ब्याह करना चाहती है, जहाँ उसे मान–सम्मान मिले। सवर्ण समाज में दलित स्त्री को वह इज्जत नहीं मिल सकती। यदि उसे सम्मान पूर्ण जीवन बीताना ही है, तो वह अपने ही दलित समाज में

रहकर भी वह पा सकती है। पढ़–लिखकर वह स्वयं अपनी किस्मत सँवार सकती है। सिलिया की माँ के ऐसे विचार सिलिया का हौंसला बढ़ाते हैं।

सिलिया को वह घटना अच्छी तरह याद है। जब वह बारह वर्ष की थी। उसके मामा की बेटी मालती ने प्यास लगने पर उस कुएँ से पानी निकाल कर पिया था, जो सवर्णों का कुआँ था। एक सवर्ण महिला जिसका घर कुएँ के पास ही था। वह मालती को देख लेती है, और उसकी माँ से कहती है–

> **''ओरी बाई, दौड़ो री, जा मोडी को समझाओ.... देखो तो, मना करने के बाद भी कुएँ से पानी भर रही है। हमारी रस्सी–बाल्टी खराब कर दई जाने...। क्यों बाई, जेहि सिखाओं हो तुम अपने बच्चों को, एक दिन हमारे मूँड पर मूतने को कह देना। तुम्हारे नज़दीक रहते हैं तो का हमारा कोई धरम– करम नहीं है ? का मरज़ी है तुम्हारी, साफ–साफ कह दो।''**[26]

जति–पाति का भेद–भाव दलित बच्चों की मानसिकता पर बचपन से ही घर गहरे बैठ जाता है। ऐसे कड़वे अनुभव उन्हें बचपन में ही सीखा देते हैं, कि वे अछूत है और सवर्ण उनसे अधिक शुद्ध और उच्च हैं। सवर्ण महिला के कड़वे वचन मामी को बहुत बुरे लगे। गुस्से में वह मालती की खूब पीटाई करते हैं और कहती हैं–

> **''घर कितना दूर था, मर तो नहीं जाती। मर ही जाती तो अच्छा रहता,इसके कारण उससे कितनी बातें सुननी पड़ीं। मामी ने दुःख और अफ़सोस के साथ अपना माथा ठोंकते हुए कहा था, हें भगवान, तूने हमारी कैसी जात बनाई।''**[27]

हमारी वर्ण व्यवस्था में दलितों को गुलामी, अपमान, सेवा, दुख ही मिला है। ईश्वर की दृष्टि में सभी समान हैं, कोई–छोटा–बड़ा नहीं है, किंतु मनुष्यों ने ये भेद–भाव की लकीर खींच दी है। जिसे मिटाना सरल नहीं है।

सिलिया जब दस वर्ष की थी, तब की एक घटना उसे याद है। पाँचवीं कक्षा के टूर्नामेन्ट हो रहे थे। खेल–कूद की स्पर्धाओं में उसने भी भाग लिया था। अपने कक्षा–शिक्षक और सहपाठियों के साथ वह तहसील के स्कूल में गई थी। उसकी स्पधाएँ आरंभ में ही लेने से जल्दी पूरी हो गई। उसके शिक्षक उससे कहते हैं, कि यदि तुम चाहो तो अपने किसी रिश्तेदार के घर जा सकती हो। सिलिया अपने मामा–मामी के दलित कस्बें में शिक्षक को लेकर जाना उचित नहीं समझती। अंत में शिक्षक हेमलता नाम की एक सवर्ण छात्रा के रिश्तेदार के घर सिलिया को भेज देते हैं। वैसे तो हेमलता, सिलिया की अच्छी सहेली थी, लेकिन जिस घर में वह जाती है, वहाँ हेमलता को पानी दिया जाता है, किन्तु सिलिया को नहीं। क्योंकि उन्हें पता चल जाता है कि वह अछूत है।

सिलिया को उन्हें अधिक झेलना न पड़े इसलिए उससे पता पूछकर उसके मामा–मामी के घर पहुँचा दिया जाता है। यह घटना सिलिया के मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ जाती है। वह बार–बार सोचती है, कि वह प्यासी है, यह जानकर भी उन्होंने पानी क्यों नहीं दिया ? क्या प्यासे को पानी न देना भी सर्वणों मानवीयता है ? ऐसा करने के बाद भी वे कैसे हँसकर बात कर सकते हैं ? ये लोग मुखौटा चढ़ाकर किस तरह जी सकते हैं ? आदि प्रश्न उसके मन को सताने लगते हैं।

अपने बीते कल की घटनाओं को याद करके सिलिया समझ जाती है, कि सवर्ण भले बड़ी–बड़ी बातें करें, दिखावा करें, किंतु किसी दलित को नहीं अपना सकते। अख़बार में विज्ञापन की बात पर वह सोचती है कि, यह सेठी जी महाशय ज़रुर आडंबर कर रहे हैं। आज तक किसी सवर्ण ने ऐसी सामाजिक क्रांति लाने के बारे में नहीं सोचा। ऐसे व्यक्ति का साथ मिलने पर वह ज़रुर अपनी जाति के लिए कुछ अच्छा कर सकती थी। किंतु बाद में वह सोचती है, कि यदि उसे सम्मान पाना है, तो अपने बल पर पा सकती है। दूसरे के सहारे अपने निज को खोकर, शतरंज के मोहरे के समान दूसरे के इशारे पर वह क्यों चले ? वह सोचती है–

> **''हम क्या इतने भी लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित है, हमारा अपना भी तो कुछ अंह भाव है। उन्हें हमारी ज़रुरत है, हमको उनकी ज़रुरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें। पढ़ाई करुँगी, पढ़ती रहुँगी शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। विद्या–बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सिद्ध करके रहूँगी। किसी के सामने झूकूँगी नहीं। न ही अपमान सहूँगी।''**[28]

सिलिया के ये विचार पढ़ी लिखी दलित युवती के विचार हैं, जो आत्मबल पर, शिक्षित बनकर अपनी योग्यता के सहारे सवर्ण समाज के बीच सम्मान पाने का साहस रखती है। आत्म–सम्मान पूर्ण जीवन जीने के लिए दूसरे का सहारा न लेकर स्वयं अपने रास्ते बनाने को तैयार हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी एक दलित शिक्षित युवती के संघर्ष की कहानी है। जीवन के कड़वे अनुभवों से कई बार संघर्ष करने के लिए शक्ति और मार्ग भी मिल सकता है। सिलिया अपने कटु अनुभवों से ही यह सीख लेती है,कि यदि उसे सम्मानपूर्ण जीवन जीना है, तो उच्च शिक्षा प्राप्त करके, वह सवर्ण समाज के बीच सिर उठाकर खड़ी हो सकती है। परंपराओं और रुढ़ियों को तोड़ने के लिए किसी–न–किसी को प्रयास तो करना ही होगा।

10. 'मैं मइया थी'– सरिता भारत

सरिता भारत द्वारा रचित **'मैं मइया थी'** कहानी आत्मकथानात्मक शैली में लिखी गई कहानी है। पाँच वर्ष की आयु में कथानायिका अपने पिता को खो देती है, वहीं से उसके जीवन में अभाव, दुख, पीड़ा की शुरुआत हो जाती है। पिता को अत्यधिक प्रेम करने वाली नायिका एक ऐसे दलित समाज में रहती थी, जहाँ दबे–कुचले परम्परावादी समाज के नियमों के नीचे उनकी चीख–पुकार उन्हीं तक सिमट कर रह जाती थी। बच्चों का पालन–पोषण माँ की जिम्मेदारी बन गयी। उनके समाज का नियम था, कि विधवा स्त्री या तो दूसरा विवाह करे या गाँव छोड़कर चली जाए। माँ को अपने कम उम्र देवर के साथ विवाह करना पड़ता है। यहाँ हम देखते हैं, कि कई बार दलित समाज के नियम–कानून दलित महिलाओं की स्वतंत्रता को छीन लेते हैं, उन्हें विवश कर देते हैं, कि यदि वह विधवा है, अकेली है तो उसके जीवन का निर्णय लेने का अधिकार समाज को अपने आप मिल जाता है।

कथानायिका की माँ पाँचवी पुत्री को जन्म देती है। माँ और चाचा के बीच इस वजह से ज्यादा झगड़े बढ़ते हैं। माँ साइकिल चलाना सीखकर नौकरी करके बच्चों की परवरिश में सहयोग देती है। उसके पिता आजीवन अपने समाज की बुराइयों को

हटाने के लिए संघर्ष करते रहे, परिवर्तन लाने का प्रयास करते रहे, किन्तु आकस्मिक मृत्यु से अधिक कुछ न कर पाए।

कथानायिका जिस समाज में और माहौल में रहती थी, वहाँ की स्त्रियों पर देवी आया करती थी। पिता की मृत्यु, उनका अभाव, घर के झगड़े, अकेलापन, मानसिक तनाव आदि के चलते नवरात्रि के समय में कथानायिका पर अचानक देवी आने लगी। लोग देवी के दर्शन करने आते अपनी समस्या सुनाते मैया समाधान करतीं। इससे घर में झगड़े खत्म होने लगे। शांति का माहौल देखकर देवीय शक्ति पूरी तरह से उसकी मानसिकता पर छा जाती है। यहाँ कहा जा सकता है, कि कई बार व्यक्ति जब अपनी भावनाओं, संवदेनाओं को अधिक समय तक दबाता है या रोकता है, तब कभी ऐसी परिस्थिति भी आ जाती है जब उसका स्वयं पर काबू नहीं रहता। कथानायिका जिस वातावरण में रहती थी, वहाँ लोगों में अंधविश्वास, अशिक्षा, मारपीट करना, शराब पीना, स्त्रियों का शोषण आदि के कारण मानसिक तनाव उस पर हमेशा रहता था। जो विरोध वह आम तौर पर समाज या घर के लोगों से पीड़ित होकर नहीं कर पाती थी, उसे वह मइया बनकर कर सकती थी। हालाँकि यह मनोवैज्ञानिक रुप से उसे कुछ समय के लिए तृप्ति देता है, किन्तु इससे 14 वर्षीय क़थानायिका के शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

स्कूल में प्रोत्साहन मिलने से वह पढ़ाई के साथ–साथ इतर प्रवृतियों में रुचि बढ़ाने लगती है। सुनील नामक अध्यापक के प्रोत्साहन देने पर कि तुममें बहुत प्रतिभाएँ हैं, वह कहती है–

> **''वे मेरे छात्र जीवन में पहले शख्स थे जिन्होंने तारीफ की, वरना दलित छात्रा में भी प्रतिभा हो सकती है, शिक्षा जगत ने कब देखा है ?''**[29]

बच्चों की परवरिश पर उनके वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस समाज में दलित छात्रा को कभी प्रोत्साहन न मिला हो, या सवर्णों द्वारा भी उन्हें अवहेलना ही मिलती है। ऐसी स्थिति में दलित छात्रा का मनोबल उसके अध्यापक बढ़ाते हैं। उसका नतीजा अच्छा होता है। अच्छी शिक्षा प्राप्त करके वह एक शिक्षिका बन जाती है और वह मानसिक तनाव से मुक्त होने के साथ–साथ देवी और मैया से भी मुक्त हो जाती है। यहाँ हम देखते हैं, कि शिक्षा में कितनी शक्ति है। शिक्षित अपने जीवन में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ सकता है, प्रगति कर सकता है, जबकि अशिक्षित उसी अंधविश्वास, परंपरा, रुढ़िवादिता के कुँए से नहीं निकल पाते। कहानी का शीर्षक 'मैं मइया थी' बहुत आकर्षक है। कहानी में संवाद हैं ही नहीं ऐसा कहा जा सकता है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई कहानी पारिवारिक झगड़े के बीच बच्चों पर पड़ते बूरे प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। मानसिक तनाव में व्यक्ति ऐसा व्यवहार करने लगता है, जैसा कि कथानायिका ने किया था। संपूर्ण कहानी में एक ऐसे दलित समाज का वर्णन है, जहाँ अंधश्रद्धा जड़ तक जीम हुई है, उसी के अंतर्गत देवी आने की बात को देखा जा सकता है। साथ ही दलित समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय है, यह भी देखा जा सकता है।

11. 'हम कौन हैं ?– रजत रानी 'मीनू'

रजत रानी 'मीनू' द्वारा रचित कहानी **'हम कौन हैं ?'** में लेखिका ने शहरों में जाति को लेकर जो भेदभाव किया जाता है, इस समस्या पर प्रकाश डाला है।

कथानायिका जब शहर में आती है, तो वह एक संतोष की साँस लेती है, कि कम–से–कम शहर में तो जातिभेद की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। चंदौसी में रहते हुए ऐसी समस्या वह झेल चुकी थी। दिल्ली जैसे शहर में लोग नए विचारों को अपना रहे हैं, शिक्षित हैं इसलिए भेद–भाव को मिटाकर प्रगति कर रहे हैं। कथानायिका का भ्रम तब टूटता है, जब उसकी बच्ची पहले दिन स्कूल से लौटती है और पूछती है कि–

> **''मम्मी बताओं न हमारे सरनेम क्या हैं ? मैडम कल मुझसे फिर सवाल पूछेगी।''**[30]

उमा जिस चीज़ को छिपाना चाहती थी वह सामने खड़ी हो जाती है। अपनी बच्ची को उन्होंने सरनेम नहीं बताई है, क्योंकि सरनेम बताने से ही लोग जाति पहचान जाते हैं। दलित जाति के व्यक्ति को हमेशा हीन दृष्टि से ही देखा जाता है, इसलिए उनकी बच्ची इस हीन भावना का शिकार न बने, ऐसा वे चाहती है। उमा और उनके पति अपनी बच्ची की परवरिश अच्छे वातावरण में करना चाहते हैं, जहाँ उस पर पुरानी पीढ़ी के शोषण की परछाई भी न पड़े। जो अपमान, अत्याचार उनके पूर्वजों ने झेला है अब वे नई पीढ़ी के बच्चे न झेले, इसलिए वे गाँव छोड़कर शहर में आते हैं।

यहाँ पर लेखिका ने शहर में होने वाले जाति–पाति के भेद को प्रस्तुत किया है। स्कूल के शिक्षक पहले ही दिन बच्चों से उनके परिचय में उसकी जाति के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्थी किस जाति का है ? यह जानकर उसके साथ कैसा व्यवहार करना है ? यह उसके बाद ही तय किया जाता है। बच्ची अज्जू की बातें सुनकर कथानायिका उमा सोचती है कि–

> **''पब्लिक स्कूल में भी सरनेम पूछा जाता है। यानी जाति पूछने का मॉडर्न तरीका। सरकारी स्कूलों के ब्राह्मणवादी संस्कारों के कर्मकाण्डी अध्यापक और ये मिशनरी स्कूलों में अंग्रेजी प्रभाव की आधुनिक शिक्षिकाएँ, क्या फ़र्क हैं दोनों में ?''** [31]

दलित छात्रों का शोषण गाँव में और शहर में भी है। गाँव में शोषण का तरीका अलग है और शहर का अलग। यहाँ शोषण में भी आधुनिकता आ गई है, जिसके तहत सरनेम जानकर मिशनरी स्कूल में भी बच्चों में जाति भेद किया जाता है।

उमा की बच्ची अज्जू बिना सरनेम लगाए फोर्थ स्टैंडर्ड में पहुँच जाती है। क्लास टीचर बार–बार उससे सरनेम पूछती है। बिना सरनेम की वह अकेली छात्रा है। सभी को स्कूल में शंका हो जाति है, कि बिना सरनेम वाले नीची जाति के होते हैं। जाति क्या होती है, यह बच्चे नहीं जानते, यह भेद–भाव तो बड़े लोग उनके मस्तिष्क में ठूसते हैं। अज्जू रोज़–रोज़ के प्रश्न से तंग आकर माँ से प्रश्न पूछती है, कि हम कौन हैं ? अज्जू अपने आप को इसलिए और बच्चों से अलग महसूस करती है, क्योंकि सबकी कोई–न–कोई सरनेम है और दूसरी बात यह कि उनसे कई बार एक ही प्रश्न नहीं पूछा जाता। उमा के न चाहते हुए भी अज्जू दलित जाति में पैदा होने का दुःख झेलती है। शिक्षित माता–पिता की पुत्री अज्जू अबोध है, वह हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई धर्म को पहचाने लगी है, किन्तु वह नहीं जानती कि नीची जाति क्या होती है ? आखिर यह भेदभाव कब तक बच्चों के बाल मानस पर बोझ डालता रहेगा ? यह प्रश्न हमारे समक्ष

आता है। कहानी में उमा और अज्जू के बीच के संवाद छोटे और चोटदार हैं। कहानी का वातावरण शहर का है, किन्तु समस्या गाँव की ही है 'जातिभेद'।

13. 'अब का समय'– प्रहलाद चन्द्र दास

'अब का समय' कहानी प्रह्लाद चन्द्र दास द्वारा रचित है। प्रस्तुत कहानी में **अंजू** और **विजय बाबू** शिक्षित दलित पात्र हैं। विजय बाबू स्वयं इंजीनीयर हैं और ऊँचे ओहदे पर कार्य कर रहे हैं। उनके बच्चे सतीश और रश्मि हैं। सतीश बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत है और रश्मि एम. बी. बी. एस करके पी. जी. की रही है। बच्चों के बड़े हो जाने पर अब के समय में उन्हें अपनी शर्तों पर या अपनी मर्जी के मुताबित जबरन चलाना कठिन हो गया है, चाहे वह करियर की बात हो या विवाह की। सतीश अपनी इच्छा से अंर्तरजातीय विवाह करना चाहता है। रश्मि भी तय कर चुकी है, कि वह अपने सहपाठी के साथ विवाह करेगी। अंजू ने कल्पना नहीं की थी, कि वह जीवन में ऐसी समस्या का सामना करेगी। बच्चे माँ को समझाने का भरसक प्रयत्न करते हैं किन्तु अंजू नहीं मानती। पति भी अंजू को समझाते हैं, कि बच्चों की खुशी में ही हमारी खुशी है, फिर भी अंजू इस तरह जाति बाहर विवाह को दिल से नहीं स्वीकार पाती।

अंजू अपने घर आए अपने गाँव के सवर्ण सहपाठी दीपक चौबे और विजय से मिलकर अति प्रसन्न होती है। वर्षों बाद उमा इनसे मिली थी। जाति का भेदभाव भूलकर दीपक और विजय अंजू के घर चाय–नाश्ता, यहाँ तक की खाना भी खाते हैं। अंजू एक ऐसे गाँव में रहती थी, जहाँ पर दलित जाति के घर यदि बारात आती है, तो दूल्हा मोटर गाड़ियों में नहीं बल्कि बैल गाड़ी में ही आ सकता था। आज उसी गाँव का सवर्ण दीपक, विवके उसके समक्ष गिडगिड़ाते हुए कहता है–

> **''मेहमान जी, मैं मर जाऊंगा, मेरे बाल–बच्चे भूखों मर जाएंगे। मुझे बचा लीजिए। यह फाइल थ्रू नहीं हुई तो पेमेंट की बात तो जाने दीजिए, कंपनी के नियमों के अनुसार मैं ब्लैक–लिस्टेड भी हो जाऊंगा। फिर तो यहाँ से मुझे कोई काम भी नहीं मिलेगा।''**[32]

सवर्णों को स्वार्थवश दलितों के समक्ष झुकने में तकलीफ तो होती है, किन्तु ये इतने स्वार्थी होते हैं कि उगते सूरज को सलाम करने में ही अपनी भलाई समझते हैं। विजय बाबू उनकी आत्मीयता देखकर प्रसन्न होते हैं, किंतु अंजू पूरानी बातों को नहीं भूलती वह उनसे कहती है–

> **''क्या पूछते हो ? इनसे छू जाने भर से तो हमारी पिटाई हो जाती थी। यह जो तुम–ताम' करके बात कर रही थी मैं, वहां तो, ये उम्र में बड़े हों या छोटे, सबों को 'आप' से ही संबोधित करना पड़ता था। स्कूल में इनके लिए पीने के पानी अलग इंतजाम होता था और हमारे लिए अलग।''**[33]

अंजू शिक्षित थी, अच्छे घर और वर को प्राप्त करके वह अपने जीवन के अभावों और बचपन की अस्पृश्यता के वातावरण को भूल नहीं पाई थी। वह भूतकाल को भविष्य पर हावि नहीं होने देती और विजय एवं दीपक के लिए पति से सिफारिश करके उनकी फाइल पास करवा देती है।

विवेक एवं दीपक का छोटा भाई पंकज आज भी गाँव के वातावरण एवं परंपरावादी अस्पृश्यता को नहीं भूला। अंजू एवं विजय बाबू के ऐहसानों को नज़र अंदाज करता हुआ अपनी महेमान अंजू का अपमान करता हुआ वह कहता है–

> **''यह तुम–ताम क्या लगा रखी है ? एक अफ़सर से शादी हो गई, और वह अफ़सर भी रिजर्वेशन के बूते बना होगा, तो अपनी औकात भूल गई है ब्राह्मण से तुम–ताम करती है ?''**[34]

आज भी गाँव में दलितों को सम्मान देने में सवर्ण को शर्म आती है। वर्षों से शोषण करने वाले यह बर्दाश्त नहीं कर पाते, कि कोई दलित उनसे आगे प्रगति कर ले या ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाए। अंजू चुप नहीं रहती, वह विवके जो कि एक लेखक भी है उससे कहती है–

> **''विवेक सिर्फ, पत्र–पत्रिकाओं में लिख देने से कुछ नहीं होता, अपने सगे भाई को तो नहीं बदल सके तुम ! बुद्धिजीवी, पढ़े–लिखे तुम्हारे तबके का यही तो चरित्र रहा है। काम निकालने के लिए खोल उतार कर पेश हो लिए, फिर काम हो जाने पर पुनः उसी खोल में चले गए ? अपना बाहर–भीतर दोनों, एक कर सको तो कभी फिर मेरे घर आना। फिलहाल, मैं चली।''**[35]

अंजू सवर्णों में आए स्वार्थ वश क्षणिक बदलाव से दुखी होती है। वह चाहती है, कि समाज तब सुधरेगा जब नई पीढ़ी के शिक्षित सवर्ण पहल करें, यदि ऐसा न हुआ तो उनके बीच की दूरियाँ कभी खत्म नहीं होंगी। अंजू जात–पांत के दंश को झेल चुकी है, इसलिए वह निर्णय लेती है, कि सतीश और रश्मि अन्तर्जातीय विवाह करना चाह रहे हैं, तो वह सही कर रहे हैं। बच्चों की खुशी के लिए वह समाज के हर बंधन को तोड़ने के लिए तैयार हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'अब का समय' वर्तमान समय में नई पीढ़ी के दलित और सवर्ण समाज में आए बदलाव के साथ–साथ पंकज जैसे पात्र के माध्यम से यह भी चित्रित करने का प्रयास किया है, कि आज भी जाति–पांति का भेद पूरी तरह से खत्म होना बाकी है। सरकार इसके लिए प्रयास कर रही है, किन्तु दलितों को मिलने वाले आरक्षण से सवर्ण युवा पीढ़ी के अंर्तमान में कहीं –न–कहीं आक्रोश है। कहानी के संवादों से पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं, साथ ही कथानक को भी गति मिलती है।

2.2. दलित अशिक्षित महिलाएँ

1. 'सनातनी'– अमरस्नेह

प्रस्तुत कहानी की नायिका **चन्द्रो** एकं दलित स्त्री है। वह गाँव में सफाई का काम करती है, साथ ही गाँव की पाठशाला में भी सफाई का काम करती है। चन्द्रो का बेटा अनुआ है, जो छः सात वर्ष का है। उस गाँव में एक ही पाठशाला है। पण्डित दयाशंकर शर्मा इस पाठशाला को चलाते हैं। पण्डित जी को चारों वेदों का ज्ञान है। साथ ही संस्कृत, हिन्दी, गणित,इतिहास, ज्योतिषशास्त्र में पारंगत हैं। अंग्रेजी और फारसी का भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। इस पाठाशाला में प्रवेश पान वाले विघार्थी को अच्छे मुहूर्त

दिखवाकर प्रवेश लिया जा सकता था। इस दिन छः सात वर्ष का एक बच्चा नई पोशाक और टोनी पहनकर लोगों के बीचों–बीच बड़ी शान से चल रहा था, ढोल बज रहे थे। ऐसे में चन्द्रो का बेटा अनुआ इस दृश्य को पहले दूर से देखता है, बाद में भीड़ में वह भी शामिल हो जाता है।

चन्द्रो अपने बेटे को सवर्णों के टोले में देखकर स्तब्ध रह जाती है, इस बीच उस विघार्थी का चाचा अनुआ को पहचान लेता है और छड़ी से उसे मारकर बाहर निकाल देता है। चन्द्रो भी अनुआ की पिटाई कर देती है। उस व्यक्ति ने चन्द्रो से कहा–

''अरी ओ सरम न आती तुम लोगों को किसी के धरम–करम की परवाह है कि न....बड़े दिन लग रह है... चल ले जा इसे।''[36]

सवर्ण शिक्षा, ज्ञान, शास्त्रज्ञान आदि पर केवल और केवल अपना ही अधिकार समझते आए हैं। दलित इसे प्राप्त न कर सकें, इसलिए वे उन्हें पाठशाला से दूर रखते हैं। चन्द्रो अपने बेटे की जिज्ञासा को समझती है, किंतु वह चाहकर भी उसे पाठशाला में शिक्षा नहीं दे सकती। अनुआ चाहता है, कि वह भी नए कपड़े पहनकर पाठशाला में पढ़ने जाए। चन्द्रो बेटे की इच्छा की पूर्ती नहीं कर सकती, इसलिए रोने लगती है।

अनुआ पाठशाला में प्रवेश तो नहीं पा सका, किंतु पाठशाला की छुट्टी के बाद चन्द्रो वहाँ सफाई करने जाती है। अनुआ भी माँ के साथ उत्सुकता पूर्वक वहाँ जाता है। पाठशाला की एक–एक वस्तु को वह बड़े ध्यान से देखता है। अनुआ को पाठशाला में पढने न मिला तो क्या हुआ, वह पाठशाला के पिछले दरवाजे के फाँकर से गुरुजी की वाणी से शिक्षा प्राप्त करता है। गुरुजी इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं। एक बार अनुआ पाठशाला से एक तस्वीर वाली किताब घर ले चलने को कहता है। चन्द्रो पहले इन्कार करती है, किंतु बेटा जिद्द करता है, तो अपने पल्लू में पुस्तक छिपा लेती है। गुरुजी ने उनकी बातें सुन ली। वे चन्द्रो और अनुआ को चोर समझते हैं। इस बीच चन्द्रो को अपनी गलती का ऐहसास हुआ, उसने अनुआ को प्रेम से दुलारते हुए पूछा–

''ये बता तन्ने पण्ड़ित जी की शिक्षा सुनी है कि वो न केत्ते हैं कि चोरी करना पाप होता है। हाँ ये मुझे याद क्यों न रया–चोरी करना पाप होता है असत्य बोलना पाप होता है असत्य का मतलब होता है झूठ। ला मां मैं ये किताब लेकर वहीं धर देता हूँ।''[37]

चन्द्रो नहीं चाहती थी, कि उसका बेटा चोरी करे। अनुआ भी गुरुजी की दी गई शिक्षा को याद कर अपनी गलती को सुधार लेता है और भविष्य में कभी चोरी नहीं करेगा ऐसा वचन माँ को देता है। गुरुजी इस चर्चा को सुनकर चकित रह गए। आज उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ था। जिस गंगा जल को वे चन्द्रो के जाने के बाद पाठशाला में छाँटते थे, उसी गंगा जल को उन्होंने आज अपने सर पर उड़ेल लिया। वे अपने अंतर–मन को पवित्र करना चाहते हैं। आज वे समझ गए थे, कि मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। यहाँ मनुष्य समान है केवल मन, विचार और धारणाएँ मलिन है।

गुरु पूर्णिमा के दिन अनुआ किसी के दिए हुए अच्छे कपड़े पहनकर गरुजी और बच्चों की टोली के पीछे–पीछे पूरे गाँव में घूमता है। एक धनी व्यक्ति के घर गुरुजी का आदर–सत्कार होता है। अनुआ को वहाँ देखकर वह लालाजी गुस्से में

पागल हो गया। पहले तो उसने अनुआ के कपड़े फाड दिए, बाद में उसे लात मार दी। वह तड़पता रह गया। गुरुजी इस स्थिति को देखकर विचलित हो जाते हैं और उसे अपने वक्ष से लगाकर उसके आँसू पोछते हैं।

गुरुजी इस घटना और इसके जैसी अनेक घटनाओं के लिए स्वयं को दोषी मानते हैं। समाज के अमानवीय आचरण, समाज में व्याप्त रुढियों, असमानता, अत्याचार, जातिभेद के लिए हमारी शिक्षा ही जिम्मेदार है। गुरुजी ने अपने आप को अपराधी पाकर मौन व्रत धारण कर लिया और साथ ही अन्न–जल त्यागकर प्रायश्चित करने लगे। गाँव एवं शहर के सभी बड़े अधिकारी उनके पास आकर उनका व्रत तोड़ने की बात कहते हैं, किंतु गुरुजी नहीं मानते। गाँव और शहर के सभी लोगों का प्रयास निष्फल जाता है। अंत में अनुआ साहस करके गुरुजी से मिलने जाता है और एक कागज पर कुछ लिखकर गुरुजी को देता है, जिसमें लिखा होता है–

> **''परम पूज्य गुरुजी, मैं जीवन में पहली बार हाथ में कागज पेंसिल पकड़ रहा हूँ, गलती क्षमा करना। मेरी प्रार्थना है कि आप मौन व्रत तोड़ दें भोजन और जल ग्रहण करें। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो ये शिष्य अपने परिवार सहित अन्न–जल का त्यागकर अपने प्राणों को त्याग देगा। आपका शिष्य।''**[38]

अनुआ एक सच्चा शिष्य था। गुरुजी की तकलीफ उससे देखी नहीं जाती। उसे पढ़ना–लिखना आता है, यह बात उसने सबसे छिपाई थी, किंतु गुरुजी के प्राणों को संकट में देखकर वह इस बात को सबके सामने प्रकट कर देता है। वह एकलव्य की भाँति गुरुजी से शिक्षा प्राप्त करता है। वह एक से आठवीं तक की शिक्षा एक साथ पा गया था। गुरुजी अनुआ की प्रतिभा को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। अनुआ की माँ अपने बेटे के इस रुप को पहली बार देखकर खुशी से इतना रोती है, कि उसका पल्लू भीग जाता है। चन्द्रो ने कल्पना नहीं की थी, कि उसका बेटा गरीबी, अभाव में रहते हुए भी इतना ज्ञान पा सकेगा। आज उसके बेटे ने उसका सिर गर्व से ऊँचा कर दिया था।

अनुआ गुरुजी को व्रत तोड़ने के लिए विवश कर देता है। गुरुजी अनुआ के तर्क के आगे नतमस्त हो जाते हैं। वे अनुआ के हाथों से शर्बत पीकर अपना व्रत तोड़ते हैं।

2. <u>'कर्फ्यू'– अखिलेश कुमार</u>

अखिलेश कुमार द्वारा रचित **'कर्फ्यू'** कहानी में दैनिक मजदूरी करके गुजर–बसर करने वाले बुधना, उसकी पत्नी गुजरी और पाँच बच्चों के दयनीय जीवन को चित्रित किया गया है। शराब पीना बुधना की आदत है। यह शराब उसके दिन भर की मजदूरी की थकान के साथ–साथ विवाह योग्य होती पुत्री फुलिया की चिंता से उसे थोड़े समय के लिए मुक्त करती थी। उसकी चिंता उन लोगों को देखकर बढ़ जाती थी, जो उसके मोहल्ले में फुलिया को देखकर उसकी चर्चा करते थे। अधेड़वय का रसिक नामक व्यक्ति उनमें से एक था। दो बच्चों का पिता रसिक फुलिया जैसी नवयुवतियों को अपने जाल में फँसाता था, क्योंकि वे गरीब रहतीं थीं। उनकी आवश्यकताओं एवं मजबूरी को रसिक जानता था, इसलिए मौके की तलाश में हमेशा रहता था।

शहर में कर्फ्यू लगता है। घर में एक ही दिन के अनाज में आठ दिन निकल जाते हैं। चार छोटे बच्चे और एक फुलिया एवं पति की भूख एवं शराब की पूर्ति के लिए गुजरी घर से निकलती है, जब आठ दिन बाद कर्फ्यू में एक घंटे की छूट मिलती है। दंगाई गुजरी को एकांत में पाकर बलात्कारी बन जाते हैं, यह चेहरे गुजरी पहचान जाती है इसलिए वे गुजरी की हत्या कर देते हैं। माँ की मृत्यु से बच्चे और दुःखी होते हैं, किन्तु इससे उनकी भूख तो नहीं मरती। छोटे भाई बहनों एवं पिता की लाचारी देखकर फुलिया रसिक के समक्ष जाकर समर्पण कर देती है और कहती है–

''कई दिनों से भाई–बहन खाना नहीं खाए हैं, बापू को दारु नहीं मिला है।''[39]

कर्फ्यू सबसे ज्यादा घातक दैनिक मजदूरी कमाने वालों के लिए होता है। बुधना जैसे लोग रोज कमाते हैं और खाते हैं। ऐसे समय में उनकी जमा पूँजी के अभाव में उनकी परिस्थिति बुधना के परिवार जैसी हो जाती है और उनकी परिस्थिति का लाभ रसिक जैसे लंपट व्यक्ति उठाते हैं। फुलिया का यह आत्मसमर्पण अपने छोटे–बहनों एवं पिता की पेट की भूख के लिए होता है। बड़ी–बड़ी बातें, सिद्धान्त, ऊँचे विचारों से बच्चों की बुनियादी समस्या भूख को खत्म नहीं किया जा सकता। फुलिया अपने शरीर को बेचकर घर की बड़ी बेटी होने का फर्ज़ निभाती है। प्रश्न यह है कि क्या इसके अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा रास्ता संभव था ?

3. 'खटिया की जाति'– सुरेन्द्र नायक

प्रस्तुत कहानी **'खटिया की जाति'** शिक्षण संस्थान में होने वाले वर्ण संबंधी भेद–भाव एवं दलित युवती **शिप्रा** के जातीय शोषण को प्रस्तुत करती है। कहानी का नायक विशाल दलित युवक है। ग्यारहवीं कक्षा में होस्टल में अपनी ही जाति के एक सहपाठी के साथ रहता है। उसके होस्टेल में सामंतकालीन वर्णीय व्यवस्था आज भी व्याप्त है। आधुनिक युग के समय में ऊँची जाति के लड़कों के कमरे एक ओर एवं नीची जाति के लड़कों के दूसरी ओर हैं। बचपन से ही विशाल यह भेद–भाव देखता आया है, किन्तु उच्च शिक्षण संस्थानों में ऐसी उम्मीद उसे नहीं थी।

होस्टेल के सफाई कर्मचारी कल्लू की पुत्री शिप्रा का संबंध वार्डन के पुत्र सोमेश से होता है। शिप्रा अत्यंत सुंदर युवती थी। जो उसे देखता, उसकी पलकें झपकाने की इच्छा न होती। ऐसी सुंदरी का सामीप्य पाकर सोमेश उससे विवाह करने का वादा करता है और उसका शारीरिक शोषण करता है। सोमेश का यह प्रेम वास्तव में एक छल था। सवर्ण सोमेश शिप्रा के शरीर को पाना चाहता था। जिस खटिया पर रात को वह शिप्रा के साथ सोया था, उसे सुबह होते ही धोने लगता है। विशाल जब अपने सीनियर सोमेश से पूछता है कि–

''सर आप चारपाई धो रहे हैं ? खटिया को छूत लग गयी है। धोक गंगाजल छिडकूंगा।" सोमेश ने झटके से कहा। विशाल सब कुछ समझकर भी अनजान बन गया–"खटिया तो निर्जीव है, उसकी कैसी जाति, कैसी छूत ? फिर आप तो बामन हैं, उस पर वार्डन पुत्र आपकी सहमति के बिना किसी दलित की उस पर बैठने की हिम्मत कहाँ ?''[40]

शिप्रा से शारीरिक संबंध बनाने से सोमेश को स्वयं छूत नहीं लगती बल्कि निर्जीव वस्तु को छूत लग जाति है। अपने ब्राह्मण होने पर उसे घमंड है, दलित युवती का शरीर उसे पसंद है, लेकिन यह उसकी भूख है। अपने आनंद और मनबहलाव के लिए वह शिप्रा को अपने नज़दीक आने की अनुमति देता है, परंतु अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर ब्राह्मणी राक्षस उस पर हावी हो जाता है।

शिप्रा गर्भवती है, यह जानकर छात्रावास के प्रिंसिपल एवं वार्डन की शंका होस्टेल के विद्यार्थियों पर जाती है। विशाल और उसके साथियों को डर था, कि दलित होने के कारण दलित युवती से संबंध अवश्य ही दलित युवक ने बनाए होंगे यह सोचकर प्रिंसिपल एवं वोर्डन उन पर आरोप लगा सकते हैं। अधिकतर दलित युवक होस्टेल छोड़कर भागना चाहते हैं, किन्तु विशाल के समझाने पर कि जब अपराध ही नहीं किया तो डरना क्यों ? विशाल सारी सच्चाई जानता था। उसे विश्वास था, कि अवश्य उस पर ही यह आरोप लगाया जाएगा, वह मानसिक रुप से तैयार था। दारोगा जब उसे पकड़ने आता है, तब विशाल निडरता से उससे अपने निर्दोष होने की बात कहता है। दोषी कौन है ? यह शिप्रा बतला सकती है, किंतु अपने अन्नदाता के सामने उसी के पुत्र का नाम वह कैसे लेती। यदि वह नाम बताती है, तो कोई उस पर विश्वास नहीं करेगा, कि एक ब्राह्मण एक मेहतरानी के साथ शारीरिक संबंध बना सकता है। यदि वह चुप रहती है, तो निर्दोष विशाल फँसता है। शिप्रा रोते जा रही थी। सारे विद्यार्थी, वोर्डन, प्रिंसिपल, दारोगा सभी सच्चाई जानना चाह रहे थे।

विशाल जानता था, कि शिप्रा क्यों चुप है। वह शिप्रा की धार्मिक भावनाओं को हवा देते हुए कहता है, कि यदि कोई हॉस्टेलर जिम्मेदार है तो हाँ कहो। शिप्रा ना में सिर हिलाती है। गुलामी के सदियों पुराने संस्कार एक पल में नहीं मिट सकते। शिप्रा स्वयं अपमानित हो रही थी, किन्तु नाम बताने से डर रही थी। अंत में विशाल ही सारी सच्चाई सभी के समक्ष रखता है। वह प्रिंसिपल से निर्भीगता से कहता है–

''प्रिंसिपल साहब ! अपराधी बामन जाति की खटिया है जिसको धुलकर गंगाजल से पवित्र होते हुए बहुत से छात्रों ने देखा है।''[41]

विशाल की खटिया धोने की बात से सभी विद्यार्थी जान जाते हैं, कि दोषी सोमेश है। शिप्रा स्वयं भी सभी के समक्ष सोमेश के दोषी होने की बात को रवीकारती है।

दो प्रेमियों के बीच का प्रेम यदि कमरे के अंदर होता है, तो उसे प्रेम कहते है और यदि वह सबके सामने आ जाता है तो वह अपराध बन जाता है। दलित शिप्रा सोमेश की प्रेममूर्ण बातों में आकर उससे विवाह के सपने देखने लगती है, किन्तु उसका यह प्रेम, अपराध बन जाता है, जिसके कारण उसे सबके बीच लज्जित होना पड़ता है। जबकि वास्तविक दोषी सोमेश भाग जाता है, उसे अकेला छोड़कर।

कहानी का शीर्षक 'खटिया की जाति' सांकेतिक शीर्षक है। विशाल स्वयं दलित है, इसलिए वह शिप्रा की पीड़ा एव दुविधा को समझता है एवं उस पर झूठा आरोप लगने पर भी, वह शिप्रा के मुँह से सच्चाई उगलवाने का सफल प्रयास करता है। ऐसा वह इसलिए करता है, क्योंकि सभी के समक्ष यह बात स्पष्ट हो जाए कि दलित ही गलत हों यह ज़रुरी नहीं, ब्राह्मण होकर भी दलित युवती से संबध रखे जाते हैं। ऊपरी तौर पर छुआछूत दिखाने वाले अंतर में कितने स्वार्थी होते हैं। कहानी की भाषा चित्रोपम है एवं पात्रों के अनुरुप है। संवाद छोटे और कथानक को गति प्रदान करने वाले हैं।

4. 'फुलवा'– रत्न कुमार सांभरिया

रत्न कुमार सांभरिया की प्रस्तुत कहानी दलित शिक्षित परिवार में आए बदलाव की कहानी है। आज दलित बच्चे शिक्षा प्राप्त करके ऊँचे पद पर नौकरी कर रहे हैं, इसलिए पुरानी पीढ़ी के लोग उन सुखों को भोग कर रहे हैं, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। फुलवा भी उन्हीं लोगों में से है। गाँव की दलित स्त्री फुलवा का पति जमींदार के बिगडेल बैल की मार से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। दस वर्ष के पुत्र राधामोहन को अच्छी शिक्षा देने के लिए फुलवा जमींदार के घर पर नौकरानी का काम करती है। आज उसका बेटा एस. पी. बन गया है। शहर में बड़ी सी हवेली और उसमें सुख–समृद्धी के सारे सामान मौजूद हैं।

आज अधिकतर गाँवों में जमींदारी प्रथा जाती रही है। सवर्ण जमींदारों की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। उनके बच्चे जब उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं करते, तो भला अच्छी नौकरी कैसे मिल सकती है। जहाँ एक ओर दलित परिवारों की दिन–प्रतिदिन प्रगति हो रही है, वहाँ दूसरी और सवर्ण अपने झूठे अहंकार, दंभ, अस्पृश्यता आदि रीति–रिवाजों के कारण अधोगति की ओर जा रहे हैं। ऐसी ही स्थिति फुलवा के गाँव के जमींदार की हो गई है। उसका बेटा मैट्रिक पास है, वह पिता भी बन गया है, किन्तु नौकरी अभी तक नहीं मिल पाई है। यह जमींदार रामेश्वर है, जिसके घर फुलवा वर्षों पहले काम किया करती थी। समय बड़ा बलवान है। रामेश्वर दलित फुलवा या उसके बेटे से कोई मदद माँगना नहीं चाहता, क्योंकि इसमें उसके अहंकार को ठेस पहुँचती है।

रामेश्वर जब दलित फुलवा के ठाट–बाट, सुख–सुविधा को देखता है, तो हैरत से दंग रह जाता है, वह प्यास लगने पर भी फुलवा के घर का पानी तक नहीं पीता क्योंकि इससे उसका घर्म भ्रष्ट हो जाता। रामेश्वर मदद के लिए जिस ब्राह्मण परिवार के पास जाता है, उसकी दरिद्रता देखकर उसे बहुत आश्चर्य होता है। एक ओर दलित फुलवा आनंद से महल जैसे घर में रह रही है, तो दूसरी ओर ब्राह्मण परिवार बहुत ही छोटे झोंपडी जैसे घर में रहने के लिए विवश था। उनकी हालत देखकर रामेश्वर की आँखें विस्मय से फैल गई थीं।

जाति–भेद को मानने वाला रामेश्वर फुलवा के आदर–सत्कार को ठुकराकर गरीब ब्राह्मण परिवार के पास मदद माँगने आता है। उसकी इच्छा होने से फुलवा स्वयं पंडिताइन के घर रामेश्वर को छोड़ने आती है। फुलवा के चले जाने पर रामेश्वर पंडिताइन से अपने बेटे की नौकरी की बात करता है, और कहता है–

> **''दादी–फुलवा चाहे सोने की हो जाए, रहेगी उसी जात की। मैंनें तो उसके घर का पानी तक नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से मर जाना अच्छा समझता है रामेश्वर।''**[42]

हमारे देश में भले ही जितना विकास हो रहा हो, बदलाव आ रहे हों किन्तु आज भी जातिगत भेद–भाव पूर्णरुप से मौजूद हैं। रामेश्वर उच्च वर्ण का होने के कारण दलित फुलवा या उसके बेटे से मदद नहीं लेना चाहता। मन–ही–मन वह फुलवा की प्रगति पर चिढ़ता है, क्योंकि वह तो फुलवा को दरिद्र दशा में ही देखने का आदि था। उसकी सोच थी कि यदि वह धनवान नहीं रहा तो क्या हुआ, उच्च वर्ण का होना आज भी उसके लिए सम्मान का एक मजबूत कारण था।

पंडिताइन पुरानी विचार–धाराओं या कहें कि जातिभेद को छोड़ चुकी है। शहर में आकर उसने देख लिया है, कि यहाँ छुआछूत गाँव की तरह नहीं है। यहाँ उसका बोलबाला है, जिसके पास नाम, और धन है। फुलवा की बहू पढ़ी–लिखी थी। उसी के कारण पंडिताइन के बेटे को नौकरी मिली थी। वह रामेश्वर के विचार को सुनकर उसे डपटते हुए कहती है–

> **''तू तो कुएँ का मेढ़क ही रहा रामेसरिया। अब तो पद और पैसे का ज़माना है, जात–पात का नहीं। फुलवन्ती का राधामोहन कोई छोटा–मोटा अफसर नहीं है। एस. पी. है, एस. पी.। एक बात बताऊँ तुझे जाकर मेम साहब के पाँव पकड़ ले और तब तक मत छोड़ना जब तक वह हाँ न कह दे। पंडिताइन ने एक ठण्डी साँस ली चरण छुओ बहूरानी के। मेरे बेटे को तो उसी ने दूसरी ज़िन्दगी दी है।''**[43]

पण्डिताइन ने परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को ढ़ाल लिया था। रामेश्वर को भी वह यही समझाती है, कि यदि अपना भला चाहते हो, तो यह भेद–भाव छोड़ दो। रामेश्वर के लिए ऐसा करना सरल न था। पंडिताइन के ये शब्द रामेश्वर के शरीर में तेजाब उँड़ेलने जैसे लग रहे थे। फुलवा की बहू को वह द्रौपदी–सा बेआबैरु करना चाह रहा था, उसी के पाँव पकड़ने की बात पंडिताइन कर रही थी। जाति–भेद को मिटाना उसके लिए बहुत मुश्किल हो रहा था।

पंड़िताइन रामेश्वर को गैरेज में सोने के लिए बिस्तर लगा देती हैं जहाँ बकरी और बीमार कुत्ता भी था। बदबूदार वातावरण और कुत्ते की खाँसी से रामेश्वर पूरी रात सो नहीं पाता। उसे मितली आने लगती है। अनायास सुबह फुलवा की कोठी की ओर बढ़ने लगता है।

फुलवा के प्रेम से किए गए अतिथि सत्कार को ठुकराकर, रामेश्वर ब्राह्मण परिवार के पास जाता है। दोनों के बीच के अंतर को वह कुछ घंटों में ही समझ जाता है। अंत में वह फुलवा का अतिथि बनना स्वीकार कर लेता है। प्रस्तुत कहानी दलितों की स्थिति और सवर्णों में आए बदलाव को प्रस्तुत करती है। कहानीकार ने बड़ी सरल भाषा में अपनी बात प्रस्तुत की है। आज ज़रुरत है समानता की, ऊँच–नीच के भेद–भाव को मिटाने की। पुराने विचारों को छोडकर नए विचारों को अपनाने की। कोई भी व्यक्ति अपनी जाति से ऊँचा या नीचा नहीं होता। वह तो अपने कार्य से अपना स्थान बना सकता है। अपने परिश्रम के बल पर दलित युवक आज उच्च पद को प्राप्त कर रहे है। सवर्ण समाज को चाहिए कि वह उनका सम्मान करे, न कि उन्हें अपमानित करे। समय उसी के साथ रहता है, जो परिश्रम करता है, सत्य के मार्ग पर चलता है।

5. 'हरिजन'–प्रेम कपड़िया

प्रस्तुत कहानी मध्यप्रदेश के इटारसी में मंदिरों में देवदासी प्रथा और पुजारियों के उस रुप को हमारे समक्ष लाती है, जिससे आम लोग अनभिज्ञ हैं। कथानायक की माँ परबतिया एक हरिजन औरत थी। गरीबी, भुखमरी, लाचारी वश वह गाँव के मंदिरों में प्रसाद की लालच में जाया करती थी। वहाँ के मंदिर के पुजारी दलित स्त्रियों को रात के समय अपने शयनकक्ष में बुलाकर अपनी काम–वासना की पूर्ति करते

थे और बदले में उस स्त्री को थोड़ा–सा प्रसाद दे देते थे। परबतिया भी उन्हीं स्त्रियों में से एक थी। उसका एक पुत्र होता है प्रेमा।

परबतिया स्वयं दयनीय परिस्थितियों में से गुजर रही थी, किन्तु वह नहीं चाहती थी, कि उसके बेटे के भविष्य में दुःख का अंधेरा हो। इसलिए वह उसे शिक्षित बनाना चाहती थी। एक रात प्रसाद देने के लिए वह अपने आठ वर्ष के पुत्र को मंदिर में रात के समय छुपाकर ले जाती है। उसे प्रसाद देकर तख़्त के नीचे छिपा देती है। पुजारी जब अपनी वासनापूर्ति के लिए उसके पास आता है, तब वह कहता है–

''परबतिया ! तू आज सुबह ही जाना.... ।''
''नहीं महाराज ! मेरा बच्चा भी है। वह अकेला नहीं रह सकता''
उसने माँ की आवाज़ सुनी थी।
''अरे ! उसे किसी अनाथाश्रम में छोड़ आ ना।''
नहीं महाराज ! वह पढ़ने का बड़ा शौकीन है... मैं तो पाँवों की धूल ही रही.....मैं उसे कुछ बनाना चाहती हूँ।
''अरे परबतिया ! कहीं राख में फूल खिलते हैं भला ? वह हरिजन है.. हरिजन कैसे पढ़ सकता है ? हमारे वेदों में हरिजनों को वेद–पुराण सुनने की भी मनाही है... पढ़ने की बात तो दूर रही। खैर ! छोड़ अलमारी में सोमरस की शीशी है.... उसे निकाल ले और गिलास में डाल दे.....तब तक मैं कपड़े उतारता हूँ।''[44]

एक दलित स्त्री अपना शरीर बेचकर भी अपने पुत्र को शिक्षित बनाना चाहती है, जबकि एक शिक्षित पुजारी उसे शिक्षा से वंचित रखना चाहता है। परबतिया कितनी विवश है, कि अपने पुत्र को न तो अंधेरे में अकेला छोड़ सकती है और न ही पुजारी के समक्ष विरोध प्रकट कर सकती है। किसी भी माँ के लिए पुत्र की उपस्थिति में अपना शरीर बेचना कितना कष्टकर होगा?

प्रस्तुत कहानी फ्लेश–बेक में कही गई है। परबतिया का पुत्र प्रेम घर से भागकर एक अधिकारी के घर शरण पाता है, वहाँ अच्छी शिक्षा प्राप्त कर डेपुटेशन पर एस. एस. पी. बन जाता है। वह अपने गाँव तबादला लेकर आता है उसे अपने बचपन की याद आती है जब की वह आठ वर्ष का था। एक सवर्ण बच्चे ने उसकी तख्ती पर पैर रख दिया था। जब प्रेम ने विरोध किया तो वह कहने लगा–

''पैर पड़ गया तो क्या होगा ? तू हरिजन है ही... फिर हरामी भी है...तेरे बाप का नाम क्या है ? क्या तू जानता है ?''[45]

ऐसे कड़वे शब्दों ने आठवर्षीय प्रेम के बालमानस को कितनी चोट पहुचाई होगी ? शायद इसीलिए वह उसे लड़के को वही तख्ती सिर पर मारकर भाग जाता है। मंदिरों में देवदासियों से जो पुजारियों की संताने जन्म लेती हैं, ऐसी संतानों का क्या भविष्य है ? समाज में उन्हें कैसी दृष्टि से देखा जाता है ? आखिर उन बच्चों का इसमें क्या दोष है, ऐसे कई प्रश्न इस कहानी में उठते हैं।

जिस सवर्ण अधिकारी ने प्रेम की प्रतिभा को पहचानकर उसे लक्ष्य तक पहुँचने में मदद की थी, वही अधिकारी अपनी पुत्री का विवाह प्रेम से करके अपने आपको आधुनिक सिद्ध करता है। प्रेम की पत्नी भी प्रेम के विषय में सारी सच्चाई जानकर भी उसका साथ देती है।

तीस वर्ष बाद प्रेम एक पुलिस अधिकारी बनकर अपने गाँव लौटता है। उसे वहाँ भेजने के पीछे प्रेम के ससुर जो कि होम सेक्रेटरी थे, उनका मकसद कुछ ऐसा था–

> **''मेरा तुम्हें वहाँ भिजवाने के पीछे एक मक़सद है। मध्यप्रदेश के तमाम बड़े मंदिरों में आज भी देवदासियाँ बनाई जा रही है... व्यवस्था और शासन सभी लोग इन गरीब हरिजन महिलाओं का शोषण करते हैं..... देवदासियों की ज़िन्दगी से तुम परिचित हो... मैं चाहता हूँ तुम वहाँ जाकर इस देवदासी प्रथा का सफया कर दो।''**[46]

देवदासी–प्रथा हमारे समाज की घृणास्पद प्रथा होते हुए भी, हमारे समाज में आज भी देखी जा सकती है। ज़रुरत है कि देश के शिक्षित लोग स्वयं ऐसे मंदिरों में देवदासी–प्रथा की सच्चाई जानकर उसका विरोध करें और उसे जड़ से नाबूद कर दें। गरीब हरिजन स्त्रियों को दिन के उजाले में अछूत कहकर दूर रहने वाले पुजारी रात के अंधेरे में उनके साथ मुँह काला करते हैं। ऐसे पुजारियों को कड़ी–से–कड़ी सज़ा दिलानी चाहिए, ताकि अन्य लोगों को इससे सीख मिले।

प्रेम अपनी सिपाही टुकड़ी के साथ उस मंदिर पर छापा मारता है, जहाँ उसकी माँ देवदासी हुआ करती थी। वहाँ के कई पुजारी और देवदासियों को थाने में ले जाया जाता है। तीस वर्ष बाद वह एक पुलिस अधिकारी बनकर अपनी माँ के समक्ष अपना परिचय देता है, कि मैं तेरा पुत्र प्रेम हूँ। प्रेम सम्मान के साथ अपनी माँ को अपने घर ले जाता है। परबतिया का सपना साकार हो गया, उसके पुत्र ने वह कर दिखलाया, जिसकी वह कल्पना ही किया करती थी।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में देवदासी–प्रथा में दलित स्त्रियों और उनसे जन्मीं संतानों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। फ्लेश–बेक में कही गई इस कहानी में, कहानीकार ने बड़ी खूबी से 30 वर्ष के अंतराल के बाद भी यह कु–प्रथा जारी है, इसकी ओर संकेत किया है। हमारी कानून व्यवस्था और शासन सभी इस कु–प्रथा का हिस्सा बन रहे हैं, ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है, कि फिर इन दलित स्त्रियों की रक्षा कौन करेगा ? क्योंकि हर परबतिया का प्रेम पुलिस अधिकारी नहीं बन पाता है। भोजन, शिक्षा, प्रेम और अच्छे वातावरण के अभाव में ऐसे बच्चे अकसर गलत रास्ते अपना लेते हैं। आखिर इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? ऐसे कई प्रश्न इस कहानी से उठते हैं।

6. 'उपमहाद्वीप'–अजय नावरिया

प्रस्तुत कहानी **'उपमहाद्वीप'** अजय नावरिया द्वारा रचित है। कथानायक **सिद्धार्थ** स्वयं एक शिक्षित दलित पुरुष है। वह एक सरकारी संस्थान में मैनेजर है। उसकी पत्नी कॉलेज में लेक्चरार है। अपनी एक पुत्री के साथ सुसज्ज घर में रहने वाला सिद्धार्थ जिस ऑफिस में कार्यरत था, वहाँ वह ऊँचे ओहदे पर कार्यरत था। उसी ऑफिस में चौथी श्रेणी के कर्मचारियों से जातिगत भेद–भाव रखा जाता था। साथ ही उन्हें कोटे का कहकर अपमानित किया जाता था। स्वयं सिद्धार्थ के एसिस्टेंट उसे विश नहीं करते थे। वह सोचता है–

> **''क्यों अक्सर कर्दम और पासवान मेरे पास आते हैं ? क्यों वे मुझे अपना दुखड़ा सुनाते हैं ? क्यों मैं अकेला ऐसा अधिकारी हूँ ? क्यों एसिस्टेट**

पासवान मेरे चपरासी छेदी खटीक के नहीं होने पर मेरा चाय का कप पकड़ने में हिचकता नहीं है ? क्यों गुप्ता और दूसरे दो–एक लोग ऑफिस में मेरे आने पर मुझे विश नहीं करते ? क्यों मेरे डिप्टी थपलियाल का हर काम यह दौड़–कर करते हैं ? क्यों.....क्यों....क्यों हम अलग हैं ? इनसे अलग ? मुसलमानों की तरह ? ईसाइयों की तरह ? अखेतों की तरह ? इनके परिचय क्षेत्र से बाहर अजनबी ? मलेच्छ ? नीच ? अछूत ?''[47]

शहर में भी आज के समय में दलितों के साथ अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहार किया जाता है। ऐसे में वे मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं। इसी तनाव में उसे अपने बचपन की कुछ घटनाएँ याद आती हैं। उसके पिता शहर में नौकरी करते थे, माँ दादाजी के साथ गाँव में रहती थीं। गाँव में दलितों को अच्छे कपड़े पहनने, अच्छा खाने–पीने, खुश रहने, शिक्षा पाने एवं दुल्हे को घोड़े पर चढ़कर बारात निकालने की स्वतंत्रता सवर्णों ने नहीं दी थी। सवर्ण ने दलितों के दिमाग में ऐसा अंधविश्वास फैलाया था, कि वे उनके खिलाफ बगावत न कर सकें। एक दूल्हा घोड़ी पर बैठ गया तो सवर्ण उसके पिता को गंदी गालियाँ देते हुए कहता है–

''अबे नीच, धरम–ईमान का नाश करने पर तुला है। तेरी बिरादरी ने नहीं समझाई तुझे यह बात। तू हैजा–प्लेग फैलाएगा गाँव में। सूखा पड़ेगा देख लेना इस बार। गाँव की परंपरा तोडी है हज़ारों साल की इसने। इसका पातक लगेगा गाँव को। गूज़रों के गाँव में यह अधरम। कलजुग है कलजुग।''[48]

सदियों से अनपढ़, अज्ञानी दलितों को धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ एवं ईच्छानुसार संचालित करते आए हैं। सवर्णों ने दलितों को लाठियों से पीटा और उनके घर की स्त्रियों पर बलात्कार किया। पुलिस भी उसी का पक्ष लेती है, जिसके पास सत्ता होती है। ऐसे वातावरण में सिद्धार्थ की माँ अपने छोटे से परिवार के साथ दुःख झेलते हुए भी संतोष प्राप्त करती है। शहर से आए पति एवं पुत्र सिद्धार्थ जब गाँव में नए कपड़े पहनकर घूमने निकलते हैं, तो सवर्णों को यह बर्दाश्त नहीं होता। वे तो फटे, पुराने, चिथड़ो में ही दलितों को देखकर प्रसन्न होते हैं। उनसे अधिक अच्छे कपड़े में वे सपने में भी दलितों को नहीं देख सकते। पिता–पुत्र को अपमानित करके इतना पीटा जाता है, कि उनके नए कपड़े फट जाते हैं और उनके खून से लथ–पथ हो जाते हैं। उन्हें बचाने वाला कोई नहीं था। सिद्धार्थ की माँ उन्हें बचाने आती है, तो वे उसे भद्दी गालियां देकर उसका भी अपमान करते हैं, धर्म का भय दिखाते हैं। माँ बार–बार ज़मीन पर सिर झुकाकर अपने पति और पुत्र के प्राणों की भीख माँगती है, किन्तु वे अपनी जूतियों से सिर पर मारते हैं। माँ मिन्नतें करती रहती है, किन्तु किसी का ह्रदय नहीं पिघलता। दंड में जितने रुपये मिल गए उन्होंने ले लिए और माँ को एक ओर अपमानजनक दंड देकर ही उन्हें चैन मिला। माँ से कहा गया कि पुत्र और पति की जान प्यारी है, तो थूककर चाटो। निःसहाय माँ की विवशता यह थी कि ऐसा करने के अतिरिक्त वह कुछ नहीं कर सकती थी। माँ से घिनौना कार्य करवाकर उनकी आत्मा को तृप्ति मिलती है।

यहाँ माँ की स्थिति को कहानीकार ने बड़ी दयनीय बताया है। गाँव की भोली–भाली, परिश्रमी माँ सदैव सवर्णों का आदर करती थी, उनसे भयभीत रहती थी,

क्योंकि वह उनके आतंक को देख चुकी थी। पति और पुत्र शहर के खुले वातावरण से आए थे, इसलिए उनके आतंक को भूल गए थे। माँ के समक्ष एक ही मार्ग था, कि चाहे कितना भी अपमान रहना पड़े सह ले किन्तु पति एवं पुत्र की जान बच जाए। एक दलित स्त्री होने के कारण गाँव के सवर्ण उसे मिलकर अपमानित करते हैं।

प्रस्तुत कहानी फ्लेश–बैक पद्धति में लिखी गई है। वर्षों पहले और आज गाँव और शहर सभी में दलितों पर अत्याचार होता दिखाया गया है। समय एवं परिस्थिति के अनुसार शोषण का ढ़ंग अवश्य बदला है, किन्तु शोषण खत्म नहीं हुआ। कहानी में खड़ी बोली के साथ–साथ आँचलिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

7.'आधा सेर घी'–मोहनदास नैमिशराय

'आधा सेर घी' मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। गरीब दलित **बलवन्ता** और उसकी पत्नी **सुमति** एक सपना देखते हैं, कि उसका बेटा पढ़–लिखकर डिप्टी कलेक्टर बनेगा। इस सपने को साकार करने के लिए बलवंता खूब परिश्रम करता है और बेटे को एम.ए. की पड़ाई के लिए होस्टल में पढ़ने भेजता है। बेटा धन्नालाल भी माता–पिता के सपने को पूरा करने का संकल्प लेता है। गाँव में बलवंता के सपने को लेकर लोग उसका मजाक उड़ाने लगते हैं, क्योंकि एक दलित का बेटा कलेक्टर कैसे बन सकता है ? दलित तो उस गाँव में सवर्णों की सेवा करने के लिए बने हैं। यदि वे कलेक्टर बनने लगे तो सवर्ण किसका शोषण करेंगे ? किससे अपनी गुलामी करवाएँगे ?

बलवंता बेटे को कलेक्टर बनाने की धुन में अपनी जमीन, घर सब–कुछ गँवा देता है, किन्तु उसकी आशा जीवित रहती है। बेटे को कलेक्टर बनते वह नहीं देख पाता और समय पर दवाईयाँ एवं इलाज न मिलने से उसकी मृत्यु हो जाती है। सुमति अपने पति की अंतिम ईच्छा पूरी करने के लिए धन्नालाल का मनोबल बढ़ाती है। बेटा माँ की तकलीफों को समझता है और अधिक परिश्रम करके उनका सपना पूरा करना चाहता है।

धन्नालाल जिस परिवेश एवं गाँव में रहता था, वहाँ गरीब दलितों को दो वक्त का रुखा–सूखा भोजन मिलना मुश्किल था। धन्नालाल की तीव्र ईच्छा होती थी, कि वह मिस्सी रोटी घी लगाकर खाए। किन्तु चाहकर भी सुमति बेटे की इस छोटी–सी ईच्छा की पूर्ति नहीं कर पाती। हमारे देश में आज भी इतनी गरीबी है, कि कितने ही लोग भरपेट भोजन कभी नहीं जुटा पाते और यह उनका सपना बन जाता है कि उन्हें भरपेट भोजन कब मिलेगा ?

सुमति बड़ी मुश्किल से 'आधा सेर घी' जुटाकर बेटे को संदेशा भिजवाती है, कि उसके लिए घी रखा है आकर ले जाए। धन्नालाल की खुशी का ठिकाना नहीं था। आज वही पेटभर कर भोजन करेगा। यह सोचकर वह कोलेज से घर की ओर चल देता है। धन्नालाल घर पहुँचे उससे पहली ही बनिया अपनी ऊधारी के रुपये न मिलने पर सुमति के रखे आधा सेर घी को उठाकर जबरन ले जाता है।

यहाँ गरीब अशिक्षित सुमति अपने एक मात्र पुत्र के लिए 'आधा सेर घी' बनाकर रखती है। यहाँ 'आधा सेर घी' मात्र कोई खाने की वस्तु नहीं है बल्कि गरीब दलितों के लिए वह एक सपने की तरह है। गरीब सुमति, धन्नालाल और बलवंता जैसे दलितों के लिए लेखक ने उचित ही कहा है–

''मन्दा जमाना था। पर उतना मन्दा तो न था। गरीब के लिए तो हर युग महँगा रहा है। उसके लिए भी यह महँगा युग था, क्योंकि उसने अपने बलबूते से बाहर की बात पूरी करने की ठान ली थी।''[49]

8.'कर्ज'—मोहनदास नैमिशराय

'कर्ज़' कहानी मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। जिसमें दलितों का शोषण सेठ–साहूकार किस तरह पीढ़ी–दर–पीढ़ी करते आए हैं, उसे प्रस्तुत किया गया है। कहानी में दलित नारी **रामप्यारी** चालीस वर्ष की उम्र में अपने पति को खो देती है। उसका एक पुत्र अशोक एवं एक पुत्री कमला है। अशोक शहर में एक मिल में काम करता है। माँ और बहन की जिम्मेदारी अशोक पर आ जाती है, उसके पिता ने चार वर्ष पहले साहूकार से अभाव एवं लाचारी की स्थिति में कर्ज़ लिया था। गाँव के अधिकतर गरीब दलितों को सहूकार से कर्ज़ लेना ही पड़ता था। कर्ज़ पूरा न लौटाने पर साहूकार के खेत में मजदूरी करनी पड़ती थी। दिन–रात परिश्रम करके भी रामदीन मूल कर्ज़ के रुपये का एक आना भी कम न कर सका और बदले में झूठन और पूराने कपड़े देकर साहूकार उन पर और उपकार कर देता। गाँव में यह वातावरण रामदीन ही नहीं उसके पूरखों ने भी देखा है। किन्तु रामदीन का बेटा इस कर्ज़ की चक्की में पिसना नहीं चाहता। वह पिता के क्रियाकर्म में कर्ज़ लेकर कोई रीति–रिवाज़ नहीं निभाना चाहता। वह उन सारे नीति–नियमों, रुढ़ियों, परंपराओं का खंड़न करता है, जिससे कर्ज़ के नीचे उसका एवं उसकी माँ–बहन का शोषण हो।

रामप्यारी एक अशिक्षित महिला थी। पति की मृत्यु और दो बच्चों के भविष्य को लेकर वह चिंतित थी। एक ओर समाज के रुढ़िचुस्त रीति–रिवाज और दूसरी ओर पुत्र का उनके समक्ष विद्रोह। वह पुत्र के तर्क–वितर्क को समझ नहीं पाती और दूसरी ओर साहूकार के छल–छद्म को वह पहचान नहीं पाती। बेटा समाज का एवं साहूकारों का विरोधी बन जाता है और शहर चला जाता है, किन्तु रामप्यारी को उसी वातावरण, उसी समाज के बीच रहना था, जिसमें आज तक गरीब को धमकाकर, उसे धर्म का भय दिखाकर महाजन कर्ज़ के रुपयों के विषय में डराते हुए कहता है–

''शास्त्रों में लिखा है, बाप के मरने के बाद बेट्टे को ही कर्ज़ उतारना पड़ता है। वरना बाप की आत्मा को दुख पहुँचता है और बेट्टे को पाप लगता है।''[50]

रामप्यारी अपनी बेटी कमला के साथ गाँव में बड़ी मुश्किल से कुछ दिन गुजारती है। महाजन कर्ज़ के रुपये न मिलने पर और अशोक की बगावत पर कुढ़ा हुआ रहता है। वह अपना कर्ज़ वसूल करने का एक रास्ता बनाता है। रामप्यारी और कमला जब रात्रि के समय खेत में पानी देने जाती हैं, तो अपने कारिंदे के साथ मिलकर रात्रि के अंधकार में वे दोनों का बलात्कार करके उनकी हत्या कर देता है। बदले में अशोक कसम खाता है, कि उनके हत्यारे को दंड देकर ही रहेगा। महाज़न और उज्जड़ सिंह दोनों की हत्या करके अशोक स्वयं दोषियों को दंड देता है। मारने से पहले वह महाजन से कहता है–

''महाजन कानून किन लोगों का है तुम अच्छी तरह से जानते हो।..... दलित गाँवों में तो पिटता ही है साथ ही साथ कानून का ढिंढोरा पीटने

वाली अदालतों में भी पिटता है।.....अदालतों में न्यायाधीश तथा सरकारी वकील भी सवर्ण होते हैं। वे भला फिर कैसे दलितों के पक्ष में अपने निर्णय दें। महाजन इस गाँव की दलित अबलाओं का मुझ पर बहुत दिनों से कर्ज़ था। जिनकी इज्जत तुमने लूटी, आज समय आ गया है कि मैं कर्ज़ चुकाऊँ ?''[51]

कहानी में साहूकारों का दलितों पर अत्याचार, कर्ज़ की समस्या, गरीबी, बेगार, एवं गाँव में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार पर प्रकाश डाला गया है। अशोक जैसे युवा लड़के इन रुढ़िचुस्त पुराने नीति–नियमों एवं परंपराओं को बदलना चाहते हैं। न्याय सही रास्ते से न मिलने पर गलत रास्ते से ही सही, अपनी दृष्टि में न्याय पाना चाहते हैं। हमारी न्याय की प्रक्रिया को यदि सुधारा जाय तो अशोक जैसे युवाओं को कानून अपने हाथ में न लेना पड़े।

9.'बात'– रत्नकुमार सांभरिया

रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित **'बात'** कहानी की नायिका **सुरती** एक अशिक्षित दलित स्त्री है। पति की असमय मृत्यु के कारण एक मात्र पुत्र की जिम्मेदारी उसी पर थी। लेखक ने उसके विषय में लिखा है–

''सुरती। बत्तीस की उम्र। सुती देह। लंबी काठी। गोरा सरीखा गोर रंग। गोल चेहरे पर पान से पतले होंठ। हंसगामिनी। रुप की धनी। भाग की ठगी। उस पर एक–एक कर दुःखों के पहाड़ टूटते रहे थे। सास–ससुर पहले ही चल बसे थे। पति के मरने के दो महीने पहले उसका बड़ा लड़का 'हट' गया था। बाप का साया सिर से बचपन में ही उठ गया था। माँ चार साल पहले गंगालाभ हो गई थी। भाई भावज ने बेवफाई पा न ली थी। गरीबी लदी सुरती रोज़–रोज़ आ तंग करेगी।''[52]

इतनी समस्याएँ होने पर भी सुरती चरित्र की धनी थी। कोई उस पर गलत दृष्टि डाले तो उसे चप्पलों से पीटने में डरती नहीं थी। आठवीं कक्षा में पढ़ रहे राधू की स्कूल में जबरन सौ रुपये हर विद्यार्थी से टयूशन की फीस वसूली जाती थी। राधू की तीन महीने की तीन सौ रुपये फीस बाकी थी, जिसकी वजह से रोज तीन महीनों से उस, मास्टरजी दंड दिया करते थे। सुरती अपने पुत्र की शिक्षा में बाधा नहीं आने देगी, यह वादा उसने अपने मरते पति से किया था। वह पूरे गाँव में उधार लेने जाती है, किन्तु कोई मदद नहीं करता। मजबूरन धींग नामक पुरुष, अधैड़ अविवाहित, लंपट सवर्ण से उसे मदद लेनी पड़ती है।

धींग तो ताक में था, कि कब सूरती उसके शिकंजे में फँसे। सुरती के पास गिरवी रखने को कोई वस्तु नहीं थी, इसलिए वह एक बात का वचन देती है, कि वह एक महीने में उसके रुपये लौटा देगी। लंपट धींग दिन–रात सुरती के सपने देखने लगता है और दूसरी ओर सुरती उससे बचने के लिए दिन–रात एक करने में लग जाती है। दिन में वह उन दो घरों में काम करती है, जिन्होंने उसके पति के इलाज के लिए रुपये दिए और रात में वह ऊन की फेक्ट्री से लाई लच्छियाँ की पुनियाँ बनाकर दे आती है। दिन–रात परिश्रम करके वह धींग की 'बात' के वादे को पूरा करके अपनी पवित्रता बचाना चाहती है। एक स्त्री के लिए उसकी पवित्रता एवं चरित्र से बढ़कर कुछ नहीं है।

सुरती अशिक्षित स्त्री थी। पति उसे पढ़ना सीखाता है, किन्तु वह भूल जाती है। उसे अफसोस होता है, कि काश वह भी पढ़ना–लिखना जानती, तो उसे दूसरों से हिसाब–किताब न पूछना पड़ता। अपना काम स्वयं अपने बल पर कर लेती। धींग भी सुरती की दीनहीन दशा, एकाकी जीवन, गरीबी, और मजबूरी का फायदा उठाकर सुरती के शरीर को पाना चाहता था। एक महीने के कठोर परिश्रम के बाद सुरती तीन सौ पचास रुपये जुटा लेती है, किन्तु धींग उसे चुरा लेता है। सुरती की मंजिल उसके समीप आकर दूर चली जाती है। जैसे ही, उसे धींग की इस हरकत का पता चलता है, वह उसे सबक सीखाने के लिए उसके घर पहुँच जाती है और उस पर बिजली की तरह टूट पड़ती है।

सुरती अशिक्षित दलित नारी है, किन्तु अत्यंत ही स्वाभिमानी, परिश्रमी, चरित्र की धनी एवं साहसी भी है। धींग भी उसके इसी स्वभाव से डरकर उसे उसकी ईच्छा के विरुद्ध हाथ लगाने से हिचकिचाता है। सवर्ण धींग दलित स्त्री के शरीर को पाना चाहता है और इसके लिए वह जाति–पाति का सारा भेद भूल जाने को तैयार है, दूसरी ओर सुरती दलित स्त्री है, जो अपने चरित्र को दागदार होने से बचाने के लिए कठोर परिश्रम करती है। वह अशिक्षित है, किन्तु अपने बूरे वक्त में भी, धींग के समक्ष समर्पण नहीं करती और अपनी 'बात' के वचन को निभाने के लिए हर प्रयास करती है। सुरती का चरित्र अत्यंत ही प्रभावशाली है। लेखक ने अंत में सुरती का रौद्र रुप दिखाया है, जो नारी–शक्ति का परिचय देता है। सुरती अपनी 'बात' को न्याय देती है, इसमें उसकी जीत है। अशिक्षित पात्र होने पर भी वह अपनी अलग पहचान बनाने में सफल होती है। गाँव में अशिक्षित दलित महिलाओं के शोषण पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही सवर्णों की स्वार्थी मनोवृत्ति को चित्रित किया गया हैं।

2.3. दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण

1.'सुमंगली' – कावेरी

कावेरी की प्रस्तुत कहानी **'सुमंगली'** एक अनाथ दलित स्त्री की कहानी है। **सुगिया** को नहीं पता उसके माता–पिता कौन हैं ? वह कहाँ से आई है ? जबसे होश सँभाला, तब से वह स्वयं को ठेकेदार की रखैल ही समझती थी। जहाँ वह मजदूरी करती थी, वहाँ का ठेकेदार 14 वर्षीय सुगिया पर बलात्कार करता है। दुखना की माँ सुगिया की देखभाल करके उसे स्वस्थ होने में मदद करती है। उसे सान्त्वना देते हुए कहती है–

> **''चुप रह बेटी ! चुप रह। यह तो एक–न–एक दिन होना ही था, पर तू बड़ी अभागन है री। जो इस छोटी उम्र में ही सब कुछ झेलना पड़ा। अब एकदम चुप हो जा, वर्ना उस पिशाच को अगर मालूम हो गया तो तेरी चमड़ी उधेड़कर रख देगा। हाँ हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है।''**[53]

सुगिया की तरह ही मजदूरी करने वाली स्त्रियों को ठेकेदारों की गंदी निगाहों से बचना मुश्किल होता है। वे चाहकर भी उसका विरोध नहीं कर पाती है।

अगर वह काम छोड़ देती हैं, या अत्याचार का विरोध करती हैं तो भूखों मरने की नौबत आ जाती है।

सुगिया का दुख सुनने वाला या दूर करने वाला कोई नहीं था। उसकी सहायता कोई चाहकर भी नहीं कर सकता था, क्योंकि जो व्यक्ति उसका साथ देता वह ठेकेदार का दुश्मन बन जाता। सुगिया की विवशता का पूरा फायादा ठेकेदार उठाता है। जब चाहता है, वह सुगिया का इस्तेमाल करता है। दुखना सुगिया के दुख को समझता है, परंतु लाचार हो जाता है। सुगिया गर्भवती है, यह जानकर उससे पीछा छुड़ाने के जिए ठेकेदार दुखना से जबरन सुगिया का विवाह करवा देता है। दुखना को वह प्रेम देता है, जिसकी उसे हमेशा तलाश थी। सुगिया, एक पुत्र को जन्म देती है। सभी सुखी हो जाते हैं, किन्तु दुखना चार मंजिला इमारत में काम करते समय गलती से फिसल जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

बचपन से सुगिया को कोई प्रेम देने वाला नहीं मिला था। दुखना को पाकर वह, अपनी सारी पीड़ा और भूतकाल की सारी कड़वी यादें भूल चूकी थी। अचानक फिर से वह उसी स्थिति में पहुँच जाती है। दुखना की माँ उसे सहारा देती है। सुगिया परिश्रम करके अपने बेटे सुखदेव का भरण–पोषण करती है। माता और पिता दोनों का प्यार उसे देती है। सभी जानते हैं, कि सुखदेव ठेकेदार का पुत्र है और दुखना की माँ भी जानती है, फिर भी वह सुगिया को कभी ताने नहीं देती, बल्कि उसी का साथ देने के लिए सबसे झगड़ा कर लेती है। वह जानती थी, की इसमें सुगिया का कोई दोष नहीं है। दोष तो गरीबी और मजबूरी का है, यदि गरीबी न होती तो सुगिया कभी ठेकेदार की हवस का शिकार न होती और अपराध करके भी ठेकेदार खुले आम शान से न घूम पाता।एक दिन सुखदेव को तेज़ बुखार आता है, सुगिया के पास एक भी रुपया नहीं था। किसी ने उसकी मदद नहीं की, तो मजबूरी में वह ठेकेदार से मदद माँगने गई। वह ठेकेदार से अपने बच्चे को बचाने की भीख माँगती है। ठेकेदार अत्यंत ही निर्दयी स्वभाव का था, स्वयं के मरते बच्चे को वह नहीं बचाना चाहता। वह सुगिया को अपनी हवस का शिकार बनाता है। मजबूरी में एक माँ अपने बच्चे की जान बचाने के लिए अपने शरीर की कुर्बानी देने को विवश हो जाती है। बाद में ठेकेदार उसे कोई मदद नहीं करता और वहाँ से भगा देता है। अपने निर्जीव बेटे को लेकर सुगिया जहाँ–जहाँ जाती है, सभी पुरुषों का रुप ठेकेदार जैसा ही होता है। सुगिया की जवानी उसके लिए विपदा बन जाती है। वह दौड़ते हुए एक प्राइवेट डिस्पेन्सरी में पहुँचती है और डॉक्टर के पैर पर बच्चे को रख देती है। डॉक्टर बच्चे को देखकर सुगिया को बताते है कि अब वह मर चुका है। सुगिया गरीबी के कारण अपने छोटे से बच्चे को खो देती है। दुखना की माँ अपने पोते और बेटे की मुत्यु को नहीं झेल पाती और मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

एक बार फिर सुगिया इस दुनिया में अकेली रह जाती है। कोई उसका साथ नहीं देना चाहता। ऐसी स्थिति में वह अकेली एक झोंपड़ी में रहती है और उसका साथ देती है मंगली नामक एक कुतिया। काली–भयावनी रात में सुगिया के अकेलेपन का सहारा वही मंगली बन जाती है। जो प्रेम और स्नेह मनुष्य उसे नहीं दे पाए वह प्रेम मंगली कुतिया से वह पाती है। सुगिया जो कमाती है उसका आधा वह मंगली को खिलाती है और आधे में अपना काम चलाती है। मंगली को वह अपनी बहन–बेटी–माँ या दादी सब कुछ समझने लगती है। सुगिया को तेज़ बुखार होता है, ऐसे में मंगली ही उसके साथ है। वह मंगली से कहती है–

''मंगली तुझमें और मुझमें क्या कर्फ है। तु भी जीवन से हारी, मैं भी हारी। जिएँगे साथ, मरेंगे साथ। तेरे और मेरे दिल को समझने की कोशिश किसने की ? किसी ने तो नहीं।''[54]

गरीबी के कारण मनुष्य की स्थिति पशुओं के समान हो जाती है। अनाथ सुगिया की परिस्थिति एक पशु के समान है, जिसे समझने की कोशिश किसी ने नहीं की। जो हमेशा अकेली ही रही। इस समाज ने उसका उपयोग किया और फेंक दिया। आखिर कब तक सुगिया जैसी युवतियों पर अत्याचार होता रहेगा ? समय से पूर्व ही उसे युवती से स्त्री बनाया जाएगा। ऐसे दुराचारियों को समाज क्यों नहीं सज़ा देता ? वे सरेआम लोगों से मान–सम्मान कैसे पाते हैं। सुगिया को इंसाफ क्यों नहीं मिला ? आदि प्रश्न इस कहानी से उठते हैं।

फ्लेश–बेक में लिखी गई प्रस्तुत कहानी की नायिका सुगिया अपने पर किए गए अत्याचार का विरोध नहीं कर पाती। पेट की भूख के समक्ष वह विवश दिखाई देती है। भाषा पात्रानुकूल है। सुगिया लाचार, विवश दिखाई गई है, वह कुछ ऐसा कार्य नहीं कर पाई जिससे अन्य दलित, गरीब बेबस स्त्रियों को कोई सीख मिल सके या अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने के रास्ता मिल सके।

2. 'अत्तू और अम्मा'– सूरजपाल चौहान

'अत्तू और अम्मा' कहानी सूरजपाल चौहान द्वारा रचित है। प्रस्तुत कहानी में दस–ग्यारह वर्षीय **अत्तू** अपनी माँ के साथ गाँव में रहता था। पिता की मृत्यु हो चुकी थी। माँ गाँव में ठाकुर–ब्राह्मणों के घर सफाई का काम करती थी। माँ स्वयं शिक्षित नहीं थी, इसलिए अपने पुत्र अत्तू अर्थात् अत्तर सिंह को पढ़ा लिखाकर अच्छा आदमी बनाना चाहती थी। गरीब इतनी कि तन ढाँकने के लिए साबूत एक भी कपड़ा न था। अत्तू भी निक्कर का फटा भाग दिखाई न दे, इसलिए कमीज निक्कर के बाहर ही रखता था। एक टूटी–फूटी झोंपड़ी में दोनों रहते थे। उनके पास बटाई पर ली गई एक भैंस थी।

गाँव में दलितों की स्थिति दयनीय थी। उच्च वर्ण के लोग उन्हें बात–बात पर अपमानित करते थे। दलितों के पास उनके द्वारा अपमानति होने, प्रताडित होने पर भी उन्हीं के कदमों में सिर झुकाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। सवर्णों के घर की गंदगी साफ करने पर बासी खाना थोड़ा–सा मिल जाता था, जिससे शरीर को जीवित रखा जा सकता था। अत्तू की प्यासी भैंस बंबे से बहते पानी से प्यास बुझा रही थी। वहीं पर ठाकुर बलवन्त अपने बैल को पानी पिला रहा था। भैंस को पानी–पीते देख ठाकुर के तन–बदन में आग लग गई, क्योंकि जिस ओर से पानी बहकर आ रहा था, भैंस ने वहीं मुह डाल दिया था। एक भंगी की भैंस पानी कैसे पी सकती थी ? ठाकुर पहले भैंस को, फिर अत्तू पर संटियाँ बरसाता है। अत्तू जब रोते हुए घर आता है, तब बीमार माँ उसके चोट के निशान देखकर तिलमिला जाती है। बलवन्त सिंह दरवाजे पर आकर कहता है–

''अरी ओ भंगनिया, तेरे छोरा ने अपनी भैंस को जूठो पानी मेरे बैल कू पिला दीनौ (दिया) आज तो मैंनें छोड़ दियौ.....फिर याने ऐसी हरकत की तो ठौर मार दूंगौ।''[55]

जब मनुष्य से अस्पृश्यता की जाती थी, तो पशु से यह अस्पृश्यता रखना बड़ी बात नहीं, किंतु इस बात से उस गाँव के सवर्णों की मानसिकता का पता चलता है। दलितों को भंगी कहकर वे उन्हें अपमानित करने का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देते थे। उन्हें उनके असली नाम से न बुलाकर अशोभनीय नाम से पुकारा जाता था क्योंकि यह उन्हें बर्दास्त नहीं था, जैसे अत्तर सिंह की जगह 'अत्तू' और 'चित्रा' की जगह 'चित्तरिया' कहकर पुकारते थे। गाँव में रुखे–सूखे निवालों के भी लाले पड़े हुए थे, इसलिए न चाहते हुए भी चित्रा अपने अत्तू को लेकर ठाकुर बलवन्त सिंह के घर जाती थी। अत्तू के बाल–मानस पर इस भेद–भाव को लेकर, अमीरी–गरीबी की इस खाई को देखकर कई प्रश्न उभरते हैं जैसे वह माँ से कहता है–

''अम्मा हम गरीब क्यों हैं ? हमारा घर पोखर के किनारे क्यों है ? अम्मा हमारा घर ठाकुरों–बामनों के घरों जैसा क्यों नहीं है ?''[56]

चित्रा, अत्तू के इन सवालों का उत्तर देने में असमर्थ थी, क्योंकि वह स्वयं नहीं जानती थी, कि ईश्वर ने उन्हें दलित क्यों बनाया है या इतना गरीब, पीडित, अस्पृश्यत, अपमान से भरा जीवन उन्हें क्यूँ मिला है, आखिर उनका दोष क्या है ? ईश्वर ने उनके शरीर की रचना तो सवर्णों की तरह की है, किन्तु सवर्णों को इतनी सुविधाएँ, मान–सम्मान, धन–दौलत, ऐशो–आराम दिया है और उन्हें इससे वंचित भला क्यों रखा हैं ? यह प्रश्न चित्रा का ही नही उसकी तरह की हर माँ और अत्तू जैसे बच्चों के मस्तिष्क में अवश्य आता है।

ठाकुर बलवन्त सिंह उसके घर सफाई काम करने आई चित्रा की आबरु लूटने का प्रयास करता है। जिसके पशु को भी वह अपने पशु से छूत लगने की बात कहता था, वह आज चित्रा जैसी दलित के सौन्दर्य को लूटने के लिए सब कुछ भूलकर स्वयं पशुवत व्यवहार करने लगता है। माँ की चीख सुनकर अत्तू दौड़कर आता है। उसका खून खौल उठता है, जब वह माँ को बुरी हालत में देखता है। वह झाड़ू से बलवन्त सिंह पर प्रहार करता है और ठाकुर से छूटकर चित्रा दूर हट जाती है। अत्तू पर वार करने वाले बलवन्त सिंह के गुप्तांग पर चित्रा पूरी ताकत से प्रहार करती है, जिससे चोट खाकर वह गिर पड़ता है। लोग एकत्र हो जाते हैं। हमेशा की तरह गलती दलित की ही मानी जाती है। कोई चित्रा की सच्चाई को स्वीकारता नहीं। ठाकुर प्रताप सिंह चित्रा को डपटते हुए कहता है–

''अरी ओ भंगनिया, तुझे तो छूने भर से ही छूत लग जाएगी, झूठा आरोप लगाती है.... ठाकुर होकर कोई भला भंगिन से मुंह काला करेगा, अगर अपनी खैर चाहती है तो चली जा यहां से, नही तो मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी।''[57]

जब अन्यायी स्वयं ही न्याय देने वाला हो तब न्याय की उम्मीद भी कैसे की जा सकती है ? चित्रा अपमानित होकर अत्तू के साथ घर लौटती है। अत्तू नहीं जानता था, कि इतने बुरे व्यक्ति के घर माँ क्यों काम करने जाती है ? माँ अत्तू को भूखा मरता नहीं देख सकती थी, इसलिए उसे समझाती है, कि जब तुम पढ़ लिखकर बड़ा होकर नौकरी करोगे तो मैं यह काम छोड़ दूँगी। अत्तू सोचता है, कि पढ़ने–लिखने से आदमी जल्दी बड़ा होता है, इसलिए वह एक रात में ही पढ़ लिखकर बड़ा होकर

अपनी माँ को ऐसे कार्य से मुक्ति दिलाना चाहता है। उसे देर रात तक पढ़ने से चित्रा जब रोकती है, तब वह कहता है–

''माँ, तूने ही तो कहा है कि ज्यादा पढ़ने–लिखने से आदमी जल्दी बड़ा हो जाता है...मुझे रात भर में बड़ा आदमी बनना है, जिससे कि सुबह हम ठाकुर के घर न जाएं और उसकी मार से बच सके।''[58]

अत्तू की बाल–बुद्धि है, किन्तु माँ के अपमान को वह नहीं भूल पाता है। इस तिरस्कृत, अमानित, प्रताडित जीवन से वह हमेशा के लिए मुक्ति चाहता है, जिसके लिए वह हर प्रयास करने को तैयार है।

प्रस्तुत कहानी में चित्रा के माध्यम से दलित कामकाजी महिलाओं के शोषण को प्रस्तुत किया गया है। सवर्ण पुरुषों का अत्याचार, शोषण कहानी में बलवन्त सिंह के पात्र द्वारा देखा जा सकता है। अत्तू के प्रश्नों और समस्याओं को बाल–मनोविज्ञान तौर पर देखा जा सकता है। संपूर्ण कहानी 'अत्तू' और 'अम्मा' दोनों माँ बेटे के इर्द–गीर्द घूमती है, इसलिए शीर्षक उचित है। संवाद छोटे एवं अपने गुणों से युक्त हैं। उद्देश्य की दृष्टि से देखें तो अत्तू में आए बदलाव अर्थात् माँ को शोषण से मुक्त करने के लिए पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बनने का विचार मुख्य है। यह अन्याय, शोषण, अत्याचार, अस्पृश्यता, असमानता आदि से मुक्ति पाना है जो वर्षो से मुक्त होने के लिए तड़प रहे हैं।

3.'मजूरी'–मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित **'मजूरी'** कहानी भद्र पुरुष एवं परिवार के अभद्र व्यवहार को प्रस्तुत करती है। **सुमति** एक मजदूरिन महिला थी। महेश नामक एक धनवान पुरुष सुमति से मजदूरी तो करवा लेता है, किन्तु उसे मजूरी नहीं देता। सुमति गरीब अकेली स्त्री थी, जो अपने भूखे और बीमार बच्चे की दवाई के लिए चिंतित थी। वह कई बार महेश के दरवाजे पर अपनी मजदूरी लेने जाती है, हर बार यही उत्तर मिलता है, कि एकाउटेंट छुट्टी पर है, उसके आने पर मजदूरी मिलेगी। महेश अपने नए घर के गृह प्रवेश के लिए दिल खोलकर खर्च कर रहा है, उसकी पत्नी भी सोसायटी में अपने स्टेटस के अनुसार सारी व्यवस्था करने में व्यस्त है, किन्तु दोनों सुमति की मजूरी के थोड़े से रुपये देने के अपने कर्त्तव्य को नज़अंदाज कर देते हैं।

सुमति अपने अधिकार की, अपने परिश्रम की मजूरी लेने के लिए बार–बार अपमानित होती है। गृह–प्रवेश के दिन महेश का घर महेमानों से भरा था। सुमति एक बार फिर मजूरी लेने पहुँचती है। नौकर उसे भीतर नहीं जाने देता, फिर भी आज वह इंसाफ माँगकर ही रहेगी, यह सोचकर सुमति भीतर घुस जाती है। महेश महेमानों के समक्ष अपने क्रोध को शांत रखकर एक बार फिर पुराना राग आलापता है, कि एकाउंटेट के आने पर मजूरी मिल जाएगी। सुमति के सब्र का बाँध टूट जाता है, वह चीख उठती है और कहती है–

''बता ना कब आयेगा थारा अकाउनटेट। थारे कू झूठ बोलते हुए सरम नई लगै.... ।''[59]

सुमति को महेश से मजूरी तो नहीं मिलती, किन्तु भीड़ में अपमानित हुआ महेश सुमति को दंड देने के लिए अपने कुत्ते को इशारा कर देता है। कुत्ता सुमति पर झपटता है और कई जगह उसे काट लेता है। इतने लोगों की भीड़ मौजूद होने पर भी गरीब सुमति को कोई नहीं बचाता। दर्द से चीखती, तड़पती सुमति पर किसी को दया नहीं आती। एक गरीब की दयनीय दशा सबको आकर्षित तो करती है, किन्तु उसके दुःख को दूर करने या सहायता करने के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। यहाँ मात्र महेश ही नहीं उसके घर आए महेमान भी उसी की तरह की मनोवृत्ति के हैं, ऐसा संकेत मिल जाता है। जैसे एक कहावत है 'चोर चोर' मोसेरे भाई।

सुमति तो उसी रात को दम तोड़ देती है। मरने से पहले अपने बीमार बच्चे से वह कहती है–

> **''बेट्टे याद रखना। महेश नाम है उसका। बड़ा होकर अपनी माँ का हिसाब मांगना उससे। एक–एक पाई वसूल करना।''**[60]

सुमति जैसी मजदूरिन महिला का शोषण महेश जैसा धनवान व्यक्ति करता है। एक गरीब मजदूरिन अपनी मजूरी माँगती है, तो उसे मजूरी तो नहीं मिलती बल्कि उस पर कुत्ता छोड़कर उसे मरने की स्थिति में छोड़ दिया जाता है। सुमति को इंसाफ नहीं मिलता, किन्तु उसकी आखिरी इच्छा यही होती है कि, उसका बेटा उसकी माँ को इंसाफ दिलाए।

4. 'जंगल की रानी'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

'जंगल की रानी' ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित कहानी है। कहानी की नायिका एक आदिवासी युवती **कमली** है। कमली ने मैट्रिक तक पढ़ाई की है। वह पढ़ाई में काफी तेज थी, इसलिए उसके हेडमास्टर उसकी बहुत तारीफ करते है और कमली के पिता को सलाह देते हैं, कि वे उसकी शादी में ज़ल्दबाजी न करें और कमली को अपने पैर पर खड़ा होने दें। हेडमास्टर अपनी स्कूल में ही शिक्षिका के पद पर कमली को लगा देते हैं।

कमली एक आदिवासी युवती थी। 'नया सवेरा' दैनिक का संपादक सोमनाथ जब उसे पहली बार ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर में देखता है तो सोचता है–

> **''जंगल की रानी.....सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा था। वह अपलक उसे देखता रहा था। वह अपने कार्य में व्यस्त थी। सोमनाथ को लगा था कि 'जंगल का फूल....।' सभ्य–समाज में आकर भी अपनी महक बिखेर रहा है। उसे प्रकृति की इस अनुपम रचना पर गर्व हो आया था। मिट्टी की सौंधी–सौंधी गंध ने उसके जिस्म में चमक पैदा कर दी थी...गहरा श्यामल रंग, भरा–पूरा शरीर, चेहरे पर जंगल की ताज़गी.....उसने 'जंगल की रानी' को केमरे में उतार लिया था।''**[61]

कमली के सादगी भरे भोले सौन्दर्य से कार्यक्रम के डिप्टी साहब अधिक प्रभावित होते हैं। उनके भीतर का शिकारी तेंदुआ उस फूल को रौंदने के लिए तड़प उठता है। अपने ऊँचे ओहदे और एस. पी. एवं विधायक की मदद से वे कमली को प्राप्त

करने के लिए षड़यंत्र रचते हैं। ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर के कार्यक्रम के बहाने वे कमली को शहर बुलाते हैं और रात्रि के समय गुंडे भेजकर उसे गेस्ट हाऊस लाते हैं।

कमली को जानवरों की तरह बाँधकर लाया जाता है। जब वह अपने समक्ष तीन शिकारियों को देखती है, तो समझ ही नहीं पाती कि दिन के उजाले में भद्र दिखने वाले ये पुरुष रात्रि के अंधकार में वहेशी जानवर कैसे बन गए। कमली 'जंगल की रानी' थी। वह आसानी से किसी का शिकार नहीं बन सकती थी। वह अपनी नारी शक्ति का परिचय देती हुई तीनों पुरुषों से संघर्ष करती है और सभी को पछाड़ देती है। इस संघर्ष में उसके कपड़े चिथड़े बन जाते हैं, कई खरोचें उसे आती हैं, किन्तु विधायक की गर्दन जब वह पकड़ लेती है, तो विधायक को मृत्यु निकट दिखाई देने लगती है। वह साक्षात् दुर्गा बन जाती है। जीते जी कमली किसी पुरुष के समक्ष हार मानती नहीं है। एस. पी. अपने मित्र को बचाने के लिए कमली की हत्या कर देता है।

'नया सवेरा' का रिपोर्टर सोमनाथ जब महँगी साड़ी में लिपटी कमली के मृत शरीर को रेल्वे ट्रेक पर देखता है, तो उसे शक होता है, कि यह आत्महत्या नहीं, बल्कि हत्या एवं बलात्कार की घटना है। सभी बड़े अधिकारी मिलकर पहले तो कमली का शोषण करते हैं और बाद में उसकी सच्चाई उजागर करने वाले सोमनाथ की हत्या करवा देते हैं।

प्रस्तुत कहानी में फ्लेश बेक पद्धति का प्रयोग बखुबी किया गया है। कमली जैसी कामकाजी युवती का शोषण हमारे समाज और शहर के उच्च अधिकारी करते हैं। यह घटना आज आए दिन समाचार पत्र में देखी जाती है, कि नेता, पुलिस, विधायक, सांसद, मंत्री, डिप्टी आदि जैसे सम्मान जनक पद पर आसीन व्यक्ति किस तरह से सत्ता का दुरुपयोग करते हैं और गरीबों, बेसहारा लोगों पर अत्याचार करते हैं। हमारी कानून व्यवस्था और उसमें भ्रष्टाचार निर्दोष को दोषी और दोषी को निर्दोष बना देती है। जिसके पास धन है, पद है, उसे कोई दंड नहीं दिया जाता। किन्तु कमली जैसी युवतियाँ आखिर कब तक इन दरिंदों के हाथों शोषित होती रहेंगी ? 'जंगल की रानी' होना क्या उसका गुनाह है ? कहानीकार ने उन सभी उच्च अधिकारियों का पर्दाफाश किया है, इस कहानी के माध्यम से, जो दिन में तो न्याय के गीत न गाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में अन्याय एवं अत्याचार करते हैं।

5.'मंगली'–कुसुम मेघवाल

कुसुम मेघवाल द्वारा रचित **'मंगली'** कहानी में **मंगली** एक दलित स्त्री है, जो मजदूरी करती है। घर में पति कई दिनों से बीमार पड़ा है, किन्तु उसके इलाज के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। मंगली जल्द से जल्द पति के पास जाकर उसे दवाईयाँ देना चाहती है, किन्तु ठेकेदार अत्यंत ही सख्त स्वभाव का है, वह मंगली एवं अन्य मजदूरों से अधिक काम करवाता है और काम का समय पूर्ण होने पर भी उन्हें छुट्टी नहीं देता है। मंगली को मजदूरी करने से इतने रुपये नहीं मिलते, जिससे वह पति की सारी दवाईयाँ ले सके। थोड़ी दवाईयाँ ले सके। समय पर दवाईयाँ न मिलने से वह मृत्यु को प्राप्त होता है। मंगली अकेली रह जाती है। मंगली गरीब थी, पति के अंतिम संस्कार के लिए उसके पास रुपये नहीं थे। चंदा इकट्ठा करके थावरा का अंतिम संस्कार किया जाता है।

एक गरीब स्त्री जो मजदूरी करके जीवन निर्वाह करती हो, उसे पति की मृत्यु का शोक मनाने के लिए साल–छं महीने का समय नहीं मिल सकता। पेट की आग

बुझाने के लिए उसे सारे दुःख–दर्द भूलकर मजदूरी करने घर से निकलना ही पड़ता है। अधेडवय का ठेकेदार मंगली को अकेला समझकर उससे हमदर्दी दिखाता है और उसे अपने आउट हाऊट में रहने के लिए अनुमति देता है। मंगली ठेकेदार को बड़ा दयालु समझने लगती है, किन्तु वास्तव में तो ठेकेदार अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अपने खाली जीवन में मंगली को अपनी रखैल बनाकर अपने सूने जीवन में आनंद लाना चाहता था। मंगली ठेकेदार की इस चालाकी को समझ नहीं पाती और अपनी तरह वह दूसरों को भी भोला–भाला और निर्दोष मन का समझती है। जिसे वह रक्षक समझती थी, वह भक्षक निकलता है। ठेकेदार उसे थावरा के दुःख को भूलकर उसके साथ सुखपूर्वक रहने के लिए समझाता है। मंगली पतिव्रता स्त्री थी, वह धन के लोभ और शरीर सुख के लिए अपनी पवित्रता भंग नहीं करना चाहती थी। वह अपनी ओर बढ़ रहे ठेकेदार से कहती है–

> **''खबरदार, मुझे छूने की कोशिश मत करना। मैं एक ब्याहता औरत हूँ।''**[62]

शराबी ठेकेदार ने सोचा था कि मंगली उसकी रखैल बनकर रहेगी तो, किसको पता भी नहीं चलेगा कि उसका संबंध किससे है और रात्रि के समय वह मिलते रहेंगे। मंगली उसके शैतानी रुप को जब जान जाती है, तो कहती है–

> **''ठेकेदार साहब, मुझे नहीं पता था कि आपके अंदर एक शैतान छिपा है और आप मुसीबत में मेरी मदद करने के बहाने अपना उल्लू सीधा करने के लिए मुझे यहाँ लाए हैं। किन्तु मैं भी साफ कहे देती हूँ कि मैं भी एक भीलनी की जाई हूँ जो जंगल में लकड़ियाँ काटते हुए भी बच्चे को जन्म दे देती और अपना नाल स्वयं काटकर बच्चे को गोद में उठाकर घर चली आती है। इसलिए अब और आगे बढ़ने की कोशिश मत करना वरना बकरे–सा काट के रख दूंगी।''**[63]

मंगली आत्मरक्षा के लिए ठेकेदार पर वार करती है, वह बेहोश हो जाता है। मंगली पुलिस स्टेशन जाकर शिकायत दर्ज करवती है। पुलिस उसकी मदद करती है और ठेकेदार को गिरफ्तार करती है।

प्रस्तुत कहानी में मंगली एक कामकाजी स्त्री है, जिसका शोषण ठेकेदार करता है। विधुर ठेकेदार लोभ देकर मंगली को जीतना चाहता है, किन्तु स्वाभिमानी मंगली परिश्रम करके जीवन अकेले बीता सकती थी, किसी की रखैल बनकर आनंद मनाना उसे नामंजूर था।

2.4.पारिवारिक शोषण का शिकार हुई महिलाएँ

1. 'उसका फैसला'–कालीचरण प्रेमी

दलित नारी मात्र सवर्णों के अत्याचार का शिकार बनती आई है इतना ही नहीं परंतु अपने समाज और परिवार के लोगों से भी उसे पीड़ा और दुःख मिलता आया है। प्रस्तुत कहानी की नायिका **बिंदा** अपने ही परिवार के शोषण को सहती है, और जब उसकी सहन–शक्ति खत्म हो जाती है, तो अपना फैसला स्वयं करके, उस कष्ट भरे जीवन से मुक्त हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी में चंदर नामक नामर्द युवक से बिंदो जैसी सुंदर–सुशील, समझदार युवती का विवाह हो जाता है। चंदर के पिता खचेडू, जिसे लोग महाशय जी कहते थे और माँ का नाम लक्ष्मी था। उसकी कमर में कूबड़ होने से लोग एसे कुबड़ी नाम से ही जानते थे। चंदर की कमजोरी गाँव में सभी जानते थे, इसलिए कोई उससे अपनी बेटी की शादी नहीं करना चाहता था, इसलिए अपनी सुशील लड़की को बड़ा दान–दहेज देकर उसका ब्याह कर देते हैं।

बिंदो के हाथों की मेहंदी अभी उतरी भी नहीं थी, कि उसकी सास ने सारे घर की जिम्मेदारी उस पर लाद दी। सुर्योदय से पहले ही वह उठ जाती और घर का सारा काम निबटाकर वह सोने से पहले सास के हाथ–पाँव दबाती। उसकी इतनी सेवा और परिश्रम से भी सास–ससुर उससे खुश नहीं थे। बल्कि उसे दिन–भर ताने दिया करते, जिससे बिंदो का मन दुःखी रहने लगा। नई–नवेली दुल्हन अपनी आँखों में कितने सपने लेकर ससुराल आती है, कि वहाँ उसे प्रेम–अपनापन और पति का साथ मिलेगा जिसे पाकर वह अपने नए जीवन की शुरुआत करेगी। बिंदो के जीवन में शादी के बाद ऐसा कुछ भी नहीं होता। न तो उसे सास–ससुर का स्नेह मिलता है और न ही पति का प्यार। उस घर में वह एक नौकरानी के अतिरिक्त कुछ नहीं थी।

चन्दर पौरुष से हीन व्यक्ति था, फिर भी बिंदो उससे कोई शिकायत नहीं करती, बस अपने बहू होने के कर्त्तव्य का पालन पूरी लगन से करती है। घर में जब भैंस दूध देना बंद कर देती है, तो सास–ससुर कहते हैं–

> **''बहू के पैर अच्छे नहीं हैं। इसके आते ही घर में मुसीबतें आ पड़ी हैं। यह असैनी है, कम्बख्त है। घर का काम–धन्धा ही चौपट हो गया।''**[64]

दलित समाज में अंधविश्वास और रुढ़िचुस्त रीति–रिवाज अधिक होते हैं। शिक्षा का अभाव होने के कारण अंधविश्वास पर वे अधिक विश्वास करते हैं। बिंदो जैसी गुणी बहू पर भी वे उस पर शंका करते हैं और अत्याचार करते हैं। धीरे–धीरे उनका अत्याचार बढ़ने लगता है। अब वे उसे जंगल–बाहर का सारा काम सौंप देते हैं। एक दिन दोपहर में प्रधान का लड़का अकेलेपन का फायदा उठाकर उसे दबोच लेता है। लुट–पिट कर रोती हुई वह घर आती है। उसका साथ देने की जगह पति, सास–ससुर उसी की गलती बताने लगते हैं कि–

> **''तू ही कुलटा है। जंगल में गुलछर्रे उड़ाती फिरती है। अब रोने का नाटक करती है।''**[65]

बिंदो यहाँ दोहरे शोषण का शिकार बनती है, एक और सवर्ण समाज का युवक उसका शारीरिक शोषण करता है, दूसरी ओर उसी का परिवार उस पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार करते हैं। निर्दोष होने के बाद भी उसे दोषी कहा जाता है। वह दोषी है यह सिद्ध करने के लिए पंचायत बुलाइ जाती है, जिसमें बलात्कारी बेटे के प्रधान बाप के फैसले से बिंदो क्या उम्मींद रख सकती थी?

बिंदो जानती थी, कि इस पंचायत में एक तरफ फैसला किया जाएगा। जब उसका परिवार ही उसके खिलाफ है, तो भला प्रधान उसे निर्दोष क्यों कहेगा। पिता समान ससुर भी मौका पाकर उसकी अस्मत लूट लेता है। तब भी चन्दर बिंदो को दोष देता है। ऐसी परिस्थिति में बिंदो अपमानित होकर अपने मायके नहीं जाना चाहती। वह जानती थी, कि फैसला उसके हक में नहीं होगा। इसलिए जब चंदर उसे पंचायत में ले

जाने के लिए उसके पीछे भागता है, तो वह कुएँ में कूदकर अपना फैसला स्वयं कर लेती है। पारिवारिक शोषण बिंदो को आत्महत्या के लिए मजबूर कर देता है।

2 'बंदरिया'– लखनलाल पाल

'बंदरिया' कहानी का नायक अरुण एक शिक्षित युवक है। वह शहर में नौकरी करता है। तीन वर्ष बाद वह गाँव में अपने माता–पिता के पास जाता है, तो गाँव का वातावरण, रहन–सहन, दीनचर्या आदि देखकर उसे सुहानी की याद आती है। सुहानी उस गाँव की नवेली दुल्हन थी। उसकी सुन्दरता की चर्चा पूरे गाँव में फैली थी। उसे देखकर गाँव का हर आयु का पुरुष उसे पाने को तरसता। सुहानी में सुन्दरता के साथ–साथ, समझदारी, स्पष्टवक्ता, परिश्रम, तर्क, चतुराई आदि गुण भी थे। उसे गाँव की अन्य औरतों की तरह पूरा घूँघट निकालना पसंद नहीं था। वह आधा घूँघट काढ़कर चलती थी। गाँव की महिलाएँ उसकी इस हरकत से ईर्ष्या करने लगीं। उसके पति झल्लन के कान में भी यह बात पहुँचती है। अपनी इज्जत–आबरु पर ठेस पहुँचाने वाली सुहानी से वह कहने लगा–

''रास्ते में थूथर उधार के काहे चलती हो ?''
सुहानी ने अपनी बड़ी–बड़ी आँखों से झल्लन की तरफ देखा। वह लापरवाही से बोली– ''थूथर उधार लओ तो का हो गओ। सबरी बइरें (औरतें) थूथर–ई ढाके रहात का।''
''नवेली बहुए परदा करके चलती है। तू अभी से दाई बन गई ?''
"बड़ी जिज्जी तो परदा नईं करत। मोकों अलग से परदा है का ?''
''भौजी को दो लड़का हो गए। तू ओकी बराबरी करिहै का ?
झल्लन भगभकाया''
''दो लड़का जलमे से परदा खतम हो जाता का ई गाँव में ?''
सुहानी पर झल्लन की भभकी का कोई असर नहीं हुआ।
"परदा न करने वाली बइरें बिगर जात। समझी।"
झल्लन सुहानी पर अपना पूरा रौब झाड़ रहा था।
''बिना परदा करने वाली सब बइरें बिगर गई का ? आजकल सहर में तो कोऊ परदा नइ करत।''
''सहर की बात छोड़। मैं कहत कल से तू मुंह ढाक के बाहर निकला कर।''
"'मो से नई होत ई सब।" सुहानी ने दो टूक जवाब दे दिया।'' [66]

उपर्युक्त संवाद में सुहानी उस परंपरा का विरोध करती है, जिसके तहत नई बहुओं को परदा करना आवश्यक माना जाता था। अपने पति के हर प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर उसके पास है। वह घूँघट की शरम को नहीं, आँखों की शरम को अधिक महत्त्व देती है। झल्लन उससे तर्क में हार जाता है, तो उस पर हाथ उठाता है। सुहानी उसका हाथ पकड़ लेती है।

झल्लन अपने बड़े भाई गौरीशंकर के साथ एक घर में रहता था। दिखने में झल्लन और सुहानी की जोड़ी बहुत अच्छी थी, किन्तु यह कोई नहीं जानता था, कि झल्लन में पौरुष की कमी है। वह सुहानी की जवानी की दहकती आग के सामने सूखे पत्ते के समान था। सुहानी अपने वैवाहिक जीवन के अधूरेपन को बहुत समय तक छुपाए

रखती है, किन्तु आखिर वह भी स्त्री थी, अपना दुःख उसके मुँह से किसी स्त्री के समक्ष निकल गया। झल्लन के संबंध में यह बात पूरे गाँव में फेल गई।

झल्लन शराबी तो नहीं था, किन्तु जुए की लत उसे थी। वह सुहानी के गहनों को जुए में हार जाता है, इसके अतिरिक्त गाँव के ब्राह्मण अवधू पंड़ित से सूद पर रुपये लेकर भी रुपये हार जाता है। पति द्वारा चोरी करना, जुआ खेलना, कामचोरी करना, गाली–गलौज करना आदि बातों से सुहानी दुःखी रहती थी। सास–ससूर की मृत्यु के बाद जेठ–जेठानी उसे अलग कर देते हैं। जेठानी हैजा की चपेट में आकर मर जाती है, और उसके पुत्र–पुत्री की जिम्मेदारी फिर सुहानी पर आती है। झल्लन सूद पर लिए रुपये लौटाने में असमर्थ था, इसलिए घर छोड़कर भाग जाता है। पति के इस कदम से सुहानी और अधिक अकेली हो जाती है, क्योंकि अब गाँव का हर पुरुष उस पर अपना अधिकार जमाने के लिए कोशिशें करने लगा था।

अवधू पंड़ित सुहानी से छेड़–खानी करता है, उसके अकेलेपन का फायदा उठाना चाहता है। सुहानी का जीवन संघर्षों से घिर जाता है, पति उसे समस्या के बीच छोड़कर चला जाता है। इसी बीच अरुण और सुहानी की मुलाकात होती है। सुहानी को पूरे गाँव में मात्र अरुण ही अच्छा व्यक्ति लगता था। अकेली सुहानी पर पूरे गाँव में स्त्री–पुरुष सभी चरित्रहीन होने का आरोप लगाने लगते हैं। सुहानी अकेले ही सबसे सामना करती है, किन्तु किसी से कभी नहीं डरती। आए दिन सुहानी को परेशान करने वाले अवधू पंड़ित जब उसके नज़दीक आना चाहता है तब वह कहती है–

''पंड़िज्जी, तुम्हाई घरवाली नहियां का।''
''है, काये नहियां, बिल्कुल है पर जो बात तोमें है ऊमें निहयां।''
हममें और तुम्हारी घरवाली में का अन्तर है ?
''बहुत अन्तर है सुहानी" अवधू रिरयाया–"तोरी चाल कौ दिवानौं हों मैं। जब तोरे कूल्हे मटकत हैं तो संगीत की स्वर तहरियां फूटत।''
कोट मरिज करवा ले मोसे.....अपनी घरवाली बना ला,''[67]

अवधू जैसे लम्पट व्यक्ति के सारे पासे उल्टे पड़ जाते हैं। सुहानी चतुराई से काम लेती है, वह अवधू की रखैल नहीं बनना चाहती और न ही उसकी पत्नी बल्कि वह अवधू को एक ऐसे जाल में उलझाकर छोड़ना चाहती है, जिससे वह कभी बाहर न आ पाए और न ही उसे परेशान कर सके। अवधू फिर भी जबरन उसे पाना चाहता है, सुहानी के पास ब्रह्मास्त्र भी था। वह अवधू को चेतावनी देती है, कि यदि उसने कुछ गलत किया तो बलात्कार के आरोप में वह उसे जेल भिजवाएगी। अवधू ब्रह्मास्त्र का घाव नहीं सह पाता और डरकर चुप हो जाता है। वह जाते–जाते बड़बड़ाती है–

''बरगओ बभना दिमाग खराब कर देत। ऊसे गगरी नई छुवन देत,
गोड़न में गोड़े बिंधाने से छूत नई लगत। सुहानी को सिखाउत।''[68]

सवर्ण अवधू सुहानी को अपना घड़ा नहीं छूने देता क्योंकि वह दलित है, किन्तु उससे शारीरिक संबंध बनाने में उसे कोई संकोच नहीं था। सुहानी के पति ने उसे धोखा दिया था, जिसके कारण गाँव की औरतें भी सुहानी को ही दोषी मानकर उसे ताने देती रहती थी। पुरुष वर्ग भी सुहानी को पाने के लिए सारे दाव–पेच आजमा रहा था, अवधू पंड़ित अपने सूद के रुपये एवं सूद दोनों सुहानी से वसूलने के लिए तत्पर था। ऐसी स्थिति में भी सुहानी अपने चरित्र की रक्षा करती है। वह खेती करके दो वर्ष में

अवधू का मूल धन उसे लौटाती है और अपने पति द्वारा की गई गलती की सज़ा स्वयं भूगतती है। किसी धोखेबाज़ लंपट के साथ वह जीवन नहीं बीताना चाहती, इसलिए गाँव के सीधे–सादे बूढ़े व्यक्ति के साथ रहने लगती है। तीन वर्ष तपस्या की तरह तन तोड़ परिश्रम करने वाली सुहानी को अरुण उसकी चंचलता के कारण बंदरिया कहता था, आज बीस की उम्र में चालीस की दिखने लगी। उसकी सुकुमारता, सुंदरता, चुलबुलाबपन, चंचलता सभी को तीन वर्षों के संघर्ष ने छीन लिया।

पुरुष के गुण न होने पर भी झल्लन सुहानी जैसी सुंदरी से विवाह करता है और कर्जा लेकर उसे छोड़कर भाग जाता है। निर्दोष सुहानी पति के गुनाहों की सज़ा भुगतती है और बूढ़ व्यक्ति के साथ जीवन बीताने एवं अकेले न को दूर करने के लिए विवश होती है। इस कहानी को लेखक ने फ्लेश बेक शैली में प्रस्तुत किया है। गाँव का वातावरण, परंपरा, रहन–सहन आदि के वर्णन से कहानी के देशकाल–वातावरण का एक साकार चित्र उभरकर हमारे समक्ष आता है। भोजपुरी बोली के संवादों से पात्रों की चरित्रगत विशेषता को प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण वातावरण में लिखी गई यह कहानी झल्लन की कायरता एवं सुहानी के साहस को प्रस्तुत करती है। भेड़ियों से घिरे होने के बावजूद सुहानी अपनी आत्मरक्षा करने में सफल होती है। झल्लन से मिले धोके के कारण वह किसी युवक, या पुरुष पर भरोसा नहीं कर पाती। इसीलिए एक बुजुर्ग को अपना साथी स्वीकार कर लेती है।

सुहानी के जीवन में जिनते भी दुःख या संघर्ष बाहरी पुरुष–स्त्री के कारण आते हैं, उनसे अधिक दुः,खी वह अपने पति के व्यवहार कमजोरी, कायरता के कारण होती है। बाहरी व्यक्ति जब शोषण करता है, तब घर के लोग उसे हिम्मत देते हैं, किन्तु जब परिवार वाले या जीवन–साथी धोखा दे, तो स्त्री कहाँ जाएगी। कौन उसे सहारा और हिम्मत देगा ? यह प्रश्न हमारे समक्ष इस कहानी से उभरकर आता है।

3.'सुनीता'–रजत रानी 'मीनू'

'सुनीता' रजतरानी मीनू द्वारा रचित कहानी है। प्रस्तुत कहानी में दलित परिवार में जन्मी **सुनीता** के जीवन संघर्ष को चित्रित किया गया है। सुनीता के माता–पिता पुत्री से अधिक महत्त्व पुत्र को देते थे, क्योंकि पुत्रियाँ तो दूसरे के घर जाएँगी और पुत्र ही वंश चलाएगा। सुनीता के पिता अपनी पुत्री की पढ़ाई के प्रति लगाव को उचित नहीं ठहराते और कहते हैं–

> **''ए सुनीता, कान खोलकर सुन। हमें तुम्हें कलट्टर–वलट्टर तो बनाना नहीं। वैसे भी तू पराये घर जाएगी तो चिट्ठी–पत्री लायक थोड़ी सी पढ़ जा। वंश तो लल्ला ही चलाएगा।''[69]**

सुनीता के पिता छेदालाल अपनी पुत्री को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना की पुत्र को। पुत्र को अंग्रजी मीडियम की अच्छी स्कूल में और अच्छी सुविधाएँ भी देते हैं, जबकि सुनीता के प्रति अपने कर्त्तव्य को इतना महत्त्व नहीं देते। सुनीता की माँ भी अपनी पुत्री एवं पुत्र में भेदभाव करती हैं। वे सुनीता की पढ़ाई से अधिक महत्त्व घर के कामों और छोटे भाई की देखभाल को देती हैं।

सुनीता को एक ओर अपने परिवार से संघर्ष करना पड़ता है, तो दूसरी ओर समाज के सवर्ण लोगों से। जिस गाँव मे वह रहती थी, वहाँ दलित युवतियों को शिक्षा देना बुरा कहा जाता था। बुरी नज़र डालने वाले सवर्ण उसे व्यंग्य से कहते–

''चमारी पढ़–लिखकर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग तो लड़कियों का पढ़ाना जरुर नहीं समझते, पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।''[70]

दलित स्त्री का दोहरा शोषण होता है। वह दलित एवं सवर्ण समाज उसकी शिक्षा एवं प्रगति में बाधा डालता है। सुनीता हार नहीं मानती, परिवार के नकारात्मक वातावरण में भी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम करती है और ट्यूशन करके अपनी शिक्षा के लिए आर्थिक रुप से स्वनिर्भर बनती है। वह बी. ए. करके टीचर बनती है। बाद में एम. ए., एल. एल. बी. की शिक्षा पाकर आई. ए. एस. बनना चाहती है। दहेज न दे पाने की स्थिति में छेदालाल उसके विवाह की व्यवस्था नहीं कर पाता। सुनीता को पिता समान ही एक राजनीतिक गुरु मिल जाता है। सुनीता उनके मार्गदर्शन से अपनी अच्छी भाषण कला के कारण राजनीति में प्रवेश करती है। दो बार चुनाव में हारकर वह तीसरी बार जीतती है और सांसद बन जाती है। वह अपने समाज के हित के लिए राजनीति में प्रवेश करती है। उसके सांसद बनने से उसके परिवार और गाँव के सवर्ण–दलित सभी लोग जो अब तक उसकी शिक्षा के विरोधी थे, उसकी प्रगति के काँटे थे, वे सभी अब उसके आगे–पीछे घूमनें लगते हैं। सुनीता अपने माता–पिता के मस्तिष्क में पुत्री और पुत्र के बीच के भेदभाव को अंत में मिटा देती है। पिता अपनी पुश्तैनी–रुढ़िगत सोच के पुरुष अहम् और मनुवादी–व्यवस्था की दी हुई हीन भावना को भूलकर बेटी पर गर्व महसूस करते हैं।

प्रस्तुत कहानी में सुनीता पारिवारिक शोषण को झेलती है। वह दोहरे शोषण को सहकर भी कमजोर नहीं बनती, बल्कि दुगनी शक्ति से परिश्रम करके अपनी शक्ति का प्रमाण सबको देती है। सुनीता की शिक्षा, उसके अच्छे, सच्चे विचार एवं अच्छे गुरु का मार्गदर्शन उसके लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। कहानी में संवाद कम है। सुनीता के मात्र दो ही संवाद दिए गए हैं। सुनीता जैसे पात्र दलित महिलाओं के लिए प्रेरणा का रुप है। जब तक स्त्री स्वयं शिक्षित नहीं बनेगी, तब तक वह अपने आपको समाज के रुढ़िगत, परंपरागत, बंधनों से मुक्त नहीं कर सकती । यदि उसे अपना अस्तित्व, अपनी अस्मिता को बचाना है, तो उसे स्वयं से पहल करनी होगी, चाहे परिवार साथ न दे, फिर भी उसे हार नहीं माननी चाहिए, क्योंकि उगते सूर्य को तो सभी नमस्कार करते हैं।

4. 'मेरा समाज'– डॉ. सुशीला टाकभौरे

डॉ. सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित **'मेरा समाज'** कहानी में उन्होंने दलित समाज एवं परिवार में दलित महिला की कैसी स्थिति होती है, उस पर प्रकाश डाला है। साथ ही दलितों की प्रगति में बाधक तत्त्वों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। लेखिका जिस दलित समाज से संबंध रखती है, वहाँ पुरुष प्रधान समाज है। अधिकतर पुरुष शराब पीते हैं और नशे में जानबुजकर झगड़े में अपना समय, शक्ति का व्यय करते हैं। वाल्मीकि समाज के लोग अपने परंपरागत कार्य को ज्यादा आरामदायक समझते हैं, क्योंकि सुबह दो–तीन घंटे के बाद वे स्वतंत्र रुप से घूम–फिर सकते थे। नौकरी के अभाव में शिक्षित युवक भी इसी काम में लग जाते थे। लेखिका को ऐसी विचारधारा रखने वालों पर गुस्सा आता है, जो अपने सफाई कार्य से इस तरह चिपके रहते हैं और सम्मान पूर्ण कार्य का तिरस्कार करते हैं।

लेखिका जिस समाज में रहती है, वह उस वाल्मीकि समाज में स्त्रियों कि दयनीय स्थिति है। घर में अधिकतर पुरुष अपने सफाई के कार्य को पत्नी और बच्चों के हाथों सौंपकर स्वयं आराम से पड़े रहते हैं। इसी कार्य से स्कूल के बच्चे उनसे नफरत करते हैं और इस भेदभाव के व्यवहार से बच्चे आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते। लड़कियों को भी शादी के बाद इसी कार्य में लगा दिया जाता था । बहू नौकरी भी करती और बच्चे–घर का कार्य भी सँभालती। इसके बावजूद रात–दिन पति की मार, सास की गालियाँ और ननद के ताने सुनती रहती। दलित स्त्री को परिवार के अत्याचार से छुटकारा कभी नहीं मिल पाता लेखिका के विचार इस प्रकार हैं–

> **''यह एक परंपरा चली आ रही है कि–अपनी जवानी से बुढ़ापे तक सास पिटती रहती थी, यही बात आने वाली बहू के साथ होती थी। पति शेर जैसा दहाड़ता, दुश्मन जैसा मारता, पत्नी रोती रहती फिर भी रोते–रोते घर का पूरा काम करती खाना बनाती सबको खिलाती, कभी थोड़ा, स्वयं भी खा लेती नहीं तो भूखी ही रह जाती। वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा इस तरह करती थी कि–एक दो साल में शायद उसकी स्थिति बदले या एक दो बच्चे हो जाने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेंगे या फिर बहुएँ आने के बाद स्थितियाँ बदल जायेंगी–इसी प्रतीक्षा में पूरा जीवन निकल जाता था।''**[71]

यहाँ पारिवारिक शोषण का शिकार हुई दलित महिलाओं की स्थिति को लेखिका ने बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। दलित स्त्री का शोषण बाहरी के साथ–साथ उसके अपने पारिवारिक सदस्य भी करते हैं। कम उम्र में विवाह कर दिए जाने पर शिक्षा के अभाव में ऐसी स्त्रियाँ जीवनभर सुख की आशा में दुखी जीवन व्यतीत करती हैं। लेखिका अपने जीवन को ऐसा दुःखी नहीं बनाना चाहती। इसलिए उच्च शिक्षा पाकर अपने जीवन का अपनी ईच्छानुसार जीना चाहती हैं। यह समाज तभी सुधर सकता है, जब उसकी महिलाओं में जागरुकता आए, शिक्षा आए और आत्मनिर्भरता के भाव जागें।

लेखिका ने दलित समाज में स्त्रियों की स्थिति और शिक्षा का अभाव दोनों को जोड़कर रखा है। साथ ही पूरुषों की नशेबाजी, कमजोरी एवं स्त्रियों पर अत्याचार को उनकी अद्योगति का कारण माना है। यह कहानी आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई है। दलित समाज के वातावरण को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कहानी का उद्देश्य दलित समाज को आईना दिखाकर उसमें सुधार लाना है।

2.5 आर्थिक स्वतंत्रता की चाह

1.'अम्मा'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'अम्मा'** कहानी की नायिका **'अम्मा'** गली–मुहल्लों में घर–घर जाकर सुबह–सुबह शौचालय की सफाई का काम करने वाली महिला है। यह काम उसे अपने घर को आर्थिक रुप से मदद मिल सके इसलिए शुरु करना पड़ा अन्यथा गाँव के शुद्ध वातावरण में केवल खेती का काम ही किया था। शहर में शादी हुई और घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उसे लोगों के घर–घर

जाकर उनका मैला साफ करने जैसा गंदा काम करना पड़ा। अपनी सास से उसे अच्छी ट्रेनिंग मिल गई थी, कि किस तरह यह काम किया जाना चाहिए। अम्मा का पति सुकडू नगरपालिका में सफाई कर्मचारी है, जिसकी तनख्वाह मामूली थी। सास–ससुर, देवर–देवरानी और उसका एक बेटा अम्मा के तीन बच्चे, दो बेटे शिवचरण और बिसन और एक बेटी किरनलता, इस तरह दस प्राणी थे। इतने बड़े परिवार का भरण–पोषण सुकडू के वश की बात नहीं थी। अम्मा पंद्रह घरों में काम करके अपने परिवार का सहारा बनती है।

अम्मा भले ही गरीब है, जमादारिन है, दलित है, स्वाभिमानी और परिश्रमी है। उसकी दृष्टि में एक स्त्री के पास चरित्र से बढ़कर कीमती चीज कुछ नहीं। इसीलिए जब उसे पता चलता है, कि उसकी मालकिन मिसेज चोपड़ा का किसी पराए आदमी के साथ संबंध है तो वह सोचती है कि–

> **''चोपड़ा बहन जी इतनी अच्छी हैं फिर भी एक पराए मर्द के साथ....छि.... छि....कहते हुए भी शर्म आती है।''**[72]

मिसेज चोपड़ा ने अम्मा के परिवार की मदद कई बार की थी। अम्मा उसका सम्मान करती थी, किन्तु वह चरित्रहीन है, यह जानकर उसे मिसेज चोपड़ा से नफरत हो जाती है। मिसेज चोपड़ा का प्रेमी विनोद जब मौका पाकर अम्मा को अपनी ओर खींच लेता है, तो अम्मा झाडू से उसकी इतनी पीटाई करती है, कि उसका हाल बेहाल हो जाता है। गालियाँ देते हुए वह मिसेज चोपड़ा से कहती है कि–

> **''भैण जी इस हरामी के पिल्ले से कह देणा...हर एक औरत छिनाल ना होवे है।''**[73]

अम्मा, विनोद की वहशीयत के समक्ष कमजोर न पड़कर उसका तगड़ा जबाब देती है। साथ ही यह सिद्ध कर देती है कि हर औरत चरित्रहीन नहीं होती, वह गरीब है, किंतु मेहनत करके कमाती है, कोई गलत काम नहीं करती। उस दिन के बाद अम्मा उस घर में काम करने नहीं गई।

अम्मा ने अपने बच्चों को पढ़ाया–लिखाया, ताकि उन्हें कोई नौकरी मिल सके। वह नहीं चाहती थी, कि जो काम उसे करना पड़ा, उसके बच्चे उसी गंदगी में आएँ। उसकी मेहनत रंग लाती है। बड़ा बेटा शिवचरण दसवीं पास करके नगर–पालिका में क्लर्क की नौकरी करने लगता है। घर की स्थिति धीरे–धीरे सुधरने लगती है। अम्मा के नाती–पोते हो जाते हैं, बेटी की शादी भी हो जाती है। जब अम्मा को यह पता चलता है कि उसका बेटा रिश्वत लेकर काम करता है, तब उसका सख्त विरोध करती है वह अकेले ही बुढ़ापे में परिश्रम करके जैसे–तैसे जीवन व्यतीत करने को तैयार थी, किंतु बेटे की बेईमानी की कमाई पर वह जीवन निर्वाह करना नहीं चाहती है।

कहानी में अम्मा के पात्र में दलित नारी के परिश्रमी, ईमानदारी, स्वाभिमानी एवं नैतिक गुणों के साथ आदर्श माँ के गुण भी पाये जाते है।

2.'चिड़ीमार'–ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित **'चिड़ीमार' सुनीति** नामक दलित युवती की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। नगरपालिका की नौकरी से रिटायर पिता हमेशा बीमार रहने लगते हैं। माँ पति और बेटी की चिंता में दुःखी रहती है। सुनीति अधूरी पढ़ाई में ही घर की जिम्मेदारियों को अपने कंधे पर लेती है। सुनीति अपने परिवार को आर्थिक रुप से सहायता देना चाहती है। जिस समाज में वह रहती है, वहाँ लड़कियों को अधिक पढ़ाया नहीं जाता। बड़ी होते ही उन्हें घर पर बैठा दिया जाता है और विवाह कर दिया जाता है। लड़कियों का नौकरी करना दलित समाज में कम ही देखा जाता था, किन्तु सुनीति ऐसे वातावरण में भी लीक से हटकर आत्मविश्वास और दृढ़ता से नौकरी करके अपने घर को बेटे की तरह सहयोग देना चाहती है। उसका यह मार्ग इतना सरल नहीं था। अधूरी शिक्षा, जाति, क्षेत्रीयता, तो कहीं लड़की होने के अभिशाप आदि के कारण नौकरी मिलना कठिन होता जा रहा था। सुनीति का मनोबल कभी–कभी टूटने लगता था, किन्तु फिर वह निराशा से निकलकर उससे मुक्त होने की कोशिश करने लगती थी। ऑफिस में कई बार लोग उसे डराने–धमकाने की कोशिश करते, भीतरी रुप से वह डरती थी, किन्तु बाहरी तौर से वह अपने चेहरे पर अपना डर नहीं आने देती थी।

सुनीति और उसके परिवार को जानने वाला सवर्ण, आवारा गुल्लू अपने दो साथियों के साथ बीच रास्ते में सुनीति को रोककर उसे छेड़ते, भद्दे, अश्लील इशारे करते, सुनीति निडरता से उनका सामना करती। माँ उसकी समस्या को भाँप जाती है, इसलिए सुतेज नामक युवक को सुनीति की सहायता के लिए भेजती है। सुनीति अपनी लड़ाई स्वयं लड़ना चाहती है, इसलिए वह सुतेज से कहती है–

> **''मैं उनसे नहीं डरती.....एक बार उस मोटू को थप्पड़ जड़ चुकी हूँ तब से हर रोज़ वह मुझे भंगिन कहकर चिढ़ाता है। कभी जमादारनी, तो कभी मेहतरानी कभी चूहड़ी.....मैं अनसुना करके निकल जाती हूँ।''**[74]

परिवार को आर्थिक रुप से मदद करने वाली सुनीति सवर्णों द्वारा किए जाने वाले अपमान को अनदेखा इसलिए करती है, क्योंकि यदि माँ को पता चल गया, तो वे उसे नौकरी नहीं करने देंगी। सुतेज स्वयं दलित था। वह सुनीति को इस लड़ाई में अकेला नहीं छोड़ सकता था। वह स्वयं गुल्लू के मुँह से सुनीति के लिए अपशब्द सुन चुका था। सुतेज लोहे के सलिए से गुल्लू और उसके साथियों की पीटाई करता है। सुतेज को पुलिस पकड़ना चाहती थी, किन्तु सुनीति गुल्लू की सच्चाई बताकर उसे उसके किए की सज़ा इंस्पैक्टर से दिलवा देती है।

सुनीति जैसी पढ़ी–लिखी दलित युवती अकेले ही सवर्ण समाज से संघर्ष करके अपने परिवार को आर्थिक रुप से मदद करना चाहती है। सुतेज अवश्य ही उसकी सहायता करता है, क्योंकि वह दलितों की इस यातना का अंत चाहता था। दलित युवतियाँ, स्त्रियाँ अपने घर, समाज, के साथ–साथ उन लोगों से भी संघर्ष करती है, जिनके साथ उसे काम करना है। सवर्ण युवती की अपेक्षा दलित युवतियों के प्रति अधिकारियों का दृष्टिकोण कुछ अलग ही होता है। कहानी का शीर्षक 'चिड़ीमार' एक व्यंग्य है सवर्ण गूल्लू जैसे युवकों पर, जो अपनी ताकत का दुरुपयोग करते हैं और अपने अहंकार को तृप्त करते हैं। किसी निर्दाष, कमजोर, निहत्थे पर अत्याचार करने

वाला 'चिड़ीमार' ही कहा जाएगा। कहानी में दलित युवकों का भी अधिकारियों द्वारा शोषण, अपमान होते दिखाया गया है, स्वयं इंस्पेक्टर वर्मा को इसलिए एस.पी. अपमानित करता है, क्योंकि उसने एक सवर्ण डॉक्टर से पूछताछ की थी। कानून के रक्षक को जब स्वयं ही अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता हो, वहाँ सुनीति या सुतेज के लिए यह लड़ाई सरल नहीं है।

2.6 परिवार में पति की भूमिका

1.'मरीधार'–विजय कांत

प्रस्तुत कहानी का नायक चमकू दलित है। यह कहानी फ्लैशबेक में रची गई है। चमकू जेल से छूटकर आता है। मरीधार में बनाए अपने घर कि ओर जाते हुए वह अत्यंत प्रसन्न है, क्योंकि कई महिनों बाद वह अपनी पत्नी सुगिया और पुत्र गोनरराम से मिलने वाला है। रास्ते में गजधारी ठाकुर बैलगाड़ी पर जाता दिखाई देता है, जिसे देख कर उसे पुरानी बातें याद आने लगती हैं।

चमकू दस ठाकुर खानदानों का इकलौता मेहतर था। वह इन ठाकुरों के घर का मैला ढोकर ले जाता था। चमकू को यह काम अच्छा नहीं लगता था, इसलिए उसने निर्णय कर लिया कि वह आदमी होकर आदमी का मैला नहीं उठाएगा। चमकू के फैसले पर ठाकुर उसे गालियाँ देते हैं, उसकी पीटाई करते हैं, लेकिन चमकू चट्टान बना रहता है। सुगिया भयभीत होती है। वह चमकू को समझाती है, कि यदि वह यह काम नहीं करना चाहता, तो वह स्वयं यह काम कर लेगी किंतु ठाकुरों से दुश्मनी करना उनके लिए ठीक नहीं है। चमकू नहीं चाहता था, कि जो काम आज वह कर रहा है, पुश्तों से उसके पूर्वज करते आए हैं ऐसा गंदा काम उसके होनहार बेटे गोनरराम को करना पड़े। चमकू को अपने परिश्रम पर भरोसा था। सुअर को पालकर वह अपना गुजारा करने का निर्णय लेता है। बेगार काम करने से वह सुअर पालन के काम को अच्छा समझता है। सुगिया का मन चमकू की हिम्मत को देखकार धबराता है वह कहती–

"वो जान के गाहक बन जाएँगे चमकू। टोक बरदाश्त नहीं होता इ सांपन को। इ का डर मानों, ना तो सब माटी कर देगे, जी जान, जोरु सब।"[75]

सुगिया जानती थी, कि चमकू के फैसले से ठाकुरों की हवेली का इंतजाम बिगड़ गया था। चमकू की बढ़ती हिम्मत को वे किसी भी कींमत पर बरदाश्त नहीं करेंगे। इसलिए वह चमकू को समझाने का प्रयत्न करती है, किन्तु वह नहीं मानता। आखिर सुगिया को जिस बात का डर था, वही होता है। बदले की आग में जलता ठाकुर चमकू के सुअरों की हत्या करवा देता है। वे चमकू पर इल्जाम लगाते हैं, कि उसके सुअरों ने उनके खेत खराब कर दिए थे। चमकू क्रोध में आकर ठाकुरों का कलेजा बींधने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन एक बार फिर सुगिया उसे रोक लेती है, यह कहकर कि उसके माता–पिता बहन को इन्हीं ठाकुरों ने मार दिया था, वह नहीं चाहती कि उसका एक मात्र सहारा भी उससे छीन लिया जाए।

परमसिंह ने सुगिया के बाप को नंगा उलटा लटकाकर मारा था। उसका दोष इतना ही था, कि उसने परमसिंह के बेटे की शिकायत की थी, कि वह गाँव की औरतों–लड़कियों को छेड़ता है। सुगिया की माँ, उसकी बड़ी बहन यहाँ तक की दस

साल की सुगिया का बलात्कार किया गया था। चमकू, सुगिया के जीवन की सारी सच्चाई जानता था। इसलिए वह उसे अपनी ओर से कोई दुःख नहीं देना चाहता था।

चमकू बाँस से तरह–तरह की चीजें बनाना जानता था। उसकी कारीगरी के बल पर वह एक बार फिर नए सपने देखने लगता है। बड़ी मुश्किल से पाँच कोस दूर गाँव से बाँस लाकर तीनों मिलकर सुन्दर वस्तुएँ बनाते हैं और हाट में उसे बेचते हैं। एक बार फिर खुशियाँ उनके घर लौट आती हैं। ठाकुर से यह खुशी देखी नहीं जाती। जो व्यक्ति उसकी गुलामी नहीं करता, वह उसे छोड़कर सुखी कैसे रह सकता है? ठाकुर के इशारे पर चमकू का घर जला दिया गया। एक बार फिर चमकू, सुगिया और गोनरराम के सपने अधूरे रह गए। इस बार ठाकुर उन्हें उस भूमि से हटा देता है, जिस भूमि पर उसके पूर्वजों ने डेरा जमाया था। ठाकुर, सुगिया के रुप सौन्दर्य को देखकर अपना अगला वार तैयार कर लेता है।

जीवन से हताश, निराश होकर चमकू मरीधार अर्थात् जहाँ मरे हुए पशु फेंके जाते हैं, ऐसी भूमि पर जाकर अपना बसेरा बनाता है। बड़ी मुश्किल से वहाँ पर वह खेती करने योग्य जमीन तैयार करता है। तीनों मिलकर दिन–रात परिश्रम करके वहाँ अच्छी फसल लगाते हैं। अच्छी फसल देखकर ठाकुर उससे अपना हिस्सा माँगने आता है। ठाकुर उस जमीन को अपना कहकर, चमकू को वहाँ से चले जाने का आदेश देता है। इस बार चमकू डरता नहीं वह स्पष्ट शब्दों में ठाकुर से कह देता है, कि वह जमीन उसने अपनी मेहनत से उपजाऊ बनाई है, इस फसल पर केवल उसी का अधिकार है। ठाकुर पुलिस से मिलकर चमकू को हवालात में डलवा देता है। चमकू के खिलाफ केस चलता है। चमकू को विश्वास था, कि कानून उसकी सहायता करेगा, लेकिन जल्द ही उसका यह भ्रम टूट जाता है। यहाँ रक्षक ही भक्षक बने बैठे थे। चमकू का दुखड़ा सुनने वाला कोई नहीं था। पुलिस, वकील, जज सभी ठाकुर के साथ थे। ठाकुर और पुलिस चमकू की खाल उधेड़ देते हैं।

इधर चमकू के चले जाने पर पुलिस सुगिया को अधमरा कर देती है। सुगिया गोनरराम को कहीं छुपा देती है। पुलिस के लाख पूछने पर भी वह बेटे का पता नहीं बताती। मौके का फायदा उठाकर ठाकुर और पुलिस वाले सुगिया का बलात्कार करते हैं। उसे नग्न करके घसीटकर, बाल खींचकर सड़क पर घुमाते हैं। इतना सहकर भी वह बेटे का पता नहीं बताती। बाद में वह बेटे को लेकर कहीं भाग जाती है।

चमकू जब जेल से लौटता है, तो अपने खेत में ठाकुर के रखवाले से उसे सुगिया और गोनरा पर आई विपदा का समाचार मिलता है। बदले की आग में जलता हुआ चमकू पहले तो मरीधार में लगाए अपने खेत को जला देता है, जिसे ठाकुर ने हथिया लिया था। फिर ठाकुर की हवेली में आग लगा देता है। चमकू ठाकुर से अपना प्रतिशोध लेकर सुगिया और गोनरा को ढूँढ निकालने का संकल्प लेता है।

2. 'बीती रात अंधेरी'–डॉ.कुसुम मेघवाल

'बीती रात अंधेरी' शीर्षक कहानी हमारे देश में गरीब, अनपढ़ दलित युवकों के सुनहरे पल एवं युवावस्था को किस तरह भयंकर सामाजिक शोषण–चक्र में पिसा जाता रहा है, उसको प्रस्तुत करती है। लाखों खेतीहर मजदूर सदियों से इस शोषण की चक्की में पिसते आ रहे थे, जिनके कर्ज से मुक्ति पाना उसका मानवोचित अधिकार था। ऐसा ही युवक मंगल इस कहानी का नायक है, जो एक दलित व्यक्ति है। मंगल अनपढ़ है। उसके पिता ने बचपन से ही उसे पटेल के घर पाँच रुपया महीना

और दोनों जून की एवज में ढोर चराने पर लगा दिया था। मंगल की तीन पुश्तें पटेल से लिए कर्ज़ को नहीं चुका पाई थी। उसे चुकाना तो दरकिनार, उसे घटाना भी मंगल के बूते से बाहर था।

दिन निकलते ही मंगल को पटेल के घर काम पर हाजिर हो जाना पड़ता था। जरा–सी देर हो जाने पर पटेल की माँ व्यंग्य–बाणों की बौछार करने लगती थी। पटेल जैसे सामर्थ्यवान रुढ़ सामाजिक परंपराओं की आड़ में आर्थिक शोषण का क्रूर चक्र भी चलाते रहते हैं और थोड़ा सा कर्ज देकर मंगल जैसे श्रमिकों के जीवन की सारी घड़ियाँ बन्धक रख लेते हैं।

मंगल की शादी बसन्ती से होती है। बसन्ती सुंदर, सुशील, सुघड़ शरीर की युवती थी, जिसे देखकर सभी लोग उसकी तारीफ करते थे। मंगल उसकी सुंदरता को जी भरकर निहारना चाहता था। निहारना तो दूर दूसरों की गुलामी उसे इतना दूर–दूर रखती थी, कि वह उसे निकट से देखने के लिए भी तरस जाता था। मंगल दिन से रात तक हाड़ तोड़ मेहनत करता, बसंती दिन भर काम करके सास की सेवा करते–करते सो जाती।

बसन्ती और मंगल की शादी हुए चार वर्ष हो गए थे। उनके घर रमुआ अर्थात् एक पुत्र का जन्म होता है। इन चार वर्षों में कठिन परिश्रम एवं गरीबी ने बसन्ती को अल्हड़ युवती से प्रौढ़ बना दिया। बसन्ती की स्थिति देखकर मंगल सोचता है–

> **''चार बरस में ही बसन्ती अल्हड़ युवती से प्रौढ़ बन चुकी थी जबकि पटेल की बहू पाँच बच्चे जन कर भी छौकरी जैसी लगती थी। क्यों न लगे हर बच्चे के समय पाँच पसेरी घी खाती है। फिर उनके घर कौन सी घी–दूध की कमी है। हम तो छाछ के लिये भी तरसते हैं। दोनों जून यही ज्वार की रोटियाँ वह भी आधी बार पनीली दाल के साथ और आधी बार प्याज या मिर्च के साथ गले उतारनी पड़ती है। पेट की आग को पूरा ईंधन भी न मिल पाये तो बेचारी जवानी कितने दिन ठहरती।''**[76]

अर्थात् गरीबी सुन्दरता को भी छीन लेती है और अमीरी सुन्दरता घटने नहीं देती। मंगल और बसन्ती दोनों इस कर्ज से मुक्ति पाना चाहते थे, किंतु कर्ज़ उतरता ही न था। पटेल दो आदमियों का काम मंगल से लेता था और 70 रुपये महीने देता था। रमुआ के जन्म पर मंगल और खिन्न हो गया। यह सोचकर कि उसके बेटे का भविष्य क्या होगा ? मंगल अपनी पत्नी की आकांक्षाओं और कामनाओं को पूरा न कर सका, तो पुत्र को कैसे सुखी रख सकेगा ? यह सोचकर वह चिंतित रहने लगा। जिस पटेल की उसने वर्षों सेवा की, वही पटेल रमुआ की बीमारी में न तो छुट्टी देता है और न ही पैसे। तब मंगल गाँव छोड़ शहर में जा बसने की सोचता है। किंतु बसन्ती कहती है कि–

> **''शहरों में काम तो मिल जाता है पर सिर छुपाने को फूस की छत भी नसीब नहीं होती।''**[77]

गरीबों के लिए यदि गाँव में समस्याएँ हैं, तो शहरों में भी समस्याएँ हैं। शहरों में मजदूरी तो मिल जाती है, किंतु एक घर बनाना किसी मजदूर के लिए असंभव ही कहा जाएगा।

अपने बत्तीस वर्ष के जीवन में मंगल पहली बार जान रहा था, कि जीवन जीने का सुख कैसा होता है। कानून की मदद से उसे पटेल के कर्ज़ से छुटकारा मिलता है। वह अत्यंत प्रसन्न हो जाता है, कि रमुआ को हमारी तरह किसी की गुलामी नहीं करती पड़ेगी, साथ ही अब हमारी मेहनत की पूरी कीमत हमें मिलेगी। बसन्ती और मंगल का सपना साकार हो गया था। उन्हें कानून पर विश्वास था, साथ ही यह भी यकीन हो गया था कि सरकार की मदद से हमें हमारे सारे अधिकार मिलेंगे, हमारे बच्चे वे बुरे दिन नहीं देखेंगे जो हमने देखे हैं।

3. 'दर्द'–मोहनदास नैमिशराय

'दर्द' कहानी एक दलित परिवार के दलित होने के दर्द को बयान करती है। हरभजन एक दलित पुरुष है। उसके घर में उसकी माँ हरभजन और पत्नी **सुमन** तथा एक पुत्र आकाश है। हरभजन रोज़ शाम सात बजे तक घर लौट आता है, किंतु आज नौ बज चुके थे और वह घर पर नहीं आया था। हरभजन की माँ, पत्नी और बेटा उसका बेसबरी से इंतजार कर रहे थे। सभी को मन में शंका थी, कि कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई ? हरभजन के पिता राज्य सरकार की सेवा में चपरासी थे। उनकी दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर हरभजन को उनके स्थान पर चपरासी की नौकरी दे दी गई थी। वैसे तो हरभजन मैट्रिक तक पढ़ा था, उसे ऊँचा पद मिल सकता था, किंतु उन्हें यही बताया गया, कि सरकारी नियम ऐसा ही है, साथ में आश्वासन भी मिला था, कि पदोन्नति बाद में हो जाएगी।

हरभजन को यही सवाल परेशान करता है, कि दस साल उसकी नौकरी के हो गए। सभी की पदोन्नति हो गई, लेकिन केवल वही ऑफिस में था। जिसकी पदोन्नति नहीं हुई थी। माँ और सुमन हरभजन की इस पीड़ा का अनुभव करती हैं। दर्द उनके भीतर भी था –

> **''वे सोच रही थी हरभजन का क्यों उसके ऑफिस वालों के साथ झगड़ा होता है। जब भी ज्यादा होता है, तब ऐसी बेचैनी लिए वह घर लौटता है।''**[78]

जब हरभजन अपनी पदोन्नति के विषय में बड़े बाबू शर्मा जी से प्रश्न करता है, तो उनके उत्तर ने हरभजन के वजूद को हिलाकर रख दिया था। उनके उत्तर से उसे पता चला था, कि जात के सवाल कितने निर्मम होते है और उनके जवाब भी। बड़े बाबू ने उसे बड़ी निर्ममता एवं घृणा से जवाब देते हुए कहा था–

> **''हरभजन मेरे जीते जी तू इस ऑफिस में बाबू नहीं बन सकता। चपड़ासगिरी कर और अपने बच्चों को पाल।''**[79]

उसके पिता भी चपरासी थे, वह भी चपरासी और क्या उसका बेटा भी चपरासी ही बनेगा, यही सोचते हुए हरभजन के सीने में तेज दर्द उठा और पलभर में ही उसका शरीर ठंडा हो गया। हरदेई ने अपने पति को खोया था, अब बेटे की मृत्यु ने उसकी सारी खुशी छीन ली। पत्नी सुमन हरभन की पीड़ा समझती थी, किन्तु यह पीड़ा उसकी जान ले लेगी यह उसने कल्पना नहीं की थी। आज उसके पति की जान

इसलिए गई थी, क्योंकि वह एक दलित व्यक्ति था। दलित कभी ऊँचे पद पर नौकरी करे, यह सवर्ण कभी सहर्ष स्वीकार नहीं करते हैं।

हृदयगति के रुकने से हरभजन की मृत्यु हो जाती है। अंतिम संस्कार के समय बड़े बाबू पदोन्नति का पत्र लेकर आते हैं, उनकी आँखो में आँसू थे। आकाश क्रोध से उन्हें देखता है और पदोन्नति पत्र को कफन के साथ रस्सी से बाँध देता है।

हरभजन के मरने से उसकी बूढ़ी माँ के बुढ़ापे का सहारा छिन जाता है। उसकी पत्नी समय से पहले विधवा हो जाती है। सुमन ने अपने जीवन में सुख की झलक तक नहीं देखी। गरीबी में जीवन जीते हुए उसे एक आशा थी, कि पति की पदोन्नति होगी तो उसके जीवन में भी खुशियाँ आएँगी। सुमन और हरभजन अपने बेटे को अच्छी शिक्षा देकर ऊँचे पद पर नौकरी करते देखना चाहते थे। किंतु उनका यह सपना अधूरा ही रह जाता है। समय से पहले पति की मृत्यु सुमन के लिए बीच मजधार में फँसे व्यक्ति की भाँति हो गई थी। अब उसे अपनी बूढ़ी सास और बेटे आकाश दोनों को सँभलना था।

4. 'पहली रात का अंत'– उमेश कुमार सिंह

प्रस्तुत कहानी पृथ्वीपुर नामक गाँव की है। इस गाँव में ठाकुर चंदनसिंह जमींदार था। एक मात्र जमींदार होने से धन–दौलत की कोई कमी नहीं थी। उनकी हवेली, शा–नौ–शौकत देखकर कलेक्टर एवं जज तथा बड़े ऑफिसर तारीफ करे बिना नहीं रह पाते थे। ठाकुर चंदन सिंह का एक दलित कारिंदा था, जिसका नाम कलुआ था। जैसा नाम था, वैसा ही रुप था। लंबा–चौड़ा शरीर और काला रंग। उस हवेली में काम करते हुए कलुआ को पच्चीस बरस बीत गए। चालीस वर्ष की उम्र हो गई, किंतु उसे विवाह करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। उसकी विधवा, अंधी, बूढ़ी माँ इसी सपने को देखते हुए जी रही थी, कि एक दिन वह अपने एक मात्र बेटे का विवाह देखेगी।

ठाकुर की हवेली का एक बहुत पुराना दस्तूर था। जिसके अनुसार गाँव में जब कोई विवाह होता था, उस दुल्हन को पहली रात ठाकुर की हवेली में उसके साथ गुजारनी होती थी। नई दुल्हन को कलुआ बुलाने जाता था। सुबह सूरज निकलने से पहले उसे वापस घर भी छोड़कर आता था। वे दुल्हन रोती बिलखती आती और रोती–बिलखती ही चली जाती थीं।

ठाकुर के हर आदेश का पालन करने वाला कलुआ जब स्वयं इस सिथित का सामना करता है, तब उसे अपने गुनाह का अहसास होता है। अपनी सोलह वर्षीय पत्नी भूदा की लाज बचाने के लिए वह हवेली के इस घृणित दस्तूर को खत्म करने का निर्णय लेता है। भूदा, पति के लिए चिंतित थी, यह देखकर कलुआ उससे कहता है–

> **''भूदा नू घबड़ा रही है। अरी भागवान मैं तो समाज का कार्य करने जा रहा हूँ। मर भी जाऊँ तो आँसू मत बहाना। मैं हमेशा तेरे साथ रहूँगा। याद बनकर।''**[80]

उस पर भूदा उत्तर देते हुए कहती है–

''मरे तुम्हारे दुश्मन, शुभ–शुभ बोलो। क्या मरने की बात कर रहे है। मैं तो तुम्हें वीर पुरुष मानती हूँ जो अपनी पत्नी की रक्षा करने जा रहे हो। तुम सफल होकर ही आओगे।''[81]

कलुआ इस सामाजिक दूषण को खत्म कर देना चाहता है। जिसमें हजारों अबलाओं की लाज लूटी गई थी। कलुआ को इस बात की फिक्र नहीं थी, कि नई दुल्हन के वेश में जब वह स्वयं ठाकुर के पास जाएगा, तब यदि वह पकड़ा गया तो क्या होगा ? बल्कि वह तो स्त्री वेश धारण करके ठाकुर की पहली रात का अंत करना चाहता है। फिर किसी नई दुल्हन को अपनी पहली रात ठाकुर के साथ न बितानी पड़े, इसके लिए वह अपने प्राणों की चिंता किए बिना आज ठाकुर का अंत करने का निर्णय लेता है। उसकी पत्नी भूदा अपने पति के इस साहस पर गर्व महसूस करती है, जो पत्नी की रक्षा के लिए निडरता से ऐसा कार्य करने जा रहा था।

कलुआ की माँ और सारे गाँव की दलित स्त्रियों को इस पहली रात वाले दस्तूर से गुजरना पड़ा था। सारी सच्चाई जानकर भी गाँव वाले ठाकुर की दहशत से डरते थे। न चाहकर भी इस अनचाहे दस्तूर को निभाते थे। चालीस वर्ष पहले जब कलुआ की माँ को ठाकुर के बाप ने लूटा था, तब पत्नी हरदेई की दयनीय स्थिति देखकर कलुआ का बाप रोने लगा था। उस दिन हरदेई सोचती है कि–

''अगर लड़का हुआ तो उसे ऐसी शिक्षा दूंगी जो मेरा बदला ले सके।''[82]

हरदेई बड़े दुःख झेलती है, कष्ट सहती है, फिर भी वह सिर्फ इस लिए जीवित है क्योंकि वह पहली रात का अंत देखना चाहती है। उसने अपने बेटे को जब अपनी करुण कहानी सुनाई तब कलुआ अपनी माँ पर किए अत्याचार का बदला लेने के लिए आतुर हो गया। कलुआ स्वयं भुदा की साड़ी पहनकर हवेली जाता है और माँ तथा भूदा को गाँव से बाहर निकलने की सलाह देता है, ताकि ठाकुर को मारकर वे गाँव छोड़कर भाग सकें। आखिर कलुआ अपनी माँ की अंतिम इच्छा पूरी कर देता है। ठाकुर को खत्म करके जब वह माँ के पास आता है तब हरदेई कहती है–

''तूने मेरे दूध की लाज रख दी। आज तूने उस जानवर को खत्म करके हज़ारों अबलाओं की लाज बचाई है।''[83]

यहाँ हरदेई का विद्रोह पूरा होता है। चालीस वर्षों से वह इस अत्याचार के अंत का इंतज़ार कर रही थी। तीस किलोमीटर चलते–चलते हरदेई, भूदा और कलुआ उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वह सुरक्षित थे। पूरी रात बीता कर अब सुर्योदय होने वाला था। यह सूरज हरदेई के जीवन में चालीस वर्ष बाद निकला था। ठाकुर के अंत के बाद उसके अत्याचारों का भी अंत हो जाने से, यह सवेरा उन अत्याचारों से मुक्ति का सवेरा था हरदेई की पहली और अंतिम इच्छा पूरी हो चूकी थी, इसलिए अपने होनहार बेटे और बहू को आशीर्वाद देकर इस जीवन से मुक्त हो जाती है।

5.'कैद'—महेश कुमार केशरी 'राज'

'कैद' कहानी महेश कुमार केशरी 'राज' द्वारा रचित है। कहानी का नायक विष्णु पासवान अत्यंत ही गरीब था। वह अपनी पत्नी सोनबतिया और पुत्री को भूख से तड़पते नहीं देखना चाहता था, इसलिए गाँव के ठाकुर दुर्जन सिंह की सलाह पाकर कि, पटना शहर में अच्छी मजदूरी मिलती है, विष्णु के साथ अन्य दलित युवक भी घर—बार छोड़कर पटना जाने को तैयार हो जाते हैं। सोनबतिया की आँखें बहुत सुंदर थीं, विष्णु उसे देखकर असीम आनंद की अनुभूति करता था। सोनबतिया को छोड़कर वह पटना जाने के लिए मजबूर हो जाता है।

दुर्जन सिंह वास्तव में एक दलाल था। वह गरीब दलितों को ईंट बनाने के भट्टे पर बेच देता था। दिलावर खान उस भट्टे का मालिक था, जो दिखने में और व्यवहार में किसी शैतान से कम नहीं था। मजदूरों को खरीदकर उनसे अधिक—से—अधिक मजदूरी करवाना उसे बहुत अच्छी तरह आता था। काम न करने पर या थोड़ा करने पर मजदूरों को इतना पीटा जाता था कि वह मृत्यु के निकट ही पहुँच जाए। गाँववालों को कैद कर बंधुआ मजदूरी करवाकर वह बदले में दो वक्त का भोजन ही देता था, मजदूरी नहीं। विष्णु जैसे कितने ही प्रवासी मजदूर इसलिए अपना घर छोड़कर आए थे, क्योंकि गाँव में मजदूरी नहीं मिलती थी, दो वक्त का भोजन नहीं मिल पाता था, बच्चे भूख से बिलबिलाते थे। यहाँ आकर उनकी स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गयी थी।

दलित जब गाँव में थे, तो सवर्ण उनसे बेगार का काम करवाते थे अर्थात् मजदूरी न देकर मुफ्त में काम करवाना। उससे मुक्ति के लिए वे शहर में आए तो और अधिक अत्याचार को सहना पड़ा। विष्णु को दस वर्ष बीत जाते हैं, इस कैद में। उसकी पत्नी और बच्ची उसके वियोग में तड़पते हैं। पत्नी इंतज़ार करते—करते थक चुकी होगी, बेटी पिता के प्रेम के बगैर बड़ी हो गई होगी, यह सोचकर विष्णु अपनी हर रात गुजारता है। बीस फुट ऊँचाई की दीवारों को लाँघ पाना सरल नहीं था, किन्तु उस कैद से मुक्त होने की आशा उसमें अब भी थी। लेखक के अनुसार यह कहानी सत्य घटना पर आधारित है। कैद किए गए विष्णु और उसके साथियों को मुक्ति मिलती है, किन्तु आज भी जाने कितने विष्णु कैद में हैं और मुक्ति के लिए उम्मींदे लिए हुए इंतजार कर रहे हैं। न जाने कितनी सोनबतिया अपने पति के इंतज़ार में वियोग की पीड़ा सह रही हैं, न जाने कितने बच्चे अपने पिता के प्रेम से वंचित होने के दुःख को झेल रहे हैं। गरीब दलितों पर अत्याचार पुरानी बात नहीं है, आज भी उनका शोषण कई शहरों और गाँव में किया जा रहा है।

6.'अपना गाँव'—मोहनदास नैमिशराय

मोहनदास नैमिशराय की प्रस्तुत कहानी सवर्ण व्यक्ति द्वारा दलित स्त्री के अपमान और इस घटना के बाद दलित समाज में आई जागरुकता को प्रस्तुत करती है। सवर्ण पुरुष दलित पुरुषों से अधिक दलित स्त्रियों का शोषण करते हैं। दलित पुरुष जब कर्ज़ लेता है, तो सवर्ण उसे सूद सहित दलित स्त्री को शोषण करके वसूलते हैं। प्रस्तुत कहानी की नायिका कबूतरी के साथ यही होता है। लहना गाँव में लगभग दलित सभी स्त्री ठाकुर की हैवानीयत का शिकार बन चुकी थी। वर्षों से पीढ़ी—दर—पीढ़ी ठाकुर का परिवार दलितों को कर्ज़ देकर बदले में उनकी स्त्रियों का जातीय शोषण करता आया

था। गरीब इस दशा को बदलने में असमर्थ थे। समय बलवान होता है, दलित भी स्वतंत्रता से, आत्मसम्मान से सिर उठाकर जीना चाहते हैं।

कबूतरी सुंदर, सुशील और परिश्रमी स्त्री है। विवाह के तीन वर्ष बाद उसका दसवीं पास पति सम्पत, ठाकुर से पाँच सौ रुपये उधार लेकर शहर नौकरी की तलाश में जाता है। ठाकुर के मँझले बेटे की नज़र शुरु से कबूतरी पर थी। जैसे ही सम्पत शहर जाता है, ठाकुर कबूतरी को अपने घर पर काम करने के लिए संदेश भेजता है। गाँव की हर दलित औरत ठाकुर के घर काम पर जाने का मतलब खूब अच्छी तरह जानती थी। गाँव की एक दलित स्त्री जब जंगल में कबूतरी से पहली बार मिलती है। तो उसके संवाद में उस गाँव की हर स्त्री की पीड़ा देखी जा सकती है जैसे–

औरत –तुझे पता है....। ''ठाकुर अपना करज कैसे वसूलता है ?''
कबूतरी–कैसे वसूलता है ठाकुर अपना करज ?
औरत –ठाकुर मूल तो मूल, व्याज भी नई छोड़ता। एक–एक पाई की कीमत चुकानी पड़ती है आसामी को और उसकी नई घरवाली को सबसे पैले।''
''क्या...।''
कबूतरी के मुँह से अचानक निकल पड़ता है।
हाँ, अभी तू नासमझ है। क्या तुझे ठाकुर ने अपने घर पर काम करने बुलाया अभी तक ?
''भेजा था एक कारिन्दा ठाकुर ने ?'' कबूतरी को अंततः कहना ही पड़ा था।
''तू गई ?'' उसका अगला सवाल था।
''ना'' कबूतरी बोली थी।
दोनों जैसे एक–दूसरे के और क़रीब आ गई थी। अब वे परस्पर खुलने लगी थीं। वार्तालाप में ठण्डापन न था। वही औरत फिर बोली, ''आखिर कब तक नाय करेगी। पानी में रह कर मगरमच्छ से कब तक वैर.....?''
मैं भी भौत दिनों तक 'नाय' करती रही थी पर।''
''पर क्या....।'' कबूतरी की उत्सुकता बढ़ने लगी थी।
''पर एक दिन 'हाँ' करनी ही पड़ी।'' जैसे उसके बहुत भीतर से स्वर उभरा हो।''[84]

गाँव की लगभग हर दलित स्त्री को ठाकुर का परिवार वर्षों से भोग रहा था। न चाहते हुए भी गरीबी के कारण दलित स्त्रियाँ उनके शोषण को सहती आई थीं। कबूतरी के पति को शहर गए अभी बीस ही दिन हुए थे, कि ठाकुर कबूतरी को अपनी सेवा में बुलाना चाहता है। जंगल में कबूतरी के अकेलेपन का फायदा उठाकर पहले तो उसे अपने घर चलने के लिए कहता है, जब कबूतरी उसकी बात नहीं मानती तो अपने चार कारिन्दे के साथ मिलकर उसके सारे कपड़े फाड़कर उसे नग्न कर देता है। जिस कबूतरी के चेहरे तो दूर चूडियाँ भी किसी ने न देखी थी, वैसी गाँव की बहू कबूतरी को पूरे गाँव में नग्न अवस्था में ठाकुर घूमाता है। गाँव के दलितों में ठाकुर की इस अमानवीयता को देखकर रोष तो उत्पन्न होता है, किन्तु ताकतवर के समक्ष कमजोर वर्ग आखिर क्या कर सकता था ? गाँव के लोग क्या, उसके घर के देवर, जेठ, सुसर आदि

मर्द भी कबूतरी के इस अपमान को देखने के अतिरिक्त कुछ न कर पाए। कबूतरी रोती, चिल्लाती रही, पर किसी ने उसके नग्न शरीर को चिथड़ा तक नहीं दिया।

इस घटना के बाद रात के अंधेरे में कबूतरी वैसी ही अवस्था में छिपते–छिपते घर तो लौट आती है, किन्तु उसका परिवार एक शब्द बोलने की स्थिति में न था। घर के स्त्री–पुरुष कोई भी इस अपमान को नहीं भूल सकता था। तीन दिन तक घर में कोई भी व्यक्ति अन्न का एक दाना तक नहीं खाता। गाँव के दलित स्त्री–पुरुष उनकी पीड़ा को समझते हैं, किन्तु सहनुभूती देने के लिए उनके पास भी कोई शब्द नहीं था। आज तक गाँव की स्त्रियों की आबरु ठाकुरों ने लूटी थी, किन्तु सरेआम किसी दलित स्त्री को नग्न करके घुमाना, इस गाँव में ऐसा कभी नहीं हुआ था। गाँव के युवकों में इस घटना के बाद आक्रोश बढ़ गया था। वे इंसाफ चाहते थे। उनका एलान था–

> **''हम अनशन करेंगे। भूख–हड़ताल करेंगे। हमारी समाधियाँ यहीं बनेंगी। अन्न का दाना भी न खाएँगे। उनके मरने के बाद ही अब गाँव के लोग उनकी अर्थियों को कंधा दें। बहुत सह लिया ठाकुरों के पीढ़ी–दी–पीढ़ी जुल्म। अब और न सहेंगे।''**[85]

जहाँ एक ओर गाँव के दलित बूढ़े इस घटना को भूला देने की सलाह देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि कानून भी ठाकुर के वश में है, वहीं दूसरी ओर युवा वर्ग इस अत्याचार के प्रति विरोध प्रदर्शन करके दुबारा ऐसी घटना न घटे इसके लिए ठाकुर को दंड दिलाना चाहता था। कबूतरी का पति सम्पत जब अखबार में इस समाचार को पढ़ता है, तो दंग रह जाता है। गाँव लौटकर सबसे पहले वह अपने परिवार की भूख हड़ताल तुड़वाता है।

उस गाँव में सम्पत पिछले दस सालों से गाँव की परंपराओं से, जिन्हें ठाकुरों तथा बामनों ने मिल–जुलकर बनाया था उनसे लड़ रहा था। उसे गाँव में न्याय के दो प्रतीक थे, एक मंदिर और दूसरा हवेली मंदिर बामनों का था और हवेली ठाकुरों की थी। शेष गाँव पर बनियों, कायस्थों, यादवों, कुर्मियों और राजपूतों का कब्जा था, अधिकार था। इन्हीं अधिकार सम्पन्न जातियों ने उसकी बस्ती के एक–एक आदमी–औरत, बच्चे–बूढ़े को वस्तु बना दिया था। जिसका जब जी चाहा, इस्तमाल कर लिया और जब मन किया, एक तरफ फेंक दिया। सम्पत इन्हीं परंपराओं को तोड़ना चाहता है।

गाँव में कई लोगों के विरोध के बावजूद कूल ग्यारह लोगों के साथ मिलकर सम्पत कबूतरी के साथ थाने में रिपोर्ट लिखवाने जाता है। थानेदार उसकी रिपार्ट तो नहीं लिखता, बल्की उन सभी की पीटाई करवाता है। इस घटना की ख़बर दूसरे कस्बे में जब पहुँचती है, तो कुछ दलित एक जूट होकर उनकी मदद करते हैं, जिसकी बदौलत उनकी जमानत भी होती है और ठाकुर के खिलाफ रिपोर्ट भी दर्ज की जाती है।

सम्पत का दादा हरिया अस्सी वर्ष की उम्र का था। उसने अपने जीवनकाल में दलितों का पीढ़ी–दर–पीढ़ी अत्याचार होते देखा था। वह इस गुलामी से भरे जीवन से दलितों को मुक्त देखना चाहता था। उसके अनुसार हमें कोशिश ज़रुर करनी चाहिए अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने की। इसलिए जब अखबार वाले हरिया के घर इस घटना की जानकरी लेने आते हैं और पूछते हैं कि ठाकुर दीपक सिंह ने कबूतरी के साथ ऐसा क्यों किया ? तब हरिया उत्तर देता है–

''म्हारी जात की औरतों को पैले से ही ठाकुरों के द्वारा नंगा किया जाता रहा है। उनकी बेइज़्जती की जाती रही है। गाँव का रिवाज बन गया है ये।''[86]

इस गाँव में लगभग एक हजार परिवार थे। ग्रामीण समाज परंपराओं और रढ़ियों की गिरफ्त में फँसे गाँव तथा गाँववालों पर जाति भेद की अमिट छाप देखी जा सकती थी। सवर्ण और अवर्ण दो हिस्सों में बँटे इस गाँव में एक ओर जहाँ सुख समृद्धी की सभी चीज़ें थीं वहीं अवर्ण के दलित वर्ग में गरीबी, गंदगी, फटे चिथड़े ही मयस्सर थे।

दलितों की पंचायत में इस घटना को लेकर विचार–विमर्श होता है। सभी अपनी–अपनी राय देते हैं। वे सभी आत्मसम्मान से रहना चाहते हैं। हाड़तोड मेहनत करने के बाद भी उन्हें पेट भर भोजन और शरीर ढँकने के लिए कपड़े नसीब नहीं होते। आखिर कब तक यह अत्याचार सहेंगे। जात–पात, छुआछूत गाँव और शहर दोनों में देखे जाते हैं। आखिर दलित जाएँ तो कहाँ जाएँ। अंत में पंचायत के प्रमुख अस्सी वर्षीय हरिया अपनी सलाह देता है, कि हमारे पास केवल एक ही रास्ता है, अपने दुःख को दूर करने का, वह यह है कि हम अपना नया गाँव बसाएँगे। गुलामी के जीवन को छोड़कर स्वतंत्रता से उस गाँव में नए सिरे से ज़िदगी जिएँगे।

इस प्रकार नैमिशराय जी की प्रस्तुत कहानी दलित नारी पर अत्याचार और उस अत्याचार के प्रति दलितों के विद्रोह को प्रस्तुत करती है। अब दलित शोषण के प्रति जागरुक हो गए हैं। युवा पीढ़ी के साथ–साथ पुरानी पीढ़ी के दलित भी अपने बच्चों के भविष्य को उज्ज्वल देखना चाहती है। पुरानी पीढ़ी के लोग नहीं चाहते, कि जो उनके पूर्वजों ने और उन्होंने झेला है, वही अत्याचार उनकी आने वाली पीढ़ी भोगे। वे स्वाभिमान से जीना चाहते हैं। जहाँ जाति–पाति का कोई भेद–भाव न हो, जहाँ उनकी बहू–बेटियों का अपमान न किया जाए, जहाँ उन्हें स्वतंत्रता मिले ऐसे गाँव का निर्माण वे करना चाहते हैं।

7.'लाठी'–जयप्रकाश कर्दम

जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित **'लाठी'** कहानी में कहानीकार ने सवर्णों के दलितों पर होने वाले अत्याचार को प्रस्तुत किया है। अतरो का पति हरि सिंह है। उस गाँव में खेतों की सिंचाई का एकमात्र साधन अपरगंग नहर से निकला बम्बा था। उसी में से पतली–पतली नालियों के ज़रिए खेतों तक सरकारी पानी जाता था। खेतों की माप के आधार पर पानी के समय–घंटे बंटे हुए थे। इन्हें 'वार' कहा जाता था। खेतों की संख्या अधिक थी, किन्तु पानी की आपूर्ति बहुत कम होती थी। आए दिन पानी के विषय पर गाँव में झगड़े होते रहते थे। गाँव का बदनी जाट जाति का अडियल स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपने वार का पानी रात को ले चुका था, हरि सिंह का वार उसके बाद का था। बदली अपने वार के बाद हरि सिंह के पानी के वार को भी ले लेना चाहता है। खेत सूख जाने का भय सभी किसानों को होता है। हरि सिंह बदनी को बहुत समझाता है, कि चौधरी मेरा खेत सूख जाएगा, किन्तु वह नहीं मानता। बदनी हरि सिंह को रोकने के लिए उसकी कमर पर लाठी से दो बार ताकत से वार कर देता है। हरि सिंह मार खाकर दर्द से तड़प उठता है, किन्तु ताकतवर के समक्ष उसका साहस जवाब दे जाता है, वह घर लौट आता है।

अतरो पति के घाव को देखकर तड़प उठती है और बदनी गालियाँ देते हुए वह कहती है–

''बदनी, तेरा सत्यानास होएगा। तुझपै ऐसी हाय पड़ैगी कै कोई दीया जलाने वाला नहीं बचैगा। जैसा तैने जुलम करा है सत्यानासी, तुझकू इसकी सज़ा ज़रुर मिलैगी।''[87]

निर्दोष पति की पीड़ा अतरो से देखी नहीं जाती। बदनी को गालियाँ देकर अपने दिल की भड़ास वह निकालती है। आखिर दलितों के पास अत्याचार, अन्याय के प्रतिकार में करने के लिए और रहता ही क्या है ? न तो वे उस सवर्ण के समान ताकतवर थे, न ही उन्हें अत्याचार का बदला अत्याचार से देना आता था। हरि सिंह कायर नहीं है, किन्तु बचपन से उसे यही सिखाया गया है, कि हमेशा सवर्णों का आदर करना चाहिए, उनके खिलाफ कोई कार्य नहीं करना चाहिए, यदि ऐसा किया तो उसका परिणाम बुरा होगा। हरि सिंह के पिता अपने छोटे भाई फग्गन से इस विषय पर जो वार्तालाप करते हैं, वह इस प्रकार है, कहता है–

''भाइया, उनका वहां गाँव का गाँव है। एक पुकार पै सौ लाठी निकल आवेंगी। पार पा लेंगे हम उनसै ? म्हारे ही खोपड़े फूट जावेंगे।''
''उनका गाँव है तै म्हार गाँव ना है। वहाँ सौ लाठी है तै म्हारे यहाँ पाँच सौ लाठी है।'' उसने सम्मन से कहा।
हां, पाँच सौ लाठी हैं, पर कभी पाँच सौ लाठी निकली है किसी बाहर वाले के खिलाफ ? आपस में एक–दूसरे का सिर फोड़ने के नियां ही हैं ये लाठी। बाहर के सामने चार लाठी ना मिलेंगी उठती हुई।''[88]

सम्मन द्वारा कहा गया यह वाक्य, दलितों में एकता की कमी एवं सवर्णों के प्रति उनके भय को चित्रित करता है। अन्याय के समक्ष जब तक एकजूट होकर न लड़ा जाए, तब तक उस पर जीत नहीं प्राप्त की जा सकती। हरि सिंह यह समझता है, किन्तु फग्गन किसी सवर्ण के समक्ष कभी न झुका है, न डरा है वह आक्रोश में आकर कहता है–

''तै हम चूड़ी पहन के घर में बैठ जावें अर यूंही पिटते रहवै ? आज उन्होंने हमारा वार छीन लिया कल कू वे हमारे खेत भी काट कै लै जावंगे। वे शेर बने अपनी मर्जी चलाते फिरैं अर हम गीदड़ बने बिलों में दुबके रहवैं। यूं अच्छी बात बतायी तुमनै। ऐसै तै वे हमारे खेत मै ही कब्जा कर लेंगे। मेरी तुम्हारी बात नहीं आ रही भइया। इस लाठी का जवाब आज ही नहीं दिया तै ये और ज्यादै शेर हो जावंगे।''[89]

फग्गन अत्याचार होते नहीं देख पाता क्योंकि जितनी गलती अत्याचार करने वाले की होती है, उतनी ही गलती अत्याचार सहने वाले की भी होती है। दलित सवर्णों के अत्याचार को सदा सहते रहे हैं, इसलिए सवर्णों को और बल मिल जाता है। फग्गन अपने क्रोध या कार्य से संपूर्ण जाति वालों को खतरे में नहीं डालना चाहता है, इसलिए न चाहते हुए भी खून का घूँट पी जाता है।

संपूर्ण कहानी में अतरो के पात्र को देखें तो उसमें अत्याचार, शोषण के विरुद्ध आक्रोश है। अपने पति की मजबूरी को वह समझती है। वह निःसहाय है, क्योंकि ताकतवरों के समक्ष लड़ना उसे नहीं आता। गाँव के वातावरण में पली–बढ़ी अनपढ़ अतरो झगड़ा मोलकर अपने पति–बच्चे परिवार या जाति वालों की ज़िंदगी खतरे में नहीं डाल सकती। हरिसिंह और अतरो दोनों पात्रों में से अतरो अधिक मुखर चरित्र है, जबकि हरिसिंह अन्याय होने पर भी आक्रोश प्रकट नहीं करता। फग्गन द्वारा कहानीकार ने यह आक्रोश प्रकट करवाया है। प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'लाठी' एक ताकत का प्रतीक है, जिसके पास लाठी है, बल उसी के पास है। सबल हमेशा निर्बल का शोषण करता है।

8.'लोकतंत्र में बकरी'–उषा चन्द्रा

'लोकतंत्र में बकरी' उषा चन्द्रा द्वारा रचित कहानी है। कहानी में दलित अन्नपूर्णा और उसके पति विनाश बाबू का एकमात्र सपना है कि, उनका पुत्र मुन्ना पढ़–लिखकर कलेक्टर बने और दस वर्षों से गाँव के सवर्ण झिंगुरी सिंह के कब्जे से उनकी ज़मीन छुड़वाए। उनकी आशाएँ अब मुन्ना से ही हैं, क्योंकि दस साल से मुकदमा चल रहा है, किन्तु सरकार, कानून किसी ने भी अन्याय के खिलाफ की लड़ाई को न्याय नहीं दिया। विनाश बाबू को फिर भी कानून पर विश्वास है। वे तो गाँव की बुराइयों को जैसे कि अशिक्षा, अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, जातिभेद, धर्म भेद आदि से लोगों को बचाना चाहते हैं। उनकी जमीन पर गाँव के पुरोहित की भी आँखें टीकी हैं।

अन्नपूर्णा गरीबी में भी अपने परिवार को दो वक्त का भोजन जैसे–तैसे करके भी देती है। स्वयं रुखी–सूखी खाती है, या भूखी रह जाती है किन्तु पति एवं बच्चे के लिए ताजा खाना बनाकर रखती है। आखिर मुन्ना को बहुत परिश्रम करके पढ़ना है, यह सोचकर वह भविष्य के सुनहरे सपने भी देखने लगती है। समझदार, निष्ठावान पति एवं होनहार पुत्र को प्राप्त करके अन्नपूर्णा जीवन के अभावों में भी संपूर्णता का अहसास पाती है।

मुन्ना को घर की बकरी से अत्यंत प्रेम था। बकरी भी उसे माँ की तरह स्नेह देती थी। बिना बकरी के पास जाए मुन्ना न खाता था, न सोता था। यही बकरी जब गाँव के सवर्ण झिंगुरी सिंह के खेत में चली जाती है, तो उसका पुत्र बलवंत सिंह गालियाँ देते हुए विनाश बाबू से कहता है–

> **''नीच कहीं का। औकात में रहा करो। बकरी पैदा किए हो तो अपने खेत में चराओ। आइंदा ऐसा हुआ, तो तुम्हारे मुनवा की टांगे चीर दुंगा।''[90]**

गाँव में चुनाव की तारीख घोषित हो गई थी। राजनीति गाँव में ही पकती है। कभी मंदिर–मस्ज़िद के नाम पर, तो कभी जाति–पांति के नाम पर। विनाश बाबू को भी पार्टियों की ओर से चुनाव के समय रुपये दिए गए थे, ताकि वे उनके पक्ष में वोट डलवाएँ। विनाश बाबू कमजोर वर्ग को उनके हक की लड़ाई में साथ देते हैं, सो दलित वर्ग उनके हर आदेश का पालन करने को तैयार था। विनाश बाबू गरीब थे, किन्तु अधर्म के मार्ग पर चलकर धन कमाना उनके आदर्शों के खिलाफ था। झिंगुरी सिंह जैसे ताकतवर नेता का साथ न देने पर ही बलवंत सिंह विनाश बाबू से बुरा व्यवहार करता है। बकरी की बात पर मुन्ना की बात आते ही विनाश बाबू अपने आपको रोक नहीं पाते और बलवंत सिंह को एक तमाचा मार देते हैं। बदले में झिंगुरी सिंह और उसके साथी विनाश बाबू और अन्नपूर्णा के घर में घुसकर दोनों को पीट–पीट कर मार डालते हैं।

स्कूल से लौटा मुन्ना माता–पिता के मृत शरीर को देखकर रोने लगता है। उसकी एक–मात्र साथी बकरी जैसे पश्चाताप कह रही हो–

> **''.....मुझे क्या मालूम था कि प्रकृति की सीमाएँ इतनी छोटी हैं। प्रकृति ने तो पूर्णता में सौंपा है, लेकिन खंड–खंड तो आप मनुष्यों ने किया है, 'जानवर' इस फ़र्क को क्या जानें।''**[91]

राजनीतिक खेलों से न तो बकरी परिचित थी, न ही विनाश बाबू, वास्तव में बकरी के बहाने ही विनाश बाबू को जाल में फँसाया जा रहा था। जब वे नहीं फँसे तो उन्हें खत्म कर दिया गया। बलवंत सिंह भी दलितों द्वारा मारा गया, किन्तु मुन्ना के आँसू पोछनेवाला बकरी के सिवाय कोई नहीं बचा।

प्रस्तुत कहानी में दलितों की ज़मीन पर सवर्णों द्वारा किया जानेवाला कब्जा, कानून से समय पर न मिलने वाला न्याय, दलितों की आशाओं, आकांक्षाओं, समस्याओं, राजनीति में उन्हें मोहरा बनाया जाना, सवर्णों द्वारा गाँव में अंधविश्वास, रुढ़िवाद, परंपरावादिता, अशिक्षा, जाति भेद, अस्पृश्यता आदि सभी विषय को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। विनाश बाबू एवं उन्नपूर्णा की हत्या का बदला लेने वाले दलित समूह के माध्यम से दलितों में आए बदलाव एवं आक्रोश साथ ही अत्याचार, शोषण के प्रति उनका प्रतिकार प्रस्तुत किया गया है। 'लोकतंत्र में बकरी' कहानी का शीर्षक संकेत करता है, कि हमारा देश भले ही लोकतांत्रिक है, किन्तु मनुष्य तो दूर बकरी को भी उसमें स्वतंत्रता नहीं मिल पायी है। आज भी कई गाँवों में दलित सवर्णों की कैद में हैं। बंधुआ मजदूर से बेगार का काम आज भी कराया जाता है। जब तक देश में यह जाति–पांति भेद, भ्रष्टाचार, अमीरी–गरीबी की दूरियाँ, धर्म के नाम कर झगड़े खत्म नहीं होंगे, जब तक देश इन दूषणों से मुक्त नहीं हो पाएगा, तब तक देश की जनता स्वतंत्र नहीं कही जा सकती।

9.'रात'–शिवकुमार कश्यप

शिवकुमार कश्यप द्वारा रचित 'रात' कहानी में राजेश एवं उर्मिला गाँव एवं शहर में अस्पृश्यता के कारण अपमानित होते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके राजेश अपने परिश्रम एवं आत्मविश्वास के बल पर उच्च अधिकारी बन जाता है। रायपुर में उसकी पोस्टींग होती है। एक ब्राह्मण शुक्लाजी के घर पर किराये के मकान में वह अकेला रहता है। जैसे ही शुक्ला जी उसके कमरे में अम्बेडकर जी का फोटो देखते हैं, वैसे ही वे समझ जाते हैं, कि राजेश अवश्य ही दलित है। शुक्ला जी स्वयं एक रिटायर्ड प्राचार्य थे, किन्तु अस्पृश्यता को वे नहीं भूलते। शहर में रहकर भी गाँव जैसा जाति–पांति का भेदभाव रखते हैं। वे राजेश को आदेश देते हैं कि घर जल्द ही खाली कर दो। राजेश स्वाभिमानी व्यक्ति था, वह भी अपमानित होकर वहाँ नहीं रहना चाहता था। वह जब छोटा था, तब गाँव की स्कूल में सवर्ण बच्चों को कुँए की बल्टी से पानी पीने की छूट थी, किन्तु दलित बच्चे प्यासे होकर भी वह बाल्टी नहीं छू सकते थे। गाँव के दलित बच्चे अक्सर इसीलिए पढ़ाई छोड़ देते थे, क्योंकि वहाँ विद्यार्थी, शिक्षक एवं आचार्य भी दलितों से भेद–भाव रखते थे। राजेश के शिकायत करने पर प्रिंसिपल साहब उत्तर देते हैं–

> **''सरकार का कानून है तभी तो तुम लोग ब्राह्मणों–ठाकुरों के लड़कों के साथ बैठकर पढ़ रहे हो और फीस भी नहीं देनी पड़ती। सरकार ने तुम**

लोगों को अपना दामाद बनाया है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि सभी लोग तुम लोगों को अपने सिर पर बैठाए।''[92]

जब तक शिक्षित लोगों के मन से यह अस्पृश्यता दूर नहीं होगी, तब तक जाति–पांति का भेदभाव खत्म नहीं हो सकता। राजेश का प्रमोशन बम्बई में हो जाता है, किन्तु उसकी पत्नी उर्मिला इस उन्नति से खुश होकर भी उसे वहाँ नहीं जाने देना चाहती। वह जानती है कि गाँव की तरह ही शहरों में भी जातिगत भेदभाव रखा जाता है। ऐसे में नए शहर में अकेले रहना सरल नहीं होगा। वह पति से इस बात को सीधे नहीं कहना चाहती, क्योंकि इससे उन्हें ठेस पहुँचेगी, इसलिए वह बात को इस तरह कहती है–

''सुना है मुम्बई में जल्दी मकान नहीं मिलते। वहां कोई किसी से संबंध नहीं रखता। फिर वहाँ कोई हमारी जान–पहचान का भी कोई नहीं रहता है, कैसे करेंगे इतने बड़े शहर में। तुम क्या यह पदोन्नति छोड़ नहीं सकते ?''[93]

उर्मिला को क्यों पति की पदोन्नति होने से खुशी नहीं होती ? प्रगति किसे बुरी लगती है ? प्रगति से आखिर डर कैसा ? जैसे प्रश्न हमारे समक्ष खड़े होते हैं। समय के साथ–साथ राजेश भले ही पुराने ज़ख्मों को भूल गया हो, किन्तु उर्मिला उन्हें नहीं भूली थी। वह गलत भी नहीं थी। मुंबई में आकर राजेश के कार्य से उसके अधिकारी प्रसन्न होते हैं, उसका इंक्रीमेंट बढ़ने वाला था, किन्तु वह इसलिए रोका जाता है, क्योंकि वह दलित था। जैसे ही मि.अय्यर यह जान जाते हैं, कि वह शेड्यूल्ड कास्ट है, उनका स्वभाव ही बदल जाता है। राजेश की सारी काबिलियत जैसे शून्य बन जाती है।

कहानी में उर्मिला जातिभेद को कभी नहीं भूलती, वह अपमानित होते कहीं नहीं दिखाई देती है, जबकि राजेश आत्मविश्वासी, अंम्बेडकरवादी है। अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानता है। वह बार–बार जातिदंश को झेलता है, फिर भी हार नहीं मानता। कहानी का शीर्षक 'रात' एक सांकेतिक शीर्षक है। रात अज्ञान का प्रतीक है और दिन ज्ञान का। दलितों के जीवन से जब यह अस्पृश्यता रुपी रात का अंत होगा, तभी समभाव रुपी सवेरा होगा। ऐसा होने पर ही समाज में एकता एवं सद्भाव की भावना जागृत होगी।

10.'सिमटा हुआ आदमी'–मोहनदास नैमिशराय

'सिमटा हुआ आदमी' मोहनदास नैमिशराय द्वारा रचित कहानी है। कहानी सरकारी ऑफिस के चपरासी भोलाराम और उसकी पत्नी कलिया की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। भोलाराम की पच्चीस वर्षीय पुत्री धन्नो विवाह के योग्य होकर भी अविवाहित है और पुत्र पढ़ाई करके भी बेरोज़गार होकर भटक रहा था। कलिया ने अपने जीवन में सुख कभी नहीं देखा और अब अपने बच्चों के जीवन में भी सुख दूर–दूर तक उसे नज़र नहीं आता। दुःखों से घिरी कलिया का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, वह बात–बात पर धन्नो को गालियाँ देती है और उस पर हाथ भी उठा देती है। धन्नो अत्यंत ही सहनशील युवती है। परिवार की परेशानी और माता के कटु स्वभाव के बावजूद वह अपने आप को संयत रखकर घर के वातावरण को शांत रखने को प्रयास करती है।

भोला को अपनी समस्या का समाधान मिलने के आसार तब नज़र आते हैं, जब उसकी ऑफिस में डायरेक्टर उसी की जाति का आता है। वह सोचता है, कि गरीब दलितों की समस्या एक दलित अधिकारी ही समझ सकता है। अब बेटे की नौकरी जल्द ही लग जाएगी। वह नए साहब से इस विषय पर बात करने के लिए मौके की तलाश में था। कलिया को भी जब वह यह सूचना देता है, कि नए साहब हमारी समस्या दूर कर देंगे, तो कलिए के सूने जीवन में एक बार रोशनी की किरण फूट पड़ती है। रिटायर्ड होने की उम्र हो जाने पर भी न तो भोलाराम बेटी का ब्याह कर पाया था, न ही पुत्र को कोई रोज़गार ही मिल सका था। वह नहीं जानता था कि सारे साहब एक ही जाति के होते हैं, गरीब की कोई नहीं सुनता। बेटे की नौकरी के लिए तैयार की गई दरखास्त भोलाराम नए साहब को शैडयूल्डकास्ट एसोसिएशन की मिटिंग में देना चाहता था, किन्तु ब्राह्मण पी.ए.चतुर्वेदी नए साहब के ऐसे कान भरता है, कि वह दलितों से दूर ही रहकर अपने प्रमोशन के लिए अपनी छबि नहीं बिगाड़ना चाहता। जिसको अच्छा पद, नाम, पैसा, रुतबा प्राप्त हो जाता है, वह उनसे दूर ही रहना चाहता है, जो उसकी प्रगति में बाधक हों या उन्हें आगे नहीं पीछे की ओर ले जाते हों। नए साहब के मिटिंग में न आने पर भोलाराम के साथ उन सभी कर्मचारियों की आशाओं पर पानी फिर जाता है, जो कई दिनों से अपने नए साहब से, जो उन्हीं की जाति का, उनका अपना है। अब वह उन्हें अपना नहीं लगता। भोला और कलिया का संवाद यहाँ कहानी में इस बात को प्रकट करती है–

> **भोला–''राजू की दरखास्त टाइप भी कराई थी, पर बड़े साहब ने मिलने से ही मना कर दिया।''[94]**

कलिया के मन में उलझी गुत्थी अचानक सुलझ गई थी। तत्काल वह बरस उठी

> **''पर तू तो कहता था कि वो म्हारी जात का है।'' ''हाँ राजू की माँ, मैंनें कहा था। फिर पत्थर और हीरे का भेद तो अब पता चला है। उसकी जात तो अलग है। साब लोगों की जात। उनसे म्हारा मेल कहाँ हो सके है भला.....?''[95]**

भोला के स्वर में हीनता टपकने लगी थी।

> **''धन्नो के बापू, सच्ची बात तो ये है कोई म्हारी जात का साब हो या दूसरी जात का, गरीब–गुरबों का कोई नई होत्ता ?''भोला को दिलासा देते हुए कलिया ने कहा।''[96]**

प्रस्तुत संवाद से स्पष्ट होता है, कि आज दलित उच्च अधिकारी अपने आपको इतना सिमटा हुआ बना लेता है, कि वह अपनों से ही दूर हो जाता है। जब दलितों की समस्या दलित अधिकारी ही नहीं सुनना चाहते, तब सवर्णों से कैसे अपेक्षा की जा सकती है ? लेखक ने कहानी में वर्तमान के सिमटे हुए दलित अधिकारियों की संकुचित वृत्ति को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। संवाद छोटे होने पर भी चोटदार हैं। शहर में रहे दलितों की स्थिति को प्रकट किया गया है।

12. 'टूटता वहम'–डॉ. सुशीला टाकभौरे

डॉ. सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित **'टूटता वहम'** कहानी में लेखिका ने शिक्षित सवर्ण वर्ग और दलित वर्ग के बीच अस्पृश्यता की खाई को उजागर किया है। लेखिका और उनके पति जब एक ही स्कूल में शिक्षक थे तब उन्हें सह शिक्षकों, विद्यार्थियों और आचार्य आदि से मान–सम्मान मिलता था, किन्तु व्यवस्थापक जब किसी से उनका परिचय करवाते, तब यह बताना नहीं भूलते कि ये दोनों एस. सी. हैं। लेखिका उनके ऐसे व्यवहार के पीछे का कारण नहीं समझ पाती, किन्तु ऐसी घटनाएँ उन्हें विचलित करती थीं। उनकी योग्यता उनकी जाति को पीछे छोड़ देती थी।

जब लेखिका कॉलेज में अध्यापक के पद पर कार्य करती हैं, तब भी उनके साथी अध्यापक ऊपरी तौर से तो उन्हें अपनी तरह का समझते हैं, ऐसा ही व्यवहार करते हैं, किन्तु कोई उनके घर का खाना नहीं खाना चाहता। लेखिका जब अपने घर पर भोजन का कार्यक्रम रखती हैं, तो सभी सवर्ण महिलाएँ कुछ–न–कुछ बहाना बनाकर अनुपस्थिति रहती हैं और जो उपस्थित भी होती हैं, वह व्रत का बहाना बना लेती हैं।

लेखिका के पति के मित्र भी उन्हें अंधकार में रखते हैं। जमीन के एक अच्छे प्लाट को शर्मा जी के साथ लेने का उनका सपना, सपना ही रह जाता है। अस्पृश्यता मित्रता पर हावि हो जाती है।

इस प्रकार दलित कामकाजी महिला होने पर लेखिका को जीवन में कई ऐसे अनुभव होते हैं, जब उन्हें अपने साथी कर्मचारियों के साथ रहकर भी उनसे अलग होने को भाव आता है। इसके लिए ज़रुरी है, कि दलित वास्तविकता को नज़रअंदाज न करे। लेखिका के शब्दों में–

> **''जब तक हमारा वहम नहीं टूटेगा हम इस अन्याय को सहते रहेंगे!! इस तरह के भ्रमपूर्ण लोक–व्यवहार में अपने लिए मान सम्मान और अस्तित्व की पहचान खोजते रहेंगे!!!''**[97]

सवर्णों के मित्रता पूर्ण व्यवहार के पीछे के भ्रमजाल को, जब तक दलित नहीं समझ पाता, तब तक वह उसे अपना समझता है, किन्तु जैसे ही उसका यह भ्रमजाल टूटता है, उसका यह वहम टूट जाता है, कि उसके साथ काम करने वाले, मित्रता रखने वाले, उसके मन एवं हृदय के करीबी लोग उससे बहुत दूर एवं पराए हैं।

प्रस्तुत कहानी आधुनिक युग में शिक्षित वर्ग में सवर्णों की सोच एवं अस्पृश्यता केन्द्री विचारधारा के कलंक का शिकार हुए शिक्षित दलितों की मनोदशा और उनकी मानसिक स्थिति एवं दुविधा को चित्रित करती है। वतर्मान परिवेश में जातिगत भेदभाव का यह रुप नया है, किन्तु उसका मूल पुराना है।

12. 'डंक'–रत्नकुमार सांभरिया

'डंक' शीर्षक कहानी रत्नकुमार सांभरिया द्वारा रचित है, जिसमें पशुओं का व्यापार करने वाला दलित खेरा कम समय में दलितों में सबसे धनी बन जाता है। उसकी पत्नी मांगी सांवले रंग की गहनों से लदी रहती थी। पूरा गाँव उनके भाग्य की सराहना करता था। गाँव के ब्राह्मण को खेरा बिना ब्याज के बीस हजार रुपय छः महीने

के लिए देता है, बदले में रुपये न लौटाने पड़े इसलिए ब्राह्मण अंधेरे में खेरा की कमर तोड़ देता है।

खेरा के साथ अन्याय हुआ था। उसे उपकार का बदला अपकार से मिला था। मांगी और खेरा का सुखी जीवन हमेशा के लिए दुःखी हो जाता है। खेरा अपाहिज हो जाता है, कोई दवाई उसे ठीक नहीं कर पाती। ब्राह्मण ने उसे ऐसा डंक मारा था, कि वह कभी उससे अपने पैसे माँगने नहीं आएगा। खेरा की आर्थिक स्थिति जैसे–जैसे खराब होती जाती है, वैसे–वैसे उसका शरीर गलता जाता है। उसने जिस ब्राह्मण की बुरे वक्त में मदद की थी, वही उसे मृत्यु शैया पर डाल देता है।

माँगी जब सतना ब्राह्मण से अपने रुपये माँगने जाती है, तो उसे रुपये तो नहीं मिलते बल्कि उसे अपमानित किया जाता है। वह कहता है–

''तू तो दौड़ी–दौड़ी चली आती है, ना उस दिन खेरा की कमर तोड़ दी थी। एक दिन तेरी भी कमर तोड़ दूँगा।''[98]

धर्म के नाम पर लूटने वाला ब्राह्मण इतना बड़ा अधर्म करेगा यह खेरा और मांगी नहीं जानते थे। सच्चाई जानकर खेरा बदला लेने के लिए कसमसाता है, किन्तु एक अपाहिज क्या दंड उसे दे सकता था। खेरा स्वयं को इतना कष्ट देता है कि उसी रात को उसकी मृत्यु हो जाती है। खेरा तो सतना को दंड नहीं दे पाता, किन्तु उसके साथ हुए अन्याय का बदला लेने के लिए पूरा गाँव रात को सतना का घर घेर लेता है। कहानी में बीमार पति की दिन–रात सेवा करती माँगी का खुशहाल जीवन सतना बरबाद कर देता है। माँगी स्वयं अपने समक्ष अपने दोषी को देखती है उसे गालियाँ देती है, किन्तु गरीबी, लाचारी, पति की बीमारी उसे इसके अतिरिक्त कुछ करने का हौसला नहीं देती। दलितों पर अत्याचार करने वाला सतना गिरगिट की तरह रंग बदलता है। कहानी के अंत में दलितों द्वारा खेरा के साथ किए गये अन्याय के खिलाफ सतना की घेरा बंदी करना यह संकेत देता है, कि वे अब अन्याय के खिलाफ विद्रोह करेंगे, दोषी को बख्शा नहीं जाएगा। एकता में शक्ति होती है। 'डंक' यहाँ सांकेतिक अर्थ है शोषण का। कहानी का अंत इस बात को बताता है, कि अब भविष्य में कोई सतना किसी खेरा पर अत्याचार नहीं कर पाएगा।

2.7 परिवार में पिता की भूमिका

1.'भूख'– डॉ. सी.बी.भारती

डॉ. सी.बी.भारती की प्रस्तुत कहानी **'भूख'** एक आदिवासी समाज की दयनीय दशा, उनके शोषण और पेट की भूख के लिए होते उनके अधोपतन को चित्रित करती है। विकास के नाम पर जंगलों को काटकर गैर आदिवासियों ने गगनचुंबी अट्टालिकाएँ बना ली, जिसके परिणाम स्वरुप आदिवासी प्रजा जिन जंगलों के उत्पाद, पत्तियों, शहद आदि को बेचकर अपना गुजर करती थी, वे सभी जंगलों के कट जाने से पूरी तरह से नष्ट हो गए। धन की कमी और पेट की भूख ने उन्हें इतना विवश कर दिया कि स्त्रियाँ और युवतियाँ अपना शरीर बेचने को मजबूर हो गई।

ऐसी स्थिति में फिरतों की जवान बेटी किशनी बड़ी मुश्किालों के सहने पर भी सुरक्षित रहती है, अन्यथा शायद ही आदिवासी घरों में कोई युवती बची हो, जिसने अपना शरीर न बेचा हो। फिरतो ने बड़े अरमानों से पाल–पोसकर बड़ा किया था

किशनी को। सामाजिक दुष्प्रभावों के बावजूद अपने पेट की आग के लिए उसने पूत्री के स्वाभिमान को स्वाहा नहीं होने दिया–

> **''यद्यपि दूसरों के बिस्तर की शोभा बनना वहाँ के माहौल में बहुत साधारण–सी बात होती थी और मान–सम्मान, स्वाभिमान की परख का अवसर ही नहीं होता था, पेट की भूख मिटाने के आगे। भुइसर टोला की यह पट्टी गवाह थी, आदिवासियों के बेइन्तहा अन्तहीन शोषण की। पहले ठेकेदार, नेता, हाकिम, गैर आदिवासी अब नवधनाढ्य, व्यवसायी और अफसर, यही तो थे शोषण के अलंबरदार।''**[99]

अर्थात् आधुनिकरण और विकास के नाम पर जहाँ एक ओर गैरदलित समाज प्रगति के पंथ पर आगे बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी और आदिवासी समाज की स्थिति में बदलाव भी हुआ है। बदलाव यह है कि उनका शोषण पहले गाँव के सवर्ण करते थे, अब शहर के नामी–गिरामी, उच्चपद पर आसीन लोग उनकी गरीबी का फायदा उठाते हैं।

किशनी का विवाह मल्हू से होता है। किशनी अपने पति के साथ अपने वैवाहिक जीवन में अत्यंत प्रसन्न थी। वह ऐसा पति चाहती थी, जो उसका सम्मान करे और उसे स्वाभिमान की जिंदगी दे । बचपन से ही किशनी जिस वातावरण में रही थी वहाँ छुआछूत, ऊँच–नीच का भेदभाव, अंधविश्वास, पढ़ाई–लिखाई का अभाव, गाली–गलौज, मार–पीट, आदि शोषण के सभी उपादान थे, जहाँ से मुक्ति दूर–दूर तक नज़र नहीं आती थी। मल्हू के साथ किशनी इन सभी शोषणों से मुक्ति का अनुभव करके अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझती है। अपने दो बच्चों के साथ किशनी सुखद वैवाहिक जीवन बिताते हुए किशनीको पाँच वर्ष बीत जाते हैं। इन वर्षों में वह अपने मायके एक भी बार नहीं गई थी।

मल्हू आदिवासी था, किंतु शहरी जीवन बिताने के कारण उसमें सभ्यता, सलीका और जीने की नई सोच आ गई थी। पढ़ना–लिखना भी सीख लिया था। उसे किशनी के मायके भुइसरटोले से घृणा आती थी, क्योंकि वहाँ का महौल बहुत ही गंदा था। गंदगी के उस वातावरण में उसका जी घबराता था। वह किशनी और अपने बच्चों को उस वातावरण से दूर रखना चाहता था। एक बार किशनी के जिद्द करने पर वह, उसे कुछ दिनों के लिए भुइसरटोला भेज देता है।

किशनी पाँच वर्षों बाद माँ–बाप से मिलने के लिए आतुर थी। उसकी खुशी का ठिकाना न था। किशनी को गए जब दो सप्ताह गुजर जाते हैं, तो मल्हू को चिंता होती है। वह स्वयं किशनी को लेने भुइसरटोला पहुँच जाता है। वहाँ उसके माता–पिता से यह जानकर आश्चर्य होता है, कि किशनी वहाँ नहीं है। पड़ोसियों से जानकारी मिलती है, कि फिरतो ने पेट की भूख के कारण विवश होकर अपनी बेटी और उसके बच्चों को पाँच सौ रुपयों में एक गैरदलित को बेच दिया है। मल्हू को तो पूरी धरती घूमती नज़र आने लगी। उसने ऐसा सोचा ही नहीं था, कि एक पिता की भूख उसे इतना विवश कर सकती है कि वह अपनी ही विवाहित पुत्री को बेच दे। फिरतो ने किशनी को विवाह से पूर्व बड़ी मुश्किलों से बचाया था, किन्तु बेटी के विवाह के पाँच वर्षों में वह इतना लाचार हो गया, कि उसके लिए बेटी की आबरु से भी बड़ी भूख हो गई। पेट की भूख ने उसके स्वाभिमान, मान–सम्मान की सोच को पीछे छोड़ दिया।

मल्हू बड़ी मुश्किल से अपने दोनों बच्चों को उस गैरदलित व्यक्ति से पाँच–सौ रुपये में छुड़ा लेता है किंतु किशनी को वह नहीं छोड़ता।
किशनी उसके लिए नौकरानी से लेकर रखैल तक सभी रुपों में उपयोग करने की वस्तु थी। पिता की भूख के लिए बेटी हमेशा–हमेशा के लिए दफन हो जाती है।

प्रस्तुत कहानी में आदिवासी प्रजा के एक ऐसे टोले का चित्रण है, जहाँ थोड़े से रुपयों के लिए बहू–बेटी को बेचना कोई बड़ी बात नहीं थी। सभी ऐसा करते थे, इसलिए किसी को बेइज्जती की कोई चिंता नहीं थी। मान–सम्मान, स्वाभिमान आदि बड़ी–बड़ी बातें उनकी पेट की भूख के समक्ष कुछ नहीं थी। गैरआदिवासी उनकी इस पेट की भूख को दूर करते थे और वे उन्हें अपनी बेटियों को बेचकर उनकी शरीर भूख को दूर करते थे। आदिवासियों की गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, विवशता, अंधविश्वास को लेखक ने बखूबी चित्रित किया है। साथ ही विकास के नाम पर हो रहे दलितों के शोषण पर भी प्रकाश डाला है।

2. 'कफन'–रुपनारायण सोनकर

रुपनारायण सोनकर की **'कफन'** कहानी जीतलाल श्रीवास्तव जैसे शिक्षित दलित पिता की परेशानी को प्रस्तुत करती है। जीतलाल स्वयं बनारस के कॉलेज में प्रिंसिपल थे। पुत्र वैज्ञानिक था और पुत्री सलिला श्रीवास्तव अंग्रेजी विषय की प्रवक्ता। धन–दौलत, नाम, एश्वर्य, सुंदर शिक्षित पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश में वे चिंतित थे। स्वयं दलित थे इसलिए दलितों में उनकी बेटी के योग्य वर मिलना मुश्किल हो रहा था।

संगम सक्सेना उच्च वर्ण के पंजाबी परिवार से थे। उनका पुत्र सतनाम सक्सैना कम्प्यूटर इंजीनियर था। पूरा परिवार दहेज का लालची था। पिता–पुत्र दोनों ही ऐसे परिवार से संबंध जोड़ना चाहते थे, जहाँ उन्हें करोड़ों रुपये दहेज में मिले। समाचार पत्र में शादी का इश्तहार देखकर जीतलाल श्रीवास्तव खुश हो जाते हैं, क्योंकि लड़का अच्छा था और जाति का कोई बंधन न रखा गया था। जीतलाल को धन की कमी नहीं थी, वह दहेज दे सकते थे। जब वे सक्सैना परिवार से मिलने जाते हैं, तो वे जान जाते हैं, कि यह परिवार बहुत ही लालची है। इस लालची पिता–पुत्र को वे अपने मेहतर होने की बात बता देते हैं, साथ ही अपनी अथाह सम्पत्ति का ब्यौरा भी दे देते हैं। सक्सैना धन के लोलुप थे सो करोड़ों रुपयों के लिए वे किसी भी जाति की लड़की को बहू बनाने को तैयार थे।

जीतलाल ने कुछ शर्तें सक्सैना पिता–पुत्र के समक्ष रखीं जैसे– आपके पुत्र को सूअर का गोश्त खाना पड़ेगा, पिता–पुत्र को एक दिन दूसरों के घरों की विष्टा साफ करने जाना होगा आदि। इतनी घृणित शर्त होने के बाद भी सक्सैना अधिक धन पाने के लिए शर्त स्वीकार लेते हैं। लेखक के अनुसार–

> **''लालच और स्वाभिमान की जंग जारी थी। लालच धन पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार था। स्वाभिमान अपना सर उठाने के लिए सब कुछ लुटाने को तैयार था। एक धन को सर्वोपरि मान रहा था दूसरा सम्मान और प्रतिष्ठा को। एक तरफ लालच जितना नीचे जा सकता था जा रहा था, दूसरी तरफ सामाजिक प्रतिष्ठा और दलित अस्मिता की ऊँचाइयों को छू रही थी।''**[100]

जीतराम श्रीवास्तव दलित अस्मिता को ऊँचा उठाने के लिए ज़्यादा–से–ज़्यादा रुपये खर्च करने को तैयार थे। सवर्णों द्वारा वर्षों से जो शोषण, अपामन, अवहेलना दलितों ने सही है, आज सवर्णों से उसका बदला लेने का अच्छा अवसर हाथ में आया था। सक्सैना तो इतना लोभी था कि धन के लोभ में वह विष्टा खाने को भी तैयार था, किन्तु जीतलाल इसे अनुचित समझते हैं।

जीतराम की पुत्री सलिला ऐसे लोभी परिवार में विवाह नहीं करना चाहती। वह एक शिक्षित आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी युवती थी, लालची सवर्ण से विवाह करके वह जीवनभर सुखी नहीं रह सकती थी। लेखक के अनुसार–

> **''भ्रण हत्याएँ संगम सक्सैना जैसे दहेज लोभियों की वजह से हो रही हैं। समाज में दहेज ने ऐसा विकराल रुप धारण कर लिया जो हर मानव को निगल रहा है। बिना दहेज के लड़कियों की शादियाँ नहीं हो रही हैं। लोग जमीन–जायदाद, घर द्वार बेचकर एवं अपनी गाढ़ी कमाई बैंकों से निकालकर दहेज लोभियों को दे रहे हैं और अपनी पुत्रियों की शादी कर रहे हैं।.....इस दहेज रुपी दानव से छुटकारा पाने के लिए बच्चियों को जन्म होने से पहले ही पेट के अंदर मार रहे हैं।''**[101]

दहेज एक सामाजिक दूषण है। चाहे दलित युवती हो या सवर्ण, दहेज लोभियों के कारण उसे एवं उसके परिवार को कई बार अपमानित होना पड़ता है, तो कई बार कर्ज़ में डूबना पड़ता है। स्त्री भ्रुण हत्या का सबसे बड़ा कारण दहेज है, ऐसा कहा जा सकता है। जीतलाल अपनी पुत्री का विवाह सतनाम सक्सैना से तो नहीं करते परंतु मिट्टी के गहनों पर सोने का रंग चढ़ाकर, संदूक में भरकर सक्सैना के घर भेजकर धन लोलुप परिवार को अच्छा सबक सिखाते हैं। जीतलाल द्वारा भेंट में भेजा गया सफेद कफन, वास्तव में संगम सक्सैना की मृत्यु के बाद कफ़न के लिए उपयोगी बनता है।

प्रस्तुत कहानी 'कफन' में लेखक ने दहेज समस्या, शिक्षित दलित पुत्री के लिए योग्य वर ने मिलने की समस्या, दलितों पर सवर्णों द्वारा अत्याचार की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। आज सभी दलित पहले की तरह अशिक्षित निःसहाय, दुर्बल, गरीब और दयनीय नहीं रहे। आज वे उच्च शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर कार्यरत हैं, साथ ही धन की कोई कमी नहीं है। वे अपने आपको सवर्णों से अधिक नहीं तो कम भी नहीं समझते हैं। सलिला जैसी सुंदर, शिक्षित युवती स्वयं सवर्ण सतनाम से विवाह करने से इन्कार कर देती है। यहाँ दलित शिक्षित युवतियों में आए बदलाव को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में वर्तमान समय की समस्याओं एवं वातावरण को चित्रित किया गया है। भाषा चित्रोपम एवं पात्रोचित है, कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट है कि समाज से दहेज जैसे दूषण को दूर करना अत्यंत आवश्यक है, वरना स्त्री भ्रुण हत्या को रोकना मुश्किल होगा। कहानी का शीर्षक 'कफ़न' दहेज लोभी संगम सक्सैना जैसे व्यक्ति के कर्मों के आधार पर मिलने वाले फल की ओर संकेत करता है।

3. 'अंधड़'– ओमप्रकाश वाल्मीकि

'अंधड़' कहानी कि नायिका सविता एक सुशिक्षित दलित स्त्री है। सविता के चाचा दीपचंद ने उसे पढ़ाया–लिखाया था। स्वयं दरिद्रता, गंदगी में जीकर दीपचंद ने यह जाना था, कि यदि समय के साथ चलना है, मान–सम्मान पाना है, तो पढ़ाई–लिखाई बहुत ज़रुरी है। शहर में नगरपालिका में सफाई कर्मचारी होते हुए भी

उन्होंने उस समय लड़कियों को स्कूल भेजा, जबकि समाज में लड़कियों को स्कूल भेजने के नाम पर लोग नाक–भौंह सिकोड़ते थे। वीना, सविता की चचेरी बहन थी। दीपचंद ने अपने मित्र के बेटे सुक्कड़, जो कि पढ़ाई में बहुत होशियार था उसे अपने घर चार वर्ष रख कर कॉलेज की पढ़ाई करवाई थी।

सुक्कड़ बी.एस.सी. फिर एम.एस.सी करके पूना के एक प्रसिद्ध शोध संस्थान में नौकरी करता है। सुक्कड़ एस.सी. होने के कारण बचपन से ही हीन–बोध से मुक्त नहीं था। उसके सहपाठी उससे अलग–थलग रहते थे। यही बात कॉलेज में भी सब जानते थे, कि उनका परिवार सुअर का गोश्त बेचता है। सुक्कड़ को अच्छे छात्र के रुप में ख्याति ज़रुर मिली, किंतु जिस लोकप्रियता का वह हकदार था, एस.सी.होने के कारण उससे हमेशा वंचित रहा।

अच्छी जगह नौकरी मिल जाने पर दीपचंद की भतीजी सविता से उनका विवाह हो जाता है। उनके दो बच्चे थे पिंकी और स्वीट। बच्चों के बड़े होने तक के समय में उनके जीवन में बहुत बदलाव आया। एक ओर उनकी तरक्की हुई दूसरी और उन्होंने अपना नाम सुक्कड़ से एस.लाल लिखना शुरु कर दिया। साथ ही अपने सारे नाते–रिश्तेदारों से कन्नी काटने निर्णय ले लिया। यह निर्णय उन्होंने अचानक नहीं लिया था, बल्कि स्कूल, कॉलज और फिर नौकरी तक आते–आते उन्होंने जो कुछ भी भोगा, महसूस किया उसी का परिणाम था। मि.लाल नहीं चाहते थे कि जो मान–सम्मान वर्षों बाद लोगों से उन्हें मिल रहा है, एस.सी.की बात जान लेने पर उनसे छीन लिया जाए।

सविता अपने पति मि.लाल में आए परिवर्तनों को हीन–भावना का प्रतीक मानती थी, जो प्रतिक्रिया के रुप में उपजे थे। सविता पढ़ी–लिखी समझदार स्त्री थी। वह जानती थी कि अपने ही परिवार के लोगों से कतराना या उनकी अवहेलना करना कतई सही नहीं है। शिक्षित होकर भी अपने अनपढ़ परिवार वालों का सहारा या मार्गदर्शक बनने की जगह उन्हें संस्कारहीन, प्रगति में बाधक समझना सविता के मन को विचलित कर देता है। मि.लाल के तर्कों के समक्ष सविता कमजोर नहीं पड़ती। वह नहीं चाहती कि अपने रिश्तेदारों के साथ अजनबियों जैसा व्यवहार किया जाए, या अपनी जात को छिपाकर हाई–सोसायटी के लोगों के बीच मान–सम्मान पाने का प्रयास किया जाए। सविता विवाह के बाद अपने चाचा दीपचंद से संबंध जोड़े रखना चाहती थी, अपने चाचा दीपचंद के घर जाना चाहती थी, तब मि.लाल उस पर बिफर पड़ते हैं और कहते हैं–

> **''मैं जिस गंदगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ.....तुम लौट–लौटकर उसी में जाना चाहती हो। तुम वहाँ जाओगी तो वे भी यहाँ आएँगे। मैं नहीं चाहता, यहाँ लोगों को पता चले कि हम 'शेड़यूल्ड कास्ट' हैं। जिस दिन लोग ये जान जाएँगे, यह मान–सम्मान सब घृणा–द्वेष में बदल जाएगा।''**[102]

सविता की दृष्टि में विवाह के बाद वह भले ही एक नई दुनिया में आ गई थी, किन्तु इस नई दुनिया की चका–चौंध में वह अपने उस चाचा को नहीं भूली थी, जिन्होंने स्वयं अंधेरे में रहकर दूसरों को रोशनी दी थी। मि.लाल सविता के ऐसे विचारों से बिल्कुल विपरीत सोचते थे। वे अपनी जात को छिपाए रखने के लिए लोगों की घृणा से बचने के लिए कोई भी कींमत चुकाने को तैयार थे। चाहे वह अपने रिश्तेदार हों, पुराने परिचित

हों या सविता के ही परिवार वाले ही क्यों नहीं। इसीलिए उन्होंने अपने बच्चों से भी अपनी जात को छिपाए रखा, साथ ही अपने रिश्तेदारों से कभी नहीं मिलवाया।

मि.लाल की इस अंधी दौड़ में अवरोध तब पड़ता है जब उन्हें यह पता चलता है कि जिस व्यक्ति ने उन्हें वैज्ञानिक बनने में सबसे ज्यादा योगदान दिया था, ऐसे दीपचंद जी का अवसान हो गया है। मि.लाल को वर्षों के बाद यह एहसास हो जाता है कि उन्होंने अपने–रिश्तेदारों से संबध तोड़कर बहुत बड़ी गलती की है। अपनी गलती को सुधारने के लिए वे स्वयं दीपचंद जी के घर जाना चाहते हैं। सविता भी अपने परिवार से मिलना चाहती है किंतु वह नहीं जाती। सविता के पास उनके सवालों का कोई जवाब नहीं था, कि वह इतने वर्षों कहाँ थी ? अपने पति के अहम के समक्ष उसकी भावनाएँ निष्प्राण हो चुकी थीं।

मि.लाल के साथ उनकी बेटी पिंकी जिद्द करके दीपचंदजी के घर जाती है। वहाँ पहुँचकर पिंकी ऐसा महसूस करती है जैसे वह किसी आदिम जगह पर आ गई हो। वहाँ के लोग, रहन–सहन भाषा, तौर–तरीका,खान–पान, वातावरण आदि देखकर उसका जी घबराने लगा। अपने पिता से वह कहती है कि ये सब लोग बहुत ही गंदे और असभ्य हैं। जब मि.लाल पिंकी को वो वास्तविकता बताते हैं, जो उन्होंने इतने वर्षों तक उससे छिपाकर रखी थी। सारी सच्चाई जानकर पिंकी अपने शब्दों के लिए उनसे माफी माँगती है। अपने पिता से वह कहती है–

> **"डैड, किसी भी बदलाव के लिए भागना तो समाधान नहीं होता। भागकर तो हम उसे बढ़ा देते हैं।"**[103]

पिंकी एक शिक्षित युवती है। वह नए जमाने की सोच–विचार रखती है। अपने पिता की गलतियों को वह दोहराना नहीं चाहती। उसके विचार से यदि वह एस. सी. है तो एस.सी. बनकर वह अपने जीवन या समाज में बदलवा या सुधार लाने का प्रयास कर सकती है। यदि उसने अपनी पहचान छुपाई तो बदलाव या सुधार करना और मुश्किल हो जाएगा। अंत में मि.लाल को अपनी गलती का पछतावा होता है।

3. 'घाटे का सौदा'–सूरजपाल चौहान

सूरजपाल चौहान द्वारा रचित कहानी **'घाटे का सौदा'** कहानी में एक ऐसे पिता का चित्रण किया गया है, जो अपनी जाति छिपाकर अपनी बेटी का विवाह सवर्ण जाति के लड़के के साथ कर देता है। लल्लनपुर गाँव की बस्ती का डोरीलाल शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदाधिकारी बन जाता है। अपनी जाति के कारण डोरीलाल स्कूल में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के छुआछुत से पीड़ित होता है। उसके भीतर गहरे तक हीन भावना भर दी जाती है, जिससे वह कभी छुटकारा नहीं पा सका।

यही कारण था कि अच्छी नौकरी मिलने पर वह अपनी पत्नी एवं दो बच्चों के साथ अच्छी सोसायटी में बंगला, गाड़ी, सुविधाओं के बीच रहकर अपनी ही जाति एवं रिश्तेदारों से संबंध तोड़ लेता है। पत्नी आनंदी उसे अपनी जाति छिपाने एवं सवर्ण जाति का बताने की बात का विरोध करती है एवं सच्चाई को स्वीकार करती है, किन्तु डोरीलाल सच्चाई बताकर अपने मान–सम्मान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा को खोना नहीं चाहता। बेटी का विवाह भी वह अपने पड़ोसी मित्र के पुत्र के साथ जाति छिपाकर कर देता है।

रजनी एक अध्यापिका के पद पर कार्य करने वाली युवती थी। वह पिता के ऐसे विचारों से परेशान तो होती है, किन्तु उन्हें बदल पाना उसे संभव नहीं लगता। रजनी का ससुर सोमनाथ अपने साथ धोखे की बात जानकर पुत्र अनिल से कहता है–

''बेटा, आज ही रजनी को उसके घर भेज दो और सदा–सदा के लिए संबंध तोड़ लो। भूल जाओ इसे , यह नीच बाप की बेटी है। मैं इस के बाप पर मानहानि और धोखाधड़ी का मुकदमा दायर करुँगा।''[104]

रजनी को पिता की गलती के कारण उसे नीचा देखना पड़ता है और सच छिपाने के कारण लज्जित होना पड़ता है। अनिल रजनी का साथ देता है किन्तु सोमनाथ को मनाना उसके लिए सरल नहीं था। वह पिता से अलग पत्नी के साथ रहने लगता है। डोरीलाल भी लोगों के तानों से बचने के लिए अपनी कोठी घाटे के सौदे में करके रातों–रात वहाँ से भाग जाता है।

प्रस्तुत कहानी में डोरीलाल के एक झूठ से कई लोग आहत होते हैं। बेटी रजनी का वैवाहिक जीवन टूटते–टूटते बचता है। किन्तु रजनी जैसी शिक्षित, कामकाजी युवती पिता के झूठ का विरोध कर सकती थी। अनिल को सच्चाई पहले ही बताकर उसके विचारों को जान सकती थी। दलित शिक्षित युवती अपने कर्त्तव्य एवं अधिकारों को समझते हुए अपने वैवाहिक जीवन की शुरुआत ही झूठ की बुनियाद पर करे, फिर पिता को दोष दे यह उचित नहीं लगता। आज की दलित युवतियों को अपने परिवार की प्रगति के लिए झूठ का सहारा लेने की आवश्यता नहीं है।

कहानी का शीर्षक 'घाटे का सौदा' में डोरीलाल ऊर्फ डी. लाल को दोनों सौदे घाटे में पड़ते है। बेटी का विवाह और कोठी को घाटे में बेचना दोनों में नुकसान उसी को होता है। कहानी में ग्रामीण एवं शहरी वातावरण में दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अनिल जैसे शिक्षित सवर्ण युवक द्वारा रजनी का साथ न छोड़ने की बात से नई पीढ़ी में आए बदलाव को भी प्रस्तुत किया है।

2.8.दलित नारी का विद्रोह

1.'आतंक'–राजेश कुमार बौद्ध

प्रस्तुत कहानी **'आतंक'** दलित उत्पीड़न एवं दलित नारी के विद्रोह की कहानी है। अत्याचार और शोषण को दलित नारी वर्षो से सहती आ रही है। सवर्ण समाज दलित नारी के प्रति कितना कठोर हो सकता है, यह इस कहानी में देखा जा सकता है। प्रस्तुत कहानी में राखी नामक दलित स्त्री नव वर्ष का बेटा ठाकुर के आठ वर्षीय बेटे की पीटाई कर देता है। क्योंकि ठाकुर के बेटे ने उसे गाली दी और उसके कपड़े फाड़ दिए। आपस में वे दोनों लड़ पड़े। शाम होने तक यह बात पूरे ठाकुर समाज में फैल गई। एक दलित के बेटे ने ठाकुर के बेटे पर हाथ उठाया, यह सुनकर बिरादरी के लोगों में खलबली मच गयी। बिरादरी के नाम पर सबके मन में आक्रोश पैदा हो गया।

वर्षों से सवर्ण समाज दलितों का शोषण करता आया है। दलित उनके अत्याचार को खामोशी से सहते आए हैं। उनसे लड़ने की किसी में हिम्मत नहीं। उनके विरोध में एक भी शब्द वे बोल सकें, ऐसा साहस किसी दलित में नहीं। परिणामस्वरुप सवर्णों को इससे और बल मिलने लगा। वे दलित पुरुष के साथ–साथ दलित स्त्री पर

भी अत्याचार करने लगे। राखी के साथ वही होता है। वह अपने बेटे को इंसाफ दिलाना चाहती है। गलती ठाकुर के बेटे ने की थी, किंतु ठाकुर अपने बेटे की गलती न स्वीकार करके सारा दोष राखी और उसके बेटे पर लगाते हैं। ठाकुर राखी को घसीटकर घर से बाहर लाते हैं। उसे मार–पीटकर उसे उसके घर में बंद कर देते हैं। दो दिन तक उसे खाना–पानी नहीं दिया जाता। राखी के रिश्तेदार इस अत्याचार को देखकर दुःखी होते हैं। किंतु इन दबंग लोगों से भिड़ने की किसी में हिम्मत नहीं थी। गाँव में ठाकुरों का इतना दबदबा था कि गाँव का कोई भी व्याक्ति उनके विरोध में एक शब्द भी नहीं बोल सकता था।

दलितों की खामोशी से ठाकुरों को और बल मिलता है। वे राखी को रात के समय घसीटकर अपने घर ले जाते हैं और उसका बलात्कार करते हैं। सुबह फिर उसे घर लाकर कैद कर देते हैं। जिस किसी व्यक्ति ने राखी को खाना–पानी देने की कोशिश की उसे वे पीटते हैं। राखी का देवर बड़ी मुश्किल से थाने में इस घटना की जानकारी देता है। थाना इन्चार्ज और सब इन्सपेक्टर घटनास्थल पर पहुँचते हैं और ठाकुर परिवार को समझा–बुझाकर ताला खुलवा देते हैं। ठाकुर एक धनवान व्यक्ति था, इसलिए थानेदार भी उसी का पक्ष लेता है। गरीब, शोषित राखी की लाचारी और दयनीयता देखकर भी उसे इंसाफ नहीं दिलाता। पुलिस की इस तरह की कमजोरी का भरपूर फायदा ठाकुर उठाता है। वह राखी को निर्वस्त्र करके गाँव में उसे जिन्दा जला देता है। राखी की चीख उसकी देवरानी विमला सुनती है। वह उसे बचाने के लिए लोगों की मदद माँगती है। लेकिन कोई आए उससे पहले राखी का शरीर जल चुका था।

थाना प्रभारी यह सूचना पाकर भी तुरंत नहीं आता। वह तो ठाकुर के साथ उस स्थल पर पहुँचता है। जब कातिल पुलिस के साथ खड़ा हो, तो भला इंसाफ मिलने की आशा कहाँ रह जाती है। पुलिस, ठाकुर को बचाने के लिए पंचनामे करने लगती है। राखी की देवरानी विमला की सहनशक्ति खत्म हो जाती है। वह घायल शेरनी की तरह पुलिस के समक्ष आकर उन्हें रोकती है। उसकी हट के समक्ष पुलिस को झुकना पड़ता है और लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी जाती है। एक माँ को बेटे की सजा इतनी भयानक मिलेगी इसकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी।

ठाकुर की दरंदगी यहाँ पर खत्म नहीं होती। राखी को जिंदा जलाकर वह दूसरे दिन राखी की देवरानी के पति को मार–पीटकर अधमरा कर देता है। एक बार फिर एक दलित स्त्री विमला को निर्वस्त्र करके, सिर के बाल पकड़कर पूरे गाँव में घुमाया जाता है। ठाकुर दलितों के बीच ऐसा घृणित कार्य करके यह सिद्ध करना चाहता है कि, जो व्यक्ति उनके समक्ष आवाज उठाएगा उसकी दुर्गती ऐसी ही होगी, जैसी राखी और विमला की हुई है।

विमला, राखी की तरह कमजोर नहीं थी। उसमें साहस की कमी नहीं थी। अपनी हिम्मत के कारण वह अचानक ठाकुर चमनसिंह का गला खूब कसकर पकड़ लेती है। जब बोडीगार्ड उसे बचाने जाता है, तो उसकी रिवाल्वर छीनकर सात लोगों पर गोली चला देती है। राखी नारी के अबला रुप का परिचय देती है, तो बिमला नारी के सबला रुप का परिचय देती है। बिमला अपने अपमान का बदला उन्हें मृत्युदंड देकर स्वयं ले लेती है। यदि उसे कानून पर भरोसा होता तो वह यह कार्य कभी न करती, किन्तु हमारे रक्षक ही जब भक्षक बन गए हों तब बिमला जैसी स्त्री को कौन–इंसाफ दिलाता। बिमला सोचती है कि किसी ने ठीक ही कहा था कि–

"जुल्म करने वाले से जुल्म सहने वाला ज्यादा गुनाहगार होता है।"[105]

विमला जेल में रहकर भी खुश थी। वह इसलिए खुश थी, क्योंकि उसने सिद्ध कर दिया था, कि हर नारी अबला नहीं होती बल्कि वह हमेशा सबला थी, है और रहेगी।

2. 'अन्तिम बयान'– कुसुम वियोगी

कुसुम वियोगी की प्रस्ततु कहानी **'अंतिम बयान'** बी.केशरशिवम की 'मंकोडो' और कुसुम मेधववाल की 'अंगारा' कहानी से समानता रखती है। तीनों कहानी में दलित स्त्री सवर्ण पुरुष के अत्याचार के समक्ष समर्पण न करके उसका विरोध करती है, साथ ही वह किसी अन्य दलित स्त्री पर अत्याचार न कर सके इसके लिए उससे पुरुष होने का अधिकार छीन लेती है।

कहानी नायिका अतरो गाँव के दलितों की सभी युवतियों में सबसे अधिक सुंदर, समझदार और निडर थी। गाँव के प्रधान का एकमात्र पुत्र राजेन्द्र उसके रुप पर मर–मिटा था। गाँव की युवतियों को छेड़ना, अपने प्रेमजाल में उसे फँसाना उसके लिए आम बात थी। अतरो को भी वह फँसाना चाहता था, किंतु अतरो उससे घृणा करती थी। उसकी हरकतों को देखकर अतरो अपनी मुहबोली भाभी कमला से कहती है–

> **''भाभी ! अगर उसने मुझे कुछ कह दिया तो फिर देख दराती से गन्ने–सा कतरकर रख दूँगी हराम खोर को ! गाँववाले देखते रह जाएँगे।''**[106]

अतरो उन युवतियों में से नहीं थी, जो ठाकुरों के डर से समर्पण कर दे। जितनी स्वतंत्रता सवर्ण स्त्री को मिलती है, जीने के लिए उतनी ही स्वतंत्रता दलित स्त्री को भी मिलनी चाहिए। वह तय कर लेती है, कि यदि राजेन्द्र उसके नज़दीक आया तो वह उसे ऐसा दण्ड देगी, जिससे वह मुँह छिपाता फिरेगा।

राजेन्द्र कामुकता का भेड़िया था। वह अतरो को पाने के लिए छटपटाने लगा। अतरो निडर थी, इसलिए वह राजेन्द्र से दूर न भागकर उसका सामना करने को तैयार थी। एक दिन कमला और भरतरी के साथ घर जाती हुई अतरो को राजेन्द्र बीच में रोक लेता है। भाभी को घर जाने के लिए कहकर अतरो से अकेले में मिलना चाहता है। अतरो भी आज इस कहानी का अंत करने के लिए तैयार हो जाती है। अकेलेपन का फायदा उठाकर राजेन्द्र जैसे ही उसके पास आता है तभी अतरो उससे पुरुष होने का अधिकार छीन लेती है। वह किसी स्त्री का सुख प्राप्त न कर सके ऐसा दंड उसे देती है।

राजेन्द्र के पिता गाँव के प्रधान थे। गरीबों का धन लूटकर खूब धन जमा किया था। इकलौता बेटा राजेन्द्र उसका अकेला मालिक था अपने कूकर्मों के कारण राजेन्द्र का जीवन अब जीने लायक नहीं रह जाता। वह किसी को क्या मुँह दिखलाएगा। उसके माता–पिता की उम्मीदों पर उसने पानी फेर दिया था, इसलिए वह कुँए में कूदकर आत्महत्या कर लेता है।

पोस्टमार्टम के बाद लाश गाँव के लोगों को थमा दी गई। दारोगा रिपोर्ट देखकर दंग थे। यह पता चल गया था, कि यह हत्या भी हो सकती है। पूछ–परछ करने के बाद शक की सुई गाँव पर और उसमें भी अतरो पर जाकर रुक गई। अतरो

का बयान लेने के लिए उसे थाने ले जाने को दारोगा तैयार था, किंतु गाँव वाले नहीं। गाँव वाले चाहते थे, कि जो बयान लिया जाए, वह सबके सामने लिया जाए।

अतरो अब भी घबराती नहीं है। वह सिपाही से कहती है, कि मैं बयान देने को तैयार हूँ, जरा रुको। दौड़कर वह कागज का बंडल लेकर आती है और भीड़ के बीच आकर कहती है–

> **''गाँववालों, सुनो। दारोगा को बयान चाहिए तो सुनो मेरा बयान। अतरो ने काग़ज के बंडल में से निकालकर राजेन्द्र का कटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया।''**[107]

यहाँ अतरो का अंतिम बयान दलित स्त्री के शोषण के प्रति उसके विद्रोह को प्रस्तुत करता है। जिस दलित समाज में सदियों से सवर्ण पुरुष दलित स्त्रियों का शारीरिक शोषण करता आया है और दलित स्त्रियाँ न चाहते हुए भी गरीबी और अत्याचार के डर से उस शोषण के सहती आई है। ऐसी स्थिति में अतरो की निडरता और उस अत्याचार के विरुद्ध प्रतिकार एक नया साहस कहा जा सकता है।

कहानी में जिस ग्रामीण वातावरण का वर्णन है, भाषा उसके अनुरुप प्रयुक्त की गई है। कहानी की नायिका अतरो दलित शोषित स्त्रियों के लिए, शोषण के खिलाफ मुक्ति प्राप्त करने का एक ऐसा मार्ग चुनती है, जिससे उसके साथ–साथ अन्य स्त्रियाँ भी मुक्त हो सकें।

3. 'जंगल में आग'– गौरीशंकर नागदंश

'जंगल में आग' कहानी में फुलतोड़नी नाम की दलित युवती के जीवन–संघर्ष की प्रस्तुती की गई है। पनचक्की गाँव की सुंदर, आकर्षक दिखने वाली फुलतोड़नी अपनी माँ के साथ एक मिल में काम करती थी। उस मिल में व्यापार करने वाला विलासी सिंह दल के व्यापार के साथ–साथ सुंदर युवतियों और स्त्रियों का भी मोल–भाव करके अपनी भूख शांत करता था। कई युवतियों को अपने जाल में फँसानेवाला विलासी सिंह का दिल फुलतोड़नी पर इस कदर आता है, कि वह उससे विवाह कर लेता है।

दलित फुलतोड़नी विलासी सिंह जैसे नामी, धनवान, रुपवान धाकड़ पुरुष का साथ पाकर अपने को भाग्यशाली समझती है। विलासी सिंह की माँ को इस विवाह से एतराज़ नहीं होता, किंतु उसके पिता धरीक्षण सिंह फुलतोड़नी की नीची जाति से खुश नहीं होते। एक ठाकुर होकर किसी दलित युवती से विवाह करे इससे, उनकी मान–हानि होने का डर था।

गाँव में विजयादशमी के पर्व पर रौतहट बाजार में खेले जाने छर्रा–काठी में प्रतिद्वन्द्वी की तलवार विलासी सिंह के पेट में धँस गई। फुलतोड़नी का सुहाग उजड़ गया। परिवार वाले विलासी सिंह की मृत्यु का दोषी फुलतोड़नी को मानने लगे। उसे डायन घोषित कर दिया गया। मजबूर होकर वह अपने गाँव पनचक्की लौट आई। गाँव वाले फुलतोड़नी के खिलाफ थे। उनकी दृष्टि में उसने पाप किया था। उसकी वजह से गाँव की अन्य युवतियों को सह मिलेगा।

उस गाँव में प्रेम विवाह करने वाले व्यक्ति को, या समाज के नियमों के विरुद्ध जाने वाले को, कई तरह क दंड दिए जाते थे। जैसे– गाँव से निकाल देना, उसे जात–भात से काट देना, कदम्ब के पेड़ से बाँधकर इक्यावन बाँस की छडी से मारना

आदि। आखिर फुलतोड़नी के माता–पिता को यह सज़ा सुनाई गई कि, उन्हें पूरे समाज को भोजन खिलाना होगा। इसके बाद पंचों ने फुलतोड़नी को क्वाँरी मान लिया। जिस समाज से फुलतोड़नी का ताल्लुक था, उसमें अधिकतर पुरुष शराब पीते थे, जुआ खेलते थे और मार–पीट करते थे। अंधविश्वास, शिक्षा का अभाव और धन की कमी पूरे समाज के लिए एक समस्या थी, किंतु इससे बाहर आने के मार्ग को कोई तलाशता न था।

फुलतोड़नी का परिचय प्रौढ़ शिक्षा योजना के तहत पनचक्की स्कूल में पढ़ाने आए प्रौढ़ निर्मल लाल से होता है। निर्मल लाल उसे पढ़ना–लिखना सिखाते हैं, साथ ही उसके रुप पर मुग्ध भी होते हैं। निर्मल लाल फुलतोड़नी को पनचक्की की सुरक्षित विधान सभा सीट के लिए तैयार करते हैं। अनुसूचित जाति की महिला की सीट यदि उसे मिल जाए, तो निर्मल लाल को अपने जीवन की दो कमी पहली स्त्री सुख दूसरा धन का सुख दोनों मिल सकते थे। निर्मल लाल फुलतोड़नी को लालच देकर पटना ले आता है, जहाँ उसे बेहोशी की दवा खिलाकर अपने जीवन की एक कमी पूरी करता है।

निर्मल लाल धन प्राप्ति के लिए कुछ भी कर सकता था, किंतु फुलतोड़नी निर्मल लाल को पति के रुप में स्वीकार कर लेती है। फुलतोड़नी के माता–पिता की नज़रों में निर्मल लाल बहुत ही ऊँचा स्थान पा लेता है। निर्मल लाल अब फुलतोड़नी को मंत्री बनाना चाहता है, जिसके लिए वह मुख्यमंत्री के अन्य मंत्री जगन लाल को खुश करने का प्रयास करता है।

बसमतिया नाम की एक युवती, पुरुषों के असंख्य जंगल से गुजरने वाली फुलतोड़नी से कई दृष्टिकोण से साम्यता रखती थी। बसमतिया को फुलतोड़नी की सुरक्षा में रखा गया था। विधायक फुलतोड़नी उसे अपनी छोटी बहन की तरह मानने लगी थी। वह एक रात मीटिंग से लौटी तब पति निर्मल लाल सोफे पर सो रहा था, किंतु दूसरे कमरे में जगन लाल बसमतिया को अपना शिकार बनाने के लिए प्रयास कर रहा था।

फुलतोड़नी ने अपने जीवन में कई कड़वे अनुभव किए थे। किंतु अपनी ही तरह वह किसी अन्य युवती की लाज लुटने नहीं देख सकती थी। फुलतोड़नी जगन लाल की हत्या कर देती है। अखबारों में यह खबर छपती है कि–

> **''जेल के महिला वार्ड में फुलतोड़नी देवी की उटपटाँग हरकतों से उन्हें पागल भी करार कर दिया जा सकता है। मसलन वे जेल में बार–बार एक वाक्य दुहराती जा रही है– मैंनें जंगल में आग लगा दी है, मैंनें जंगल में..... ।''**[108]

यहाँ एक स्त्री दूसरी स्त्री की लाज बचाती है। फुलतोड़नी का पागल हो जाना कहीं–न–कहीं पुरुष समाज द्वारा दिया जाने वाला धोखा, छल, और आघात ही है। जंगल में आग एक सांकेतिक शब्द के माध्यम से कहानी कार पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचार और उसके खिलाफ एक स्त्री द्वारा किया जाने वाला विद्रोह रुप विरोध को प्रस्तुत करते हैं। फुलतोड़नी द्वारा दोहराए जानेवाले इस शब्द को उसका प्रतिकार कहा जा सकता है।

4. 'अंगारा'–कुसुम मेघवाल

कुसुम मेघवाल की **'अंगारा'** कहानी कुसुम वियोगी की 'अंतिम बयान' और गुजराती कहानीकार बी.केशरशिवम् की 'मंकोडा' कहानी से साम्यता रखती है। तीनों कहानियों में दलित स्त्री अपने पर अत्याचार करने वाले सवर्ण पुरुष को स्वयं दंड देती है। यह दंड भी ऐसा होता है जिससे वह किसी और स्त्री का जीवन बर्बाद न कर सके। दलित स्त्रियों में ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ होंगी जो इतना साहस कर सके, क्योंकि अधिकतर स्त्रियाँ अपना शोषण करने वाले पुरुष से डर जाती हैं और स्वयं आत्महत्या कर लेती है। इन कहानियों में दलित स्त्रियों को निडर, साहसी और अपने पर अत्याचार करने वाले को दंड देने की क्षमता रखने वाली विद्रोही स्त्री के रुप में देखा जा सकता है।

'अंगारा' कहानी में हरखू चमार की बेटी जमना का बलात्कार गाँव का ठाकुर सुमेर सिंह और उसका चाचा नत्थू सिंह करता है। गाँव में ऐसी घटना पहली बार नहीं घटी है। ठाकुर दलितों की इज्जत को यूँ ही मिट्टी में मिलाते आए हैं। गरीब, अनपढ़, लाचार दलित परिवार उनके समक्ष आवाज़ ऊँची नहीं कर सकते, क्योंकि यदि ऐसा किया तो वे उनके घर जला देते हैं, दाने–दाने के लिए तरसाते हैं, गाँव से भागने के लिए विवश कर देते हैं। जमना का भाई हीरा इस घटना से बहुत आहत होता है। उसका खून खौलने लगता है। वह अपनी बहन के अपराधियों को सज़ा देने के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए अपनी माँ को वचन देता है कि–

> **''माँ.....मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूँ, जब तक जमना की इज्जत लूटनेवालों से बदला नहीं ले लूगाँ, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा....तुम्हारी कसम माँ, चैन से नहीं बैठूँगा।''**[109]

दलितों की पुरानी पीढ़ी के लोग आज भी ठाकुरों के अत्याचार से डरकर उनके समक्ष आवा़ज़ नहीं उठाते, किंतु युवा हीरा इस तरह का अत्याचार कतई सहन करने को तैयार नहीं है। अपमान सहकर चुप बैठ जाना उसकी दृष्टि में कायरता है। वह अपनी बहन जमना को हिम्मत देता है और माता–पिता को भी न्याय दिलाने का वादा करता है।

हीरा थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवाता है ठाकुर के खिलाफ, किन्तु इंसाफ न मिलने पर उसे पता चलता है, कि सिपाही और ठाकुर दलितों को कभी इंसाफ नहीं मिलने देंगे। ठाकुरों के पास धन की कमी नहीं और सिपाही उसी की सुनते हैं, जो उन्हें खुश कर दे।

जमना हीरा को बताती है कि उसने ठाकुरों से अपनी लाज बचाने के लिए अपने अछूत होने की बात कही साथ ही कहती है कि–

> **''भैया मैंनें उनसे काफी अनुनय–विनय की कि आप लोग दिन के उजाले में हमारी परछाईं से भी परहेज़ करते हैं। हमें छूते ही आप अपवित्र हो जाते हैं, किन्तु रात के अंधेरे में हमारा पसीना और होंठो से.....पर भी आप अपवित्र नहीं होते ? ऐसे लिपट जाते हैं, जैसे आप और हम में कोई फर्क नहीं है ? आपकी छूत– छात और जातपात कहाँ चली गई ? इस पर उन्होंने मुझे धिक्कारते हुए कहा, 'जबान चलाती है हरामजादी। तुझे पता नहीं, अब तू हमारे चंगुल से बचकर जा भी नहीं सकती कहीं। हमारा**

जब तक जी चाहेगा, तब तक तेरा भोग करेंगे और जब जी भर जाएगा मारकर यहीं जंगल में फेंक देंगे, चील–कौए खा जाएँगे।''[110]

जमना का अछूत होना ठाकुरों के लिए दिन के उजाले में, लोगों की मौजूदगी में एक समस्या थी, किंतु रात के अंधेरे में, अकेलेपन में उसकी अस्पृश्यता कोई मायने नहीं रखती। उन्हें तो मात्र स्त्री का शरीर चाहिए चाहे, वह किसी जाति की हो। यदि वह दलित है तो और भी अच्छी बात होगी, क्योंकि दलितों की स्त्रियों का बलात्कार करने के बाद भी, उन्हें कोई सज़ा नहीं हो सकेगी। दलित उनके समक्ष डर के मारे आवाज़ भी नहीं निकालेंगे।

हीरा ठाकुरों की इस विचारधारा को बदलकर रख देता है। वह अपनी माँ को भी इस अत्याचार को भोगते देख चुका है, इसलिए बहन से कहता है–

''तू चिंता मत कर जमना! धिक्कार है मुझे जो मैंनें इनसे तुम्हारी इज्ज़त का बदला नहीं लिया। मैंनें माँ को भी वचन दिया है। वह भी इसी मुसीबत की मारी है। मैं इन पापियों–चांडालों को बता दूँगा कि अछूत गरीब की भी इज्ज़त होती है और वह भी इज्ज़त केवल इनकी ही बपौती नहीं है।''[111]

यहाँ हीरा अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए, उसे इंसाफ दिलाने के लिए ठाकुरों को सबक सिखाने का निर्णय ले लेता है।

सुमेर सिंह जब दलितों की बस्ती में उन्हें धमकाने आता है, कि यदि किसी ने उनके खिलाफ आवाज़ उठाई तो उसका अंजाम बहुत बुरा होगा। उसकी बात सुनकर सभी दलित घबराते हैं, किंतु युवा पीढ़ी का खून खौल रहा था। हीरा के घर के सामने जैसे ही सुमेर सिंह पहुँचता है, वैसे ही हीरा उसे चुनौती देता हुआ उस पर हमला कर देता है। हीरा के साहस को देखकर अन्य नौजवान युवक उसका साथ देने दौड़ पड़ते हैं, साथ ही स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रहती। सुमेर सिंह अकेला पड़ जाता है। जमना अपने गुनहगार को सज़ा देने के लिए आगे बढ़ती है और सुमेर सिंह के पुरुषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर देती है। जमना अपना प्रतिशोध पूरा कर लेती है। सुमेर सिंह तड़पने लगता है। उसको जो सज़ा मिली थी, उसका जिम्मेदार वह स्वयं ही था। अब वह किसी अछूत गरीब युवती को अपमानित नहीं कर सकता था। इससे बड़ी सज़ा उसके लिए और क्या हो सकती थी।

5. 'साजिश'–सूरजपाल चौहान

प्रस्तुत कहानी में नत्थू नामक दलित शिक्षित युवक बेरोज़गार है। उसकी माँ ने गाँव में सफाई काम करके अपने बेटे को बड़ी उम्मीदों के साथ पढ़ाया–लिखाया था। वह अपने पुत्र को ऊँचे ओहदे पर देखना चाहती है, लेकिन नत्थू बी.ए. की पढ़ाई के बाद भी कहीं नौकरी में सफल नहीं हो पाता। क्लर्क की नौकरी के लिए भी पचास हजार की रिश्वत वह देने में असमर्थ था। इसलिए नत्थू बैंक से लोन लेकर मेटाडोर खरीदने का निर्णय लेता है ताकि अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सके।

हम चाहें जीतनी ही बड़ी–बड़ी बातें या उपदेश सवर्णो के मुँह से सुन लें, किंतु जहाँ दलितों की बात आती है, वहाँ सभी के उपदेश, विचार मिलते–जुलते ही होंगे। नत्थू जब बैंक में लोन की बात करने जाता है, तब बैंक मैनेजर रामसहाय उसे

गुमराह करते हैं, कि ट्रांसपोर्ट का काम लफड़े वाला है, उसमें नुकसान हो सकता है, इसलिए पिगरी लोन लेकर फायदे का धंधा शुरु करो। नत्थू जब इससे असहमती व्यक्त करता है कि वह सूअर पालने क कार्य नहीं करना चाहता, इस पर रामसहाय कहते हैं–

> **''बस तुम लोगों में यही कमी है। दो–चार किताबें क्या पढ़ गए कि समझने लगे अपने आपको बड़ा आदमी। कल्लन जाटव के लड़के श्यामा को देख, तेरी तरह बी. ए. पास है। उसने भी तो बैंक से कर्ज़ा लेकर अपने चमड़े के व्याापर को आगे बढ़ाया है। यह नेक सलाह उसे मैंनें ही दी थी। आज लाखों में खेल रहा है।''**[112]

रामसहाय नत्थू को जिस साज़िश में फँसाता है उसी तरह अन्य दलितों को भी उसने ट्रेंड चेंज नहीं करने दिया था। लोगों की नज़रों में वह अच्छी सलाह देने वाला मैनेजर बनता था, किंतु वास्तविकता कुछ और ही थी। वह तो दलितों को सदियों से चले आ रहे पुश्तैनी धन्धे से ही जोड़े रखना चाहता था। इस विषय में अपने विचार हेडक्लर्क सतीश भारद्वाज के समक्ष रखते हुए रामसहाय कहता है–

> **''साले आए चूहड़े–चमार पढ़–लिखकर व्यापार करने! बैंक से उधार लेकर ट्रांसपोर्ट का धंधा करेंगे, व्यापारी बनेंगे, ट्रेंड चेंज करेंगे।''**[113]

रामसहाय अपने पद और अधिकारों का दुरुपयोग अपनी छोटी सोच के लिए करता है। वह नत्थू पर ब्रह्म–बाण छोड़ चुका था। नत्थू उसकी बातों में उलझकर रह जाता है। वह पिगरी–लोन के लिए रची गई साज़िश में फँस जाता है। नत्थू मन–ही–मन रामसहाय की उदारता और सहायता के लिए खुश होता है। रामसहाय नहीं चाहता था, कि जिसके पूर्वजों ने गंदगी साफ की हो उसके बच्चे हमारे साथ बैठकर खाना खाएँ अर्थात् हमारी बराबरी में बैठें, क्योंकि, यदि ऐसा हुआ तो ये पीढ़ी हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेगी ? ऐसी स्थिति में हमें ही हमारे घर की गंदगी को साफ करने की नौबत आ जाएगी।

नत्थू रामसहाय की मीठी–मीठी बातों में आ जाता है, किन्तु नत्थू की पत्नी शान्ता भले ही कम पढ़ी–लिखी थी, वह मैनेजर की साज़िश को भाँप जाती है। अपनी समझदारी के कारण वह जान जाती है, कि रामसहाय ने नत्थू को ब्रह्मफाँस में फँसा दिया है। सभी पढ़े–लिखे बेरोज़गार क्या पिगरी–लोन ही लेते है ? या चमड़े का ही व्यापार करते हैं ? क्यों दलितों को ही विवश किया जाता है इसके लिए ? कोई दूसरा व्यापार वे क्यों नहीं कर सकते ? आदि प्रश्नों का नत्थू के पास कोई उत्तर नहीं था। वह तो इस काम को सरल समझकर खुश था, कम मेहनत में मुनाफा की बात पर वह शांता से बहस करने लगता है, तब मन–ही–मन मुस्कराते हुए शांत कहती हैं–

> **''सबसे कम मेहनत तो झाड़ू लगाने के काम में है। सुबह–सुबह मोहल्लों की सफ़ाई करो और दारु पीकर सारे दिन मारो मस्ती। कोई काम फले या न फले। ये बेतुकी बातें ही हमें निष्क्रिय बनाती हैं। यही बातें हमारे विरुद्ध काम में लाई जाती हैं। मेरी बात मानों और कल जाकर बैंक से अपना काग़ज वापिस ले लो।''**[114]

शांता शिक्षित नारी है। वह अपने पुश्तैनी काम जिसमें गंदगी, अपमान, असुरक्षा, हीनता आदि थे, उससे बाहर आना चाहती है। पति को साज़िश में फँसा देख वह उसे मैनेजर का सही चेहरे को उसके समक्ष लाती है। वह जानती है कि यदि हमें मान–सम्मान और स्वाभिमान से जीवन जीना है तो उसके लिए परिश्रम करने से पीछे नहीं हटना है।

नत्थू और शांता तय करते हैं कि रामसहाय को उसके किए की सज़ा और सबक मिलना ही चाहिए। नत्थू दलित–पिछड़े टोलों के युवकों को एकत्र करता है। दूर–दराज से दलित युवक नत्थू के घर एकत्र होकर, एक विशाल जनसमूह नत्थू और शांता के नेतृत्त्व में चल पड़ा। उनका नारा था।–

> **''मनचाहे पेशे के लिए कर्ज़ देना होगा पुश्तैनी धंधों में रखने की साज़िश बन्द करो हमें भी बहुमुखी विकास का अवसर दो।''**[115]

नत्थू, शांता और इतने बड़े जनसमूह के इस नारे को देख रामसहाय के हाथ–पाँव फूलने लगे। उसकी साज़िश को आज इतना बड़े जन–समूह जान गया था। उच्च अधिकारी, पुलिस आदि बैंक के सामने की जा रही नारे बाजी को शांति से निपटाने की सूचना देने लगे। रामसहाय के केबिन में नत्थू शांता और कुछ प्रतिनिधि जाकर उससे कुछ कहें, उनसे पहले ही मैनेजर अपना रुख बदलकर उन्हें, समझाता है कि जैसा वे चाहते हैं वैसी लोन उन्हें अवश्य मिलेगी। वे तो नत्थू की भलाई के लिए ही उसे सलाह दे रहे थे। इस पर शांता टोकते हुए कहती है–

> **''बस कीजिए मैनेजर साहब अपनी भलाई की बात अब हम खुदलेंगे। आप कष्ट मत कीजिए। सदियों से आप लोग सोचते रहे हैं हमारे लिए। अब आप आराम कीजिए। अपना नफ़ा–नुकसान हम खुद समझेंगे। गलती करके ही लोग सीखते हैं। हमें गुमराह मत कीजिए। आप अपने बेटे को पिगरी का लोन देकर प्रशिक्षित करें तो अच्छा रहेगा। पिछले हफ्ते आपने क्या कहा था और अभी कैसे बातें कर रहें हैं। गिरगिट की तरह रंग बदलना तो कोई आप लोगों से सीखे।''**[116]

शांता के एक–एक शब्द सदियों से दबे–कुचले जा रहे दलितों का प्रतिकार है। सवर्ण ही हमेशा उनके लिए निर्णय लेते आए हैं, उन्हें क्या करना है ? ये वे कभी स्वयं नहीं तय कर सके, जिसका नतीजा यह है कि उन्हें आज भी उसी स्थिति में रहने के लिए विवश किया जा रहा है।

नत्थू और उनके जैसे दलित युवकों को रामसहाय की साज़िश से शांता ही छुटकारा दिलवाती है। शांता की बुद्धिमत्ता, तर्कशक्ति ही रामसहाय को सबक सीखाने में दलितों की मदद करती है। रामसहाय अपना स्थानन्तरण कहीं और करवा लेते है, किंतु जो साज़िश उन्होंने रची थी दलितों के लिए उसे वे कभी दोहराने की हिम्मत नहीं कर सकते।

प्रस्तुत कहानी में बेरोज़गारी, अस्पृश्यता की समस्या को हमारे समक्ष रखा गया है। सवर्णों की दलितों के प्रति घृणा दृष्टिगोचर होती है, साथ ही शांता जैसे शिक्षित पात्र के माध्यम से अपने अधिकरों के लिए लड़ने का साहस करना, दलितों में आई जागरुकता को प्रस्तुत करता है। भाषा–शैली सरल, मुहावरेदार एवं पात्रानुकुल है। कहानी का शीर्षक साज़िश भी घटनाप्रधान शीर्षक है।

6. 'रम्पो का चेहरा' उमेश कुमार सिंह

'रम्पो का चेहरा' उमेश कुमार सिंह द्वारा रचित कहानी है। रम्पो भोला की पत्नी है। भोला के पिता सुखराम जिसे गाँव के सवर्ण सुक्का चमार कहकर बुलाते हैं। गरीबों की बस्ती में लगभग सभी दलितों टूट–फूटे और कच्चे एवं जर्जरित स्थिति में थे, उस पर इस वर्ष हड्डी को चीर देने वाली कड़ाके की सर्दी पड़ी थी। सुक्का का कमजोर शरीर इस ठंडी को गरम कपड़ों के अभाव के कारण सह नहीं पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। भोला ने माँ और पिता दोनों का प्रेम पिता से ही प्राप्त किया था। पिता की मृत्यु से बहू रम्पो और पुत्र भोला बहुत दुःखी होते हैं। सुक्का के अंतिम संस्कार के लिए भोला के घर में एक रुपया भी नहीं है। कफन, सामग्री, घी आदि की व्यवस्था के लिए पंड़ित रामकिशन से उधार रुपये लेने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं। मौके का फायदा उठाकर पंडित अपने दिल की मुराद पुरी करना चाहता है, वह भोला से कहता है–

> **''भोला यह तो सब ठीक है लेकिन मुझे तेरा भरोसा नहीं है। तेरे बाप की तीन बीघा ज़मीन है उसे लिखकर कागज़ पर अंगूठा लगा दे। जब तू रुपया लौटाएगा तो मैं तेरी ज़मीन का कागज़ तुझे वापस कर दूगाँ।''**[117]

रामकिशन यहाँ एक शोषक का प्रतीक है। वह ज़रुतमंदों को रुपये कर्ज़ के तौर पर देता है और फिर बदले में उनकी ज़मीन हथीया लेता है। अनपढ़ दलित से अंगूठा लगवाकर वे न जाने कब से उन पर अन्याय करते आए हैं।

हमारे देश में शादी, बच्चे के जन्म के समय, मृत्यु के समय आदि पर ऐसे रीति–रिवाज हैं, जिसे लोग परंपरानुसार पूरा करते आए हैं। दलितों में भी ऐसे रीति–रिवाज़ों को निभाने की परंपरा है। गाँव का व्यक्ति मनीराम इस पर कहता है–

> **''सुकराम को जीते जी कभी घी के दर्शन नहीं हुए परंतु अब आखिरी वक्त में चिता पर घी डाला जा रहा है ताकि उन्हें मुक्ति मिल जाए।''**[118]

सुकराम जैसे कितने ही दलित जीवन–भर अभाव में जीते हैं। बिना पैबंद के कपड़े उन्हें कभी पूरे जीवनकाल में भी नसीब नहीं होते और न ही दो वक्त का भोजन ही मिल पाता है। तन तोड़ परिश्रम करने के बाद भी भूखे–नंगे रहने के लिए विवश हैं। गाँव के रिवाज के अनुसार गाँव वाले भोला को बार–बार मजबूर करते हैं, कि वह अपने पिता की तेरहवीं करके समाज को भोजन खिलाए। जो स्वयं भूखा रहता हो, जिसके समक्ष उसके बच्चे भूख से बिलबिलाते हो वह भोला पूरी जाति वालों को भला कैसे भोजन खिला सकता था ? गाँव के दलित बुजुर्ग जबरन भोला से अगली पूर्णमासी पर भोज कराने का वचन ले लेते हैं, जिस पर रम्पो चिढ़ कर कहती है–

> **''यह तुमने क्या कर दिया। जहाँ पेट भरने के लाले पड़े हैं, वहाँ तेरहवीं कैसे हो पाएगी। तुम तो हम सबको मारने की व्यवस्था करके आए हो।''**[119]

रम्पो को अपने बच्चों की चिंता है। वह समझदार है, जानती है कि अधिक कर्ज़ लेने पर उनकी एकमात्र सहारा उनकी जमीन हमेशा के लिए उनसे छीन ली जाएगी। पति को वह समझाते हुए फिर कहती है–

''घर का हर फ़ैसला करने का हक़ तो मर्दों का है। चाहे घर लुटा दें। मरद ग़लत होते हुए भी सही। औरतों का सही निर्णय भी ग़लत।''[120]

रम्पो अपने पति को ज़मीन नहीं बेचते देख सकती, क्योंकि इससे वे हमेशा के लिए अपने पूर्वजों की एकमात्र निशानी और रुखी–सुखी रोटी से भी दूर हो जाएँगे। भोला पत्नी की बातों को समझता है, किन्तु वह पुरुष है इसलिए समाज के लोगों को क्या उत्तर दे, यह नहीं समझ पाता। यहाँ हम देखते हैं कि दलित स्वयं बदतर जीवन बीताते हैं, किन्तु कर्ज़ लेकर भी रीति–रिवाजों को पूरा करने के नियमों के वश होकर वे अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाडी मारते हैं और आजीवन कर्ज़ में डूबे रह जाते हैं। रम्पो अपने पति को ऐसी गलती करते हुए नहीं देख सकती। जब पति प्रेम से नहीं समझता तो वह विद्रोह पर उतर आती है। वह पति से कहती है–

''पंच परमेश्वर के बराबर होते हैं। तो उन्हें भी न्याय की बातें ही करना शोभा देती हैं। परन्तु इन पंचों ने तो आँखों पर पट्टी बांध रखी है। हमें दर–दर के भिखारी बनाने पर तुले हुए हैं। मैं ऐसे पंचों के फैसले पर थूकती हूँ। ये कहते हैं कि तेरहवीं करके कक्का राख में से निकल आएंगे और तेरहवीं न करें तो कक्का राख में ही पड़े रहेंगे। सब मूर्खों की सी बातें हैं। इन्हें खाना–पीना ही दीखता है। एक दिन मुंह चिपड़ने के लिए ज़िंदगी भर हमारे मुंह पर मुछका बांधने पर तुले हुए हैं। तुम तो मर्द होकर भी बस हुक्का पानी बंद करने से ही घबरा रहे हो। मैं इन पंचों के फैसले के खिलाफ़ विद्रोह का डंका बजाकर रहूँगी। मैं तुमसे भी कहे देती हूँ, तरेहवीं करने का नाम भी मत लेना नहीं तो मैं कुएँ में कूदकर मर जाऊँगी।''[121]

रम्पो का विद्रोह समाज के उन रीति–रिवाजों और परंपराओं के प्रति था, जिससे गरीब किसान मजदूर बन जाते हैं और जीवनभर सवर्ण की गुलामी करने पर विवश हो जाते हैं। उसका विद्रोह दलित समाज के उन लोगों के प्रति हैं, जो अपने ही दलित गरीब लोगों को गुलाम एवं मजदूर बनाने पर तुले हुए हैं, वह भी मात्र अपने एक दिन के जीभ के स्वाद के लिए। पति को असहाय देखकर रम्पो स्वयं अकेले ही विद्रोह करने का निर्णय ले लेती है। इस समय ढिबरी की रोशनी में रम्पो का चेहरा सोने सा चमकता है। यह चमक आत्मविश्वास से जागे विद्रोह की थी, जो अपने परिवार की रक्षा के लिए चण्डी माँ का रुप धारण कर लेती है। रम्पो अशिक्षित है, किन्तु अन्याय के विरुद्ध अकेले लड़ने को तैयार होती है। कहानी में रम्पो का चरित्र एक सशक्त नारी का चरित्र है, शीर्षक की दृष्टि से यह उपयुक्त है। भाषा–शैली में बोल–चाल की खड़ी बोली का ही इस्तेमाल किया गया है, जबकि वातावरण ग्रामीण दिखाया गया है। संवाद की दृष्टि से कहानी में कुछ छोटे और कुछ बड़े संवाद देखे जा सकते हैं। रम्पो के माध्यम से कहानीकार ने दलित महिलाओं में आई जागृति और विद्रोह के भाव को प्रस्तुत किया है। वे अपने परिवार की रक्षा एवं भलाई के लिए आगे बढ़कर संघर्ष करने के लिए तैयार होने लगी हैं

6. 'बदला' सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित कहानी 'बदला' में लेखिका ने गाँव में दलित–अछूतों के साथ दुर्व्यवहार अपमान और अत्याचार की घटनाओं को एवं उसके प्रति दलितों के विद्रोह को प्रस्तुत किया है। कोई भी कालखण्ड रहा हो शक्तिशाली वर्ग द्वारा शक्तिहीनों पर हमेशा अत्याचार होता रहा है। शक्ति के अभाव में, एकता के अभाव में कमजोर बना दलित वर्ग सवर्ण के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा दिखाई देता है। प्रस्तुत कहानी में छौआ नामक वृद्ध महिला सवर्णों के घर मैला ढोने, प्रसूति के समय सवर्ण महिलाओं के लिए कुशल दाई बनकर उन पर उपकार करती है, किन्तु गाँव के सवर्ण उसी के नाती की पिटाई करते हैं। कल्लू शरीर से हट्टा–कट्टा था। वह दलित है, इसलिए सवर्ण बच्चों से उसे दूर ही रहना चाहिए, ऐसी ही सलाह माँ और छौआ नानी हमेशा देती हैं। सवर्ण सहपाठी जब कल्लू को घेरकर अपशब्द कहकर उसे अपमानित करते हैं, तो उसकी सहन शक्ति खत्म हो जाती है और कल्लू उन लड़कों की पिटाई कर देता है।

सवर्णों का समूह छौआ माँ के घर पहुँचकर कल्लू को दंड देना चाहता है। छौआ माँ उनके समक्ष गिड़गिडाकर क्षमा माँगती है, जीवनभर की गई अपनी सेवा की दुहाई देती है, किन्तु उसका भी अपमान किया जाता है। लोगों के कठोर शब्द सुनाई देते हैं जैसे–

> **''भंगी की औलाद.....अछूत.....शुद्र .....भिखारी.....भिखमंगे....हमारी दया पर जीने वाले ..... हमारे टुकड़ों पर पलने वाले..... आजकल इनको घमण्ड आ गया है.... बहुत गर्रा गए हैं.....सण्डे–मुसण्डे हो गये हैं.....इनको तो गाँव में घुसने नहीं देना चाहिए....इनके लिए पहले वाले नियम ही ठीक थे। अंग्रेजों ने हमारे धर्म का सत्यानाश कर दिया है अछूतों को हमारे सिर पर बैठा दिया है। हमारी सरकार भी इनको बहुत बढ़ावा देती है।.....इनके हौसले बहुत बढ़ गये हैं.....इनको ठीक करना ही पड़ेगा.....एक–एक को मार डालेंगे....इनके घरों में आग लगा देंगे..।''**[122]

शक्तिशाली वर्ग हमेशा से दलितों का शोषण करते आया है। शोषण अत्याचार के विरुद्ध दलितों ने कभी विद्रोह नहीं किया इसलिए उनकी हिम्मत और आत्याचार बढ़ता ही गया। अंग्रेजों और बाद में सरकार ने दलितों को इस शोषण से मुक्त करने का प्रयास किया है, किन्तु आज भी सवर्ण समाज में दलितों को घृणा की दृष्टि से ही देखा जाता है। छौआ माँ ने जिन सवर्ण बच्चों की माँ की प्रसूति करवाई थी, उन्हीं बच्चों को जब वह अपने नाजी–पोते के समान कहती है तब उत्तर मिलता है–

> **''बूढ़ी डोकरी, तू सठिया गई है, तेरा दिमाग तो ठीक हैं ?.....तू भंगन डोकरी, हम तेरे नाती–पोते कैसे हो सकते हैं ?''**[123]

छौआ माँ ने जीवनभर जिनकी सेवा की, जिन्हें हमेशा अपना माना जिनकी ज़रुरतों में दिन–रात कभी न देखा, निःस्वार्थ जिन्हें सेवा दी, आज उन्हीं के द्वारा कड़वी बातें, अपमान भरे शब्द जैसे– जात–औकात.....सठिया गई है....दिमाग फिर गओ है..... भंगन डुकरिया.....आदि सुनकर उसे लज्जा, ग्लानि, शर्म और अपमान महसूस होने लगता है। वह करुण आर्तनाद करने लगती है। बेटी माँ की स्थिति देखकर छटपटाती है।

भीतर कल्लू को छिपा रखा है, नही तो सवर्ण उसे पीट–पीट कर अधमरा कर देंगे। माँ की करुण स्थिति देखकर कल्लू की माँ और छौआ की पुत्री उस भीड़ के समक्ष अपना विद्रोह प्रदर्शित करती हुई चीखकर कहती है–

> **''पापी, पाखण्डी हमसे लड़न आये हैं। हमारे दुश्मन, हमरे दखज्जे पे हमसे लड़न आये हैं। बेईमान, मेरी माँ को किलपा–किलपा के रुला के रुला रहे हैं.....इनका सत्यानाश हो जाए। मेरे बेटे को कुछ हो गया, तो देख लेना, मैं भी किसी को नहीं छोडूंगी.....तुम सबका खून पी जाऊँगी..... ।''**[124]

छौआ की पुत्री उसकी तरह नहीं थी, जो अपमानित होकर रोने लगे वह तो ईंट का जवाब पत्थर से देना जानती थी। समय और परिस्थिति के संघर्ष से सब बदल सकते हैं। छौआ माँ को जब यह पता चलता है कि सवर्णों ने उसके नाती कल्लू को पीटा है, तो वह सारी सीमा, जीवनभर की गुलामी और दलित होने का भय भूलकर रणचण्डी का रुप घारण कर लेती है। एक–एक को खदेड़ देती है। उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगते हैं और मन में ज्वालामुखी फूट पड़ता है। पापियों को दंड देने देवी जैसे प्रकट होती है, वैसे ही सबको हमेशा आशीष देने वाली छौआ मां आज दुश्मनों से गिन–गिन कर बदला ले रही थी। छौआ माँ के इस बदलाब और विद्रोही रुप को देखकर नौजवान, बूढ़े–बच्चे सभी में एक शक्ति का संचार होता है और उन्हें कमजोर समझने वाले सवर्ण भागने को मजबूर हो जाते हैं। यहाँ जीत सच्चाई, एकता और आत्मविश्वास की होती है। छौआ माँ के ये शब्द–

> **''अब हम किसी से नहीं डरेंगे.....हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे....वे शेर हैं तो हम सवा शेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसो आयेगो कि लोग हमसे डरेंगे। मेरो कल्लू इसी गाँव में रहेगो, शेर बनकर।''**[125]

ज्वालामुखी के भीतर वर्षों तक आग सुलगती है और अंत में वह फूट पड़ती है उसी तरह छौआ माँ पर वर्षों तक अत्याचार होता आया, किन्तु अपने नाती पर अन्याय होता देख उसके भीतर का ज्वालामुखी फूट पड़ता है। अब वह कभी भी अन्याय नहीं सहेगी, आत्मसम्मान के लिए लड़ना पड़े तो वह तैयार है। छौआ माँ में आए बदलाव को लेखिका सुशीलाजी ने 'बदला' शीर्षक देकर उसमें आए बदले की भावना को प्रस्तुत किया है।

छौआ माँ का पात्र ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'अम्मा' कहानी से मिलता जुलता है, किन्तु अम्मा कहानी की अम्मा विद्रोह नहीं कर पाती है, यहाँ छौआ माँ विद्रोही नारी बनकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने का साहस दिखाती हैं। हरीश मंगलम् की 'दायण' गुजराती कहानी में दाई माँ भी अपमान सहती है, किन्तु प्रतिकार नहीं करती, जबकि छौआ माँ के पात्र में शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की क्षमता देखाई गई है। समय के अनुसार पात्र में बदलाव आना देखा जा सकता है।

7. 'जोजना' – दीपक कुमार 'अज्ञात'

दीपक कुमार **'अज्ञात'** द्वारा रचित 'जोजना' कहानी की नायिका सुकिया ने अपने पति को उस समय खो दिया था, जब वह गर्भवती थी। पति की मृत्यु के समय सुकिया मात्र उन्नीस वर्ष की थी। वह चाहती तो दूसरा सहारा पा सकती थी, किन्तु

अपने एक मात्र पुत्र के लिए वह विधवा जीवन की कठिनाइयाँ झेलती है। कई वर्षों तक कठिनाइयों को झेलते हुए वह भीतर–ही–भीतर कठोर हो गई थी, साथ–ही–साथ गाँव भर में मुंह–फट भी। लेखक उसका परिचय देते हुए कहते हैं–

> **''किसी से डरना, किसी की उल्टी–सीधी सुनना और गरीब–गरबे पर होते जुल्म को सहना उसके वश की बात नहीं रही। सोच–समझकर ही कोई किसान उसे मुँह लगाता है उल्टी–सीधी बातों से छौंक लगवाना हो तो छेड़ ले कोई सुकिया को! भीतर–बाहर हिलाकर रख नहीं दिया तो वह एक बाप की बेटी नहीं।''**[126]

दुःख, संघर्ष, विपदा, समस्या, अभाव से मनुष्य दुःखी अवश्य रह सकता है, किन्तु इससे वह कमजोर हो जाता है, यह सही नहीं हैं। इन सबसे वह अधिक कठोर हो जाता है। छोटी–मोटी परेशान फिर उसके लिए बड़ी नहीं होती। सुकिया के साथ यही होता है। दुर्दिनों से लड़ती–पछड़ती वह किसी से नहीं डरती थी। अन्याय सहन करना उसने छोड़ दिया था, यदि कोई उसे छेड़ देता, तो बाद में बहुत ही पछताना पड़ता उसे।

गाँव की स्कूल के मास्टर जोगिन्दर बड़ा धूर्त–ठग है। स्कूल में बच्चे कम थे, इससे इन्स्पेक्शन होने पर उनका तबादला हो सकता था। जोगिन्दर ने घर–घर जाकर लोगों को जाकर समझाया कि स्कूल में बच्चों को मुफ्त में किताबें और अनाज मिलेगा आप बच्चों को पढ़ने भेजिए। बाद में स्कूल में जब बच्चे बढ़ गए और जाँच पूरी हो गई तो, उसने उन बच्चों से स्कूल में नाम लिखवाने की फीस के नाम पर रुपये लेने शुरु कर दिए। पन्द्रह किलो अनाज की जगह मात्र डेढ़ किलो अनाज दिया जाता, वह भी उन्हीं छात्रों को जिन्होंने नाम लिखावाने की फीस दी हो।

सरकार गरीबों के लिए कई योजनाएँ बनाती है, किन्तु जोगिन्दर मास्टर जैसे पैशे के शिक्षक भी गरीबों का शोषण करने लगें, तो फिर गरीबों की सहायता की अपेक्षा भला किससे की जाए। आज भी गाँव की कई सरकारी स्कूलों में मुफ्त शिक्षा, किताबें, भोजन आदि की सुविधा दी जा रही है, लेकिन जो वस्तुएँ गरीबों के लिए दी जाती हैं, उस की क्वालीटी इनती अच्छी नहीं होती, जितनी सरकार उसकी कीमत चुकाती है। बीच के आला–अधिकारी, छोटे कर्मचारी आदि अपना–अपना कमीशन ले लेती हैं। गरीबों तक पहुँचते–पहुँचते वह उपयोग के योग्य नहीं रह जाती। सरकार इस सच्चाई से बेखबर है, यह सच नहीं है। सारी सच्चाई जानकर भी सभी खामोश हैं, किन्तु सुकिया खामोश रहने वालों में से नहीं है। वह जोगिन्दर मास्टर की स्कूल में जाकर उनसे अनाज न मिलने का कारण पूछती है। मास्टर मोलवीजी के साथ बैठे थे। सुकिया के सवालों का बड़ी लापरवाही से उत्तर दे रहे थे। मास्टर होते हुए भी जोगिन्दर दलित, विधवा सुकिया से गंदी–भद्दी भाषा का इस्तेमाल जब करता है, तो सुकिया पास में पड़े झाड़ू से उसकी बहुत पीटाई करती है। उसे बचाने आए मौलवी की भी पीटाई कर देती है। वह गालियाँ देते हुए कहती है–

> **''साला मास्टर, चोर, दलाल,.....गेहूँ बचा पड़ा है....कहता है गेहूँ नहीं है..... .....पहले बच्चा बुलाने के लिए घर–घर खुशामद करता था....अब नाम लिखाई का टका चाहिए.....बाप का स्कूल है....जागीर है.....नाना की..... पाँच–दस किलो गेहूँ नहीं मिलता.....इसके चलते खस्सी की चोरी हो गई.....''**[127]

सुकिया से भद्दा मजाक करने वालों को वह नहीं बख्सती चाहे वह गाँव का कोई भी व्यक्ति हो, या कोई मास्टर ही क्यों न हो। वह स्त्री इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी भी मर्द के कैसे भी अपशब्द या अपमानजनक व्यवहार को सहन करे। स्वाभिपान और आत्मसम्मान की रक्षा कैसे करना चाहिए, वह जानती है। अपने अधिकारों को पाने के लिए यदि लड़ना भी पड़े तो वह पीछे हटने वालों में से नहीं है। मास्टर जोगिन्दर को पीटकर वह न्याय पाना चाहती है। वह जानती है, कि दलित नेता ही उसे न्याय दिला सकते हैं।

सुकिया की समस्या सुनकर दलित नेता जोगिन्दर मास्टर के कारनामों को विस्तृत रुप से अखबार में छपवा देते हैं। जोगिन्दर मास्टर सुकिया से बदला लेने के लिए उसी की जाति के नेता गुणेसर को उकसाया। सुकिया के चरित्र पर कीचड़ उछालने के लिए पंचायत बुलाई गई गुणेसर को जोगिन्दर इतनी शराब पिलाता है कि वह भूल जाता है कि वह सुकिया जिसके खिलाफ वह पंचायत बुला रहा है वह उसी की जाति–परिवार की इज्जत है। पंचायत कुछ निर्णय ले उससे पहले ही गुणेसर का पूत्र दलित नेता के सिर पर लाठी से वार करता है, वे घायल हो जाते हैं। सुकिया बैलगाड़ी में उन्हें बैठाकर थाने ले जाती है। गुणेसर पछतावें के आँसू बहाने लगता है।

सुकिया एक विद्रोही दलित नारी के रुप में हमारे समक्ष आती है। शोषण के खिलाफ विद्रोह करने वाली सुकिया किसी से नहीं डरती। सुकिया का चरित्र दलित नारियों के लिए एक आदर्श बनकर हमारे समक्ष आता है। हमारे देश को अंग्रेजों से आज़ादी मिले वर्षों बीत गए, किन्तु भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, अत्याचार, शोषण से आज भी गरीब मुक्त नहीं हुए है, बल्कि यह तो ओर अधिक बढ़ता जा रहा है।

9. 'सुनरी' – श्याम नारायण 'कुन्दन'

'सुनरी' कहानी में लेखक ने 1954 में अपने गाँव में घटी एक घटना को प्रस्तुत किया है। लेखक शहर से अपने गाँव जाते हैं, जहाँ वे अपने गाँव के बड़े–बुजुर्गों से रास्ते में चाय की दुकान पर मिलते हैं। लेखक स्वयं क्षत्रीय कुल से थे, किन्तु शहर में शिक्षा प्राप्त करने से उनके मन से ऊँच–नीच का भेद–भाव दूर हो गया था। गाँव के साठ वर्षीय मुखिया शिवनारायण, देवनाथ बाबू आदि लोग चाय की दुकान पर बुजुर्ग दलित बनरसिया को अपमानित करते हैं। लेखक सारी घटना देखते हैं और इस भेद–भाव का विरोध करते हुए, उन्हें सलाह देते हैं, कि आप लोगों को शहर जाकर देखना चाहिए कि, वहाँ के लोग किस तरह ऊँच–नीच भूलकर एक साथ रहते हैं और अंर्तजातीय विवाह भी करते हैं। लेखक के आधुनिक एवं खुले विचारों को गाँव के बुजुर्ग नहीं स्वीकारते क्योंकि दलितों पर अत्याचार करना उनका शोषण करके अपने स्वार्थ की पूर्ति करना उनकी आदत बन चुकी थी, जिसे वे किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकते थे।

गाँव के डोम महंगिया ने अपनी जीवन के कई वर्ष इन सवर्णों की सेवा की, उनकी गंदगी उठाई, मरे पशुओं को उठाया, उनकी जूठन उठाई, उन्हें स्वच्छ वातावरण देने के लिए स्वयं घृणित कार्य किया। महंगिया की अंतिम साँसे चल रही थी, डॉक्टर ने उसे शुद्ध पानी के साथ दवाई देने की सलाह दी थी। महंगिया के दो पोते सवर्णों के कुँए से पाली लेने आते है, वे जानते हैं, कि माँगने पर पानी नहीं मिलेगा इसलिए पानी की चोरी करना चाहते हैं। किशोरावस्था के इन बच्चों को शिवनारायण एवं उसके साथी बूरी तरह पीटतें हैं। लेखक से यह सब सहा नहीं जाता, किन्तु वे विवश थे,

उन्हीं के लोग उनकी तरह न होकर हैवान से कम नहीं थे। कहानी की नायिका इन दलित बच्चों की माँ एवं मंहगीया की पुत्र वधू सुनरी अपने बच्चों के बचाव के लिए आगे आती है।

सुनरी अपने नाम के अनुरुप ही सुंदर थी। गाँव के कई लोग उसके आगे–पीछे जूते चटकाते फिरते थे, किन्तु सुनरी किसी को घास भी नहीं डालती थी। उसका बचपन किसी कस्बे में बीता था इसलिए थोड़ी मुँहफट थी। वह शिवनारायण के अपमानजनक शब्दों को सुनकर भी पानी के लिए पहले गिड़गिडाती है, उन्हें महंगिया के अंतिम समय में पानी के महत्त्व की बात बताती है, साथ ही उन्हें याद दिलाती है कि, महंगिया ने जीवन भर आप लोगों की सेवा की है। ऐसी स्थिति में भी आप लोगों को रहम क्यों नहीं आ रहा ?

शिवनारायण एवं उसके साथी अपने अहंकार और मद में इतने चूर थे, कि किसी गरीब दलित की अंतिम साँसों में भी उसे एक बूँद पानी नहीं देना चाहते हैं। सुनरी को वहाँ से भागने को कहते हैं, तब सुनरी थोड़ी टेढ़ी हो जाती है अर्थात् उसकी सहन शक्ति खत्म हो जाती है। वह जानती है कि जिस जगह वह खड़ी है वह सरकारी है, वह कहती है–

> **''ए बाबू, कुएँ से पानी खीचे द चाहे मत खींचे द, उ तोहार बपहंसी है, लेकिन रास्ता से तू हमरा के नाहीं भगा सके ला। काहें से कि हम जहाँ खड़ी हयीं उ आम सरकारी रास्ता ह, सरकारी..... sss।''**[128]

सुनरी अशिक्षित है, किन्तु सरकारी रास्ते पर सभी का समान अधिकार होता यह जानती है। वह जान गई है, कि ये सवर्ण अत्यंत क्रूर हैं, वे किसी पर दया नहीं करेंगे, इसलिए उनके समक्ष गिडगिडाना व्यर्थ है। सुनरी के इस साहस भरे शब्दों को शिवनारायण नहीं सह पाता। वह सुनरी को गालियाँ देने लगता है। सुनरी गाली देने वाले, इस शिवनारायण की काली करतूतों को जानती है। उनके बीच का संवाद इस प्रकार है–

> **''पानी तू नहीं भगवी....आंय। बहुत जोश चढ़ गईल बा जवानी का तोरा पे ससुरी।'' शिवनारायण चाचा गाली देते हुए चिल्लाए।**
> **'ए बाबू जबान संभाल के बोलअ....।'**
> **''अच्छा....बहुत इज्जत वाली हई तू...बड़ी सतबरता हयी तू...साली रण्डी कहीं की।''**
> **''अगर हम रण्डी हयीं त तू भी.....आ तू सब भी कोई दूध का धुला हुआ नाहीं हो बाबू.....भड़ूवा हो भड़ूवा....सबके सब भड़ूवा। दिन के उजियारे में देखावे के खातिर हमरा साए से भी बचते हो और रात के अधियारे में हमारा छाती और चूतड़ पर हाथ मारे में तुम लोगन के धरम नष्ट नाहीं होला।''**
> **''अरे रे sss का बक रही है रे साली वेश्या कहीं की!''**[129]

धर्म की दुहाई देने वाले शिवनारायण एवं उसके साथी गरीब दलितों की बहूओं, बेटियों का शरीरिक शोषण करते आए हैं। बाहरी रुप में वे इनसे दूर रहकर अपने आप को सवर्ण कहते हैं और रात में इन्हीं दलित स्त्रियों का सामीप्य पाने के लिए उनके आगे–पीछे चक्कर काटते हैं। सुनरी वास्तव में निडर एवं स्पष्ट वक्ता

थी। गरीबी के कारण दलित स्त्री वेश्या बनती है, ताकि उसके परिवार और बच्चों को भूखों न मरना पड़े, किन्तु उसकी विवशता का फायदा उठानेवाले सवर्ण उससे शारीरिक संबंध बनाने पर न तो अशुद्ध होते हैं और न ही उनके मान–सम्मान पर कोई कीचड़ उछाल सकता है, कीचड़ तो हमेशा सुनरी जैसी दलित स्त्री पर ही उछाला जाएगा, वह भी उन्हीं के द्वारा जिसने सुनरी का शोषण किया हो।

अपनी पोल खुल जाने पर शिवनारायण सुनरी को लाठी से मारने उठते हैं, सुनरी अपना बचाव करके उसे धक्का दे देती है, वह गिर जाता है, दूसरे आदमी जैसे ही उसकी ओर बढ़ते हैं, सुनरी उन्हें चेतावनी देते हुए कहती है–

> **''खबरदार कोई आगे बढ़ल त..... यहीं फंसरी लगा के जान दे देहिब. या सरेआम नंगी हो जाईब.....सबकरा के जीवन भर जेहल में बंद करवा के दम लेहिब।''**[130]

सुनरी का यह क्रूर रुप सबकी अपेक्षा से परे था। सवर्णों के समक्ष हमेशा गिडगिडाने वाली, सिर नीचा करके रहने वाली, उनका अत्याचार सहने वाली दलित नारी आज उन्हें चेतावनी दे रही थी, कि अब बस बहुत हो चुका यदि किसी ने उस पर अन्याय किया, तो वह उसे ऐसा सबक सीखाएगी, जिंदगी भर की जेल हो जाएगी। ऐसा करने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। जाते–जाते वह फिर कहती है–

> **''बड़ा बड़कवा बनते हो तुम लोग। बनाते रहो अपने घर में बड़कवा। मंहगी के मरला के बाद तोहन लोगन के आपन पखाना खुद साफ करे होई, तब पता चली। तब हमारा सूअर इ गाँव में नहीं चरीहं। जूठन भी तोहें खुद अपने हाथ से फेंके के होई। हमार बेटा ई काम नहीं करिहं। रह गईल पानी क बात त, उ त भगवान ऊपर से बरसावलन। माँ धरती अपने कोख से देलींन। उ केहू में भेद नाहीं करीलींन। फिर उ हमरा अंगना में भी जरुरत उतिरइहं। हं, अब हमहुं अपना अंगना में कुँआ खोद के दिखाईब।''**[131]

सुनरी उन सारी मान्यताओं, रिवाजों, परंपरा एवं अत्याचार के अंत का ऐलान करती है। उसके बुजुर्गों ने जो अत्याचार सहा अब वह न स्वयं सहेगी और न ही अपने बच्चों को सहने देगी। सवर्ण अपनी गंदगी उनसे उठवाते हैं, जब वे स्वयं अपना मैला ढोएँगे तभी वे दलितों की पीड़ा को समझ पाएँगे। ईश्वर ने सभी को समान बनाया है, प्रकृति किसी में भेद–भाव नहीं रखती। मनुवादी विचारधारा ने इन सवर्णों ने यह भेद–भाव हमेशा रखा है। सुनरी पानी के लिए तड़पते अपने ससुर को भले ही पानी न दे पाई हो, किन्तु महंगिया की तरह कोई दूसरा दलित अब शुद्ध पानी के लिए नहीं तरसेगा ऐसा ऐलान करती है।

सुनरी का चरित्र अत्यंत ही शक्तिशाली है। निर्भीगता से वह अपने बच्चों की एवं स्वयं की रक्षा करती है, साथ ही उस पर कीचड़ उछालने वालों की मिट्टी पलीत कर देती है। कहानी में भोजपूरी बोली का प्रयोग किया गया है। संवाद, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले हैं। शीर्षक 'सुनरी' बिलकुल उपयुक्त है।

10 'सांग' – जयप्रकाश कर्दम

जय प्रकाश कर्दम द्वारा रचित **'सांग'** कहानी जिसका अर्थ है 'नाटक'। आज भी गाँवों में मनोरंजन के लिए 'सांग' खेला जाता है और गाँववासी बहुत ही उत्साह और खुशी के साथ यह देखते हैं, टिकिट के रुपये भी देते हैं। चम्पा के गाँव सोनपुर में यह सांग की टोली तीन दिनों से आई थी। पूरा गाँव छोटे–बड़े, पुरुष–स्त्रियाँ सभी दिनभर की मेहनत–मजदूरी के बाद आनंद पाने के ये क्षण चूकना नहीं चाहते थे। सबके अंदर एक उमंग थी। चम्पा को यह सांग शब्द से नफरत थी। चंपा की सखी शीला उसे अपने साथ ले जाना चाहती है किन्तु चम्पा को यह सांग समय की बर्बादी लगता है। वह ऐसे क्षणिक सुख को पाकर जीवन भर के दुख को नहीं भूल सकती थी। 'सांग' को भ्रम और धोखा मानने वाली चम्पा शीला से कहती है–

> **''मैं पूछती हूं क्या मिल जाएगा सांग देखन से, थोड़ी–देर के लिएमन का बहलाव ही न?.....जबकि हम जानते हैं कि पूरी जिंदगी फिर वही पीड़ा, वही दर्द, वही दुःख, अभाव और रोना–झीकना है, यही हमारे जीवन का सच है। फिर इस क्षणिक सुख के लिए इतना पागलपन क्यों ? क्या क्षण भर का यह सुख भुलावा नहीं है। फिर हम अपने आपको भ्रम और धोखे में क्यों रखें ? क्यों न सच को ही स्वीकार करें हम।''**[132]

चम्पा ने अपने पति को खोया था, वह भी ऐसे ही वातावरण में, वह अकेली हो गई थी। आठ वर्षों से अपने परिवार का पालन–पोषण अकेले करने वाली चंपा के दिल में प्रतिशोध की ज्वाला जल रही थी। मुखिया ने उसके बीमार पति को इसलिए बूरी तरह मारा था, क्योंकि वह खेत में पानी बलाने न जाकर थोड़े समय के लिए बीमारी से ऊबे अपने मन को बहलाने के लिए सांग देखने चला गया था। भुल्लन को दूसरे दिन सुबह ही मुखिया और उसके आदमी इतना पीटते हैं कि वह अधमरा हो जाता है। गाँव के दलित परिवारों में से किसी में इतना साहस नहीं था, कि वे भुल्लन को बचा सके। भुल्लन की माँ–बहन, और पत्नी चम्पा उसकी रक्षा के प्रयास करती हैं, किन्तु मुखिया नहीं रुकता। चम्पा भी मार खाती है। बीमार और घायल पति की सेवा करती है, लेकिन तीन दिन तक बेहोश रहने के बाद भुल्लन की मृत्यु हो जाती है।

भुल्लन की मृत्यु सवर्णों के अत्याचार की चरमसीमा को प्रस्तुत करती है। चम्पा की इतनी दयनीय और विवश स्थिति की अपने पति के हत्यारे के खेत में ही उसे मजदूरी करनी पड़ती है। यह पीड़ा उसके लिए असहनीय थी, इसलिए वह सांग नहीं देखना चाहती। आठ वर्षों पहले की स्मृति में खोई हुई चम्पा अंतिम दृश्य तक आते–आते यह आग एक ज्वाला में परिवर्तित हो गयी। चम्पा के मन में प्रतिशोध लेने का एक मार्ग सूझा और वह सांग देखने चली गई। जैसे उसे अनुमान था, मुखिया सुबह ही दरवाजे पर मौजूद था। उसके खेत में रात को काम न करने वाली चम्पा को वह भुल्लन की ही तरह दंड देकर अपने अहंकार और क्रोध को शांत करना चाहता है। उसे गालियाँ देते हुए उसे मारना चाहता है, किन्तु चम्पा पहले से ही तैयार बैठी थी। मुखिया के हाथ बढ़ाते ही वह, ओढ़ने में छिपाए गंडासे से उसके सिर पर वार करती है, मुखिया का सिर दो फांकों में बँट जाता है।

चम्पा पर जो अत्याचार मुखिया ने किया था, आठ वर्ष बाद वह अपना विद्रोह व्यक्त करती है। यह बात पहले कभी उसके मन में क्यों नहीं आई ? यहाँ एक

प्रश्न उठता है। जो निड़रता चम्पा ने अब दिखाई वह, पहले क्यों नहीं दिखाई। फिर भी दलित नारी का विद्रोह चरम सीमा पर पहुँचता है तो अपने प्रतिशोध के लिए एवं स्व–रक्षा के लिए वह मुखिया की जीवन–लीला खत्म कर देती है। चम्पा द्वारा की गई यह हत्या उसके जर्जर, बीमार पति पर बेरहमी से बेहिसाब पिटाई, उसकी हड्डियों का भुरता बनाने वाले मुखिया की करनी का फल था।

फ्लेश–बेक में प्रस्तुत कहानी की घटना रची गई है। चम्पा इन्हीं घटनाओं को याद करते हुए उसके भीतर प्रतिशोध लेने का विचार आ जाता है। फ्लेश–बेक की शुरु की स्थिति में डरी, सहमी, असहाय चम्पा फ्लेश–बेक के अंतिम समय तक आते–आते निडर, साहसी और चण्डी माँ का रुप धारण कर लेती है, जो राक्षस का वध करने के लिए तत्पर सी दिखाई देती है।

प्रस्तुत कहानी के संवाद छोटे है, साथ ही कहानी के कथानक को आगे बढ़ाने एवं चरित्र पर प्रकाश डालने जैसे गुणों से युक्त हैं। भाषा ग्रामीण वातावरण एवं पात्र परिवेश के अनुरुप है।

11. 'आखेट'–रत्नकुमार सांभरिया

गरीब सोमा और उसकी पत्नी रेवती शहर में अपने पाँच महीने के बच्चे के साथ पौष की सर्दी में टाट की बोरियों और प्लास्टिक की पन्नियों की एक तान में रहते हैं। उन्हें अपना गाँव और बूढी माँ को इसलिए छोड़कर शहर भागना पड़ा क्योंकि गाँव के ठाकुर नानक सिंह से अपनी इज्जत बचाने के लिए रेवती उसकी नाक काट देती है। ऐसा दंड देकर रेवती उन सभी स्त्रियों का बदला नानक सिंह से ले लेती है, जिन्हें वर्षों से नानक सिंह अपनी वासना का शिकार बनाता रहा था। रेवती जिस गाँव में ब्याहकर आई थी, वहाँ सवर्णों का दलितों पर अत्याचार करना आम बात थी, गरीब दलित सवर्णों के हर आदेश को स्वीकार करने के लिए विवश थे। सोमा अकेला ही नानक सिंह से बदला लेने को तैयार था, किन्तु एक ताकतवर सवर्ण से एक दलित अपने समुदाय के सहयोग के बिना लड़े तो जीत उसे मिले यह नामुमकिन सा था। अपनी और रेवती की जान बचाने के लिए सोमा रातों रात ही अपना गाँव छोड़कर शहर भाग आता है। अपना गाँव, अपना घर और दो बीघा जमीन छोड़कर शहर की ओर पलायन करने वाला सोमा दीहाड़ी मजदूरी करके जैसे–तैसे जीवन यापन कर रहा था।

घर में बीमार बच्चा, पौष की भयानक सर्दी, न जलाने के लिए लकड़ी, न ओढ़ने बीछाने के साधन। सोमा फिर भी पानी की हौज को खाली करने की दिहाड़ी करने के लिए तैयार हो जाता है। गरीबी गरीबों से आखिर क्या–क्या नहीं करवाती। चौबीस का सोमा चौंतीस का दिखाई देने लगता है और रेवती भी अपनी उम्र से पहले ही अपने चेहेरे की रौनक खोने लगती है।

एक ओर नानक सिंह सोमा की माँ को बेघर करके मरने पर विवश कर देता है दूसरी ओर सोमा और रेवती को मौका मिलने पर दंड देने की तैयारी रखता है।

> **''नाक कट जाना गोली लगने से ज़्यादा पीड़ादायक होता है। गोली लगने से आदमी मर जाता है। नककटी सामाजिक मौत है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी अनवरत चलती रहती है। नाक की आँख से ज़्यादा अहमियत है। अंधा जीवन जी लेता है, जिसके चेहरे पर नाक न हो, उसे कुआँ–बीवड़ी देख लेने चाहिए।''**[133]

रेवती और सोमा जिस जगह रहते थे, वह लाला सुख प्रसाद की हवेली का पिछवाड़ा था। विधुर सुख प्रसाद पैंसठ वर्ष की उम्र में भी रेवती जैसी उम्र की स्त्री को अपनी रखैल बनाना चाहता है। वह रेवती को आए दिन सोने के गहने, नोट आदि दिखाकर लोभ देना चाहता है, किन्तु रेवती उसके उपहारों पर थूकती है। क्रोधित सुख प्रसाद पिस्तौल लेकर नशे में रेवती को मारने या स्वयं मरने की धमकी देता है, किन्तु रेवती अपने बीमार बच्चे की चिंता में उसकी ओर ध्यान ही नहीं देती। उसके हाथ से पिस्तौल गिर कर नीचे आ जाती है, रेवती उसे खिलौना समझकर बच्चे के लिए रख लेती है।

गाँव और शहर दोनों जगह रेवती सवर्णों की गंदी निगाहों से अपने आपको बचाना चाहती है। सवर्ण दलित स्त्रियों को लोभ देकर या फिर जबरन प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक चले जाते हैं। सोमा ऐसे ही नानक सिंह को सबक सिखाना चाहता है। जैसे ही पिस्तौल उसके हाथ आती है वह बीमार बच्चे और ज्वर में स्वयं होने पर भी रेवती को लेकर अपने गाँव अपने खेत और घर लौटने की हिम्मत जुटा लेता है। एक गोली पिस्तौल की उसे नानक सिंह से संघर्ष करने का साहस देती है।

प्रस्तुत कहानी में दलित स्त्री के जातीय शोषण, सवर्णों द्वारा अत्याचार, दलितों का पलायन, शहर में उनकी दुर्गति की स्थिति, गरीबी लाचारी एवं शहर में भी दलित स्त्री का शोषण करने के लिए सुख प्रसाद जैसे वृद्ध व्यक्ति उनके जीवन को तहस–नहस कर देते हैं। सोमा और रेवती दोनों निडर एवं साहसी हैं, इसलिए तकलीफों का सामना करते हुए भी कमजोर या निराश नहीं होते और अपने गाँव लौटकर, फिर से अपने जीवन में खुशहाली लाने का सपना आँखों में लिए शहर से गाँव की ओर पलायन करते हैं।

13. 'अंगूरी'– सूरजपाल चौहान

सूरजपाल चौहान की **'अंगूरी'** कहानी की नायिका अंगूरी का रुपवती होना उसके लिए अभिशाप बन जाता है। दलित स्त्री की सुन्दरता व यौवन गाँव के युवक को आकर्षित करता ही था, बड़े बूढ़े तक की नजरें उससे नहीं हटतीं थीं। अंगूरी का पति गेंदा सवर्णों की बेगारी करता था। वह दिनभर के परिश्रम के बदले में दो वक्त का भोजन मात्र ही जुटा पाता था। गरीब, लाचार, अशक्त गेंदा पत्नी के सम्मान के लिए सवर्णों से सामना करने में अपने आप को असमर्थ महसूस करता है। अंगूरी भी पति से शिकायत करके थक चूकी थी। उसका जीना हराम हो गया था। लोगों की छेड़छाड़, प्रणय निवेदन आदि हरकतों से तंग आ जाती है। गाँव के मुखिया और उसके काले पहलवान ने अंगूरी को दबोचने का षडयंत्र रचकर गेंदा को एक रात के लिए गाँव से दूर भेज दिया। मजबूरी में गेंदा इस षड़यंत्र से बेखबर तहसीलदार के हस्ताक्षर करवाने चला जाता है। अंगूरी को इस षढयंत्र की भनक लग जाती है।

अंगूरी पति की गैरमौजूदगी में भी अपनी आत्मरक्षा करने के लिए तैयार थी। वह भूखे भेड़ियों को सबक सीखाने के लिए चौकन्नी हो जाती है और जैसे ही मुखिया आधी रात को उसके घर में कूदकर अंगूरी के समक्ष प्रणय–निवेदन करने लगता है, वह सहजता से ही अंगूरी को प्राप्त कर लेगा, यह सोचकर वह यहाँ आया था, किन्तु अंगूरी आत्मरक्षा के लिए हँसिया उठा लेती है, और भूखी शेरनी बनकर उसके सीने पर खड़ी होकर उसे धमकाते हुए कहती है–

''चल, निकल यहाँ से। यदि जरा भी देरी लगाई, तो तेरी अँतड़ियाँ निकालकर बाहर धर दूँगी। पोंगा पण्डत.....मैं अहिल्या ना हूँ, मैं अंगूरी हूँ, अंगूरी।''[134]

यहाँ अंगूरी की निडरता, साहस, आत्मविश्वास उसे सबला नारी बना देता है। वह शोषण के विरुद्ध विद्रोह करके अपनी रक्षा करती है, साथ ही शोषक को ऐसा सबक सीखाती है, जिससे वह कभी किसी को अशक्त समझकर उसका शोषण न कर सके।

आज की दलित नारी अहिल्या नहीं है, जो निर्दोष होते हुए भी दंडित की जाए। आज अंगूरी जैसी महिलाएँ अपने पर अत्याचार करने वाले को स्वयं दंड देती हैं, किन्तु उसी समाज का उसका पति गेंदा पुरुष होते हुए भी परिस्थितिवश एवं गाँव के परंपरागत वातावरण एवं रीतिरिवाज, गरीबी, भुखमरी, बेगारी आदि के कारण अपने मुँह पर ताला लगा लेता है।

प्रस्तुत कहानी की शुरुआत गेंदा की लाचारी से होती है, किन्तु अंगूरी के विद्रोह से होता है। कहानी के संवाद छोटे एवं रोचक हैं साथ ही पात्रोचित हैं।

13. 'टिल्लू का पोता'– सूरजपाल चौहान

'टिल्लू का पोता' सूरजपाल चौहान द्वारा रचित कहानी है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने वर्तमान समय में आज भी गाँवों में अस्पृश्यता के कारण किस तरह दलितों का अपमान किया जाता है, उसका वर्णन किया है। हरीसिंह एक शिक्षित व्यक्ति है, जो दिल्ली में सरकारी नौकरी करता है। उसकी पत्नी कमला और दो बच्चे हैं। गाँव में किसी रिश्तेदारी में शादी होने से वे गाँव आते हैं। रास्ते में पत्नी एवं बच्चों को प्यास लगती है। हरीसिंह गाँव भेद–भाव, ऊँच–नीच के वातावरण को भूला नहीं था, इसलिए वे उन्हें थोड़ी देर इंतजार करने की सलाह देता है। कमला और बच्चे वहाँ चल रहे कुएँ और बाल्टी देखकर अपनी प्यास को रोक नहीं पाते। उन्हें अच्छे कपड़ों में देख सवर्ण किसान पहले पानी निकालकर पीने की अनुमति दे देता है। किन्तु जैसे ही उसे यह पता चलता है, कि यह टिल्लू का पोता है, उसका रुप बदल जाता है। वह उसके हाथ से बाल्टी छीनकर माँजने लगता है। कमला इस अस्पृश्यता के भाव को ताड़ नहीं पाती और प्यास से तड़पती वह जैसे ही पानी पीने के लिए आगे बढ़ती है, वह किसान उससे कहता है–

''अरे भंगनिया, नेक पीछे कू हट के पानी पी, यह शहर ना है गाँव है गाँव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी। सारे (साले) भंगिया–चमरा के सहर में जाकै नये–नये लत्ता (कपड़े) पहर के गाँव में आ जात हैं। कुछ पतो न चलतु कि जे भंगिया–चमार के हैं कि नाय (नहीं)।''[135]

सभी वर्ण के लोगों को गाँव में अच्छे कपड़े, अच्छे खाना–पान, रहन–सहन, स्वतंत्रता, मान–सम्मान मिलता था, सिवाय दलितों के। उन्हें सुखी रहने और सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार नहीं दिया गया था, क्योंकि सदियों से उन्हें दीन–हीन ही रहने पर विवश किया गया है। कमला को अपेक्षा से परे किसान का व्यवहार उसे आहत करता है। वह क्रोध से जल उठती है। उसकी आँखों से दहकते

अंगारे निकलने लगते हैं और उस भेद–भाव और छुआ–छूत के भाव से दिए गए पानी को ग्रहण नहीं करती और कहती है–

> **''चलो, ये पानी नहीं जहर है। अपने घर जाकर पिएँगे....नहीं चाहिए आपका मीठा पानी..... ।''**[136]

पति के इशारे से कमला किसान के कड़वे शब्दों का जवाब बड़े सभ्य रुप में देती है, किन्तु किसान के लिए एक दलित स्त्री द्वारा ऐसे शब्द सुनना नई बात थी गाँव में दलित स्त्रियाँ लाज काढ़े सवर्णों के अपमान को सहती आई थी, कभी अपने अपमान को बदला या विद्रोह किसी ने नहीं किया था। कमला कुँए के पानी का तिरस्कार करके सवर्ण किसान की बेइज्जती कर देती है। जो काम हरीसिंह नहीं कर पाता वह कमला करके दिखा देती है। शोषण करना यदि गलत है, तो शोषण सहना भी उतना ही गलत है। शोषण के समक्ष विद्रोह होगा तभी कुछ परिवर्तन हो सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजता से पहुँच संकते हैं–

1. जहाँ दलित नारी सच्चे स्वरुप में शिक्षित हुई है, वहाँ ग्रामीण जीवन में उनके द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है। नगर की अपेक्षा अभी गाँवों में दलित शिक्षा का प्रायः अभाव सा दिखता है। उसमें भी उच्चतम् शिक्षा तो लगभग नहींवत् पाइ जाती है।
2. प्रायः देखा गया है कि दलित नारियों में परिश्रम, जुझारुपन, संघर्षशीलता और समाज के रुढ़िगत रीति–रिवाजों से टकराने का साहस आदि मिलता है।
3. ग्रमभित्तीय कहानियों में दरिद्रता और विपन्नता के कारण उन्हें गाँव के उच्चवर्गीय लोगों द्वारा जातीय शोषण का शिकार होना पड़ता है।
4. आलोच्य समयावधि में कुछ तो ऐसी कहानियाँ आती हैं, जिसमें पूर्णरुपेण ग्रामीण परिवेश उपलब्ध होता है। ऐसी कहानियों में 'अंगूरी', 'सनातनी', 'पहली रात का अंत', 'बात', 'मीरधार', 'अत्तू और अम्मा', 'उसका फैसला', 'लाठी', 'रम्पो का चेहरा', 'सांग', लोकतंत्र में बकरी', आदि को रख सकते हैं।
5. आलोच्य समय सीमा में कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं, जिनमें ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का मिला–जुला स्वरुप दृष्टिगत होता है। ऐसी कहानियों में 'टिल्लू का पोता', 'बदबू', 'अंधड़', 'सुनीता', 'आधा सेर घी', 'सिलिया', 'जंगल में आग', 'आखेट', 'भूख', 'कैद', 'यूज एण्ड थ्रो', 'क्रान्ति', आदि को रख सकते हैं।
6. हिन्दी की दलित कहानियों में दलित नारी की संवेदना को विविध रुपों में विश्लेषित किया जा सकता है–
    1. दलित शिक्षित महिलाएँ
    2. दलित अशिक्षित महिलाएँ
    3. दलित कामकाजी महिलाएँ
    4. आर्थिक स्वतंत्रता की चाह
    5. परिवार में पति की भूमिका
    6. परिवार में पिता की भूमिका
    7. दलित नारी का शोषण के प्रति विद्रोह

7. अवस्था की दृष्टि से आलोच्य कहानियों में बालिकाएँ, किशोरियाँ, युवतियाँ, प्रौढ़ाएँ और वृद्धाएँ आदि दलित नारी के रुप मिलते हैं, परंतु अपेक्षाकृत बालिकाओं का चित्रण कम हुआ है। प्रायः दलित नारी की युवा अवस्था का चित्रण अधिक देखने को मिलता है। कुछ अपवादों को छोड़कर वृद्धाओं के जीवन चित्रण का अभाव–सा प्रतीत होता है।
8. पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों में प्रायः जातिगत भीरुता, रुढिचुस्तता, तथा नयी पीढ़ी की दलित स्त्रियों में रुढिमुक्तता के कुछ अभिलक्षण दृष्टिगत होते हैं।
9. दलित नारियों की तुलना में दलित पुरुषों में जातिगत हीनता की भावना अधिक देखने को मिलती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित नारी के विविध रुप एवं उनके जीवन में अनेक समस्याएँ हैं। दलित स्त्री शिक्षित हो या अशिक्षित उसे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अपने परिवार, सवर्ण समाज, रुढ़िचुस्त रीतिरिवाज़, सामाजिक मान्यताओं, आर्थिक समस्यओं, बेरोजगारी, सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। दलित ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय कही जा सकती है, सवर्णों द्वारा उनका जातीय शोषण किया जाना उनके लिए एक गंभीर समस्या है। गरीबी, भुखमरी की स्थिति में वे अधिकांशतः सवर्णों पर आश्रित हैं, अपनी मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे कठोर परिश्रम करके अपने परिवार की सहायक बनती है, सवर्ण उनकी विवशता एवं आवश्यकताओं को भली–भाँति जानते हैं, इसलिए वे उनका जातीय शोषण करते आए है। शहरी परिवेश में भी दलित स्त्रियों का जातीय शोषण किया जाता है। इसके साथ स्कूल, कॉलेज, ऑफिस में दलितों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार सवर्ण शिक्षित वर्ग द्वारा देखा जा सकता है। शहरों में दलितों का शोषण करने के लिए नये–नये तरिकों का इस्तेमाल किया जाता है। उन्हें हीन समझा जाता है, उन्हें वह सम्मान जनक स्थान नहीं दिया जाता जिसकी वे अपेक्षा रखते हैं। परिणाम स्वरुप आज शिक्षित दलित जातिगत हीन भावना से ग्रस्त हो रहे है और अपनी जाति छिपाने के लिए विवश हैं। शहर हो या गाँव अस्पृश्यता दलितों का पीछा कही नहीं छोड़ती, जन्म से लेकर मृत्यु तक दलित इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए छटपटाते हैं। आज 21वीं सदी में हमारे देश में हर क्षेत्र में प्रगति हो रही है, विकास हो रहा है, नयी–नयी विचार धाराओं को स्वीकार किया जा रहा है, ऐसी स्थिति में दलितों को सम्मान जनक जीवन जीने के लिए समाज द्वारा योग्य वातावरण देने की आवश्यकता है। विशेष रुप से दलित नारी को शिक्षा, स्वतंत्रता, रोजगार मिलने पर वे अपना जीवन स्वाभिमान से जी सकें, ऐसा प्रयास किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूचीः–

1. **'बदबू' –** नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ – स. मुद्राराक्षस पृ. सं. 129
2. वही पृ. सं. 130
3. वही पृ. सं. 131
4. वही पृ. सं. 132
5. वही पृ. सं. 133
6. **'सूरज' –** बयान अंक– 21, अप्रैल 2008 – स. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 76
7. वही पृ. सं. 77
8. वही पृ. सं. 77
9. वही पृ. सं. 78
10. **'एक दलित लड़की' –** बयान– अंक 27 अक्तूंबी 2008 स. मोहनदास नैमिशराय पृ. स. 21
11. वही पृ. सं. 21
12. वही पृ. सं. 21
13. **'नई धार' –** दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 169
14. वही पृ. सं. 175
15. वही पृ. सं 175
16. **'क्रान्ति' –** दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 217
17. **'इस समय में' –** दलित साहित्य वार्षिकी 2006 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 254
18. वही पृ. सं. 254
19. वही पृ. सं. 255
20. **'यूज एंड थ्रो' –** दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08–स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 204–205
21. वही पृ. सं. 207
22. **'और वह पढ़ गई' –** चर्चित दलित कहानियाँ – स. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 29
23. वही पृ. सं. 30
24. **'रिश्वत' –** दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 – स. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं. 159
25. वही पृ. सं. 161
26. **'सिलिया' –** दलित कहानी संचयन – स. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 63
27. वही पृ. सं. 62
28. वही पृ. सं. 64–65
29. **'मैं मईया थी' –** हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 183
30. **'हम कौन हैं ?'–** हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004–सं. राजेन्द्र यादव

पृ. सं. 149

31. वही पृ. सं. 149

32. 'अब का समय' –हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 123

33. वही पृ. सं. 122

34. वही पृ. सं. 125

35. वही पृ. सं. 126

36. 'सनातनी' – बयान अंक 23 जून 2008 – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 19

37. वही पृ. सं. 20

38. वही पृ. सं. 21

39. 'कर्फ्यू' – युद्धरत आम आदमी अप्रैल–जून 2007 पृ. सं. 29

40. 'खटिया की जाति' – युद्धरत आम आदमी जुलाई–सितंबर 2008 अंक 93 पृ.सं. 50

41. वही पृ. सं. 51

42. 'फुलवा' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 104

43. वही पृ. सं. 104

44. 'हरिजन' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 89

45. वही पृ. सं. 90

46. वही पृ.सं. 86

47. 'उपमहाद्वीप' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 सं. अगस्त 2004– सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं 178

48. वही पृ. सं. 176

49. 'आधा सेर घी' –हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 76

50. 'कर्ज़' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 20

51. वही पृ. सं. 27

52. 'बात' – काल तथा अन्य कहानियाँ – सं. रत्नकुमार सांभरिया पृ. सं. 16–17

53. 'सुमंगली' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 117

54. वही पृ. सं. 120

55. 'अत्तू और अम्मा' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबंर–दिसंबर 2002 पृ. सं. 5

56. वही पृ. सं. 5

57. वही पृ. सं. 6

58. वही पृ. सं. 6

59. 'मजूरी' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 140

60. वही पृ. सं. 140

61. 'जंगल की रानी' –हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी–सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 48

62. 'मंगली' – दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ सं. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 33

63. वही पृ.सं. 33

64. 'उसका फैसला' –नयी सदी की पहचान :श्रेष्ठ दलित कहानियाँ–सं. मुद्रा राक्षस पृ.सं. 103

65. वही पृ. सं. 103
66. 'बंदरिया' – युद्धरत आम आदमी जुलाई–सितंबर 2008 अंक 93 पृ. सं. 42
67. वही पृ. सं. 45
68. वही पृ. सं. 46

69. 'सुनीता' – हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी–सं. सूरजपाल चौहान पृ सं. 125
70. वही पृ. सं. 126
71. 'मेरा समाज' – टूटता वहम – सं. डॉ. सुशीला टाक भौरे पृ. सं. 30–31
72. 'अम्मा' – सलाम – सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 115
73. वही पृ. सं. 116
74. 'चिड़ीमार' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004–सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 114
75. 'मरीधार' – जातिदंश की कहानियाँ – सं. सुभाषचंद कुशवाह पृ. सं. 47
76. 'बीती रात अंधेरी' –जुड़ते दायित्व – सं. कुसुम मेघवाल पृ. सं. 12
77. वही पृ. सं. 14
78. 'दर्द' – दलित साहित्य 2003 – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 116
79. वही पृ. सं. 117
80. 'पहली रात का अंत' – जाति दंश की कहानियाँ – सुभाषचंद कुशवाह पृ. सं. 261
81. वही पृ. सं. 261
82. वही पृ. सं. 259
83. वही पृ. सं. 264
84. 'अपना गाँव' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 32–33
85. वही पृ. सं. 38
86. वही पृ. सं. 47
87. 'लाठ' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – राजेन्द्र यादव पृ. स. 128
88. वही पृ. सं. 131
89. वही पृ. सं. 131
90. 'लोकतंत्र में बकरी' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 170
91. वही पृ. सं. 170
92. 'रात' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 – सं. राजेन्द्र यादव पृ. सं. 185
93. वही पृ. सं. 165
94. 'सिमटा हुआ आदमी' – हमारा जवाब – सं. मोहनदास नैमिशराय पृ. सं. 131–132
95. वही पृ. सं. 131–132
96. वही पृ. सं. 131–132
97. 'टूटता वहम' – टूटता वहम – सं. सुशीला टाकभौरे पृ. सं. 80
98. 'डंक' – काल तथा अन्य कहानियाँ – सं. रत्नकुमार साभरिया पृ. सं. 118
99. 'भूख' – दलित कहानी संचयन – सं. डॉ.सी.बी.भारती पृ. सं. 121–1

100.'कफन' दलित साहित्य वार्षिकी 2007–08 सं. जयप्रकाश कर्दम पृ. सं 241
101. वही पृ. सं. 237
102. 'अंधड़'– सलाम – सं. ओप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं. 86
103. वही पृ. सं. 92
104. 'घाटे का सौदा'–हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 36
105. 'आतंक' – नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ–सं. मुद्रा राक्षस पृ. सं. 101
106. 'अन्तिम बयान' –दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 136
107. वही पृ. सं. 141
108. 'जंगल में आग'–दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 127
109. 'अंगारा' – दलित कहानी संचयन – सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 143
110. वही पृ. सं. 143
111. वही पृ. सं. 144
112. 'साजिश' – दलित कहानी संचयन पृ. सं. 67
113. वही पृ. सं. 67
114. वही पृ. सं. 69
115. वही पृ. सं. 69
116. वही पृ. सं. 70
117. 'रम्पो का चेहरा' – हंस पूर्णांक 215 वर्ष 19 अंक 1 अगस्त 2004 पृ. सं. 185
118. वही पृ. सं. 186
119. वही पृ. सं. 186
120. वही पृ. सं. 186
121. वही पृ. सं. 186
122. 'बदला' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबर–दिसम्बर 2006 पृ. सं. 32
123. वही पृ. सं. 33
124. वही पृ. सं. 34
125. वही पृ. सं. 35
126. 'जोजना' – युद्धरत आम आदमी अक्टूबर–दिसम्बर 2002 पृ. सं. 07
127. वही पृ. सं. 08
128. 'सुनरी' – युद्धरत आम आदमी जनवरी–मार्च 2008 अंक 90 पृ.सं. 27
129. वही पृ. सं. 27
130. वही पृ. सं. 27
131. वही पृ. सं. 27
132. 'सांग' – चर्चित दलित कहानियाँ – सं. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 59–60
133. 'आखेट' – हुकम की दुग्गी – सं. रत्नकुमार सांभरिया पृ. सं. 35
134. अंगूरी' – हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 47
135. 'टिल्लू का पोता'– हैरी कब आएगा ? – सं. सूरजपाल चौहान पृ. सं. 26
136. वही पृ. सं. 26

तृतीय अध्याय

''गुजराती की दलित कहानियाँ में नारी संवेदना''

अध्याय–3

गुजराती की दलित कहानियाँ में नारी संवेदना

साहित्य एक निष्ठा का कार्य होता है। जो भी साहित्य का सृजन करता है, उसका निष्ठावान होना आवश्यक है। सृजनात्मक कार्य में लिखना ही नहीं किंतु उन प्रत्येक वस्तु को नाम देना होता है और उसके होने के रहस्य को जानना है, जो उसमें नियमित रुप से स्पंदित हो रहा है। इसीलिए साहित्य में अपनी एक संमोहक शक्ति होती है, ऐसा कहा जाता है। सर्वप्रथम वह व्यक्ति संमोहित होता है। उसके बाद समाज को उस व्यक्तिगत चिंतन का सामाजिक रुपांतरण भी साहित्य से होता है। महाभारत में लिखा गया है–

''गृहिणी के बिना घर जंगल है और पत्नी के बिना पुरुष जंगली''[1]

किंतु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है–

''पुरुष कई स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है। स्त्रियाँ मात्र संतानोत्पति करने के लिए है।''[2]

किसी भी समाज की समृद्धि और सजगता का ज्ञान इस बात से हो जाता है कि उस समाज में नारी की दशा क्या है ? जैन श्वेतांबर पंथ में नारी भिक्षुणी थी, ऐसा दर्शाया गया है। किंतु दिगंबर पंथ वालों ने ऐसी घोषणा की थी, कि नारी के लिए मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए स्त्रियों को सीमित धर्म का पालन करना चाहिए, जिससे उसे दूसरे जन्म में पुरुष के रुप में जन्म मिल सके। बौद्ध धर्म में भी संघ में स्त्रियों को प्रवेश की अनुमति नहीं थी, किंतु बाद में गौतम बुद्ध ने उसे अनुमति दी।

वैदिक काल पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों को विशेष आदर और सम्मान प्राप्त था। किंतु बौद्ध काल तक आते–आते धीरे–धीरे स्त्रियों की ओर देखने का नज़रिया भी बदल गया।

दलित साहित्यकारों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण गौतम बुद्ध की वही प्रगतिशील चेतना से परिपूर्ण है। उनकी दृष्टि में नारी मात्र भोग्या ही नहीं बल्कि पुरुष जितना ही उसका भी स्वतंत्र व्यक्तित्व है। दलित साहित्य में स्त्री मात्र पति की छाया बनकर नहीं जीती बल्कि अपने स्वतंत्र अस्तित्व रखकर वह पुरुष की समानता के लिए संघर्षशील पुरुष की सहभागी बनकर सामने आती है। महात्मा ज्योतिबा फुले की पत्नी सावित्रीबाई समानता लाने वाली प्रथम महिला हैं।

गुजराती दलित साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ था, किंतु दलितों की संवेदना को कहानी में बेहतर ढंग से चित्रित किया गया, इसलिए आज गुजराती दलित साहित्य में कहानी एक सशक्त विधा बन गई है। गुजराती दलित कहानियों में विषय का विस्तार है, किंतु मेरे शोध–प्रबंध का विषय दलित नारी से संबंधित है, अतः गुजराती दलित नारियों के प्रति ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में की जाने वाली अस्पृश्यता, जातीय शोषण, आर्थिक शोषण, सवर्णों के अत्याचार, अन्याय के समक्ष दलित स्त्री का विद्रोही रुप आदि विषय पर दलित नारी की संवेदना को तीसरे अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

3.1 दलित स्त्री का जातीय शोषण

1. मंकोडा(चीटा)–बी.केशरशिवम्

'मंकोडा' बी.केशरशिवम् की एक प्रतीकात्मक कहानी है। यह कहानी दलित स्त्री पर होने वाले अत्याचार की करुण गाथा लेकर हमारे समक्ष आती है। यह कहानी मात्र दलित समस्या ही नहीं निर्देशती, नारी समस्या का भी निर्देश करती है। नारी को जननी या भगिनी नहीं, मात्र भोग्या रुप या वस्तु रुप में देखने वाले पुरुष प्रधान समाज के लिए यह कहानी एक प्रतिकार के समान है। एक स्त्री अपने पति की उपस्थिति में अपने आप को सुरक्षित, महसूस करती है, किन्तु एक दलित स्त्री पति की उपस्थिति में भी उसी के घर में एक सवर्ण पुरुष द्वारा बलात्कार के प्रयास का भोग बनती है। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक दलित स्त्री को मात्र गरीबी से ही नहीं उन पुरुषों से भी लड़ना पड़ता है, जो उन्हें अपनी हवस का शिकार बनाना चाहते हैं।

कहानी की नायिका संतोक अपने पति गाभा एवं बेटे के साथ गरीबी में भी खुश थी। संतोक एक स्वाभिमानी स्त्री थी। उसका पति रणछोड़ नामक सवर्ण व्यक्ति के खेत में मजदूरी करता है। संतोक भी उसके साथ जाती है, किंतु जब उसे पता चलता है कि रणछोड़ की कुदृष्टि उस पर है, तो वह मजदूरी करने नहीं जाती। पति उसके इस विचार को गंभीरता से नहीं लेता और यह उसका वहम है, ऐसा कहता है तब अपने ही पति की कायरता उससे सहीं नहीं जाती क्रोध में वह पति से कहती है–

> **''क्यों तुम्हारी आँखे फूट गई हैं? उस पसली को भी उठाकर नहीं ले गया था? बेचारी के आगे–पीछे कोई नहीं इसलिए कौन उसे बचाए? पसली ने मोहल्ले में बात कहनी चाही तो बेचारी को मारकर कुएँ में डाल दिया। उसने कोई आत्महत्या नहीं की थी। तुम्हारे जैसे बेशर्म आदमी को मैं क्या कहूँ?''**[3]

दलित पुरुष गाभा एक मजदूर होने से रणछोड़ की हरकतों को अनदेखा करना चाहता है। वह जानता है कि यदि उसने रणछोड़ का विरोध किया तो दो वक्त की रोटी जुटाना उसे भारी पड़ जाएगा। ताकतवर के सामने सभी झुकते हैं, किन्तु संतोक गरीब होने पर भी अपने आपको कमजोर नहीं समझती। अपने स्वाभिमान एवं पवित्रता को बचाने के लिए वह अपने पति में भी स्वाभिमान जगाना चाहती है।

पति–पत्नी इस विषय में लड़ने लगते हैं। गुस्से में गाभा संतोक पर हाथ उठाता है। अपने बेटे को लेकर गाभा घर के बाहर सो जाता है और संतोक घर में लेट जाती है। आधी रात को रणछोड़, संतोक के घर आता है। गाभा पहले उसे कोई चोर समझता है, किंन्तु उसकी आवाज वह पहचान जाता है। रणछोड़ उस पर दबाव ड़ालता है कि वह अपनी पत्नी को जगाकर दरवाजा खुलवाए। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसकी जान ले ली जाएगी। अभी तक रणछोड़ का पक्ष लेने वाले गाभा के समक्ष एक विकट परिस्थिति खड़ी थी। उसका आत्मविश्वास और स्वाभिमान जाग जाता है, चाहे उसकी जान चली क्यों न जाए, अपने दबाए हुए मुँह को छुडाकर वह संतोक से कहता है, कि बाहर नाग है वह दरवाजा ना खाले। संतोक रणछोड़ की आवाज पहचान जाती है। उसकी स्थिति दयनीय थी, एक तरफ उसके पति के प्राण संकट में होते हैं, क्योंकि

यदि वह दरवाजा नहीं खोलती तो रणछोड़ उसे मार डालेगा और यदि उसने दरवाजा खोला तो उसकी इज्जत लुट जाएगी। ऐसी स्थिति में वह अपना पत्नी धर्म निभाने के लिए, अपने पति की रक्षा के लिए दरवाजा खोल देती है।

रणछोड़ संतोक को धक्का देकर भीतर धकेल देता है और खुद भीतर जाकर दरवाजा बंद कर देता है। बाहर गाभा चीख–चीख कर मोहल्ले वालों को इकट्ठा की लेता है। परिस्थिति की गंभीरता और विकटता देख संतोक के मन में एक युक्ति सूझती है। वह रणछोड़ को अपने पास बुलाकर प्रेम का नाटक करती है और मोका पाकर उसकी इन्द्री काट देती है। अब रणछोड़ के पास वहाँ से भागने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं था। भागते हुए रणछोड़ को गाभा लकड़ी से मारने लगता है, जिस पर संतोक कहती है–

> **''अब रहने दो, मरे हुए को मत मारो। उसे जाने दो। उसकी ज़िंदगी में अब वह किसी का नाम नहीं लेगा।''[4]**

संतोक के ये शब्द अत्याचार के विरुद्ध उसके प्रतिकार का बयान करते हैं। कहानी का अंत कलात्मक है। संतोक एक आकर्षक नारी पात्र के रुप में हमारे समक्ष आती है, जो गरीब और दलित है, किन्तु अबला नहीं है।

कहानी का अंत कलात्मक और चोटदार है। दलित चेतना की प्रस्तुती करने वाला इसका अंत इस प्रकार है–

> **''यह तेरी माँ की ननद को भी क्या समझ कर रखा था, खड़े–ही–खड़े चीर डाला, 'ले यह तोर डेंट्यु लेता जा'....'संतोक मंकोड़े के आँकडे की तरह उसकी काटी हुई इंद्री से दौड़ते हुए रणछोड़ के पैर पर वार करती है।''[5]**

लेखक की भाषा सबसे सबल तत्त्व है; ग्रामीण भाषा का प्रयोग करके उन्होंने कहानी को अधिक चित्रात्मक बना दिया है। मंकोड़ा, नाग जैसे शब्द प्रतीकात्मक शब्द के रुप में उपयोग किए गए हैं। कहानी के अंत में थोड़े अश्लील ग्राम्य शब्द प्रयोग हुए हैं, किंतु वह स्थिति के अनुरुप हुए हैं। संतोक रणछोड़ को नपुंसक बनाती है और समग्र नारीजाति को उसके वासना के घेरे में से मुक्त करती है।

2. लक्षण (लाखुं)–मधुकान्त कल्पित

काली हरिजन जाति की युवती है। काली ने बचपन से ही छुआ–छूत जैसे शब्द सुने थे। जब वह छोटी थी तब वह डोलची लेकर तेल लेने जाती है। रास्ते में गाँव के नारसंगभा को उसके दुपट्टे का किनारा छू जाता है, तब वे उसे गधी कहकर थप्पड मारते हैं और उसका तेल गिर जाता है। रोती–रोती बह घर आती है तब उसके पिता से आकर पूछती है कि–

> **''पिताजी ! नारसंगभ ने थप्पड मारा तो वे अछूत तो नहीं हो गए ?''**
> **पिता उससे कहते हैं–बहुत इतराती है लडकी, यह लोकमान्यता है, ''अपने छूने से वे अछूत होते हैं।''[6]**

यह प्रसंग याद करके वह मनोसंघर्ष अनुभव करती है। दूसरी बार वह मुखिया के घर गेहूँ साफ करने जाती है। वह रमतुजी को जल्दी में गेहूँ देती है, तब खाली सूप देते हुए रमतुजी का हाथ काली को छू जाता है और वे नाराज़ होकर कहते हैं–

''तुझे कुछ समझ में आता है, लड़की ? तेरा हाथ मुझे छू जाता है, इसकी तुझे खबर रहती है?''[7]

मुखिया ने पानी का लोटा लाकर छींटे मारे तब रमतुजी स्तब्ध रह गया था। अर्थात् उसे स्वयं पहली बार अछूत होने की पीड़ा का अहसास हुआ था। जिसके कारण वह मुखिया के चले जाने पर उसे बहुत गालियाँ देता है। रमतुजी जब मुखिया को गाली देता है, तब काली सोचती है कि वैसे तो, रमतुजी तो अच्छे आदमी लगते हैं

जब काली जवान हो गई तब एक बार मुखिया के घर धान की पौध उखाड़ने के लिए रमतुजी काली को काम पर बुलाने आता है। काली उसे वहाँ देखकर घबराती है। काली के पिता पहले तो उसे भेजने से इन्कार करते हैं किन्तु बाद में उसे मजदूरी के लिए भेजने का तैयार हो जाते हैं। काली खड़ी हुई तो रमतूजी मोके को फायदा उठाकर काली को काम में मदद करने के बहाने उसका स्पर्श करता हैं। काली उन्हें दूर रहने का आग्रह करती है, तब वह कहता है–

''कैसी बात करती है पागल ? ऐसे छूने से कोई अछूत हो जाता है?''[8]

तब काली मन में सोचती है कि– "सबके सामने छुआ–छूत और अकेले में सब चल जाता है, ऐसा कैसे ?"(वही) वह समझ नहीं पाती कि यह रमतूजी मुखिया के सामने मुझे छू लेने से नाराज़गी व्यक्त कर रहे थे। आज वही मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे स्पर्श करना चाहते हैं। उसके प्रश्नों का कोई सही उत्तर उसे नहीं मिल पाता। काली अपने काम में व्यस्त हो जाती है, लेकिन उसका कपड़ा उसके घुटने पर चढ़ जाता है! रमतुजी उसके पैर में लक्षण देखते है और कहते हैं–

''लक्षण तो बहुत शुभ होता है लड़की..... तु तो बहुत भाग्यशाली है।''[9]

काली की खुशी का ठीकाना नहीं रहता। रमतुजी उसके लक्षण को छूता है, तो काली शरमा जाती है और जल्दी से पैर खींच लेती है। उस समय रमतुजी दूसरी ही तंद्रा में था। काली काँपने लगी और घबराहट में गट्ठर उठाकर बोरींग के कमरे में प्रवेश करती है। तब रमतुजी उसके पीछे आकर कमरे का दरवाजे के बीच खड़ा हो जाता है। आज रमतुजी का चेहेरा काली को भयानक, डरावना लग रहा था। वह सोचती है कि उछलकर कमरे के बाहर निकल जाऊँ, लेकिन काली ने जैसे ही पैर बढ़ाए कि रमतुजी की गिरफ्त में छटपटाने लगी। घबराकर वह कहने लगी कि–

''मैं कहती हूँ मूझे छोड़ दो, मुझे आप मत छुओ रमतुजी.....''[10]
तब रमतुजी कहता है–"मुझे भी देखना है कि किस तरह अस्पृश्य हो जाते हैं?''[11]

रमतुडा के चंगुल से बचने का हर प्रयास काली करती है और बहुत प्रयास करने के बाद वह जोरदार झटका देकर वहाँ से भाग जाती है। वह

गिरती–पड़ती, रोती हुई भागने लगती है। आज काली का चित्त मूढ बन गया था। परंतु गाँव के घरों को जब देखती है तो, उसे तसल्ली हो जाती है कि अब वह बच गई है। आज जब उसे अपना लक्षण पैर में दिखता है, तो वही उसे तेजस्वी लगता है। क्योंकि वह वास्तव में भाग्यशाली है। आज उसने अपने आपको एक शैतान की हवस का शिकार होने से बचाया। अपनी रक्षा स्वयं की। वह प्रसन्न थी। जो स्त्री अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है, वह भाग्यशाली नहीं तो और क्या है ?

एक वर्ष के बाद फिर रमतुजी काली के घर आता है। पूरे मुहल्ले में सन्नाटा था। आकर वह काली से कहता है–

''आज तो वह लक्षण देखने आया हूँ, काली.....''[12]

काली के शरीर में कपकपी होने लगती है। क्रोध में वह भड़क उठती है। उसकी आँखों से अंगारे निकलने लगते हैं और वह चीखती है –

''वहीं खड़े रहो, रमतुजी एक कदम भी आगे बढ़ाया तो.....''[13]

घबराहट में वह हसिया अपने हाथ में लेकर आत्मरक्षा के लिए वह तैयार हो जाती है। उसके पैर में कोई अनोखा संचार होता है। हँसिये को हवा में ऊँचा करके साक्षात् रणचंड़ी बन जाती है। जिसके गले में काली के लक्षण जैसे कितने ही खुन में लतपथ सिर हारमाला बनकर लटकते रहते हैं। अतः काली, माता कालीका बनकर अपनी शक्ति का परिचय देती है। वह रमतुजी से डरकर आत्मसमर्पण नहीं करती, या उसकी गंदे इरादों को कामयाब नहीं होने देती। वह तो अबला नहीं सबला नारी होने का परिचय देकर आत्मरक्षा करती है।

3. थड़ी (दहलीज)–डॉ. मोहन परमार

रेवी तुरीवास में रहनेवाली एक विवाहित स्त्री है। उसके पति का नाम चमन और पुत्र का नाम धुला है। उसका पति घर से बाहर मजदूरी करने दूसरे शहर जाता है। जाते समय वह रेवी से इशारे में कहता है कि–

''मैं तो महीने माह के बाद आऊँगा, परंतु तू अपने आपको सँभालना। कोई ऊँगली न उठा सके....''[14]

परंतु पिछले दिन मानसिंह ठाकुर आकर खेत में आने के लिए कहकर गया था। इससे रेवी मनोसंघर्ष का अनुभव करती है। पति के चले जाने के बाद तीन दिनों तक वह घर में ही रहती है। चौथे दिन मानसिंह ठाकुर उसके घर आ पहुँचता है। मानसिंह उसके घर के आँगन तक आ जाता है, उसे देखकर रेवी काँपने लगती है। उसके मुहल्ले में उसके विषय में तरह– तरह की बातें होने लगी थी। उसकी इच्छा नहीं थी कि वह घर से बाहर निकले किंतु उसे निकलना ही पड़ा। वह इतना घबरा जाती है कि उसके पैरों के नीचे पसीने की धारा बहने लगती है। उसके जेठ–जेठानी घर पर नहीं थे, जिससे वह एक संतोष भी अनुभव करती है। रेवी के जेठ–जेठानी नहीं चाहते कि मानसिंह के कारण समाज में उन्हें नीचा देखना पड़े। मानसिंह शराब के नशे में, बदबु मार रहा था। उसकी आँखों में वासना और क्रोध भरा था। वह उससे जानना चाह रहा था कि रेवी खेत में क्यों नहीं आई ? रेवी उसके व्यक्तित्व से परिचित थी, यदि वह

कुछ कहती है तो मानसिंह बिना शर्म किए उसका हाथ पकड़ कर ले जाएगा। रेवी उससे मिन्नतें करती है कि वह चला जाए परंतु मानसिंह उसे बुलाता है। रेवी को उस समय इतना क्रोध आता है कि वह उसी वक्त मानसिंह को धक्के देकर निकाल दे, किन्तु कुछ सोचकर वह अपने क्रोध को काबू में करती है। अपने पुत्र के सिर पर हाथ रख कर वह कसम खाती है कि कल वह खेत में ज़रुर आएगी। मानसिंह वचन पाकर वहाँ चला जाता है।

रेवी हृदय से टूट जाती है। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। अपने पति का वियोग उसे असहनीय लगता है। हरिजनवास की स्त्रियों में काना–फुसी होने लगती है। अपनी माँ को रोते देखकर धुला पूछता है कि तुम क्यों रो रही हो ? रेवी उससे कुछ नहीं कहती तब वह कहता है–

> **''माँ मैं बड़ा होकर राजपाठ करुँगा। मेरे पिता राजा बनकर किसी को मारते तो नहीं..... ।''**[15]

आज रेवी को उसका बेटा समझदार लग रहा था। वह सोचती है की बाल बुद्धि के कारण आज भले ही वह अपनी माँ की स्थिति को नहीं समझ पा रहा है, किंतु जब वह बड़ा हो जाएगा तो क्या माँ की दयनीयता को सहन कर सकेगा ? रेवी अपने मन से दृढ़ निर्णय कर लेती है। दूसरे दिन पुत्र को स्कूल भेजती है और हसिया खोजने लगती है। किंतु हसिया कहीं मिलता नहीं है। बहुत खोजने के बाद जब मिलता है, तो वह घर से बाहर निकलती है, सामने उसके जेठ मिल जाते हैं और कहते हैं–

> **''भा, अब तो हद हो गई, कुछ मर्यादा में रहो!वणकर वास में मैं गया था, सभी मुझ पर टूट पड़े और कहने लगे कि अपने घर में तुम ध्यान क्यों नहीं देते। भगला! मानसिंह इस तरह सुबह–शाम आए वह अच्छा नहीं। बोलो, वणकरों को मैं क्या जवाब दूँ ? मेरी तो बोलती ही बंद हो गई। गूँगा बन गया हूँ। बिल्कुल गूंगामंतरत.....अपनादुःख किसके समक्ष जाकर कहूँ..... ।''**[16]

रेवी के हृदय को चोट लगती है। उससे सहन नहीं होता। वह स्वयं इतनी गिरी हुई नहीं थी। शादी के बाद उसके जेठ–जेठानी उसे मान–सम्मान देते थे, परंतु उसके सौन्दर्य से उसकी जेठानी को ईर्ष्या भी होती थी। उसके जेठ ने चमन को मानसिंह की दोस्ती से दूर रखने का प्रयास भी किया था। रेवी झोपड़ी में लौट आती है। आज वह नहीं जाएगी, यह सोचकर वह हसिया फेंक देती है।

आज रेवी को बचाने वाला कोई नहीं था। पति परदेश में था, पुत्र अभी छोटा था। उसकी जेठानी ने भी उसे चेतावनी दे दी है कि–

> **''अब वह दुष्ट इस घर के आँगन में पैर रखेगा तो उसकी खैर नहीं। तू भी यदि गई, तो मुहल्ले के बीच तेरे बाल पकड़कर न खींचे तो मेरा नाम तखी नहीं।''**[17]

रेवी की स्थिति इतनी दयनीय हो जाती है कि उसे न तो घर के लोग समझ पाते हैं और न ही मानसिंह उस पर तरस खता है। यदि वह घर वालों की बात का मान करके न जाए तो मानसिंह उसके घर पर ही आ पहुँचेगा। आज तो

जेठ–जेठानी घर पर ही हैं और मुहल्ले में सभी को इस बात का पता चल जाएगा। इसलिए वह हसिया लेकर खेत में जाने के लिए तैयार हो जाती है। मानसिंह उसका इंतजार कर रहा था। रेवी को देखकर वह खुश हो जाता है। मानसिंह को देखकर आज रेवी सोचती है कि हसिये से उसे मार डाले, किंतु गूँगी बनकर कुँए के किनारे पर बैठ जाती है। मानसिंह उसके गले में हाथ डालकर उसे उचककर गद्दे पर डाल देता है। पति चमन को याद करके वह अपना हसिया सँभालकर रखती है, सोचती है कि आज तो मानसिंह का काम तमाम कर ही देगी। किन्तु दूसरे ही क्षण पुत्र धुला की याद आती है–"माँ, तुम फिर कब आओगी" मानसिंह को यदि वह मार डालती है, तो उसको पुत्र धुला का जीवन तहस–नहस हो जाएगा, इसलिए उसे अपना निर्णय निष्फल होता नज़र आता है।

दूसरी और मानसिंह को आज रेवी का व्यवहार समझ में नहीं आ रहा था। वह परेशान हो रहा था कि आज रेवी उसका साथ क्यों नहीं दे रही है ? वह कहता है, कि ठकुराईन के आने का समय हो गया है, सारा खेल बिगड़ जाएगा। तब रेवी कहती है–

''मैं ठकुराइन का ही इंतजार कर रही हूँ ''।
''क्यों ?''
''मुझे भी तुम्हारा घर बसाना है, इसलिए''।
''मेरा ? मानसिंह काँप जाता है।''
''हाँ, तुम्हारा! ऐसे डरते–डरते रहें उससे तो अच्छा है कि हमेशा 'साथ रहें..... फिर तुम और मैं..किसी का डर ही नहीं !''
''यह तो नहीं हो सकता''
''क्यों ?''
''तू रही हरिजन और हम रहे ठाकुर ! छीं छीं छीं मेरे घर में तू शोभा नहीं देगी..... ।''[18]

रेवी भड़क जाती है। वह मानसिंह से कहती है कि तुम पिछले पाँच वषों से मेरा शारीरिक शोषण कर रहे हो। आज जब मैंने घर बसाने की बात कही तो मैं हरिजन बन गई। रेवी रणचंडी बन जाती है। उसके दृढ़ संकल्प से मानसिंह कमजोर पड़ जाता है। अपनी फजीहत के डर से वह रेवी को वचन देता है कि अब वह उसे कभी परेशान नहीं करेगा। तब रेवी खिलखिलाकर हँस पड़ती है। मुक्त पक्षी की तरह कोलाहल करने लगती है।

'थडी' कहानी में रेवी की मुक्ति आधुनिक नारी का स्वरुप धारण करती है। कहानी में रेवी का आक्रोश भरा प्रतिकार बुद्धिपूर्वक होने से पाठक उसके होंसले की तारीफ करे बिना नहीं रह पाते। इस संदर्भ में डॉ. शरीफा बीजलीवाला का कथन उचित है कि–

''ठाकुर का जूता उसी के गले में पहनाने वाली रेवी का विद्रोह आकस्मिक और अकल्पनीय रुप में व्यक्त हुआ है।''[19]

कहानी में रेवी के पात्र के समक्ष ठाकुर मानसिंह का पात्र फीका लगता है। 'थडी' कहानी में उत्तर गुजरात की बोली का सफलता के साथ प्रयोग किया गया

है। ग्रामीण परिवेश में दलित नारी की दुविधा युक्त स्थिति एवं समस्या से मुक्ति पाने की चतुराई पूर्ण युक्ति को बखूबी चित्रित किया गया है।

4. सोमली – हरिपार

सोमली दलित वर्ग की महिला है, जो शराब बेचने का कार्य करती है। सोमली ने गाँव के मुखीया की हत्या की है, जिसकी बजह से उसे कोर्ट में गवाही के लिए बुलाया जाता है। सोमली को गीता पर हाथ रखने के लिए कहा जाता है, तब वह कहती है–

> **''इस पर हाथ रखने की बजाय मैं झरमरी माता की कसम खा लूँ तो क्या नहीं चेलगा ?''[20]**

तब उसे 'ना' कहा जाता है। सोमली कहती है कि–

> **''क्या, हाथ रखने वाले सभी सच ही कहते होंगे ?''[21]**

फिर वह गीता पर हाथ रखकर यह कहती है कि वो जो कुछ कहेगी सच कहेगी। वकील उससे प्रश्न करता है, कि–

> **''क्या तुम शराब बेचने का काम करती हो ?"[22]**

तब वह अपनी मनोव्यथा प्रकट करती है–

> **''गुजरात में शराब बंदी शुरु करके सरकार ने हम जैसे आदिवासियों पर तो उपकार ही किया है– छत के नलिए तो एक तरफ रहे, छाजन लाने की स्थिति न थी हम आदिवासियों के पास। किंतु आज शराब बंदी के प्रताप से ही घर के छत पर कवेलू लगाए हैं, कितने ही भाईयों ने। कोई गुजरात में शराब शुरु करने की बात करता है तो हम तुरंत ही शराब बनाने वाले और पुलिस की कचहरी, फौजदार की कचहरी ले जाकर मोरचा निकाल कर नारे लगाते है–शराब शुरु करोगे तो हम बरबाद हो जाएँगे। सरकार आज तक तो समझती आई है– क्या समझती है, यह तो वही जाने ! आज गुजरात में गाँव–गाँव में शराब बनाई जाती है और पी भी जाती है और शहर कहाँ बाकी रहा है ? और उसमें यदि मैं बनाती हूँ, बेचती हूँ तो इसमें कौन–सी नई बात है ? और उसमें भी पचास–सौ रुपये का गुड लाकर मिलाती नहीं, मैं तो पंद्रह रुपये कमाती हूँ। उसमें भी जाने कितने लफड़े ? कितनी बार पुलिस को मुफ्त में पिलानी पड़ती है और कितनी बार पैर भी छूने पड़ते हैं..... ।''[23]**

वकील उसके इस कार्य को गैरकानूनी धंधा कहता है। वह जानना चाहता है कि कौन–कौन शराब पीने आता है ? तब सोमली बताती है कि उसके पास उच्च वर्ग के बड़े–बड़े लोग शराब पीने आते हैं किंतु वह उनका नाम नहीं ले सकती। तुम भी चोरी–चोरी पीते होगे। ऐसी बात कहकर वह अपनी निडरता, साहस का परिचय देती है।

सोमली ने जो दुनिया देखी है, उसमें हर तरह के छोटे–बड़े लोग शराब पीते हैं। बाहरी दुनिया में भले ही उच्च वर्ग और निम्न वर्ग का भेद ही, किन्तु सोमली के समक्ष सभी समान हो जाते हैं। शराब उनके सभी भेद को खत्म कर देती है।

वकील सोमली पर यह आरोप लगाता है कि उसने मकन कानजी के साथ मिलकर गाँव के मुखीया की हत्या की है। सोमली स्वीकार करती है कि उसने की हत्या की है, किन्तु उसमें किसी का हाथ नहीं है। तब वह वास्तविकता कहते हुए अपनी वेदना व्यक्त करती है कि–

> **''सब कहते हैं कि भारत आज़ाद हुआ है। हम सभी आज़ाद हुए हैं। पर सच कहूँ साहब, आज़ादी है सिर्फ उच्च वर्ग के ही लिए : हमारे लिए नहीं। जिसे मिली होगी वही खुश होंगे। गाँव में हरिजन निवास और आदिवासियों के झोंपडे में वास्तविक आज़ादी क्या है वह देखी जा सकती है। हम लोगों को साहूकार कहते हैं कि तुम हरिजनों से भी ऊँचे हो, किन्तु ऐसा कहने के पीछे उनका स्वार्थ ही है। वे लोग ऐसा समझते हैं कि यदि भूल–चूक से ये हरिजनों से मिल गए तो हम किसे अपना गुलाम बनाएँगे। कारण कि हरिजन साहूकारों के पास हमारी तरह गुलामी का जीवन नहीं बीताते। हरिजनों के बच्चे पढ़कर शहर में नौकरी करते हैं, जबकि हमारे अस्पृश्य नायक जाति के बच्चों को यदि भूल–चूक से पढ़ने भेजते हैं तो साहूकार तुरंत ही कहते हैं कि पढ़कर क्या करना है आखिर। हमारे घर काम ही तो करना है ? इससे अच्छा अभी से ही गाय–भैंस चराने भेज दो पेट भरा होगा तो लड़का गाय–भैंस चराने में होशियार होगा।''**[24]

सोमली बताती है कि लड़के–लड़कियाँ सात–आठ वर्ष के होते हैं तभी से गाय–भैंस चराने का कार्य करते हैं और उनके पैसे से शादी करते हैं। उनके उतरे हुए वस्त्र पहनने को मिल जाते हैं। सरकार हरिजनों को सहायता देती है, वह तो उच्च वर्ग के लोग हमसे अँगूठा लगवाकर खा जाते हैं। सरकार हमारी होती तो यह सब हमारे पास न होता ?

सोमली का पति जब सात वर्ष का था तब से मुखिया के घर गाय–भेंस चराने का कार्य करता था। वंशानुगत रुप से वें गुलामी का कार्य कर रहे थे। सोमली का पति जब युवा हुआ तो मुखिया ने उसकी सास से कहा–

> **''पँचास रुपये ले जा और पुत्र का विवाह कर दे।''**[25]

सोमली का विवाह जब हुआ तो उसके बहुत से अरमान थे। किन्तु इस घर में आने पर सारे धूल में मिल गए।

मुखिया सोमली के पति को अपने खेत की रखवाली करने के लिए बुलाता और वहाँ उसे इतनी शराब पिलाता ताकि उसे होश ही न रहे। नई नवेली दुल्हन सोमली अपनी झोपड़ी में जब मुखिया को देखती है तो घबरा जाती है। मुखिया सोमली का बलात्कार करता है। सोमली जब रोती है, विरोध करती है, तो उसे वह बताता है कि यह कोई नई बात नहीं है, यह तो पीढ़ी–दर–पीढ़ी वर्षों से चला आ रहा है। मुखिया से सोमली को एक पुत्र भी होता है। सोमली सोचती है कि मुखिया अपने पुत्र की पढ़ाई का खर्चा देगा। खर्चा देना तो दूर, वह तो गली के कुत्ते की तरह फर्ज़ भूल गया। सोमली

के पति को जब यह पता चला तो वह सोमली को खूब पीटता है और मखिया ने भी उसे एक तमाचा मारता है। उसी रात मुखिया सोमली के पति की हत्या कर देता है।

सोमली के बेटे की पढ़ाई छुडवाकर उसे गाय–भेंस चराने का काम सौंप दिया जाता है। पुत्र बड़ा हुआ तो सोमली ने शराब के धंधे से पैसे जुटाकर उसकी शादी कर दी। सोमली नहीं चाहती थी कि उसकी तरह उसकी बहू का जीवन बिगड़े। इसलिए उसने अपने बेटे को खेत में सोने जाने से रोका। बहू को पहले से ही समझा दिया। एक दिन दोपहर के समय एकांत का लाभ उठाकर मुखिया घर में आता है और बहू से भी जबरदस्ती करने लगता है। बहू जोर से चीखती है। सोमली दौड़ते हुए आती है, तब तक बहू के कपड़े मुखिया फाड़ चुका होता है। सोमली अपने आपको रोक नहीं पाती और हँसिया लेकर उस पर वार कर देती है। मुखिया की मौत हो जाती है। सोमली यह स्वीकार करती है, कि उसने हत्या की है और इसके लिए उसे चाहे जो भी सज़ा मिले वह उसे सहर्ष स्वीकार करने को तैयार है। अंत में बहू की गवाही के बाद सोमली को सज़ा से मुक्त कर दिया जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में गुजरात के एक ऐसे आदिवासी परिवेश को चित्रित किया गया है जहाँ सवर्णों द्वारा दलितों का परंपरागत शोषण, सरकार की योजनाओं के बाद भी दलितों की दयनीय स्थिति, गरीबी, भुखमरी, शोषण के प्रति दलितों का विद्रोह देखा जा सकता हैं। आदिवासी बोली का प्रयोग परिवेश एवं पात्रोचित है।

5. 'सपाटु पहेरवानु मन' (जूती पहनने की इच्छा)–प्रवीण गढ़वी

'सपाटु (जूती) पहेरवानु का मन' प्रवीण गढ़वी की इस कहानी में दो मुख्य पात्र हैं। सुथार जाति का युवक प्रहलाद और दलित वर्ग की युवती गगी। प्रहलाद एक हिसाब–किताब वाला व्यक्ति है, आवेगी है और साथ ही जातीयवृत्ति से पीड़ित भी है। गगी एक बिल्कुल निर्दोष झरने जैसी भोली–भाली युवती है। उसका जूती पहनने का एक सपना है। प्रहलाद इस स्वप्न को भाँप जाता है और गगी के भोलेपन का दुरउपयोग करता है। गगी पंद्रह दिनों से गाँधी सेठ के बंगले की मजदूरी करने जाती है। वह समय आकाल का था, इसलिए कम पैसे देने पर भी मजदूर मिल जाते थे। गाँधी सेठ ने गरीबों का शोषण करके तीन मंजिला इमारत बनाने का काम शुरु कर दिया था। गगी वहाँ पर घड़े में पानी भरकर पीपे में डालती है, मिट्टी, सिमेन्ट के तगारे भरना, ईटें ऊपर चढ़ाना जैसे कार्य करती है, इन सारे कार्यों पर प्रहलाद आँखें गढ़ाए उसे निहारता रहता है। वह गगी को पूनम के मेले में चलने का लालच देता है और कहता है कि मै तुम्हें झुले में बिठाऊँगा। गगी डरती है क्योंकि वह जानती है कि वह एक अवर्ण की कन्या है, किन्तु प्रहलाद ने मेले के जो सपने उसे दिखाए हैं वह दिन रात उसकी आँखों के सामने, कानों में बजते हैं। प्रहलाद अकेला रहता है, उसकी पत्नी मर चुकी है। वह सुथारों की बस्ती में रहता है। एक बार गगी को वह अपने घर पर बुलाता है। भोली–भाली गगी छुपते–छुपाते उसके घर तक पहुँती है। प्रहलाद उसके अकेलेपन का फायदा उठाना चाहता है। गगी उससे कहती है कि तुम मुझसे विवाह तो नहीं करोगे ? प्रहलाद कहता है कि वह उसे मुंबई ले जाएगा वहाँ पर जाति की किसी को नहीं पड़ी है, कोई किसी को नहीं पहचानता है। प्रहलाद पूनम के मेले में उसकी मनपसंद वस्तु सपाटु– दिलाने का वादा करके उसके शरीर की भूख पूरी करना चाहता है। इसी बीच गगी को अपनी बस्ती की उन लड़कियों की याद आती है, जिन्हें प्रहलाद ने इसी तरह बहला–फुसलाकर ठग लिया था। अचानक ही उसे अपने ठगे जाने का अहसास होता है

और वह प्रहलाद के शिकंजे से अपने आपको छुड़ाकर तेज गति से बाहर निकल जाती है। उसे अपनी गलती का ऐहसास होता है। वह अपनी माँ के पास जाकर फूट–फूट कर रोने लगती है। इस कहानी में सवर्ण समाज के पुरुष का अवर्ण स्त्रियों के जातीय शोषण को कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। जिसमें गगी जैसी अनपढ़ भोली–भाली युवती को प्रहलाद जैसा व्यक्ति लालच देकर अपने गलत इरादे पूरे करता है और फिर से नई युवती को फँसाने का चक्रव्यूह रचता है। गगी जैसी युवतियाँ समाज के डर से उनका विरोध नहीं कर पाती और यदि करें भी तो उनकी सुनने वाला कौन है ? इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में दलित युवती के जातीय शोषण, आर्थिक विपन्नता, विवशता, अकाल में दलितों की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है।

6. 'खोपा का साँप' अरविन्द वेगड़ा

कहानी में वर्णभेद–वर्गभेद की नींव पर खड़ी हुई दूषित समाज रचना की आग में जलते अछूतजनों की दारुण व्यथा को प्रस्तुत किया गया है। एक ओर रजवाड़ी ख्यालों में खोए हुए स्वयं को अछूतों से उच्च वर्ग का समझने वाला पात्र जीलुभा है। दूसरी ओर पिता के कर्ज़ लिए हुए रुपयों की जगह पर उनकी गुलामी करने वाले लाचार परिस्थिति में जी रहे वीरजी और रुडी हैं। ऐसे देखे तो यह विषमता, समस्या कोई नहीं है, बल्कि सदियों पुरानी है, किन्तु कहानीकार की अपूर्व कलादृष्टि से यह हृदय को छू लेती है।

रात दिन बेगार का कार्य करने वाला युवा वीरजी अपनी पत्नी रुड़ी से दो घड़ी प्रेम करने के अधिकार को भी उससे छीन लिया जाता है। वीरजी एक स्वाभिमानी, परिश्रमी आज्ञापालन करने वाला व्यक्ति है, इसीलिए वह जीलुभा के सारे अत्याचार को सहन करता है।

रुड़ी की मनः स्थिति तो पति से भी दयनीय है। बहुत सारे अरमान लेकर वह पति के घर आई थी, किन्तु संयोग ऐसे हुए कि वह गुलाम बन जाती है। रुड़ी के अप्रतिम सौन्दर्य–दर्शन से जीलुभा के हृदय में वासना का अंकुर जन्म ले लेता है, जो आगे चलकर भयानक नाग का स्वरुप धारण करता है। रुड़ी निर्दोष है, अपने पति के प्रति उसे अनहद प्रेम है। इसलिए वह जीलुभा के बहकावे में आ जाए ऐसी नहीं है। खेत में काम करते समय रोज जीलुभा उसके साथ असभ्य व्यवहार करता है। रुड़ी से यह सहन नहीं होता, वह गाली देना चाहती है किंतु उसका मुँह सिल जाता है। अपने अंतर में प्रगटे हुए आक्रोश का ज्वालामुखी फट जाता है। उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि **'न कहा जाए न सहा जाए'**। रुड़ी यदि वीरजी को यह बातें बता देती तो अपनी इज्जत के लिए जीलुभा वीरजी को मौत के घाट उतार सकता है। लेखक ने रुड़ी के मन में चल रही उथल–पुथल और अंतरद्वन्द्व को पूरी कलासूझ से प्रस्तुत किया है।

वीरजी की चिंता में हाँफते–हाँफते घर की तरफ जाने को निकली हुई रुडी पर दुष्ट जीलुभा हेवानियत भरा हमला करता है और उस पर बलात्कार करता है। कहानी के अंत में और वीरजी के अंतिम समय में उसके सिर पर हाथ घुमाते हुए उसकी माँ कहती है कि–

''मेरे बेटे को क्या छू गया है ?''[26]

उसी समय घर में प्रवेश करती रुड़ी कहती है.....

''साप..... रखोपा का''[27]

यह परिस्थिति बहुत नाट्यात्मक लगती है। रुड़ी की यह नाट्योक्ति में व्यंजना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वीरजी के शरीर को काटे हुए भयानक नाग ने रुड़ी की सुंदर काया को भी काट लिया था।

प्रस्तुत कहानी में ग्रामीण परिवेश में दलितों पर सवर्णों द्वारा परंपरागत रुप से किया जाने वाला आर्थिक शोषण, बेगार, दलित स्त्रियों के जातीय शोषण, अत्याचार आदि को देखा जा सकता है।

7. 'दाझवुंते' (जलनवह)– धरमाभाई श्रीमाली

बबली दलित वर्ग की सुंदर युवती है। उसके पिता के कहने पर वह लखुभा के पुत्र परबत की शादी में पेट्रेमेक्स उठाने के लिए जाती है। वरराजा परबत बबली को तीरछी नज़रों से देखता है। तब बबली का मन विचलित हो जाता है। वह सोचती है कि यह शादी करने जा रहा है, फिर भी मुझे गंदी निगाहों से देख रहा है। वह स्वयं को दोष देती है, कि वह क्यों आई। इसी बीच बबली के पेट में दर्द होने लगता है। अपना डुपट्टा सीधा करना चाहती है और वह जल जाती है। जलन होने के बावजूद उसे पेट्रोमेक्ष उठाकर चलना पड़ता है। अपने हृदय में और शरीर पर होने वाली जलन को वह दबा देती है।

परबत घोड़े पर बैठकर बबली को अपनी जूती से छूने का प्रयास करता है, किन्तु बबली जल्दी से खिसक जाती है। बबली को पुरानी बातें याद आती हैं। परबत बबली को कहता था कि तू जब चाहे मेरे खेत में धूम–फिर सकती है। पूरे गाँव में तू ही मूझे सबसे अच्छी लगती है। इस तरह वह बबली को फुसलाता है। बबली उससे दूर भाग जाती है तो वह उसका पीछा करता है।

बबली फिर अपने चेतना में लौट आती है। यह वही परबत है, जो चरित्र की दृष्टि से हीन है। ऐसे परबत के प्रसन्न चेहरे और तने हुए शरीर को देखकर बबली का हृदय जलने लगता है। मन दुःखी होने के बावजूद उसे पेट्रोमेक्स लेकर चलना पड़ता है। बबली की स्थिति और बिगड़ती है, उसे चक्कर आने लगते हैं। पैर काँपने लगते हैं और उबकाई आने लगती है।

कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में ग्रामीण परिवेश में सवर्ण युवक द्वारा दलित युवती के जातीय शोषण, गरीबी आदि को फ्लेश बेक पद्धति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कहानी में बबली अपने पर होने वाले शोषण को चुपचाप सहन करती है, शोषण के प्रति उसका विद्रोह उसके भीतर ही चलकर खत्म हो जाता है। यहाँ लेखक ने दलित युवती पर हुए जातीय शोषण मात्र को चित्रित किया है, इस अत्याचार के समक्ष दलितों की कोई प्रतिकिया को चित्रित नहीं किया गया है। कहानी पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि दलित वर्ग शोषण सहने के आदी हो गये हैं और सवर्ण शोषण करने के। बबली के मन में चल रहे अंतरद्वन्द्व को यहाँ लेखक ने बखूबी चित्रित किया है।

8. 'भींस'– मौलिक बोरीजा

मौलिक बोरीजा की **'भींस'** कहानी में मगनलाल दलित समु का जातीय शोषण करता है। जब समु गर्भवती बनती है, तो मगनलाल उसे एबोर्शन कराने का आदेश देता है। चार महीने के गर्भ को समु खत्म नहीं करना चाहती। उसका मातृत्व जाग उठता है, इसलिए वह मगनलाल की इच्छा के विरुद्ध उस बालक को जन्म देना चाहती है। समु जिस दलित समाज में रहती है, वह तो केवल स्त्रियों का ही दोष देखता है। भूल मगनलाल की थी, फिर भी उसे कोई कुछ न कहकर समु के परिवार को समाज से बाहर कर दिया जाता है।

समु का विवाह कालु से हुआ था। समु को उसकी जेठानी से कम गहने मिलते हैं, इसलिए उसका पति आए–दिन उस पर अत्याचार करता है। उसे मारता–पीटता है। कहानी में इसका वर्णन इस प्रकार है–

> **''कालू, घर के लोगों के साथ मिलकर, समु को परेशन करने के लिए नए–नए बहाने बनाकर उसे जानवरों की तरह पीटता था। समु के लिए यह अमानुषिक अत्याचार असहनीय था इसलिए उसने तलाक ले लिया।''**[28]

समु अपने पति के द्वारा शोषण का शिकार बनती है। समु के माता–पिता उसे पुनः विवाह करने लिए विवश करते हैं। मगनभाई आर्थिक मदद करके उसका शारीरिक शोषण करता है। मगनभाई के बच्चे को गर्भ में सँभाले समु पहले तो सबका विरोध करते हुए एक माँ का फर्ज़ अदा करना चाहती है, किंतु बाद में सोचती है–

> **''बालक कलंकित कहलाएगा। वह सारी जिंदगी मुझे कोसेगा। मगनभाई ने तो समस्या खड़ी की और उसका परिणाम हमें भुगतना पड़ेगा ? वाह दुनिया तेरा न्याय! अपनी गरीबी पर, नीची जाति में जन्म लेने पर, असहायता पर समु ने फटकार बरसाई, उसने जन्म देने वाले को दोष दिया, एक सीमा तक वह रो ली और अंत में आँसु भी बहकर सूख गए।''**[29]

उसका बालक कलंकित हो, यह बात किसी माँ को अच्छी नहीं लगेगी। यदि वह सवर्ण की स्त्री होती तो उसकी ऐसी दुर्गति न होती, यह सोचकर वह अंत में एबोर्शन करवा देती है। समाज के डर से समु विवश होकर यह काम करती है। इस प्रकार समु के समक्ष एक ओर परिवार की आर्थिक कमजोरी, दूसरी ओर जेठानी से कम गहने लाने से पति द्वारा शारीरिक शोषण करना, माता–पिता द्वारा पूर्नविवाह के लिए विवश करना जैसी पारिवारिक समस्या थी। मगनभाई द्वारा समु की आर्थिक कमजोरी का लाभ उठाकर उसका शारीरिक शोषण करना जातिगत एवं लिंगगत समस्या थी समु अनेक कष्ट सहती है, उसके जीवन में यह दुःख उसके माता–पिता, पति, परिवार, समाज और सवर्ण पुरुष मगनभाई द्वारा उसे मिलता है। यहाँ समु का दोहरा शोषण चित्रित किया गया है।

9.'दरुपदी' (द्रोपदी)–प्रवीण गढ़वी

प्रस्तुत कहानी की नायिका **दरुपदी** को महाभारत के पात्र द्रौपदी के समान बताया गया है, परंतु दोनों में काल भिन्नता देखी जा सकती है। दौपदी के चीर हरण के समय श्री कृष्ण स्वयं आकर उसकी रक्षा करते हैं, किन्तु दरुपदी को न तो किसी इंसान की सहायता मिलती है, न ही भगवान की ही। दरुपदी और उसका पति अरजण(अर्जुन) नरसी पटेल के खेत में मजदूरी करते हैं। परंपरागत रुप से वे और उनका परिवार नरसी पटेल के खेत में मजदूरी करते आए हैं। मजदूरी के बदले में उन्हें पाँच सौ ग्राम अनाज मिलता है। एक वर्ष में आठ महीने में दोपहर का भोजन वहीं मिलता है।

दरुपदी के गाँव में प्रत्येक जाति के लोग शराब पीते हैं। अरजण भी शराब पीता है। पहले पच्चीस पैसे में पूरा सामान आ जाता था, किन्तु अब तो चार बीड़ी भी नहीं मिलती। अरजण अपनी आवक से ज्यादा शराब पीता था। दिनभर मजदूरी करता और इतनी शराब पीता कि उसे होश ही नहीं रहता। इसी वजह से उसे टी.बी. का रोग हो जाता है।

नरसी पटेल का भरा–पूरा परिवार है। वह अधैड़ उम्र का व्यक्ति है। उसकी पत्नी मर चुकी है। वह दादा भी बन चुका था, इसलिए दूसरे विवाह करने की ईच्छा के बावजूद वह अकेला ही था। बेटे–बहू के साथ न रहकर वह अकेला ही रहता था। दरुपदी को संतान की कमी और नरसी पटेल को शरीर की भूख। इसलिए एक दिन नरसी पटेल अस्पृश्यता को भूलकर दरुपदी से अपनी शारीरिक भूख मिटाता है। नरसी पटेल अरजण को दरुपदी का सहारा कहता है क्योंकि यदि दरुपदी गर्भवती हुई तो उस बच्चे का बाप तो अरजण ही कहलाएगा। दरुपदी भी इस बात को जानती थी कि नरसी पटेल उसे अपनाएगा नहीं, क्योंकि वह दलित है, इसलिए गर्भ के बच्चे का बाप तो अरजण ही कहलाएगा। दरुपदी माँ बनने के लिए उत्सुक थी, किन्तु संतान होने से पहले ही अरजण की मृत्यु हो जाती है।

अरजण की मृत्यु के पंद्रह दिन बाद दरुपदी नरसी पटेल के खेत में काम करने जाती है। गाँव में सरपंच का चुनाव आता है, जिसमें नरसी पटेल और उसके सामने जीवुभा गरासिया खड़ा होता है।

गाँव में पहले से ही पटेल और गरसिया जाति मे द्वेष था। दोनों की दुश्मनी का भोग गरीब दलित प्रजा बनती थी। दरुपदी भी इसी राजनीति का भोग बनती है। जीवुभा को जब यह पता चलता है कि नरसी और दरुपदी के बीच प्रेम संबंध है, तो वह एक षडयंत्र रचता है, जिसके अनुसार वह नरसी को चुनाव में हरा सकता है। दरुपदी जब नरसी पटेल के खेत से घर जा रही थी, तब जीवुभा के आदमी उसे रोककर गालियाँ देते हैं। धीरे–धीरे सारा गाँव इकट्ठा हो जाता है। वे लोग दरुपदी को पीटते है, उसके बाद उसका चीरहरण करते हैं। ये दृश्य देखकर गाँव की औरतें, बच्चे, बूढ़े सभी हँसते हैं। नग्न अवस्था में दरुपदी को बाज़ार में घुमाया जाता है। दरुपदी इस राजनीति के षड़यंत्र को समझ जाती है और कहती है–

> **''पटेल की नाक काटने के लिए मुझे नग्न किया गया। मैं दरुपदी, कालमुखी गीध की तरह सभी चोंच मार रहे थे, मेरी नग्न देह पर। नीची जाति की इज्ज़त ही क्या है ?''**[30]

ऐसा नहीं है कि दरुपदी ने ही अपना चरित्र खोया था। उस गाँव की अधिकतर स्त्रियों के अनैतिक संबंध थे। सवर्ण की स्त्रियों का अनैतिक संबंध किसी को दिखाई नहीं देता, किन्तु दरुपदी के संबंध को लेकर उसे सरे–आम बेइज्ज़त किया गया। दरुपदी को इस बात का दुःख है कि उसके नग्न शरीर को ढाँकने के लिए किसी ने एक चीथड़ा भी नहीं दिया। जब भगवान को उस पर दया नहीं आई तो वह पुलिस से क्या फरियाद करती। नरसी चुनाव हार जाता है और दरुपदी अपनी झोंपड़ी में अकेली रहती है।

प्रस्तुत कहानी में मिथ का प्रयोग करके कहानीकार ने महाभारत काल एवं आधुनिक काल में नारी के चीरहरण की समानता को चित्रित किया है। स्त्री को वस्तु की तरह इस्तेमाल सदियों पहले भी किया जाता था, आज भी स्त्री पुरुषों के लिये एक वस्तु है। उसमें भी दलित स्त्री तो ऐसी वस्तु है जिस पर सवर्ण पुरुष अपना अनैतिक अधिकार मानता है। दरुपदी को सरेआम नग्न किया जाना स्त्री पर अत्याचार की चरमसीमा कहा जा सकता है।

10. 'छगना को न समझ में आते सवाल'–जोसेफ मेकवान

प्रस्तुत काहनी '**छगना को न समझ में आते सवाल**' में छगन और कुमली गरीब दलित दंपती हैं। वर्षाऋतु में तेज बरसात में उनकी झोंपड़ी गिर जाती है। दोनों अपनी झोंपड़ी और गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव की ओर प्रस्थान करते हैं। सेठ छबीलदास के यहाँ मजदूरी करके छगना और कुमली अपना जीवन जैसे–तैसे व्यतीत करते हैं। सेठ छबीलदास के बंगले को तैयार करने में छगना और कुमली कठोर परिश्रम करते हैं, उस बंगले क उद्घाटन के समय मुख्यमंत्री ने कहा कि–

> **''स्वर्गस्थ कल्याणजी बापुजी दीन–हीन आदिवासियों के मसीहा थे। एक झोंपड़ी बनाकर वे उनके बीच ही रहते थे और देखो बापु का खून ! छबिलदास ने एक आदिवासी लड़के को तीसरे पुत्र के रुप में गोद लिया है।''**[31]

सुनने में यह भाषण अच्छा लगता है, किन्तु वास्तविकता यह रहती है कि जिस छगना को सेठ गोद लेता है उसी की पत्नी कुमली का जातीय शोषण भी करता है। लोगों के समक्ष दलितों का मसीहा बनने वाला सेठ वास्तव में दलितों का सहायक या उद्धार नहीं करता, बल्कि उनका शोषण करता है। छगना का आर्थिक शोषण सेठ ही करता है। गरीब दलितों का हित रक्षक यहाँ किस हद तक हीनवृत्ति जैसा आचरण करता है, यह प्रस्तुत कहानी में देखा जा सकता है। सवर्णों के ऐसे हीन व्यवहार के कारण छगना के मन में हरपल अनेक प्रश्न उठते हैं, किन्तु उसका (जबाव) उत्तर उसे नहीं मिल पाता। यहाँ छगना को समझ में न आने वाले प्रश्नों का निराकरण हमारी सामाजिक व्यवस्था में प्राप्त होना मुश्किल है। कहानीकार ने सरकारी तंत्र में चल रहे भ्रष्ट संचालन पर भी प्रकाश डाला है। कहानी को ज़रुरत से ज्यादा लंबा खींचा गया है।

11. 'कडण'–मोहन परमार

मोहन परमार की कहानी **'कडण'** में सवर्ण जुल्मीकाका वनुभा की संपत्ति का हिसाब–किताब और खेतों की देखभाल पथुभा करता है। पथुभा भीरु स्वभाव का संवेदनशील व्यक्ति है। अपने भीरु स्वभाव के कारण वह वनुभा के समक्ष संकोच का अनुभव करता है। धीरे–धीरे वनुभा के बार–बार टोकने पर पथु में परिवर्तन आता है। पथु सोचता है कि वह वनुभा को दिखा दे कि वह किसी से कम नहीं है। पथु का यह परिवर्तन इस हद तक बढ़ जाता है पथु गलत कार्य भी करता है, तो वनुभा उसकी पीढ़ थपथपाता है। धीरे–धीरे पथुभा की नृसंशता बढ़ने लगती है। वनुभा दलित मजदूर मफला की हत्या करवाता है, जिसमें पथुभा भी शामिल होता है। शराब, सुंदरी जैसे शौख वनुभा के साथ–साथ पथु को भी लग जाते हैं। वनुभा के साथ–साथ उसके दिखाए मार्ग पर चलकर पथु क्षणिक सुख प्राप्त करके अपने जीवन को धन्य समझने लगता है। चार दिन बाद पथु जब मफला की पत्नी को देखता है तो उसे अपने किए पर पछतावा होता है, इसी के साथ धनजी पटेल पर अत्याचार करते वनुभा को देखकर पथु के अंदर की मानवता जाग जाती है। वह वनुभा को रोकना चाहता है, किन्तु वनुभा के क्रोधी चेहरे को देखकर उसकी हिम्मत नहीं होती कि उन्हें रोक सके। पथु के भीतर का शैतान उसके अच्छे गुणों पर जीत हासिल कर लेता है। वह सोचता है कि–

''किस तरह मनुष्य से पाशवी कृत्य हो जाता है ? क्या पता.... ।''[32]

शैतानी वृत्ति के जाग जाने से पथु वनुभा की मदद से मफला की पत्नी को उठाकर अपने पास मँगवाता है, उस पर बलात्कार करके उसकी लाश को उसके देवर के साथ कुँए में डलवाकर आराम से सो जाता है। सुबह होते हुए पथु पूरे गाँव में खुद ही यह प्रचार करने लगता है कि–

''मफला हरिजन की पत्नी का उसके देवर राम के साथ गलत संबंध था। लोगों के डर से दोनों कुँए में कूद गए..... ।''[33]

जिस अफवाह को पथुभा लोगों में फैलाना चाहता है वह हो जाता है। पथु को अपने किए पर बिल्कुल पछतावा नहीं होता है, बल्कि उसके चेहेरे पर किसी शैतान जैसी, हँसी देखाई देती है। दातुन को मुँह में चबाते हुए वह 'हाक थू' करते हुए थूक देता है। यहाँ पथु इंसान से शैतान बनते हुए दिखाया गया है। वनुभा का अनुचर पथु अपने स्वामी के पद्चिन्हों पर चलकर उसी की तरह बन जाता है। डॉ. जयेश भोगायता के मतानुसार इस कहानी में–

''मैं की थूकने की प्रक्रिया आत्मधृणा के भाव को व्यंजित करती है।''[34]

कहानी के अंत में मुझे पथु की यह थूकने की चेष्टा उसकी निश्चिंता, पागलपन, हेवानियत की पराकाष्ठा कहना उचित लगता है। डॉ. शरीफा बिजलीवाला का विधान है कि–

''आत्मधृणा मनुष्य को होती है पथुभा जैसे हैवान को नहीं।''[35]

पथु जैसे व्यक्ति पाप–पुण्य के भेद को अच्छी तरह जानते–समझते हैं, किन्तु जब वे इस सच्चाई को जान जाते हैं कि उनके पाप करने से भी कोई उन्हें दण्ड

नहीं दे सकता, तो वे निश्चिंत होकर पाप के मार्ग पर आगे बढ़ते जाते हैं। पथु भी वनुभा की तरह बेफिक्र होकर बलात्कार, हत्या जैसे कुकर्म करने में बिल्कुल हिचकिचाता नहीं है, बल्कि ऐसा करने से उसकी ताकत दुगुनी हो जाती है। पथु मफला की पत्नी के लिए तड़पता है, उसे पाने के लिए छटपटता है, उसका ऐसा व्यवहार उसे वासनाखोर बना देता है और जिस व्यक्ति पर वासना का भूत सवार हो जाए उसमें आत्मघृणा जैसे भाव के लिए कोई स्थान नहीं होता। दलितों को अपनी जूती समझने वाला पथु, मफला की पत्नी को भोगकर अपनी वासना तृप्ति करता है। और उसे मारकर अपने खिलाफ सबूत मिटा देता है।

12. 'एक छालियुं दाल नी खातर'–वसंतलाल परमार

प्रस्तुत कहानी वसंतलाल परमार द्वारा रचित गरीब दलित कंकुड़ी के जीवन की परिस्थिति जन्य करुणता को प्रस्तुत करने वाली है। कंकुड़ी एक विधवा स्त्री है, उसका पति छः वर्ष पहले मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। पति की मृत्यु के बाद अधिकतर दलित स्त्रियाँ दूसरा विवाह कर लेती थी, किन्तु ऐसी छूट मिलने पर भी कंकुड़ी दूसरा विवाह नहीं करती और अपने एक मात्र पुत्र नाथु को हृदय से लगाए हुए छः वर्ष का समय बीता देती है। पूरा दलित समाज कंकुड़ी के इस साहस पर दाँतों तले ऊँगलियाँ दबा लेता है।

कंकुड़ी का पुत्र नाथु लगभग चार वर्षों से बिना दाल के सूखी रोटी खाकर बदले में जागीरदार की गायों को चराने का काम करता है। कंकुड़ी बेटे को पेटभर भोजन और उसमें भी दाल के न मिलने पर अत्यंत दुःखी रहती है। कंकुड़ी अपने पुत्र नाथु को एक कटोरी दाल देने के लिए सुमेरपुर के जागीरदार के रसौये जटाशंकर के साथ मजबूरन शारीरिक संबंध स्थापित करने को तैयार हो जाती है। जिससे वह गर्भवती बन जाती है। इस गर्भ की सूचना मिलते ही पूरे गाँव में कोहराम मच जाता है। कंकुड़ी एक सवर्ण व्यक्ति के गर्भ को अपने भीतर छुपाए रहती है, जिससे जागीरदार के दरबार में लोगों की भीड़ इंसाफ के लिए इकट्ठी होती है। कोई नहीं जानता था, कि एक सवर्ण पुरुष का उससे सम्बन्ध था, इसलिए कंकड़ी के देवर पर यह आरोप जड़ दिया जाता है कि उसी ने कंकुड़ी को गर्भवती बनाया है। कंकुड़ी ने यह पापकर्म अपने पुत्र नाथु के लिए किया था, किन्तु वह नहीं जानती थी कि इसकी वजह से दूसरा बालक मुसीबत के रुप में उसके समक्ष आ जाएगा। निर्दोष केशव को गर्भ में पल रहे बच्चे के भरण–पोषण की सज़ा मिलती है, जबकि दोषी जटाशंकर सुरक्षित रह जाता है। जटाशंकर कंकुड़ी का एक बार जातीय शोषण करके उस पर हमेशा के लिए शोषण करना चाहता था, किन्तु कंकुड़ी गर्भवती बन गई है यह जानकर जटाशंकर के होश उड़ जाते हैं। मेलोड्रामेटिक रुप से कहानीकार ने यहाँ कहानी को प्रस्तुत किया है। साथ ही गरीबी एवं भूख के कारण दलित स्त्री का अपने शरीर को सवर्ण के हाथ सौंप देना उसकी दयनीयता को चित्रित करता है।

13. 'श्रद्धा'–हरीश मंगलम्

'श्रद्धा' कहानी हरीश मंगलम् द्वारा रचित स्त्री जीवन को स्पर्श करने वाली कहानी है। कहानी का परिवेश गाँव का है, जिसमें दलित मजदूरी करके अपना भरण–पोषण करते हैं। शंकरभा और उसकी पत्नी माणेकबा का एकमात्र पुत्र बुचड़ा अपने विवाह के कुछ दिनों बाद पत्नी धनी और माता–पिता को छोड़कर कहीं गुम हो जाता

है। बड़ी उम्र में पुत्ररत्न के प्राप्त होने के बाद माणेकबा और शंकरभा अपने पुत्र के वियोग में अपनी सुध–बुध खो बैठते है। ईश्वर पर श्रद्धा होने के कारण माणेकबा शिवपूजा में लग जाता है। ईश्वर हमारे सारे दुःख दूर करके हमारी खुशियाँ लौटा देंगे ऐसी श्रद्धा के साथ प्रतिदिन पूजा–अर्चना करने लगता है और 'बचुडा की जय' कहने लगता है। उसकी ऐसी श्रद्धा में गाँव के बच्चे भी साथ में जय कहकर पूरे गाँव में जोरों से उसका साथ देते हैं। इन सब के बीच नई–नवेली दुल्हन धनी की स्थिति दयनीय हो जाती है। पति के साथ थोड़े दिन वैवाहिक जीवन व्यतीत नहीं किया था, कि उस पर सास–ससुर की जिम्मेदारी आ गई थी। इसके अलावा गाँव के लोग उसकी निंदा भी करने लगे थे। कभी–कभी वह इन सबसे चिढ़ जाती, लेकिन फिर से आशा की एक किरण जाग जाती, वह सोचती ऐसे कोई थोड़े ही चुपचाप भाग जाता है ? अर्थात् वह मन को मनाकर आफत का सामना करती है। धनी अपने बूढ़े सास–ससुर की सेवा और पति के इंतेज़ार में चार वर्ष का लम्बा समय बीता देती है।

माणेकबा की श्रद्धा दिन–प्रतिदिन दृढ़ होती जाती है, तो शंकरभा पागलों की तरह चिमटी से अपनी दाढ़ी के बालों के बाद सिर के बालों तक को निकालने लगता है। धनी को ऐसी अंधश्रद्धा पर गुस्सा आता किन्तु माणेकबा उसे धीरज देती। माणेकबा स्वयं धनी के विषय में चिंतित थीं कि उसका क्या होगा ? धनी परिवार का भरण–पोषण करने के लिए खेतों में मजदूरी करने जाती है। गाँव के सेठ सुंदरलाल के तमाकु के खेत में वह मजदूरी के लिए जाती है। वहाँ उसे तमाकु के अच्छे और बुरे पत्तों को अलग करने का काम दिया जाता है, यह काम अन्य मजदूरों से दूर करना पड़ता है। इससे एकांत का लाभ लेने के लिए सुंदरलाल सेठ वहाँ पहुँच जाता है। उसके स्पर्श से, उसके प्रेमपूर्ण वार्तालाप से जिस प्रकार वर्षा की बुंदों से मिट्टी में नई–नई घाँस के कोमल तंतु फूट पड़ते है, उसी तरह धनी के पूरे शरीर में रोमांच होने लगता है। यौवन एकांत की दहलीज को पार करके सेठ के वश में आ जाता है। सुंदरलाल धनी को इसकी दूगनी मजदूरी देकर उसे खुश करना चाहता है। कुछ दिनों तक ऐसा चलता रहता है, वहाँ एक अनुभवी स्त्री तखी सुंदरलाल के चरित्र से परिचित थी, धनी के भोलेपन का लाभ वह उठा रहा है, यह देखकर वह धनी को सीख देते हुए सुंदरलाल सेठ की करतूतों का वर्णन करती है। सुंदरलाल बेशर्म और वासना का भूखा व्यक्ति है। उसकी पत्नी अपने पति की हरकतों से परेशान है। तखी की बातों से सीख लेकर धनी अपने मन पर काबू कर लेती है। वह इस मनोमंथन के साथ घर आती है जहाँ 'बचुडा की जय' का गगन भेदी नाद उसे स्पर्श करता है। वह भी श्रद्धा के साथ हाथ जोड़कर छोटे बच्चे की तरह वहाँ खड़ी हो जाती है। विचलित हुई धनी में श्रद्धा दुबारा स्थिरता ले आती है।

युवा अवस्था में धनी शारीरिक आवेगों की प्रवृत्ति से विचलित होकर सुंदरलाल के समक्ष समर्पित हो जाती है, किन्तु सही समय पर उसे सीख मिल जाती है, जिससे वह सद्वृत्ति की ओर अपना ध्यान केन्द्रीत कर देती है। इस तरह विजय सद्वृत्ति की होती है। ऐसी श्रद्धा को उजागर करने के लिए कहानीकार ने कहानी में संपूर्ण रुप से इसकी भूमिका बनाई है। वृत्ति पर संस्कृति की विजय पताका लहराती है। यह कहानी गाँव की वास्तविकता से हमें जोड़ती है। श्रद्धा में डूबे गाँव के लोगों में अधिक तो अंधश्रद्धा होती है, परंतु वही श्रद्धा का तंतु कभी व्यक्ति को पतन के मार्ग से पीछे खींच सकता है। 'श्रद्धा' कहानी के संदर्भ में लेखक का यह प्रयास सफल रहा है।

कहानी में सुंदरलाल सेठ जैसे व्यक्ति कितने शोषणखोर होते हैं, जो शोषण करने का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देता। मजदूरों का, उसमें भी दलित कामकाजी स्त्रियों का शोषण जैसे विषय पर प्रकाश डालने में कहानीकार को सफलता मिली है।

14. 'अधूरा पुल'–मधुकान्त कल्पित

मधुकान्त कल्पित की **'अधूरा पुल'** कहानी में कहानी का नायक ही कहानी कथक भी है। कहानी में सवर्ण पुरुष और दलित स्त्री के बीच अनैतिक संबंध की घटना को केन्द्र में रखा गया है। सवर्ण सेठ मजदूरी करने वाले कथानायक की माँ का शारीरिक शोषण करता है। कथानायक अपनी माँ के प्रेमी सेठ के पास जाने के लिए निकलता है, पुल का निर्माण कार्य तो जारी है, किन्तु नायक और उसके पिता के बीच के संबंधों का सेतु तो अधूरा ही रह जाता है। अधूरा पुल कहानी के नायक की अनिच्छनीय परिस्थिति के साथ के विच्छेद का प्रतीक बन जाता है। सामाजिक विषमता के कारण दलित स्त्रियाँ और उसका परिवार कैसी विकट परिस्थिति में पड़ जाता है। एक बेटा अपनी माँ के अनैतिक संबंध कों जानकर कैसा महसूस करता है ? एक पति की कैसी दशा होती है, जो अपनी पत्नी के प्रेमी को अपनी आँखों के सामने उसका शोषण करते देखता है ? इस कहानी में ऐसे दलित परिवार की करुण स्थिति का वर्णन किया गया है। यहाँ झोंपड़ी में से निकलता धुआँ, मक्का की रोटी बनाती और चुल्हा फूँकती स्त्री, वृद्धों का खटिया पर बैठकर गाँजा पीना वगेरे द्वारा कहानीकार ने दलित परिवेश की रचना की है किन्तु डॉ. विजय शास्त्री लिखते हैं कि–

> **''माँ का, सेठ का या फिर स्वयं कथानायक का पात्र पूर्ण परिणाम में चित्रित नहीं है इससे Cipper बन जाते हैं।''**[36]

15. 'मेलीमथरावटी'–राघवजी माधड़

प्रस्तुत कहानी **'मेलीमथरावटी'** राघवजी आधड़ द्वारा रचित सवर्ण पुरुष और दलित स्त्री के अनैतिक संबंध को प्रस्तुत करती है। गंगा इस कहानी की नायिका है, जो लोगों के खेतों में मजदूरी करके अपना एवं अपने परिवार का भरण–पोषण करती है। जयंत खत्री की 'खीचड़ी' कहानी की नायिका का लखड़ी की तरह गंगा का जीवन आर्थिक संकटों से घीरा रहता है, जिसके कारण उसकी कमजोरी का फायदा गाँव का मुखिया उठाता है और उसका जातीय शोषण करता है। गंगा मुखिया का प्रतिकार नहीं कर सकती लेकिन उसकी करुणता तो यह है कि उसके माता–पिता भी इस अन्याय का समाना करने में असमर्थता प्रकट करते हैं। वे सब कुछ चुपचाप सहन करते हैं और गंगा से कहते हैं–

> **''बेटी ! तेरी सभी बात सही है ! परंतु हम नीची जाति के हैं, हमारे विचार ही मैले हैं.....हमारी बात की सच्चाई कौन मानेगा ?? बेकार में कीचड़ उछालेंगे और कुछ नहीं होगा.....हम तो हाथ–पैर बिना के मनुष्य है,उसका नाम लिया जा सकता है ? भूखों मरने के दिन आ जाएँगे..... ।''**[37]

गंगा मजबूरन मुखिया की वासना का शिकार हो जाती है। अपमान और अन्याय का कड़वा घूंट पीने के लिए विवश हो जाती है। सवर्ण मुखिया की मथरावटी वास्तव में मैली थी, न की गंगा की किन्तु सारा गाँव निर्दोष गंगा के चरित्र पर ऊँगली उठाते हुए कहता है कि–

> **''अरे.....! मंगा महेतर की बेटी का पैर गलत दिशा में चला गया है..... स्त्रियाँ इस बात को दाढ़ भींच–भींचकर दोहराती.....और परुषवर्ग तो गंगा की ही गलती निकलता.....सालों का पेट नहीं भरता है तो उसे फोड़ देना चाहिए.....! परंतु..... ऐसी काली कमाई.....!!''[38]**

गंगा की ऐसी व्यथा, वेदना का वर्णन ह्रदय कँपाने वाला है किन्तु इस पर डॉ. भरत मेहता का कथन है कि–

> **''गंगा की व्यथा अभिव्यक्त करने की कलाकीय नहीं किन्तु अन्य वास्तवदर्शी स्तर पर चूक रह गई है। कहानी के केन्द्र में रहे गंगा के पात्र का आलेख जाँचने जैसा है। मगन हीरावाला को मुँह पर फटकारती गंगा से लेकर गाँववालों के बीच मुखिया की मथरावटी को उजागर करती गंगा– आलेख के प्रथम और अंतिम बिंदु हैं। मगन हीरावाला को मुँह पर फटकारती गंगा को जब रत्ना रोकता है तब उसे खड़े–खड़े चीर डालना चाहती है, किन्तु असहाय होती है ! रत्ना आगे बढ़ता है तब 'जा रे....रोया. ..! भोर के समय राम का नाम ले .....कहकर बात को पलट देना चाहती है। गंगा धीरे–धीरे परिस्थिति को स्वीकारती जाती है–परिस्थिति से लाचार ऐसी गंगा को मुखिया का सामना करने की पूरी क्षमता होने के बावजूद नहीं कर सकती। गंगा को मुखिया दूषित करता है। यही गंगा सबके सामने मुखिया को झटक देती है। अधिक स्फोटक परिस्थिति झोंपड़ी में थी कि गंगा के मोहल्ले में ? गंगा के पात्र के साथ यह घटना योग्य नहीं लगती। यदि गंगा ने झोंपड़ी की घटना का स्वीकार लाचारी से स्वीकारा था तो वह इतनी मूर्ख नहीं थी कि यह न समझी हो कि गलती, गुनाह उस पर ही आएगा। इस तरह, गंगा के पात्र में सामंजस्य खोता है।''[39]**

यहाँ यह समझा जा सकता है, कि गंगा मुखिया की छेड़–छाड, बुरी हरकतों को सहन करती है, जिसके परिणामस्वरुप एक दिन उसे बलात्कार का भोग बनना पड़ता है। जिसने मुखिया जैसे अत्याचारी का अनेक शोषण सहा हो, जिसने झोंपडी की घटना को भी किसी के समक्ष प्रकट नहीं किया हो, ऐसी गंगा कहानी के अंत में एकाएक विद्रोही बन जाती है, यह थोड़ा अस्वाभविक लगता है।
कहानी के अंत में जो होना था वह हो चुका है–

> **''मंगा वृद्ध ने गंगा के सिर पर हाथ रखने का प्रयास किया किन्तु बिस्तर तो कब का खाली था। बूढ़े की घँसी हुई आँखों में से धारदार आँसुओं की धार बहने लगी।''[40]**

कहानी की शुरुआत में चारपाई में से उठती गंगा कहानी के अंत में चारपाई पर नहीं है। कहानी का अंत इतना अवश्य कहता है कि आने वाले कल में सब कुछ अच्छा होगा किन्तु उसमें गंगा मौजूद नहीं होगी।

प्रस्तुत कहानी में ऐसे कई प्रसंग हैं जिसमें गंगा को अपमानजनक शब्द कहे जाते हैं, किन्तु वह ऐसे शब्दों की आदी बन चुकी है। पटलानी जब उसे भोर के समय देखकर 'रांड' जैसे गाली देती है तब गंगा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कहानी में कितनी सचोट उपमाओं का विनियोग है, जो ध्यान देने जैसा है जैसे उदाहरण स्वरुप–

''पाड़े पर पानी डालो तो वह तुरंत नीचे गिर जाता है वैसे गंगा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा जैसे उसे ऐसी गालियों की आदत पड़ गई हो।''[41]

पटलानी के व्यवहार पर कहानीकार ने जो प्रकाश डाला है, उसमें उसके अस्पृश्यता की भावना को अधिक महत्त्व देने वाला बताया गया है। उसके इस तरह के व्यवहार के विषय में राधेश्याम शर्मा लिखते हैं कि–

''एक पटलानी का बिहेवियर भावभंगिमा (जेश्चर) इस वर्णन में आस्वाद्य हैं।''[42]

16. 'सपायडो' (सिपाही)–विट्ठलराय श्रीमाली

प्रस्तुत कहानी में वेस्ता और रामडी अपने पाँच बच्चों के साथ डांग के समृद्ध जंगल में रहते थे। जंगल समृद्ध था, लेकिन उसमें रहने वाले निर्धन थे। जमीन के एक छोटे से टुकडे में खेती करना और सात लोगों का पेट भरना बहुत ही मुश्किल था। वेस्ता और रामडी जंगल में उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ एवं लकड़ी बेचकर किसी तरह अपना जीवन बीताते हैं। गरीबी की वजह से कभी–कभी तो उन्हें भूखे ही सोना पड़ता है। वेस्ता परिवार की छोटी–मोटी ज़रुरतों को पूरा करने के लिए कभी–कभी भट्ठी बनाकर देसी शराब बना लेता है, थोड़ी बेचकर बाकी अपने लिए रख लेता है।

सिपाही जानते हैं कि वेस्ता के घर में शराब मिलती है। एक रात तेज बारिश के कारण वातावरण बहुत ठंडा हो गया। वेस्ता के घर में खाने की कोई वस्तु नहीं थी। घर में मुर्गी थी, जिसे उबालकर थोड़ा–थोड़ा सबने खाया और ठंडक से बचने के लिए थोड़ी–थोड़ी शराब भी पी ली। सिपाही रात्री के समय शराब लेने आते हैं। वेस्ता शराब के नशे में था, बच्चे भी शराब पीकर सो गए। सिपाही और उसके साथी ने खूब शराब पी। उनकी दृष्टि रामडी पर पडी। वह नशे में थी, किन्तु थोड़ा होश भी था। वेस्ता की गरीबी एवं नशे का फायदा उठाकर सिपाही रामडी पर बलात्कार करता है, बाद में उसका साथी भी मौके का फायदा उठाता है।

पति के मौजूद होते हुए भी अपने ही घर में रामडी की आबरु लुट ली जाती है। रामडी लुट चुकी थी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। नशे में सोते अपने पति को देखकर वह सोचती है कि उसकी गरीबी के कारण उसका पति शराब बनाता है, पेट की भूख को भूलाने के लिए शराब पीता है। उसका यह कार्य उसे गुनाहगार बनाता है, इसी गुनाह की वजह से आज लाचारीवश उसे अपनी इज्ज़त गँवानी पड़ी। यदि उसके पास धन होता तो उसका पति कभी ऐसा कार्य न करता। गरीबी उसके जीवन के सबसे बड़े दुःख का कारण बन जाती है।

रामडी पति से इस विषय में कुछ कहे उससे पहले पुलिसवाला और हवलदार वेस्ता को शराब बेचने के गुनाह में पुलिस स्टेशन ले जाते हैं। वे वेस्ता की पिटाई करते हैं रात–भर लोकअप में रखकर उसे छोड़ देते हैं। हवलदार ने पशुओं की तरह वेस्ता की पिटाई की थी, रामडी पति की अवस्था देखकर रोने लगती है। वेस्ता आज निर्णय लेता है कि वह अब कभी शराब नहीं बनाएगा। भले ही थोडे में गुजारा करना पड़े, भूखे सोना पड़े, वह दुःख भोगने के लिए तैयार था, किन्तु पुलिस की मार नहीं खाना चाहता था।

रामडी पति के दुःख से भी अधिक दुःखी थी। पति पर अत्याचार बाहरी था, जिसे वह कुछ दिनों में भूल सकता था, किन्तु उस पर जो अत्याचार हुआ था उससे वह अंदर–ही–अंदर सुलग रही थी, किन्तु लाचार थी।

आठ दिनों के बाद वही पुलिस वाला और हवलदार शराब लेने आते हैं। रामडी और वेस्ता को धमकाते हैं। रामडी के सब्र का बांध टूट जाता है, आखिर वह कितना सहन करती। हसिए से वह हवलदार की पीठ पर वार करती है। वह वहीं दम तोड़ देता है। रामडी पर केस चलता है उसे उम्र कैद की सज़ा दी जाती है। रामडी ने जुर्म किया था, फिर भी उसे कोई अफसोस नहीं था, अब वह अपने परिवार को निर्भय समझती है। इसके अतिरिक्त उस गरीब के पास कोई रास्ता नहीं था।

17. 'झाड़'–हसमुख वाघेला

कंकु दलित वर्ग की स्त्री है। उसके पति का नाम दलिया है। दलिया चार फूट का था। होली की रात गाँव में ढोल बज रहे थे। होली जलाने की पूरी तैयारी हो चुकी थी। गाँव के सभी ब्राह्मण, राजपूत, पटेल, बनिये होली के नज़दिक थे। थोडी दूर कुंभार, दरजी, मोची और अंतिम पंक्ति में हरिजनों की टोली थी। उसे गाँव में वर्षों से हर वर्ष होली के जलने के बाद उसमें नारियल डाला जाता था और राजपूतों में होड लगती थी कि कौन सबसे पहले वह नारियल निकालता है। जो राजपूत इसमें विजय प्राप्त करता अन्य लोगों के समक्ष उसका मान–सम्मान और बढ़ जाता।

इस वर्ष सरपंच का बेटे कालुभा इस होड में विजय पाना चाहता था। जिस समय सभी राजपूत जलती होली से नारियल निकालने के लिए प्रयास कर रहे थे, उसी बीच दलिया छः फूट के कालुभा के पैरों के बीच से जलता नारियल निकाल लेता है, और कोई–कुछ समझ पाए उससे पहले अदृश्य हो जाता है। कालुभा और अन्य राजपूतों ने पहली बार ऐसी हार का सामना किया था, जिसमें वे एक दलित पुरुष से हार गए थे। अपनी हार का बदला लेने के लिए राजपूतों में हाहाकार मच गया। राजपूत क्रोध और बदले की भावना से जलने लगे। दलित की हिंमत कैसे हुई कि वह नारियल निकाल ले ? यह प्रश्न उनकी इज्ज़त का था। उन्होंने दलिया को जिंदा न छोड़ने की ठान ली। दूसरी बार कोई हरिज़न ऐसी हिंमत न करे इसलिए दलिया को सबक सीखाना पड़ेगा। ऐसा निश्चय करके वे दलितवास में गए। दलिया तो अदृश्य हो, गया किन्तु दलितवास में पुरुष–स्त्री–बच्चे–बूढ़े सभी की साँस थम गई। सभी जगह दलिया को ढुँढा जा रहा था।

कालुभा को दलिया के कारण नीचा देखना पड़ा था। वह दलितवास में आग–बबूला होकर धमकी देते हुए कहता है–

''सूअरों ! तुम्हारा और तुम्हारी बीबी–बच्चों का जीव प्यारा हो तो दलिया को हाजिर करो, नहीं तो पूरे दलितवास को जिंदा जला दिया जाएगा।''[43]

कालुभा एक राजपूत और धाकड़ पुरुष है। दलिया जैसे हरिजन, गरीब व्यक्ति से चोट खाकर चुप बैठना उसके अहंकार को शोभा नहीं दे रहा था। कमजोर को अपने पैरों में रखने वाला कालुभा आज दलिया से हाड़े में हार चुका था। अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए वह हरिजनों के मोहल्ले में धमकियाँ देता है। एक बुजुर्ग हरिजन व्यक्ति कालुभा से दुलिया की गलती के लिए क्षमा माँगता है, गिडगिडाता है किन्तु कालुभा को तो सिर्फ दलिया को ही दंडित करके शांति मिल सकती थी।

पूरे दलितवास और पति दलिया पर आई मूसीबत को देखते हुए उसकी पत्नी कंकु कालुभा से क्षमा माँगते हुए कहती है–

''आप तो हमारे माँ–बाप हैं। उनसे भूल तो हो गई है, कहें तो कल से हम यहाँ से चले जाएँ परंतु भाई साहब उन्हें कुछ नहीं करना।''[44]

कंकु अपने पति के प्राणों की रक्षा के लिए कालुभा से भीख माँगती है। वह जानती है कि राजपूतों के समक्ष दलिया ने जो हिम्मत का काम किया है, देखा जाए तो वह प्रशंसनीय है, किन्तु हरिजन होकर ऐसा कार्य करना और प्रशंसा पाना उनके नसीब में नहीं है। इसलिए वह कालुभा के समक्ष गिडगिड़ाती है।

कालुभा अपना शिकार को न पाकर पूरी दलितवास में आग लगवा देता है। उसका अट्टहास भयानक लगता है। उस आग की रोशनी में कालुभा की दृष्टि कंकु की जवानी पर पड़ती है। कालुभा का खून गर्म हो जाता है। उसकी शैतानी वृत्ति जोर पकड़ती है। अचानक कालुभा का हाथ गाल पर स्पर्शते वह घबरा गयी। दो दिन पहले जंगल में रोकि हुई कंकू के थप्पड़ से अभी भी गाँव में हलचल मची हुई है कालु ने सोचा आज ही बदला लेने का अच्छा अवसर है। कंकु से बदला लेकर वह अपने अपमान की भरपाई कर सकता है। यह सोचकर वह कंकु को नीचे गिरा देता है और उसके वस्त्र फाड़ देता है। निराधार कंकु मोहल्ले के सभी लोगों से हाथ जोड़कर विनती करती है किन्तु कोई उसकी मदद करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। रोती हुई कंकु कालुभा के पैर पकड़कर कहती है कि–

''आपको यदि थोड़ा सा भी उपरवाले का भय हो तो मुझे छोड़ दो मैं गर्भवती हूँ।''[45]

गर्भवती कंकु अपने पति के प्राण बचाने के लिए आगे बढ़ती है, किन्तु वहाँ स्वयं उसका चीरहरण हो जाता है। द्रौपदी की लाज बचाने के लिए तो स्वंय भगवान आ गए थे किन्तु कंकु जैसे अबला को बचाने की किसी में हिम्मत न थी। कालुभा को भगवान का कोई डर नहीं था। इसलिए वह मोहल्ले के लोगों की उपस्थिति में ही कंकु के शरीर के अंगों से खिलवाड़ करने लगा। निर्वस्त्र कंकु उसकी पकड़ से छूटने के लिए तड़पने लगी। निःसहाय लाचार कंकु कालुभा की मजबूत पकड़ के समक्ष असहाय थी। वृद्धों ने लाचारी से आँखें बंद कर ली। स्त्रियों का मुँह बंद हो गया था। चंद्र भी शर्म से बादलों में छुप गया। कालुभा मूँछों पर हाथ देते हुए खड़ा हुआ और जाते–जाते मोहल्ले के लोगों को धमकी देता गया–

''यदि किसी ने कंकुडी को कपड़ा पहनाया तो उसका भी ऐसा ही हाल होगा।''[46]

कंकु पर थूकता हुआ कहने लगाा–

''तेरे दलिया को कहना तेरे नारियल का यह इनाम।''[47]

कालुभा का यह शैतानी रुप देखकर सभी स्तब्ध हो गए थे। उस डर से किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि रोती–तड़पती कंकु की मदद कर सके।

देर रात दलिया दौड़ते हुए मोहल्ले में आता है। सुलगती अग्नि–ज्वालाओं के बीच चौराहे पर अकेली, निर्वस्त्र हालत में रोती कंकु को देखकर उसके हाथ में रहा नारियल गिर जाता है। सिर पर बाँधे रुमाल से वह कंकु के शरीर को ढ़ँकता है और कहता है–

''कंकु यह .....क्या..... ?''[48]

कंकु दलिया को देखकर उससे लिपटकर रोने लगती है। रोते हुए कहती है–

''दलिया, हमारी किस्मत को आग लग गई.....''और पेट की तरफ इशारा करते हुए–''और यह पेट.....।''[49]

कंकु और दलिया के सुखी जीवन को राजपूतों की नज़र लग चुकी थी। मोहल्ले में सभी घर के भीतर जा चुके थे। दलिया यह दृश्य देखकर क्रोध से तमतमाता हुआ कहता है–

''धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी जात को। तुम्हारी जनेता के दूध में इतनी ताकत नहीं थीं, कि कोई मर्द बनकर संघर्ष करे।''[50]

यहाँ दलिया कंकु की स्थिति के लिए अपनी बस्तीवालों को कोसता है, धिक्कारता है जिनके समक्ष कंकु को निर्वस्त्र करके अपमानित किया गया। लोग उस अन्याय के समक्ष संघर्ष करते तो शायद कालुभा सरेआम कंकु को अपमानित नहीं कर सकता था। उसे अपने आप से भी घृणा हो गई कि ऐसी स्थिति में वह कंकु की रक्षा करने के लिए उपस्थित नहीं था। वह कंकु से कहता है–

''कब तक ऊँची जात का अत्याचार सहना पड़ेगा। कब तक उनकी गुलामी करनी होगी।''[51]

कंकु की आँखें पोछते हुए भर्राते हुए गले से कहने लगा–

''कंकु हमारा इतना भी अधिकार नहीं कि होली का नारियल ले सकें। प्रसाद खा सकें ? सवर्णों का अधिकार और हमारा नहीं ? कब तक कंकु कब तक हमें यह सब सहना पड़ेगा ?''[52]

दलिया का दिल व्यथा के भार से चिर गया था। आज़ादी मिले हमें वर्षों बीत गए किन्तु दलितों को आज भी जातिवाद से आज़ादी नहीं मिली है। दलिया को इस धरती पर जन्म लेना और जीना ही पाप लगने लगा। इसलिए वह कंकु को साथ में

लेकर साथ ही अपनी होने वाली संतान को उस जगह लेकर जाना चाहता है जहाँ ऐसा भेदभाव न हो। वह कंकु का हाथ पकड़कर सुलगती आग में कूद पड़ता है।

दलिया और कंकु का करुण अंत उनकी पीड़ा की, सहनशक्ति की चरम सीमा पार कर जाता है। दलिया कंकु के अपमान का बदला लेने में अपने आपको असमर्थ समझता है, इसलिए अपना अंत कर देता है। कहानी में राजपूतों का दलितों पर अत्याचार, शोषण, जातिगत भेदभाव आदि के कारण दलितों की करुण स्थिति, असहाय अवस्था को देखा जा सकता है। किंतु दलिया का आत्महत्या करना पठकों के हृदय में असंतोष छोड़ जाता है।

18 'गोमती'–पुष्पा माधड़

पुष्पा माधड़ द्वारा रचित **'गोमती'** कहानी स्त्री शोषण की कहानी है। कहानी की नायिका गोमती एक दलित युवती है। गोमती पर गाँव के मंदिर का पुजारी मंदिर में बलात्कार करता है। इतना ही नहीं पुजारी अपने बचाव के लिए गोमती के परिवार को मजबूर करता है कि वह गाँव छोड़कर चले जाएँ। परिवार को दर–दर भटकना न पड़े, गाँववालों द्वारा उनका बहिष्कार न किया जाए इसलिए गोमती आत्महत्या कर लेती है।

कहानी की शुरुआत में गोमती इन्द्र की सभा में चीखते हुए प्रवेश करती है। उसकी चीख सुनकर गांधर्व, अप्सरा स्वयं देवराज इन्द्र चकित रह जाते हैं। द्वारपाल उसे नर्क में ले जाना चाहता है, क्योंकि उसने आत्महत्या का गुनाह किया है। गोमती देवराज के पास न्याय मांगने आती है। अपना परिचय वह भारत देश की दलितनारी के रुप में उन्हें देती है। देवराज इन्द्र के मन में भारत वर्ष की छाप बहुत सुंदर है, उसकी गौरव–गाथा का मान उनके मन है। किन्तु गोमती जब उन्हें वहाँ के दलितों की दयनीय स्थिति, गरीबी और अस्पृश्ता से परिचित कराती है तो सभी दंग रह जाते हैं। दलितों का उद्धार सिर्फ समाचार–पत्र और शोध समितियों में देवराज ने देखा था, जिससे वे निश्चिंत थे कि भारत में सारा कार्य ठीक ढ़ंग से चल रहा है। गोमती जब उन्हें बताती है कि आज भी दलितों को हाड़तोड़ मेहनत करने के बावजूद न तन ढँकने के लिए चिथड़ा मिलता है और न पेट भर खाना, न सिर पर छत, है न सम्मानपूर्ण जीवन। उसे आज भी उच्च वर्णों से केवल अपमान और अत्याचार ही मिल रहा है।

देवराज गोमती से उसकी आत्महत्या करने का कारण जानना चाहते हैं, तब रोते हुए गोमती पुजारी द्वारा उस पर हुए बलात्कार की घटना का जिक्र करती है। स्त्री जाति पर शोषण होना कोई नई बात नहीं है, किन्तु गोमती की परेशानी तब बढ़ती है, जब पुजारी दूसरे दिन उसके मोहल्ले में आकर उसके बूढ़े पिता को लकड़ी से मारकर कहता है कि–

> **''ए बुड़ढे.....। ये तेरी बेटी को काबू में रख.....जवान हो गई है तो कहीं ठिकाने लगा दे.....और यदि ठिकाने न लगाई जा पा रही है तो फिर..... कहता हुआ मँछों में हँसने लगा.....।''**[53]

पुजारी पर गोमती या उसका परिवार कोई आरोप लगाए या शिकायत करे उससे पहले ही पुजारी उन्हें डरा देना चाहता है। गाँव के बीच गोमती को बेइज्ज़त करके अपने दामन को साफ रखने के लिए वह उन्हें घमकाते हुए कहता है–

''सालों.....तुम नीची जाति के लोग बहुत चालाक हो गए हो...उच्च जाति के लोगों की इज्जत पर हाथ डालने लगे हो.....दिन उगते ही....गाम छोड़कर चले जाओ नहीं तो ठीक नहीं होगा समझे।''[54]

निर्दोष गोमती और उसका परिवार कोई गुनाह न करके भी सज़ा भुगतने के लिए विवश किया जा रहा था। इसका कारण मात्र इतना ही था कि वे दलित थे। सवर्णों के समक्ष उनकी सच्चाई सुनने वाला या उन्हें न्याय देना वाला कोई नहीं था। गोमती की सच्चाई जानकर देवराज इन्द्र और सभा में मौजूद सभी की आँखें नम हो जाती हैं। स्वयं को जिस देश के लिए गर्व होता था ऐसे इन्द्र इस सच्चाई को सुनकर खिन्न हो गए।

गोमती के परिवार ने गाँव नहीं छोड़ा तो गाँववालों ने उनका बहिष्कार किया। पूजारी गोमती को विवश करने लगा अपने वासना तृप्ति के लिए। ऐसा नहीं था कि गोमती उसका विरोध करना या विद्रोह करना नहीं जानती थी, किन्तु उसी का यह कथन है कि–

''यह तो.....! मैं उस.....महाराज की आँखें फोड़ सकती थी परन्तु..... मेरे कारण पूरे मोहल्ले को भूखे मरने की नौबद आए उससे तो .....।''[55]

गोमती पुजारी द्वारा किया जाने वाला अत्याचार अपने परिवार और मोहल्ले के दलितों के लिए सहती है। उसका यह त्याग उन गरीबों के लिए होता है जो पहले से ही दुःखी हैं, शोषित है, उन्हें गोमती और अधिक दुःखी नहीं देखना चाहती। इसलिए वह अपने जीवन का अंत करके उस अत्याचार से स्वयं भी मुक्त होती है और अपने परिवार तथा समाज को भी दुःखी होने से बचाने का अंतिम प्रयास करती है।

इन्द्र गोमती की करुण गाथा को सुनकर शर्म से सिर झुका लेते है, वे उसे स्वर्ग में स्थान देते हैं, किन्तु गोमती की कुछ दूसरी प्रार्थना है। इन्द्र उसे वरदान देने को तैयार है और पूछते हैं कि माँग तुझे क्या चाहिए वह कहती है–

''तो मुझे मेरी लुटी हुई आबरु वापस लौटा दो.....।''[56]

एक स्त्री के लिए इससे बड़ी कोई वस्तु नहीं होती। उसका आत्मसम्मान ही उसके लिए सबसे बड़ी पूँजी होती है। कोई उसे लुट जाने के बाद लौटा नहीं सकता। इस अनमोल वस्तु के लुट जाने पर वह गोमती इन्द्र की सभा से भी खाली हाथ लौटती है।

प्रस्तुत कहानी में स्वर्ग में पहुँची दलित गोमती न्याय की अपेक्षा से इन्द्र के पास पहुँचती है। वह अपनी आप–बीती सुनाकर स्वर्ग के लोगों से सहानुभूति भी पाती है, स्वर्ग में स्थान भी पाती है, लेकिन अपनी लुटी हुई आबरु नहीं पाती। उसको यह वरदान देने में स्वयं इन्द्र भी असमर्थ हैं। यहाँ देवो को भी बेबस दिखाया गया है। दलितों को न्याय न तो धरती पर मिलता है और न ही स्वर्ग में ही मिल पाता है।

19. 'चमड़ी घीसने की वेदना'–बी. केशरशिवम्

प्रस्तुत कहानी में नायिका कमला एक शिक्षित युवती है, जिसको एक शिक्षिका के रुप में फूलपुरा गाँव में नौकरी मिलती है। उससे पहले उस स्थान पर काशी नाम की स्त्री नौकरी करती थी। कमला के पति केशव की सगाई काशी के साथ हुई थी, किन्तु एक वर्ष के बाद यह सगाई जाति के झगड़े के कारण टूट गई। एक वर्ष के

समय के अंतर्गत केशव और काशी के बीच शारीरिक संबंध स्थापित हो जाता है, जिससे वह गर्भवती बन जाती है।

केशव की शादी कमला से हो जाती है और उसे शिक्षक की नौकरी मिल जाती है। दोनों सुखी जीवन जीने लगते हैं। केशव बुद्धीशाली था, आगे पढ़ाई जारी रखकर वह UPSC की परीक्षा पास करके क्लास वन अधिकारी बन जाता है। केशव की प्रामाणिकता को देखकर, साथ ही नीची जाति के अधिकारी होने के कारण उसके नीचे काम करने वाला स्टाफ उसे रिश्वत के झूठे आरोप में फँसा देता है। केशव को सस्पेन्ड कर दिया जाता है। कोर्ट में तीन वर्ष तक केस चलता है। कमला अपने पति का हौंसला बढ़ाती है। उसे विश्वास था, कि केशव निर्दोष साबित होगा। आखिर केशव की जीत होती है। किन्तु उसे नौकरी पर हाजिर नहीं किया जाता। इससे आगे फिर केस दर्ज कर दिया जाता है। केशव अब मानसिक रुप से टूट जाता है। कमला ही घर, बाहर, कोर्ट और वकील का काम सँभालती है। दूसरी बार भी केशव की ही जीत होती है, कोर्ट का फैसला सुनने की अब उसमें शक्ति नहीं थी। कमला खुशी का समाचार लेकर घर लौटती है किन्तु तब तक केशव पाँच वर्षों के इस वेदनामय जीवन से तंग आकर आत्महत्या कर लेता है।

निर्दोष केशव दलित था, इसलिए उसे और उसकी पत्नी कमला को लोगों के ताने सुनने पड़ते हैं और नज़र झुकाकर रहना पड़ता है। कमला का कोई सहारा नहीं था। वह माँ नहीं बन सकती थी, कमी उसमें थी, किन्तु पत्नी से अथाह प्रेम करने वाला केशव कमी स्वयं में है, यह कहकर उसे दुःखी होने से बचाता है।

कमला अपने पति को भूल नहीं सकती थी किन्तु अकेली स्त्री को समाज शांति से जीने नहीं देता है, ऐसा अनुभव उसे खुद हो चुका था। मायके वालों के समझाने पर वह बलदेव नामक एक अधिकारी से विवाह कर लेती है, जिसकी पहली पत्नी एक बेटे को छोड़कर मर चुकी थी। बलदेव और केशव में जमीन–आसमान का अंतर था। बलदेव स्वच्छंद प्रवृत्ति का, शराब पीनेवाला और कमला को वह प्रेम नहीं दे पा रहा था, जिसकी उसे ज़रुरत थी। कमला पति के पुत्र महेश की परवरिश में अपना समय लगा देती है।

पहले पति की प्रेमिका काशी का संबंध दूसरे पति बलदेव से भी रहता है। काशी केशव के बच्चे महेश को जन्म देकर एक शिक्षिका की नौकरी करती है। वह एक कुंवारी माता थी किन्तु पुत्र का भविष्य अंधकारमय होने से वह निःसंतान बलदेव की इच्छानुसार महेश को उसे गोद दे देती है। बलदेव के इस उपकार के बदले वह बलदेव के शारीरिक शोषण को सहती है। फुलपुरा गाँव में दलित स्त्रियों के साथ सरेआम बलात्कार किया जाता था, जिसे रोकने के लिए काशी गाँव के सरपंच को अपनी मुट्ठी में लेकर ऐसे अत्याचारियों को दंड दिलवाती है, उन्हें सबक सीखाती है। इसके लिए उसे सरपंच की अंकशायनी भी बनाना पड़ता है, किन्तु अपने समाज की अन्य स्त्रियों को बचाने के लिए दलितों को बीजली, सड़क आदि भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए वह अपने शरीर का बलिदान कर देती है।

काशी सुंदर थी, वह अपनी सुंदरता और बुद्धी के सहारे दलित बच्चों को शिक्षा और रोज़गार दिलाने के लिए कॉलगर्ल बन जाती है और नौकरी छोड़ देती है। समाज जिस कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है, वह वेश्यावृत्ति का काम काशी अपने समाज को सुधारने के लिए करती है। उसका रास्ता भले ही गलत था किन्तु विचार नेक था। वह स्वयं दलदल में घँसती जा रही थी, किन्तु बहुत से बच्चों, स्त्रियों को उस

दलदल से बचा रही थी। काशी का यह त्याग एक स्त्री को उदारता की मिसाल कहा जा सकता है। कमला का दूसरा पति बलदेव काशी के इस समाज सुधार के कार्य में उसकी मदद करता है, किन्तु एक रोड एक्सीडेन्ट में बलदेव की मृत्यु हो जाती है। काशी ही कमला को केशव बलदेव और अपने पुत्र की सच्चाई बताती है। एक तरफ बलदेव और दूसरी तरफ केशव दोनों काशी से संबंध बनाते हैं, किन्तु काशी अपने समाज सुधार के कार्य के कारण कमला की नज़रों में ऊँची उठ जाती है। काशी अब वेश्यावृत्ति छोड़ देती है और उसके और बलदेव के गलत रास्ते से कमाए धन को कमला के हाथों में सौंपकर उसे अपने समाज को सुधारने की जिम्मेदारी दे देती है।

पति के निर्दोष होने पर भी कमला जीवन में संघर्षों का सामना करती है और दूसरे पति की मौजूदगी में भी वह अंकेलापन सहती है। काशी कुँवारी माँ बनती है। और जीवनभर पति का सुख नहीं पाती। अपने शरीर की चमड़ी को घीसवाकर वह समाज को तो सुधारती है, किन्तु अपना स्वयं का जीवन नर्क–सा बना लेती है। वह अपने बेटे महेश को उसके समक्ष अपना बेटा कहने की हिम्मत खो बैठती है। पुरुष वर्ग द्वारा काशी का शारीरिक शोषण होना काशी के जीवन की दिशा ही बदल देता है।

20. 'सगपण' (सगाई)–प्रज्ञा पटेल

प्रस्तुत कहानी की नायिका मणकी की माँ की मृत्यु तभी हो जाती है, जब मणकी छोटी थी। मणकी का पिता अपने दुःख को भुलाने के लिए कभी–कभी शराब पी लेता था, और नशे में मणकी को पीटता भी था। मणकी बिन माँ की संतान होने से समय से पूर्व ही समझदार और जिम्मेदार बन जाती है। उसका पिता उससे प्रेम करता है, उसे अपनी गोद में सुलाता है।

जब मणकी युवा अवस्था में पहुँचती है तो उसके पिता को उसके विवाह की चिंता होती है। मणकी भी अपनी सहेलियों की शादी देखकर अपने विवाह के लिए उत्सुक थी। उसने अपने विवाह के लिए कुछ कपड़े भी तैयार करके छीपा रखे थे। वह अपने पति के घर जाएगी, उसका पति उसे बहुत प्रेम देगा, आदि वह सपने देखा करती थी।

मणकी का पिता एक अस्पताल में सफाई कर्मचारी था। वह रात में चौकीदारी का काम भी करता था। मणकी कभी–कभी अपने पिता के साथ अस्पताल चली जाती थी। उसकी सुंदरता, कोमलता और भोलेपन को देख वहाँ के एक डॉक्टर की नियत खराब हो जाती है। वह मौके की तलाश में था।

रुड़िया नामक भोलाभाला लड़का वहाँ नया–नया नौकरी पर आता है। अस्पताल में उसकी मित्रता मणकी से हो जाती है। मेलजोल बढ़ता है और दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। दोनों की खुशी देख मणकी का पिता उनकी सगाई कर देता है। मणकी और रुड़िया एक साथ घूमते, खाते, प्रेमपूर्ण वार्तालाप करते और अपने सुखी वैवाहिक जीवन की कल्पना करते, क्योंकि दो महिने बाद उनका विवाह होने वाला था। एक दिन वे दोनों फिल्म देखने जाने की तैयारी करते हैं, क्योंकि मणकी ने कभी थियेटर में बैठकर फिल्म नहीं देखी थी। रुड़िया पकोड़ी का पेकेट लेकर काफी देर से मणकी का इंतेज़ार कर रहा था, जब वह नहीं पहुँचती तो वह अस्पताल में उसे ढुँढ़ता है। अचानक डॉक्टर के बंद केबिन से उसे कुछ आवाज़ आती है। वह स्टूल रखकर उसपर चढ़कर काँच में से देखता है, तो मणकी के मूँह में कपड़ा ठूँसकर डॉक्टर उसके सपनों को तार–तार रहा था। मणकी की ऐसी स्थिति देखकर रुढ़िया गिर पड़ता है,

उसके सिर पर गहरी चोट आती है। मन और मस्तिष्क साथ में शरीर पर चोट लगने से रुड़िया मानसिक रुप से विक्षिप्त हो जाता है। मणकी का सपना चूर–चूर हो जाता है। मणकी का बलात्कार रुड़िया और उसकी खुशियों पर ग्रहण बन जाता है।

मणकी और उसके पिता ने यह सोचा था कि यदि मणकी भी अस्पताल में काम करेगी, तो उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार आएगा। डॉक्टर के षडयंत्र में दोनों फंस जाते हैं। और गरीब मणकी अपना सबकुछ गँवा देती है। रुड़िया का अब एक मात्र सहारा बकरी का एक बच्चा बन जाता है, जिसे लेकर वह दिनभर दर–दर घूमती है।

मणकी और रुड़िया का विवाह तो नहीं हुआ, किन्तु उसकी सगाई हो गई थी। अब उसे अपनी पुत्री के साथ–साथ रुड़िया का भी ख्याल रखना था। उसका विचार था कि–

> **''सगाई तो कुछ नहीं है इस पागल के लिए किन्तु.....उसका पागलपन ही उसके साथ का संबंध बन गया।''**[57]

मणकी के प्रेम में उसके दुःख को देखकर रुडिया पागल हो गया था, यही दुःख, वेदना और पीड़ा का संबध था उन दोनों के बीच। मणकी का पिता इसलिए रुडिया को अपना ही समझता है।

डॉक्टर द्वारा किए गए अपराध की सज़ा उसे नहीं मिलती, क्योंकि अस्पताल की बदनामी ना हो इसलिए मणकी के पिता को समझाबुझाकर सभी कर्मचारी रोक लेते हैं। एक पिता होने के बावजूद उसमें इतनी क्षमता नहीं थी, कि वह अपनी बेटी के गुनहागार को दंड दिलवा सके। वह डॉक्टर और उसकी सात पुस्तों को बद्दुआ देता है। और शारदा (नर्स) से कहता है–

> **''आपने, आप सभी ने मुझे रोका...अस्पताल की इज्जत के नाम पर, मेरी बेटी और मेरी इज्जत के नाम पर.....मुझसे छल किया गया.... ।''**[58]

वास्तव में दलित मणकी और उसके पिता को यही समझाया गया था कि डॉक्टर के खिलाफ शिकायत दर्ज करी जाएगी तो इसमें मणकी और तुम्हारी बदनामी होगी। तुम्हारी आमदनी का एक मात्र स्त्रोत भी तुमसे छीन लिया जाएगा और डॉक्टर तो धनवान है कुछ रुपये खर्च करके वह छूट जाएगा। साथ ही अस्पताल यदि बंद हो गया तो सभी स्टाफ वाले बेरोज़गार हो जाएँगे। मणकी का पिता सभी की भलाई और रोजी–रोटी के लिए अपमान का यह घूँट पी जाता है।

रुड़िया, मणकी की सहायता नहीं कर पाया था, इसका दुःख उसे इतना था, कि आज भी वह घटना रह–रहकर उसे याद आती थी। उसके पागलपन, मणकी के बलात्कार और मणकी के पिता के दुःख का कारण डॉक्टर समाज में सिर ऊँचा करके सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि वह एक सवर्ण और धनवान व्यक्ति था। जबकि मणकी रुडिया और उसका पिता गरीब होने के कारण दुःखी और अपमानित जीवन जीने के लिए विवश थे। दोषी को दंड न दिए जाने का दुःख उनकी पीड़ा को और अधिक बढ़ा रहा था।

प्रस्तुत कहानी में दलित युवती के जातीय शोषण की समस्या को उजागर किया गया है। मणकी का शोषण उसके स्वयं के साथ–साथ उसके पिता और प्रेमी के जीवन को तहस–नहस कर देता है। एक व्यक्ति के दुष्कृत्य की सज़ा तीन लोगों को भुगतनी पड़ती है और दोषी स्वयं आज़ाद रहता है। कहानी का शीर्षक 'सगपण' अपनी

सार्थकता को सिद्ध करने वाला है। बलात्कार के बाद मणकी का एक भी संवाद कहानीकार ने नहीं प्रस्तुत किया है, जिससे मणकी के विचारों को जाना जा सके। कहानी का अंत कहीं–न–कहीं एक अधूरापान छोड़ जाता है।

3.2 सवर्णों की स्वार्थपरता का शिकार हुई दलित महिलाएँ

1. 'दायण'(दाई) – हरीश मंगलम्

प्रस्तुत कहानी अस्पृश्यता के कारण उपेक्षित और अवहेलना का भोग बनी दाई बेनी मां के जीवन को चित्रित किया गया है। दलपत चौहान की 'गंगा माँ' और ओमप्रकाश वाल्मिकी की कहानी 'अम्मा' से साम्यता रखती इस कहानी में मुख्य रुप से दलित समाज व सवर्ण समाज में बिरादरीगत जड़ मान्यताओं में पीस रही नारी की करुण ज़िंदगी का दाहक दस्तावेज बना हुआ है। अस्पृश्यता की जकड़न से मुक्त होने के लिए दलित चाहे कितने भी अच्छे कार्य करे किंतु बदले में इन्हें सवर्ण समाज द्वारा अनेक यंत्रणा व उपेक्षा ही सदियों से मिलती रही है।

कहानी की नायिका बेनीमाँ एक वृद्ध महिला है, जो दाई के कार्य को इतनी अच्छी तरह से जानती थीं, जितना कोई डॉक्टर भी न जानता होगा। भले ही उनके पास कोई सर्टिफिकेट नहीं था, किंतु अनुभव और समझदारी जितनी उनके पास थी, उतनी किसी और के पास नहीं थी। अपने इस कार्य के बदले में वह किसी से एक भी रुपया नहीं लेती, बस एक नारियल का ही खर्च करवाती है।

बेनीमां सवर्ण स्त्री पशी की प्रसव वेदना का समाचार सुनकर दौड़ पड़ती है और उसके बच्चे को जीवनदान देती है। जो कार्य कोई डॉक्टर भी न कर पाया वह बेनीमाँ करती है। यही बेनीमाँ जब गाँव में आम बेच रही थी, उस समय पशी अपने बेट के साथ उसके सामने से जा रही थी। बेनीमाँ उस बच्चे को आम देने के लिए अपने पास बुलाती है, बच्चा उसके पास आने लगता है, तब पशी उसे रोकते हुए अपनी गोद में ले लेती हुई कहती है–

"देखना कीकला.....बेनीमां को न छूना!!!"[59]

यहाँ पर जातिवाद के पूर्वग्रह कितनी गहराई तक जमें हुए हैं देख जा सकता है। यही बेनीमाँ ने उसे और उसके बच्चे को बचाया था, उस दिन तो वे बेनीमाँ की तारीफ करते नहीं थक रहे थे, किंतु जैसे ही उनका मतलब निकल गया वे मानवता भी भूल गए। पशी के शब्द बेनीमाँ का अपमान करते हैं फिर भी बेनीमाँ उसे सहजता से सहन करते हुए कहती हैं–"ठीक है बहन मैं जा रही हूँ" यह सूनकर किसी भी व्यक्ति का हृदय पिघल जाएगा, किंतु पशी एक सवर्ण कठोर हृदया, अस्पृश्यता का पालन करने वाली नारी है। यह कहानी विद्रोह और प्रतिभाव लिए हुए है। एक वंदनीय और बुजुर्ग पात्र दाई बेनीमां के द्वारा लेखक हरीश मंगलम् ने सामाजिक आर्थिक, राजकीय और सांस्कृति रुप में दलितों को जों वर्षों से सहन करना पड़ा है उसके समक्ष यह उग्र प्रतिभाव कहा जा सकता है।

2. 'नवी'–योगेश जोषी

योगेश जोषी द्वारा रचित प्रस्तुत कहानी की नायिका का नाम नवी है। (गुजराती में 'नवी' अर्थात् नयी) नवी फ्लेश बेक में रची गई कहानी है। कहानीकार

काफी समय के बाद गाँव में आते हैं, जहाँ नवी की बेटी जो हूबहू नवी के जैसी दिखाई देती है, उसे देखकर कहानीकार को अपने भूतकाल का स्मरण होता है।

नवी कहानीकार के मोहल्ले में साफ–सफाई का काम करती थी। सत्रह–अठार वर्ष की नवी श्याम रंग की हसमुख स्वभाव की युवती थी। उस गाँव में अस्पृश्यता, अंधविश्वास और रुढिचुस्त रीति–रिवाज़ हर घर में देखे जा सकते थे। मोहल्ले में सफाई करने वाली नवी के कार्य से सभी प्रसन्न थे। दिन में सफाई करने वाली नवी उसी मोहल्ले में शाम के समय बचा हुआ खाना माँगने रोज जाती है। लेखक के घर भी उनकी माँ नवी के हिस्से की रोटी बनना भूलती नहीं है। नवी के हसमुख स्वभाव से घर के सभी लोग उससे अच्छे ढ़ंग से बातचीत करते हैं, किंतु जहाँ बात उसके अछूत होने की आती है, वहाँ सारी मीठास कड़वाहट में बदल जाती है। कहानीकार के ही घर की बात लें तो घर में बड़े से लेकर बच्चे तक को यह अच्छी तरह सीखाया गया है, कि नवी से बातचीत भले करो लेकिन उसे स्पर्श नहीं करना है, यहाँ तक कि नवी जिस वस्तु को स्पर्श करती उस वस्तु को भी स्पर्श नहीं करना है।

कहानीकार के घर का छोटा बच्चा नानिया जोर से चीखकर रोता हुआ अपनी माँ को बुलाता है, माँ जब दौड़कर आती है तब बह कहता है–

''माँ नवी मुझे छूने आ रही है...''[60]

जिस पर नवी खिल खिलाकर हँसते हुए कहती है–

''मेलडी माँ की कसम। बाबा साहब को स्पर्श करुँ तो तो मैं पाप में और नरक में जाऊँ... मैं तो बा, मजाक कर रही थी।''[61]

नवी स्वंय भी अस्पृश्यता के माहौल में पली–बढ़ी थी। अपनी सीमा उसने स्वयं बनाकर रखी थी। उसके इस वाक्य से गाँव के रुढ़िचुस्त रीति–रिवाज़ और अंधविश्वास की बात स्पष्ट हो जाती है, जिसमें यह कहा जाता है, कि दलित व्यक्ति यदि गैरदलित का स्पर्श करता है तो नरक में जाता है।

वार–त्यौहार, श्राद्ध आदि के समय नवी अधिकार के भाव से बचा–कुचा भोजन माँगने आ जाती है। इसके अलावा उतरे हुए कपड़े, चप्पल, आदि वस्तुएँ बड़ी खुशी से स्वीकार कर लेती। यदि किसी बच्चे को चेचक हो जाता तो गाँव के अंधविश्वास के अनुसार नवी को बुलाकर दूर से उस बच्चे को फूँक मारकर चेचक को ठीक करने का प्रयास किया जाता था। एक बार कहानीकार के घर बिल्ली मर जाती है। लहूलुहान बिल्ली को कौन बाहर फेंक सकता है ? लेखक की माँ तो उसे देखकर घबरा जाती है, तब दादी माँ कहती हैं–

''नवी को बुला लो, वह सब साफ कर देगी और बिल्ली को ले जाएगी। मोहल्ले में कुत्ता–बुत्ता मर जाए तब नवी ही उसे रस्सी से बाँधकर घसीटकर ले जाती। नवी सब साफ–सूफ करके गई तब दादीमाँ बोली, इस पर नवी ने हाथ लगाया था.....जहाँ–जहाँ नवी ने स्पर्श किया था वहाँ–वहाँ गंगाजल छिड़क दो।''[62]

'गंगा माँ', 'दायण' कहानी की तरह इस कहानी में भी दलित स्त्री को आवश्यकता होने पर बुलाया जाता है और बाद में उसके द्वारा स्पर्श की गई वस्तुओं को गंगाजल से शुद्ध किया जाता है।

घर में कुछ अच्छा भोजन बनाया हो तब दादी माँ नवी के लिए बचाकर रखना नहीं भूलती थी। कभी नवी खाना लेने न आए तब, दादी माँ को उसकी चिंता होने लगती थी कि नवी क्यों नहीं आई ? कहीं बीमार तो नहीं हो गई ? साथ ही नवी दलित है, अस्पृश्य है यह भी नहीं भूलती थी।

पहले नवी बाजार में कचरा साफ करती थी। वहाँ जमादार बहुत ही कड़क था, किंतु नवी उससे नहीं डरती थी। एक बार गाली देते हुए जमादार ने सिगरेट का आनंद लेने वाली नवी की सिगरेट खींच ली। बस भरे बाज़ार में नवी ने उसे जोर से गाल पर तमाचा लगा दिया। इस घटना के एक महीने बाद नवी ने उसी जमादार से प्रेमविवाह कर लिया। उस जमादार की पहली पत्नी थी यह दूसरी नवी बनकर गई। तब से सभी उसे 'नवी' कहकर पुकारने लगे। पहली पत्नी के समक्ष शेर बनकर रहने वाला जमादार दूसरी नवी के समक्ष गाय बनकर रहने लगा।

यहाँ नवी जिस जमादार पर हाथ उठाती है उससे प्रेमविवाह करती है, यह बात कुछ अलग लगती है, क्योंकि क्रूर जमादार की दूसरी पत्नी बनना नवी को क्यों अच्छा लगा होगा ? यह प्रश्न सोचने जैसा है। नवी की बेटी अब कहानीकार के मोहल्ले में माँ के कार्य को सँभालती है।

इस प्रकार संपूर्ण कहानी में एक ओर कहानीकार ने एक दलित स्त्री के प्रति गैरदलितों में स्वार्थी प्रेम को चित्रित किया गया है, दूसरी ओर अस्पृश्यता, अंधविश्वास रुढ़िचुस्त, रीति–रिवाजों पर प्रकाश डाला है। गैरदलितों का नवी के प्रति प्रेम वास्तव में उनकी आवश्यकता के कारण उपजा बनावटी का प्रेम था।

3. 'फट रे भुंडा'–प्रीतम लखमाणी

प्रस्तुत कहानी में कड़वीमाँ की तीसरे नंबर के बेटे की पुत्री कंकु की सुंदरता को देखकर कहा जा सकता है कि ईश्वर ने उसे फुरसद में गढ़ा होगा। पूरे मोहल्ले की युवतियों को जो सुंदरता मिलने वाली थी, वो अकेली कंकु को दे दी थी। हिरनी जैसी आँखें, नागिन जैसे बाल, चंद्रमा जैसा मुख गाँव के युवक उसे देखकर सोचते हैं कि ये कंकु यदि हरिजनवास में न जन्मी होती तो, हम इसी से विवाह करते।

गाँव के राजपूतों के लड़के उसे पाने के लिए तड़पते किन्तु कंकु किसी की ओर ध्यान न देती। यदि कोई मज़ाक–मस्ती करता तो भी वह सहन कर लेती थी क्योंकि वह सोचती है–

> **''लड़के की शिकायत पंचायत में करुँगी तो कौन मेरी बात सुनेगा ? सरपंच लड़के का मामा या चाचा ही होगा। शिकायत करने से मेरी इज्जत जाएगी, बदनामी होगी।''**[63]

दलित वर्ग की होने से कंकु को इंसाफ न मिलने का विश्वास था। इसलिए वह अपने भाग्य को कोसती और सिर नीचा करके अपने रास्ते चल पड़ती। गाँव के एक राजपूत मोहनसिंह का इकलौता पुत्र भरतसिंह की गिनती मंदबुद्धी के लोगों में होती थी। निम्न वर्ग लोग उसे आता देख एक ओर हट जाते थे। दलित युवतियों को मेले में लेजाकर उनकी आबरु से खिलवाड़ करना उसका शौक था। कंकु को देखकर

उसे पाने की लालसा बढ़ने लगी थी। जब कंकु उसके हाथ नहीं लगती तो हाथ मसलकर रह जाता है।

एक बार कंकु नवरात्री में अन्य युवतियों के साथ रास्ते की सफाई कर रही थी। अनजाने में उसका झाड़ू भरतसिंह के बैल को स्पर्श कर जाता है। बस आग बबूला होकर भरतसिंह कहता है–

''साली, भंगण तूने मेरे बैल को स्पर्श कर दिया।''[64]

भरतसिंह, कंकु को पा न सका था, इसलिए उसका बदला वह कंकु का अपमान करके लेना चाहता है। वह कंकु को बुरी तरह लकड़ी से पीटता है, और कंकु तड़पती रोने लगती है। कड़वी माँ को समाचार मिलता है और वह दौड़ते हुए वहाँ आती है। कंकु उससे रोते हुए कहती है–

''माडी, हमने कौन से जन्म में पाप किया है कि इन राजपूतों के गाँव में पड़े हैं।''[65]

कड़वी माँ कहती है–

''होगा ! बेटी, ऊपर बैठा हुआ मेरा प्रभु सब कुछ देख रहा है। उसके घर देर है अंधेर नहीं।''

कंकु कहती है–

''माडी, मैंनें ऐसा कौन–सा अपराध किया था कि मुए ने मुझे जानवरों की तरह पीटा और अधमरा कर दिया ! कहाँ है तुम्हारा भगवान। क्या उसे भी कुछ दिखाई नहीं देता ! अरे ! माडी मैंनें उसे कहाँ स्पर्श किया था ! गलती से मेरी झाड़ू उसके बैल को छू गई थी! उसमें उसने मेरी यह हालत कर दी ! मेरी अंबामाँ उसे देखलेगी..... ।''[66]

अपने दलित होने का दुख कंकु को था। वह नहीं समझ पाती है कि उनके साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार क्यों किया जाता है ? ईश्वर ऐसा अत्याचार देखकर भी क्यों कुछ नहीं करते हैं। अस्पृश्यता का दुख उसे सदैव ही झेलना पड़ा था। इसीलिए वह भरतसिंह के खेत में मजदूरी करना नहीं चाहती थी, किन्तु पेट आखिर उसे मजबूर कर देता है।

ईश्वर ने भरतसिंह को दण्ड आखिर दे ही दिया एक बार दोपहर को पेड़ के नीचे बैठे हुए भरतसिंह को जहरीला साँप डँस लेता है। उसकी माँ अपने इकलौते बेटे की गंभीर हालत देखकर तड़प उठती है। गाँव के वैध सारा उपचार करके हार जाते हैं। स्थिति ऐसी हो जाती है कि उसका बचना मुश्किल लगने लगता है। तभी एक व्यक्ति भरतसिंह की माँ को बताता है कि हमारे दलितवास में कड़वी माँ की पोती कंकु ने कई लोगों की जान बचाई है, उसे जहर चूसकर निकालना आता है। दूर खड़ी कंकु को काशीमाँ हाथ पकड़कर भरतसिंह के पास लाकर खड़ा करते हुए कहती है–

''बेटी, मेरा बेटा मर रहा है और तू बिल्कुल अनजान बनकर ऐसे एक कोने में खड़ी है। अरे। बेटी तू किसका इंतेज़ार कर रही है। यदि तू मेरे

भरत का जहर उतार कर उसे खड़ा कर देगी तो मैं तुझे बेटी, सोने से लाद दूँगी।''[67]

जीवन भर अस्पृश्यता का पालन करने वाली काशीमाँ बेटे के प्राणों की रक्षा के लिए यह भेदभाव स्वयं भूलकर कंकु के समक्ष सहायता माँगती है। भरतसिंह से घोर घृणा करने वाली कंकु काशी माँ के आँसुओं के समक्ष पिघल जाती है और भरतसिंह का जहर अपने मुँह से चूसकर निकालती है। थोड़ी देर में भरतसिंह को होश आ जाता है। वह उठ खड़ा होता है और लोगों की भीड़ देखकर उन्हें डाँटने लगता है। अपने बेटे को स्वस्थ देखकर काशी माँ का ध्यान कंकु की ओर जाता है, जिसने उसे जीवनदान दिया था। खुशी से वह अपना दस तोले का हार कंकु को भेंट में देती है। भरतसिंह यह देखकर कंकु को डाँटने लगता है, और कहता है कि यह हार मुझे दे दो। अपने माता–पिता को भी भला–बुरा कहने लगता है। पिता मोहनसिंह जानते हैं कि उसकी यह आवाज़ जो निकल रही है वह कंकु का उपकार है उस पर।

कंकु स्वयं हाँफते–हाँफते आकर महाकाली का रुप धारण करके उसके सामने हार फेंकते हुए कहती है–

''फट रे भूंडा । (दूर हट मूर्ख) तूझे तो मरने देना था, बेशर्म तेरा हार तू ही रख किसी रोज तुझे गले में फाँसी खाने के लिए काम में आएगा। तूझे। छूकर तो मेरा जीवन अस्पृश्य हो गया। उस दिन तो मैंनें तेरे बैल को स्पर्श किया था। आज तेरे अंगूठे को चूस–चूस कर तेरा पूरा शरीर अस्पृश्य किया है। बुरा लगा हो तो इस हँसिए से अपना अंगूठा काटकर तेरे खेत में उस कुएँ में फेंक कर गंगा में डूबकी लगा आना।''[68]

उपकार का बदला अपकार में पाकर कंकु अबला में से सबला का रुप धारण करके नारी शक्ति का परिचय देती है। वह भरतसिंह को यह ऐहसास दिला देती है, कि उसे यह जीवनदान एक अस्पृश्य लड़की ने दिया है, यदि उसे स्वीकार है, तो उसे अपने व्यवहार पर शर्म आनी चाहिए। कंकु का उपकार भरतसिंह के माता–पिता स्वीकार करते हैं किन्तु भरतसिंह अहंकारी पुरुष है मानवता का पाठ उसे कंकु सीखाती है, कि सबसे ऊपर यदि कोई धर्म है, जाति है, तो वह मात्र मानवता है।

प्रस्तुत कहानी में मनोवैज्ञानिक धरातल पर खरी नहीं उतरती। कंकु उस व्यक्ति को जीवनदान देती है, जिसने उसे पशुओं की भाँति पीटा था। वही व्यक्ति कंकु को दोबारा अपमानित करता है। यह बात कुछ अलग लगती है। भरतसिंह को कोई पश्चाताप करते नहीं दिखाया गया है, उसका अहंकार शुरु से अंत तक वैसा ही बना रहता है, जबकि कंकु शुरु से अंत तक अपमानित होते दिखाई गई है। कहानी में अस्पृश्यता के कारण दलितों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया गया है। गरीबी, लाचारी के कारण दलित सवर्णों द्वारा किए गए अत्याचार को सहने के लिए विवश हैं। ईश्वर के अतिरिक्त उनकी प्रार्थना सुनने वाला कोई नहीं है।

4. <u>कदाच (शायद) –स्वप्निल महेता</u>

प्रस्तुत कहानी में दलित अमला और जड़ी की झोंपड़ी में कोई आग देता है। दोनों बेघर होकर दुःखी हो जाते हैं। एक तो गरीबी उस पर सिर से छाया भी छीन ली गई। ऐसे अवसर पर गगुभा जो कि गाँव के चुनाव में खड़े हुए थे, मौके का फायदा

उठाते हैं। अमला और जड़ी गगुभा के अत्याचारों को सहते आए थे किन्तु आज उनका रुप बदला हुआ था। आज गगुभा अमला और जड़ी का नया घर बनवाने और उनकी मदद करने के लिए आते हैं। वास्तव में गगुभा अपने विरोधी चुनाव में खड़े मास्टरजी को इस झोपड़ी जलाने का जिम्मेदार ठहराना चाहते हैं, ताकि लोगों की दृष्टि में वे गिर जाएँ साथ ही अमला को घर बनवाकर देते हैं ताकि गाँववालों की नज़रों में ऊँचा और महान व्यक्ति सिद्ध हो सकें।

अमला तो गगुभा के इस नए अवतार से बड़ा आश्चर्यचकित रह जाता है क्योंकि छोटी–छोटी बात पर दलितों को अमानवीय रुप से पीटने वाला गगुभा आज बड़ी विनम्रता से, प्रेम से, बड़े भाई की तरह उससे बातें कर रहा था। अमला उसकी मीठी–मीठी बातों में फँस न जाए इसलिए जड़ी उसे एक कोने में ले जाकर कहती है–

''मैं कहती हूँ, इस मुए की बात में न आना।''[69]

जड़ी ने अपने जीवन में गगुभा जैसे बहरुपिये को पहचानने का नज़रिया सीख लिया था। वह जानती थी कि बिना स्वार्थ के, ये कभी किसी की मदद तो दूर, दो मीठे बोल भी नहीं कह सकते। इसलिए वह नहीं चाहती थी, कि अमला गगुभा की बातों में आए, किन्तु अमला तो पाले हुए कुत्ते की भाँति मदद के लोभ में गगुभा के पीछे–पीछे चल देता है। पति की अनुगामिनी जड़ी मजबूरन अमला के साथ चला देती है।

गगुभा को चुनाव जीतने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण मिल जाता है कि उसने अमला और जडी की दयनीय स्थिति देखकर उनकी मदद की है। लोग मास्टरजी से नाराज़ हो जाते है और गगुभा से प्रसन्न। गगुभा अपने षडयंत्र में सफल हो जाता है और चुनाव में उसकी जीत होती है।

गगुभा की बुरी दृष्टि जड़ी पर रहती है किन्तु उसे पाने का अवसर गगुभा को नहीं मिल पाता। जड़ी भी गगुभा के बुरे चरित्र को जानती है। वह उससे दूर ही रहना चाहती है। अमला इन बातों से अनभिज्ञ गगुभा के उपकारों के बदले उसे महान समझने लगता है वह गगुभा से कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहता है–

''मेरे दाता, मेरे पालनहार, आपने तो हमें छत्रछाया दी है। यह अमला आज से आपका गुलाम है।''[70]

गगुभा तो अमला का उपयोग कर रहा था, चुनाव जीतने के लिए किन्तु अमला उस षड़यंत्र को उसका उपकार समझने की भूल करता है। वह जड़ी से भी कहता है–

''देखी जड़ी यह गगुभा जैसा बड़ा आदमी, अपने सगे भाई से भी अधिक मुझे महत्त्व देता है।''[71]

जिस गगुभा की बुरी नज़रों से जड़ी बचती थी, उसी की तारीफ अमला करता है। एक बार अमला को बूरी तरह पीटने वाला यही गगुभा था, जो आज रुप बदलकर उसकी मदद कर रहा था। जड़ी को अमला की फिक्र थी साथ ही अपनी आबरु की भी।

चुनाव में हारे हुए मास्टरजी का बेटा अपना बदला लेने के लिए अमला की झोंपड़ी जला देता है। जड़ी और अमला एक बार फिर बेघर हो जाते हैं। इस बार उन्हें रोना आता है, किन्तु रो नहीं पाते। हतप्रभ दृष्टि से जलती झोंपड़ी को देखते रह जाते हैं।

सुबह होते ही उन्हें विश्वास था कि गगुभा उनकी खोज–ख़बर लेने अवश्य आएँगे। दोपहर तक जब कोई नहीं आया तो जड़ी की सलाह पाकर वह गगुभा के घर जाता है। गगुभा को चुनाव में अमला और जड़ी ने मदद की थी इसलिए उन्हें विश्वास था कि घर जल जाने से एक बार फिर वे उनकी मदद करेंगे। गगुभा ने स्वार्थवश उनकी मदद की थी इसलिए आज वह उन्हें आश्वासन देने भी नहीं आया था।

गगुभा की बुआ के बेटे को अमला कहता है कि, गगुभा से कहो कि अमरतभाई (अमला) आये हैं। इस पर वह कहता है–

''अरे साले अमला तू भला कब से अमरतभाई हो गया साला नीच।''[72]

अमरा अमला का अपमान करता है और उसे धक्का मारता है। वह दूर जाकर गिर जाता है। यह दृश्य गगुभा दूर खड़े होकर देखते हैं। और हँसते हैं। अमला अपना आदमी है यह कहकर हँसते हुए चले जाते हैं। अमला को जितना दर्द उसके धक्का मारने से नहीं लगा था। उससे कहीं अधिक चोट उसके दिल पर गगुभा के इस बदले हुए व्यवहार से लगी थी। रात को जली झोंपड़ी से जो पीड़ा उसे नहीं हुई थी, वह अभी हो रही थी, वह चाहकर भी रो नहीं पा रहा था। आखिर उसे रोना आ ही जाता है, निराश होकर वहाँ से वह जाने लगता है अचानक वह पीछे मुड़कर देखता है, कि शायद (कदाच) गगुभा उसकी एक बार फिर मदद कर दें। लाचार अमला के भोले मन को अभी–भी गगुभा से आशा है।

प्रस्तुत कहानी में गरीब, लाचार दलित को थोड़ी सी मदद करके स्वार्थी गगुभा का षड़यंत्र सफल हो जाता है। दलितों के मन में सवर्णों के प्रति अच्छे व्यवहार से आशा की एक किरण नज़र आती है। गगुभा गिरगिट की तरह रंग बदलता है। जड़ी की शंका सही साबित होती है। कहानी का अंत मेलो–ड्रामेटिक है। कहानी का शीर्षक 'शायद'(कदाच) अमला के मन की आशा का प्रतीक है, जो उचित है।

5. 'रोकड़ी'–चंद्राबहन श्रीमाली

'रोकड़ी' कहानी की लेखिका चंद्राबहन श्रीमाली स्वयं सांसद रह चुकी हैं। प्रस्तुत कहानी में उनके राजकीय अनुभवों का उपयोग किया गया हैं ऐसा लगता है। कहानी में दो नारी पात्र हैं, रंभामा और यशोदा स्त्री आरक्षण आने पर सवर्ण रंभामा को टिकिट मिलती है। भारी संख्या से उसे वोट मिलते हैं और वह जीत जाती है। चुनाव में जीतने के पश्चात् रंभाबहन का बफादार ड्राईवर अर्थात् यशोदा का पति बेबो एक्सिड़ेट में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसकी मृत्यु के बाद पंचायत के रहेम पर उसे एक स्कूल में पानी पिलाने की नौकरी मिल जाती है। यह स्कूल उसके घर से बहुत दूरी पर था, जिससे याशोदा को वहाँ आने–जाने में मुश्किले उठानी पड़ती थी। गंगाराम नामक व्यक्ति यशोदा को हमेशा छेड़ता था, जिससे परेशान होकर यशोदा अपना तबादला अपने ही गाँव में करवाने के लिए रंभाबहन से शिफारिश करती है, किन्तु रंभा बहन उसकी ओर ध्यान नहीं देती।

रंभाबहन आखिर यशोदा का तबादला तो कर देती है, किन्तु रिश्वत के तौर पर उससे एक–दो हज़ार रुपये प्राप्त करना चाहती है। रंभाबहन की जीप का नया ड्राइवर गंगाराम यशोदा नौकरी पर से लोटती है, तब रास्ते में उसे जीप में बैठाकर मौके का फायदा उठाकर उसे अपने जाल में फँसाना चाहता है। रंभाबहन का पति भी यशोदा

से आकर्षित होता है, यहाँ से कहानी में मोड़ आता है। रंभा का पति उसे यशोदा का तबादला करवाकर अपने घर में उसे बुलाने का प्रस्ताव रखता है। वह सोचता है कि–

''यदि वह अपने घर में आती–जाति रहेगी तो एक दिन मेरे भी काम में आएगी।''[73]

यह सुनकर रंभाबहेन को अपने पति के बुरे विचारों के विषय में शंका हो जाती है। रंभाबहन सोचती है, कि यदि यशोदा तबादला कर दिया जाय तो वह नज़रों से दूर रहेगी। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसूरी। चतुर रंभा बहन पानी बहे उससे पहले ही क्यारी बना देती है। दूसरी ओर एक विधवा स्त्री यशोदा का काम हो जाए तो उसका भी पुण्य रंभा को मिलेगा। कहानी के अंत में रंभाबहन द्वारा कहे गए शब्द बड़े ही मार्मिक हैं जो कहानी को नया परिणाम देते हैं–
रंभाबहन कहती है–

''वह सुखी रहेगी तो मुझे तो पुण्य मिलेगा। किसी का भला हो तो रुपया भले जले। किसी के गूँगे आशीर्वाद मिले वह एक रोकडी(धन) ही कहा जाएगा न।''[74]

यहाँ 'रोकड़ी' शब्द में रहे व्यंग्य को पाठक सरलता से भाँप जाते हैं। एक्सिड़ेट में रंभाबहन को तो खरोंच भी नहीं आई थी किन्तु उसे देखने बडे–बड़े लोग हाजिर होते हैं, किन्तु दलित की मौत पर भी कोई उसके परिवार को सांत्वना देने नहीं पहुँचता। यहाँ अस्पृश्यता सवर्णों को मानवता के धर्म से पीछे धकेल देती है। यशोदा एक अछूत स्त्री है, दलित है, इसलिए उसके दिए हुए पानी को कोई पीना नहीं चाहता। कहानी में राजनीति के छल–छद्भ पर भी बखूबी प्रकाश डाला गया है।

6. 'गोरुचंदन'–भी.न.वणकर

प्रस्तुत कहानी में दलित नारी रामीबहन की मनोसंवेदना की प्रस्तुती की गई है। रामीबहन ने अपने पुत्र लालिया का बलिदान करके लकवे के रोग से पीड़ित बच्चे की रक्षा की थी। सवर्ण रुखी उससे कहती है–

''हम कहाँ अलग हैं रामली तेरा दूध और दवा पिला दे, अब क्या बाकी रहा है तो ले कचरा को थोड़ा.....थपथपाकर, मेरी बहन, मेरे लिए..... भगवान तेरा भला करेगा, ऐसा करने से यदि कचरा ठीक हो जाएगा तो बस ! तेरा उपकार।''[75]

सवर्ण रुखी की प्रार्थना रामीबहन स्वीकार लेती है और एक जीव को बचाने के लिए एक दलित नारी महासमर्पण करती है। यह प्रसंग कहानीकार ने समाज की स्वार्थभरी नीति को भी प्रकट किया है, जिसमें स्वार्थ के समय यह समाज को जाति का कोई भेदभाव नहीं असर करता, किन्तु बाद में यह सभी जारी रहता है। रामीबहन कचरा को स्तनपान कराती है, जबकि उसके सामने झूले में पड़ा हुआ लालिया बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगता है। एक ओर छःमहीने से भूखा कचरा रामीबहन का हृदय अमृतपान कर रहा था। दूसरी ओर उसका स्वयं का पुत्र भूख से तड़प रहा था, लालिया अपने अधिकार को छिनते हुए नहीं देख पा रहा था। अचानक झूले में से

लालिया गिर जाता है और लालिया की एक चीख उसकी अंतिम चीख बन जाती है। रामीबहन की चीख निकल पड़ती है। कचरा को जीवनदान उन्होंने दिया, किन्तु अपने प्रिय पुत्र का बलिदान देना पड़ा। यह समग्र प्रसंग गहरे करुण रस में से गुजरता है। वाचक की आँखों में आँसु आ जाते हैं।

वर्षों बाद आज रामी बहन शहर से अपने गाँव लौटती है। कचरा के प्रति रामीबहन को अत्यंत स्नेह था। कचरा रामीबहन से शहर से क्लर्क की भरती के लिए फोर्म मंगवाता है। यह घटना प्रक्रिया भी कहानीकार ने सूक्ष्म निरीक्षण के साथ प्रस्तुत की है, जिसमें कचरा रामीबहन को फोर्म के रुपये देता है। यह रुपये वह ऊँचा हाथ करके दूर से देने का प्रयास करता है, इसी समय घटना प्रसंग बदलता है। कानजी नामक दलित युवक कचरा को संबोधित करते हुए कहता है कि उसका दूध गिर रहा है। इस पर कचरा कानजी को दूध का स्पर्श न करने की सलाह देते हुए उसका अपमान करता है। इस घटना से कचरा के प्रति प्रेम क्षणिक समय में ही रामीबहन के हृदय में से समाप्त हो जाता है। एक दलित जाति के कारण बिना अपराध के इतना अपमान ? रामीबहन के दिलोदिमाग में घमासान युद्ध होने लगता है। कचरा का यह व्यवहार रामीबहन के हृदय को गहरा आघात पहुँचाता है। रामीबहन की बस आ जाने पर वह उसमें बैठ जाती है और अतीत की यादों में खो जाती है। जिस अतीत में उसने अपने पुत्र का बलिदान देकर कचरा को जीवनदान दिया था।

बस रुकने पर रामीबहन वर्तमान में लौट आती है। घर पहुँचकर लालिया का फोटो देखकर रामीबहन सोचती है कि लालिया का बलिदान व्यर्थ गया। उदास नज़रों से लालिया के फोटो को एक–टक निहारने लगती है और कह उठती है–

''इससे अच्छा होता कि मैंनें उसे गोरुचंदन न पिलाया होता तो ?''[76]

यहाँ चरसीमा देखी जा सकती है। रामीबहन के हृदय को कितनी ठेस पहुँची होगी उसकी तो कल्पना ही की जा सकती है। कचरा का व्यवहार मनुष्य के मन को झकझोर देने वाला है। यहाँ वराध के रोग के इलाज के रुप में उपयोग किया जाने वाला 'गोरुचंदन' सवर्ण और दलित समाज के बीच रही हुई अस्पृश्यता की खाई को नहीं भर सकता।

कहानीकार ने एक घटना को केन्द्र में रखकर कहानी को बहुत सूक्ष्मतापूर्वक सजाया है। संपूर्ण कहानी में मानवीय भाव, अवहेलना, करुणा, नफरत, ममत्व, मातृत्व और बलिदान जैसे भावतत्त्व से निखार आ गया है। फ्लेशबेक का उपयोग करके कहानीकार ने रामीबहन के वर्तमान और भूतकाल को एक सूत्र में बाँध कर पाठकों को अंत तक बाँधने में सफलता प्राप्त की है।

7. 'एबोर्शन'–हरीश मंगलम्

प्रस्तुत कहानी **'एबोर्शन'** में हरीश मंगलम् ने दलित शिक्षित नारी की समस्या को प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका इन्दु का विवाह दिनेश से होता है। इन्दु गर्भवती बनती है किन्तु पी.टी.सी. कोलेज के नियमानुसार इन्दु होस्टल में नहीं रह सकती थी। ऐसी स्थिति में उसे पहले गर्भ का एबोर्शन करवाना पड़ा।

पी.टी.सी. के बाद इन्दु और दिनेश दोनों को शिक्षक की नौकरी मिल गई। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई। दूसरी बार इन्दु गर्भवती बनती है। डॉक्टर की सलाह के अनुसार वह अपना पूरा ध्यान रखती है। ऐसी स्थिति में उसके रिश्तेदारों में से

कोई उसकी मदद के लिए नहीं आता। इन्दु को डॉक्टर बेड रेस्ट के लिए कहते है तब दिनेश घर का काम और नौकरी दोनों करने में परेशान हो जाता है। इन्दु की स्थिति खराब हो जाती है और दूसरा एबोर्शन कराया जाता है। इस तरह चार–पाँच बार एबोर्शन हो जाता है किन्तु इन्दु माँ बनने का सुख नहीं देख पाती।

एक प्रसिद्ध डॉक्टर से इन्दु का इलाज कराया जाता है। डॉक्टर की सलाह के अनुसार इन्दु को गर्भ ठहरने पर पूरा आराम मिलना चाहिए। दिनेश फिर से चिंता में पड़ जाता है। इन्दु पति की समस्या समझती है, किन्तु लाचार है। इस समस्या के समाधान के लिए दोनों तय करते हैं कि घर के कामकाज के लिए एक नौकरानी रख ली जाए। पास में ही एक रबारी की लड़की काम करती थी। उसे काम के लिए रखा गया। ढाई महिने के बाद उसने काम छोड़ दिया। इन्दु की प्रसूति को अभी ढाई महिने बाकी थे। दिनेश फिर परेशान हो जाता है।

वास्तव में रबारी की लड़की इसलिए काम छोड़ देती है, क्योंकि उसे पता चल जाता है कि इन्दु और दिनेश दलित जाति के हैं। गर्भवती इन्दु की स्थिति ठीक नहीं थी। ऐसी अवस्था में न तो उसका परिवार उसकी मदद करता है न ही उसे कोई नौकरानी ही मिलती है। दिनेश के अलावा कोई उसका सहारा नहीं बनता। बड़ी मुश्किल से एक बंजारे की लड़की काम पर आना शुरु करती है। इन्दु और दिनेश उस लड़की को अपने ही परिवार के सदस्य की तरह रखने लगे। लड़की का काम अच्छा होने से दोनों निश्चिंत हो गए।

इन्दु की प्रसुति को आठ दिन बाकी थे, उसी समय नौकरानी की माँ मोंघी को इन्दु के दलित होने का पता चलता है। मोंघी अपनी बेटी को काम पर जाने से मना कर देती है। मोंघी का कहना था कि–

> **''भले ही वे बड़े साहब हों, पर नीची जाति कही जाएगी। उसका काम नहीं हो सकता। ये तो पूरे–इसाई हैं।''**[77]

एक बंजारीन जिसके स्वयं के सिर पर छत न हो ऐसी स्त्री भी अस्पृश्यता, रुढ़िवाद को अधिक महत्त्व देती है। मानवता से भी ऊँची अस्पृश्यता बन जाती है। भले ही गरीबी में ये लोग जी लें किन्तु दलित के घर काम करना उनकी दृष्टि में उचित नहीं था। यहाँ लेखक ने अस्पृश्यता का प्रश्न सवर्ण के समृद्ध व्यक्ति से न कराकर एक गरीब बंजारन से करवाया है। हमारे समाज में अस्पृश्यता सिर्फ धनी–सम्पन्न सर्वणों में ही नहीं गरीब, अस्थाई जीवन जीने वाले भी इस भेद–भाव को मानते दिखाए गये हैं।

अंत में इन्दु एक पुत्र को जन्म देती है दिनेश अत्यंत प्रसन्न होता है किन्तु जब उसे इस भेद–भाव का पता चलता है, तो जैसे उसकी सारी खुशी गायब हो जाती है। वह गहरी सोच में डूब जाता है।

एक पढ़ी–लिखी इन्दु को दलित होने के कारण ऐसी स्थिति में किसी की सहायता नहीं मिलती, जब उसे सबसे ज्यादा ज़रुरत थी। अधिक रुपया देने के बावजूद कोई नौकरानी उनके घर काम नहीं करना चाहती। इन्दु का अच्छा व्यवहार, संस्कार, प्रेम, शिक्षा, शिक्षिका होना कोई मायने नहीं रखता क्योंकि वह दलित है, उसके सारे गुण, दोष बन जाते है। इससे पता चलता है कि एक दलित भले ही उच्च्व पद पर पहुँच जाए या धनी बन जाए किन्तु वह दलित होने से कभी वह मान–सम्मान, प्रेम नहीं पा सकता। अस्पृश्यता उसका पीछा नहीं छोड़ती।

8. 'गंगामाँ'–दलपत चौहान

कहानीकार दलपत चौहान अपनी कहानी **'गंगामाँ'** के विषय में लिखते हैं कि–

> **''गंगामाँ कहानी की नायिका गंगामाँ हमारे गाँव के नज़दीक के गाँव की है। अब वे नहीं हैं। यह कहानी मैंनें उनके मुँह से सुनी थी। उनकी आँखें खून से भरे हुए (थीजेला जमे हुए) आँसु टपके ही नहीं, आँखों में भरे ही रहे, कितनी वेदना थी उन रुके हुए खारपन में।''[78]**

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने सवर्णों की उपयोगितावादी व्यवहार पर कटाक्ष किया है, जो आवश्यता होने पर दलितों का जी भरकर उपयोग करते हैं और फिर अस्पृश्यता का बहाना करके उनसे मुँह फेर ले ते हैं। उनकी ऐसी मानसिकता किस हद तक विकृतरुप धारण कर सकती है यह 'गंगामाँ' कहानी में देखा जा सकता है। 'गंगामाँ' कहानी की नायिका हैं, जो एक दलित स्त्री हैं।

कहानी की शुरुआत में मुखिया रायसंग के पुत्र पथु की पत्नी बीमार है। तीन–चार दिनों से प्रसूती की पीड़ा से तड़प रही है किंतु उसे उस पीड़ा से मुक्ति नहीं मिलती। कई दाई आई लेकिन कोई कुछ नहीं कर पाया। अंत में न चाहते हुए भी दलित दाई गंगामाँ को बुलाया गया। गंगामां दाई के कार्य में कुशल थीं और ऐसे अवसर पर एक स्त्री होने के नाते भी वे प्रसूती में तड़पती महिला की मदद करने दौड़ पड़ती थीं। गंगामां बिना विलंब किए आ जाती हैं। मुखिया गंगामां के आने से पूर्व ही वह किस तरह से आए, ताकि घर अशुद्ध न हो, इसलिए अपनी बेटी को समझा देता है। घर से वे सभी वस्तुएँ हटा दी जाती हैं, जो अशुद्ध हो सकती थीं। गंगा माँ पर मुखिया की पुत्री राजी अपनी नाक में पहने हुए नथ को एक कटोरे में रखकर सोने के पवित्र पानी से गंगामा पर छींटे डालती है। इससे पहले भी दो बार पथु की पत्नी का गर्भपात हो चुका था, गंगामां अपने अनुभव की सूज–बूझ से बच्चे को जन्म दिलवाती हैं। माँ–बेटे गंभीर स्थिति से सुरक्षित बच जाते हैं। घर में आनंद का वातावरण छा जाता है, किन्तु इस अनोखी खुशी को उन्हें देने वाली गंगामाँ के जाने के पश्चात् घर को फिर से पवित्र किया जाता है। स्वार्थी सवर्ण अपने काम के पश्चात् गंगामाँ का अहसान भूल कर अस्पृश्यता की धारणा को नहीं भूल पाते। बहू और पोते को भी नहलाया जाता है उन्हें भी सोने के पानी से शुद्ध किया जाता है। वे सभी स्त्रियाँ अपने घर नहाने चली जाती हैं, जिन्होंने गंगामाँ का स्पर्श किया था। मुखिया का पूरा घर पवित्र किया जाता है, ताकि गंगामाँ के स्पर्श की अशुद्धता दूर हो सके। गुदड़ी, चादर, साड़ी आदि सभी चीज़ें घर से बाहर निकालते हुए मुखिया की पत्नी कहती है–

> **''राजी.....ओ.....राजी यह गुदड़ी, चादर, साड़ी उस समझदार बुढ़िया को बुलाकर दे देना।''[79]**

सवर्णों की यह अंधश्रद्धा जिसमें, यह कहा जाता है, कि दलित का स्पर्श होने पर यदि स्वर्ण के पानी से छींटे लिए जाएँ तो वह शुद्ध हो जाता है। ऐसी वर्षों पुरानी, खोखली, सड़ी हुई अंधश्रद्धा को यहाँ देखा जा सकता है। जिस स्त्री ने उन्हें इतनी बड़ी मुसीबत से उबारा वह स्त्री उनके लिए महान होकर भी अस्पृश्य थी इसलिए हीन समझी जाती है।

कहानी में गंगामां की बहू पर मुखिया का बेटा पथु बलात्कार करता है, जिससे पुत्रवधु आत्महत्या कर लेती है। यह करुणता है दलितों की जिसमें उपकार का बदला अपकार से मिलता है। गंगामाँ यह देखकर व्यथीत हो जाती हैं। अस्पृश्यता का सर्प दलित स्त्रियों को छू नहीं सकता हैं। किन्तु उस पर बलात्कार कर सकता है। यह कैसी विडंबना है।

कहानी में गंगामां की पुत्रवधु पर पथु द्वारा किया जाने वाला बलात्कार उसके बाद पुत्रवधु की आत्महत्या यह कहानी का अंत मेलोड्रामेटिक लगता है। यदि गंगामाँ के जाने के पश्चात् घर को शुद्ध करने की बात पर कहानी का अंत बताया जाता तो यह अधिक उचित होता, क्योंकि पथु के चरित्र पर कहानी की शुरुआत में या मध्य में कहीं पर भी उसकी चरित्रहीन होने की बात पर प्रकाश नहीं डाला गया है और अंत में उसके ऐसे रुप को अचानक प्रस्तुत किया गया है।

हरीश मंगलम् द्वारा रचित 'दायण' कहानी का स्मरण यहाँ पर होता है। दोनों कहानी में अस्पृश्यता केन्द्रस्थान पर है किन्तु परिस्थिति, कथन, वर्णन आदि में अंतर है। गंगामाँ का चरित्र भी 'दायण' की बेनी माँ की तरह उदार, शांत और सेवाभाव से भरपूर है। गंगामाँ उदार दिल की हैं इसका परिचय तब मिलता है जब पथु की बहू की प्रसूति के पश्चात् वह भगा से वार्तालाप करती है–

> **''तो तुम्हारी साड़ी ये रही'' कहकर भगा हँसने लगा ''क्यों भाई ऐसा कह रहा है ? मुखिया जैसा मुखिया है न...'' ''गंगामाँ, वह तो मुखिया है, किसने मना किया, परंतु तुम्हारी साड़ी ?'' ''होगी, तो, देनी होगी तो देंगे''**[80]

गंगामाँ के उदार चरित्र के समक्ष सवर्ण मुखिया, पथु आदि पात्र छोटे नज़र आने लगते हैं। गंगामाँ का उपकार भूलकर उसकी पुत्रवधु पर बलात्कार करके गंगामाँ को दुःख पहुँचाता है पथु। कहानी में कहानीकार ने सवर्णों की दलितों के प्रति अस्पृश्यता की मानसिकता पर प्रकाश डाला है। कहानी में आंचलिक शब्दों के प्रयोग से पात्रों को जीवंत रुप मिल गया है।

9. 'रेड कार्पेट'–विट्ठलराय श्रीमाली

विट्ठलराय श्रीमाली की प्रस्तुत काहनी की नायिका प्रधान है। दलितों के समाज में आज कई परिवर्तन आए हैं, उस परिवर्तन को सवर्ण समाज किस रुप में स्वीकार कर रहा है, इसका चित्रण प्रस्तुत कहानी में देखा जा सकता है।

कहानी की शुरुआत में सपूर्ण गाँव को उत्साह के साथ फूलों से सजाया जा रहा है। स्त्री–पुरुष, बच्चे–बूढ़े सभी लोग मौजूद हैं। आज गाँव के दलित परिवार की लड़की जो पढ़–लिखकर कलेक्टर बन गई है, वह गाँव में सम्मान के लिए आमंत्रित की गई है। उसके स्वागत में सभी गाँव वासी दलितों के प्रति मन में रहे बुरे भाव को भूलकर उसका स्वागत करने के लिए तैयार है।

कहानी में नरभेराम पुजारी जो महादेव के मंदिर में रहता है। एक समय उसने इस दलित कन्या का अपमान करके उसे मंदिर से बाहर निकाल दिया था। तब शैली पूजा की थाली उस पूजारी नरभेराम के सिर पर मारकर वहाँ से चली जाती है। किशोरावस्था में ही जो हिंम्मत उसके पास थी, वही उसे कलेक्टर के पद तक ले जाती है। शैली माध्यमिक शिक्षा आश्रम में प्राप्त करके आई.ए.एस की परीक्षा पास करके

कलेक्टर के उच्च पद को प्राप्त करती है। यहाँ नायिका का दृढ़ मनोबल प्रकट होता है। पूजारी नरभेराम को अपने मित्र देवशंकर से जब पता चलता है कि इस मंदिर की जीमन और मंदिर का अधिकार उसे शैली के कारण वापस मिल पाया है, तो वह पश्चाताप में डूब जाता है।

पूजारी नरभेराम के प्रति नायिका के मन में अब अपमान का कोई डंख नहीं था। किन्तु पूजारी कृतज्ञ भाव से कलेक्टर शैली का स्वागत गाँव और मंदिर में करके, उसके हाथों पूजा–आरती करवाकर अपना प्रायश्चित करता है। गाँव के लोगों के बीच उसका सम्मान किया जाता है। यहाँ उच्च पद के कारण लोगो में समरसता का भाव देखा जा सकता है। शैली के सम्मान समारोह में मंदिर का पूजारी कहता है–

> **''आज गाँव की मिट्टी में से पैदा हुई यह बेटी स्वबल से पढ़कर आज इतने ऊँच पद पर है यह गाँव के गौरव की बात है। गाँब ने इस बेटी का सम्मान किया यह उचित किया है। यह देखकर गाँव की अन्य बेटियाँ भी पढ़कर पुरुषार्थ करके आगे बढ़ेगी। गाँव के मुखिया और अन्य सज्ज़नों का भी मैं आभारी हूँ। गाँव में ऐसी अनेक शैलबालाएँ जन्म लें ऐसा आशीर्वाद देता हूँ।''**[81]

पुजारी के वचन सुनकर अन्य मौजूद लोगों में दिल में रहा दलित भाव निर्मूल होता है। साथ ही अन्य दलित युवतियों को भी प्रोत्साहन मिलता है। शैली इस सम्मान को पाकर खुशी से रो पड़ती है और कहती है–

> **''आज मेरी आँखों में सुख के आँसू समा नहीं रहे हैं। मैं कल्पना नहीं कर सकती थी कि पूरा गाँव एक दलित की बेटी का इतना भव्य सम्मान करेगा। मुझे इस बात की खुशी है कि गाँव ने मुझे स्वीकार कर लिया है। गाँव की बेटी बना दिया है। भारत के सभी गाँव में यही भावना प्रगट हो जाए तो गाँधीजी का सच्चा स्वराज का सपना सिद्ध हो जाए। वर्ग विग्रह और वर्ग भेद अपने आप मिट जाए। गाँव के ऐसे प्रेम से मैं आज गद्‌गद् हो गई हूँ। इस गाँव का ऋण मैं कब चुका पाऊँगी ?''**[82]

यहाँ मोहन परमार की 'बरसाद' कहानी जैसी घटना याद आती है, जिसमें कहानी का नायक कलेक्टर के पद पर नियुक्त होकर अपने गाँव आता है। तब पडोसी और अन्य लोग उसे सामान्य युवक के रुप में देखते है। उसका शिक्षक भी उसे मान से नहीं देखता बल्कि मामलतदार से कहता है कि यह तो स्कूल में अन्य विद्यार्थियों की पेन–पेंसील चोरी कर लेता था। तब उसका अहं घायल होता है। उसे लगता है कि मैं जिले का कलेक्टर हूँ फिर भी मुझे मान–सम्मान नहीं दिया जा रहा, बल्कि अपमानित किया जा रहा है। अंत में उसका बड़ा भाई अपने छोटे भाई का सम्मान गाँव में करवाता है।

प्रस्तुत कहानी में परंपरागत दलित भेदभाव नहीं, किन्तु परंपरा से चले आ रहे भेदभाव से मुक्त समाज देखा जा सकता है। जब शहरों में यह भेदभाव नहीं रहा तो गाँवों में क्यों इसे निर्मूल न किया जाए ? यह प्रश्न भी सोचने वाला है ? जहाँ गाँव के अधिकतर लोग इस भेदभाव को भूलना चाहते हैं, वहीं गाँव के कुछ असामाजिक तत्वों से शैली का उच्च पद देखा नहीं जाता। वे उसे सम्मान समारोह में शैली पर पत्थर फेंकते

हैं। शैली को पत्थर सिर पर लग जाता है, वह घायल हो जाती है। खून निकलने लगता है। यदि वह चाहती तो उस युवक को सजा दिलवा सकती थी, किन्तु वह कहती है–

''छोड़ दो उसे। नादान है, परंतु मेरे गाँव का बेटा है न।''[83]

यह घटना कहानी का शीर्षक बनकर प्रकट होती है। यहाँ 'रेड कार्पेट' की ध्वनि स्पष्ट होती नज़र आती है। यहाँ एक प्रश्न भी उठता है कि इतनी उदारता किसलिए ? यह समय गाँधीजी का समय नहीं है कि कोई एक गाल पर तमाचा मारे तो उसके समक्ष दूसरा गाल कर दिया जाए।

कहानीकला के तत्त्वों की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी में कई कमियाँ देखी जा सकती है, परंतु यहाँ दलित संदर्भ मुख्य है। कहानी का अंत भी बड़ा साधारण है, कहानी का अंत करने में कहानीकार ने जरा जल्दी कर दी है। गाँव के मुखिया का यह वाक्य–

''परिश्रम गाँव की बेटी का है। गौरव हमें लेना है।''[84]

बहुत ही सूचक और हृदयस्पर्शी है। प्रस्तुत कहानी में दलित समस्या को कथा नायिका द्वारा लेखक ने दलितों के अस्पृश्यता की समस्या, साथ ही नारी चेतना आदि की ओर विशेष रुप में अभिव्यक्त कर सकते थे किन्तु यहाँ उसकी कमी रही है।

10. 'राजीनामा' (इस्तीफा)–बी.केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की प्रस्तुत कहानी की नायिका दलित सीमा एक शिक्षित युवती है। अपनी योग्यता के बल पर बड़ी मुश्किलों से उसे एक कॉलेज में अध्यापिका की नौकरी मिलती है। सीमा के घर में उसकी विधवा माँ, भाई और बहन थे। घर का खर्च साथ ही भाई–बहन की पढ़ाई सब सीमा पर ही आधारित था। देवन उसी कॉलेज में अध्यापक था, जो ब्राह्मण जाति का था। सीमा और देवन के बीच प्रेम संबंध स्थापित हो जाता है। उनका स्टाफ किसी दलित को ब्राह्मण से विवाह की बात सोच भी नहीं सकता था। इस संबंध की बात केम्पस, शहर और फिर प्रिंसीपल तक पहुँचती है।

प्रिंन्सीपल सीमा और देवन से त्यागपत्र माँगते हैं। इस पर सीमा का कथन था–

''सर यह हमारा निजी मामला है। कॉलेज के बाहर हम मिलें तो इसमें मेनेजमेन्ट को क्या परेशानी है ?''[85]

यदि सीमा उच्च वर्ण की होती तो बात इतनी नहीं बिगड़ती किन्तु निम्न वर्ण की सीमा उच्च वर्ण के देवन से प्रेम संबंध रखे या विवाह कर सके यह उच्च वर्ण की बहुमत वाला कॉलेज स्टाफ नहीं देख पा रहा था। गाँधीवादी विचारधारा वाले प्रिन्सिपल भी सीमा का अशुभ चाहने वालों की बातों में आ जाते हैं, स्थिति बिगड़ती जाती है। अब क्लास रुम में विद्यार्थी भी देवन का नाम लेकर सीमा से गंदा मजाक करते हैं। सीमा स्टाफ रुम में आकर रोने लगती है। देवन उस लड़के को तमाचा मारता है और फिर विद्यार्थियों का समूह देवन पर टूट पड़ता है। हालात ज्यादा बिगड़ने पर प्रिन्सीपल मगनभाई दोनों अध्यापकों से त्यागपत्र माँगते हैं। देवन तो अंत में त्याग पत्र दे

देता है, किन्तु सीमा चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकती थी। उसके इस कदम से उसका परिवार बिखर जाता, उसे अपनी जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए अपने निर्णय से डगमगाती नहीं। कॉलेज के ट्रस्टी जो पहले सीमा के विरोधी थे, बाद में सीमा की वकालत करने लगते हैं। मगनभाई को आश्चर्य होता है। मगनभाई हड़ताल पर उतरते हैं, विद्यार्थी, स्टाफ, अभिभावक सभी सीमा को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर करते हैं। सीमा मजबूरन त्यागपत्र दे देती है।

एक गरीब परिवार से संबंध रखने वाली दलित शिक्षित युवती को सहारा देने वाला देवन उससे दूर कर दिया जाता है। जो ट्रस्टी उसका पक्ष लेते हैं उन्हें भी गलत दृष्टि से देखा जाता है, कि उनका गलत संबंध सीमा से होगा। यह सारा षड़यंत्र सीमा के साथ सवर्ण समाज रचता है। सब कुछ जानकर भी सीमा अपने पक्ष को मजबती से नहीं रख पाती। मगनभाई की जिद् के आगे वह विवश हो जाती है। पूरा सवर्ण समाज सीमा को हाराकर अपनी जीत का जश्न मनाता है।

कुछ वर्षों बाद सीमा मगनभाई की निवृत्ती के पश्चात् उसी कॉलेज में प्रिन्सीपाल बनकर आती है। जिस अध्यापक ने मगनभाई के कान भरे थे उसे तो अब अपने किए की सज़ा मिलने ही वाली थी। सीमा एक पत्र मगनभाई को उनके गाँव के पते पर भेजकर अपनी सच्चाई को प्रकट करती है। वह लिखती है–

> **''सर, आपने मेरी गरीब स्थिति का भी ध्यान न किया ? देवन ने मेरे लिए त्यागपत्र दे दिया। उसे तुरंत दूसरी नौकरी मिलने वाली थी। मैंनं त्यागपत्र दिया होता तो मेरी दलित जाति के कारण मुझे तुरंत नौकरी मिल जाने वाली थी ? यह नौकरी भी मुझे कितने इन्टरव्यु देने के बाद मुश्किल से मिली थी, जो आप अच्छी तरह जानते हो।''**[86]

मगनभाई एक सवर्ण व्यक्ति होने से पहले एक प्रिन्सीपाल के कर्त्तव्य का पालन सही ढंग से नहीं कर पाए थे, जिस गलती को वे करके भूल गए थे, वर्षों बाद सीमा के पत्र ने उन्हें उस गलती का ऐहसास दिलाया था। निष्ठावान, परिश्रमी सीमा के गुणों को जानते हुए भी अपनी जातिगत अहंकार को शांत करने के लिए मगनभाई और स्टाफ मेम्बर सीमा के साथ नाइंसाफी करते हैं। देवन ब्राह्मण था, किन्तु नए विचारों का, सिद्धांतवादी युवक था। उसने सीमा के खिलाफ अफवाहों में न जाकर उसका साथ जीवनभर देने के लिए उससे विवाह कर लिया। जिस कारण यह षडयंत्र रचा गया था, वह तो सवर्णों के न चाहने पर भी सीमा के पक्ष में रहा। सीमा मगन भाई को पत्र में लिखती है–

> **''मैं दलित जाति की हूँ इसलिए एक ब्राह्मण अध्यापक के साथ प्रेम नहीं कर सकती ? मैं देवन का आभार मानती हूँ। उसकी उम्र आपसे कम है, फिर भी अंतिम पल तक विचलित करने वाली ख़बरें अपप्रचार के समक्ष वह टीका रहा था। सर, खादी पहनने से अज्ञात मन में पड़े जातिगत संस्कार बदलते नहीं, मिटते नहीं। आपकी यह पुरानी पीढ़ी जब तक पूरी नहीं होगी तब तक इस मानसिक अस्पृश्यता को दूर नहीं किया जा सकता।''**[87]

सीमा मगनभाई को अपनी पवित्रता का परिचय देती है, कि यह ज़रुरी नहीं है कि कोई दलित स्त्री अपने आत्मसम्मान को बेचकर ही उच्च पद पर पहुँच

सकती है। अपने परिश्रम, सिद्धांत, उच्च विचारों, निडरता, आत्मसम्मान, स्वाभिमान के बलबूते पर सीमा उसी कॉलेज में आचार्य बनती है, जहाँ से उसे बेइज्जत करके, षडयंत्र रचकर निकाला गया था। यह मात्र सीमा की जीत नहीं थी, उसके जैसी अन्य स्त्रियों की जीत भी थी, जो परिश्रम करके अपने लक्ष्य तक पहुँचती हैं। सीमा के विचारानुसार आज की नई पीढ़ी जातिगत भेदभाव को छोड़कर आगे बढ़ रही है, ज़रुरत है कि पुरानी पीढ़ी भी इस जातिगत संस्कारों को, अस्पृश्यता को छोड़कर उनके साथ कदम–से कदम मिलाए।

प्रस्तुत कहानी में शिक्षित सीमा संघर्ष करती है अपनी नौकरी के लिए, कुछ समय के लिए सवर्ण उसे हराकर अपनी झूठी शान, अहंकार को ठंडक पहुँचाते हैं, किन्तु जीत अंत में सीमा की ही होती हैं क्योंकि सत्य का पलड़ा हमेशा भारी होता है।

11. 'गूँगी चीख'–हरीशकुमार मकवाणा

कहानी का मुख्य पात्र छगन एक दलित युवक है। छगन एक शिक्षक है। छगन के माता–पिता ने महेनत–मजदूरी करके उसे शिक्षित बनाया है। छगन की नौकरी उस गाँव में लगती है, जहाँ दलितों का नामोनिशान नहीं था, मात्र सवर्ण प्रजा का ही उस गाँव में राज था। ऐसी स्थिति में जब दलित छगन वहाँ स्कूल में शिक्षक बनकर जाता है, तो पहले तो सभी विद्यार्थी उसका आदर–सत्कार करते हैं लेकिन जब वे छगन से उसकी जाति पूछते हैं तो छगन झूठ न कहकर सच बताता है। सत्य जानकर तो जैसे सभी बदल जाते हैं। स्कूल में विद्यार्थियों की हाजिरी कम रहने लगती है। गाँव के लोग, स्कूल के चेरमेन उसे समझाते हैं कि तुम यहाँ से चले जाओ नहीं तो ये लोग तुम्हें छोड़ेंगे नहीं।

इस प्रकार हर दिन कोई–न–कोई नई समस्या छगन के सामने आने लगी। एक दिन तो ऐसा आया कि उसने यह तय कर लिया कि मेरा यहाँ से चले जाना ही उचित होगा। क्योंकि वह अपनी माँ को इस उम्र में अपने बेटे की मृत्यु पर आँसू बहाते नहीं छोड़ सकता था। उसे लगा कि–

> **''मेरी बूढ़ी माँ को ये सवर्ण लोग छोड़ दे ऐसा नहीं है। उसी तरह मेरी पूरी जाति को परेशान कर दें ऐसे लोग हैं। सरकार एकाद को रोक सकती है लेकिन सभी को सभी विषयों पर कम नहीं कर सकती है ?''**[88]

बीमार छगन की माँ अपने इकलौते बेटे की बुरी दशा देखकर चिंतित हो जाती है। अपने बेटे की ज़िंदगी से बड़ा उसके लिए कुछ नहीं है। सवर्ण बड़े लोग उनके जैसे गरीबों को अपने समक्ष तुच्छ समझते हैं। बीमार छगन को लेकर माँ अहमदाबाद में बहुत इलाज करवाती है। किन्तु छगन नहीं बचता। छगन की निराधार माँ अस्पृश्यता के कारण पुत्र को खोती है वास्तव में छगन की मृत्यु छुआछूत और नौकरी के चले जाने के आघात से हुई थी, माँ की गूँगी चीख किसी को सुनाई नहीं देती। अस्पृश्यता एक बार फिर दलित माँ के जीवन की खुशियाँ छीन लेती है। अस्पृश्यता के कारण छगन मानसिक यातना को झेलता है दूसरी ओर अपने बेरोजगार होने से उसे इतना आघात लगता है कि वह गिरकर उठ नहीं पाता।

12. वोटेली वस डॉ.केशुभाई देसाई

कहानी की नायिका सोमली दलित वर्ग की है, जो सोसायटी में सफाई कार्य करती है। सोमली एक हरिजन स्त्री है किंतु उसका रुप इतना सुंदर है कि उसे देखकर किसी को विश्वास नहीं होता कि यह एक सफाई करने वाली स्त्री है। सोमली रीटा के घर पाखाना साफ करने का कार्य करती है। इस घर से उसे सुबह–शाम की चाय–नाश्ता से लेकर रात को बचा हुआ दाल–चावल भी मिल जाता था। रीटा के उतरे हुए किंतु नए जैसे कपड़े जब उसे दिए गए, तो उसकी आँखें भर आई थी। सोमली को रीटा की मम्मी में अपनी स्वर्गीय माँ के दर्शन हुए थे।

रीटा की मम्मी सोमली को भोजन तो देतीं किंतु, हाथ ऊपर रखतीं थीं ताकि सोमली से स्पर्श न हो जाए। सोमली को चाय भी फूटे हुए कप में देती जाती थी और वह कप पाखाने के झरोखे में ही रखा जाता था ताकि कोई और गलती से भी उसे स्पर्श न कर सके। सोमली भी समझदार थी, वह हमेशा पीछे के रास्ते से ही आती–जाती थी। बाथरुम–टोयलेट घर के बाहर ही थे, इससे उसे घर में प्रवेश करने की आवश्यकता ही नहीं थी। बैठक रुम या रसोई में छुआछूत का कोई प्रश्न ही न था। घर के द्वार पर लगाई हुई तुलसी का स्पर्श गलती से भी न हो जाए, इसका सोमली खास ध्यान रखती थी।

एक बार रीटा मम्मी भांजे की तबीयत बिगडने से अपने मायके जाती है। सोमली रोज़ की भाँति वहाँ झाड़ू लगाने आती है, उसके बच्चे भी उसके साथ आते हैं। रीटा के पिता सोमली के वात्सल्य को ध्यानपूर्वक देखते हैं। रीटा के पिता सोमली के सुंदर रुप को लगातार देखते ही रहते हैं, जिससे वह थोड़ी घबराती है और टोयलेट में चली जाती है। पंरतु "सोमली रुपी सिगरेट का कश उसके दिमाग में प्रवेश कर जाता है।" रीटा के पिता सोमली से कहते हैं, कि वह कचरा साफ करते समय मिट्टी न उड़ाए। जिस पर सोमली उन्हें भीतर बैठने की सलाह देती है। वह जानती और समझती है, कि रीटा की मम्मी घर पर नहीं है इसलिए उसके पिता सोमली की ओर आँखें उठाकर बात कर रहे हैं, उनकी उपस्थिति में तो उसके पिता सोमली की ओर देखते भी न थे। रीटा के पिता सोमली को सिगरेट पीन के लिए देते हैं, तो सोमली उनके हाथ से नहीं लेना चाहती तब वे कहते हैं कि–

> **''मुझे तो यह तुझे अपने हाथ से ही पिलानी है, सिगरेट भी और चाय भी।''**
>
> तब सोमली कहती है–**"देना हो तो दो बाथरुम में बैठकर दो फूक मार लूँ"**[89]

तब 'तू अछूत नहीं है समझी' ऐसा कहकर हाथ बढ़ाकर उसकी कलाई पकड़लेते है वह टायलेट में जाकर सिगरेट का कश ले लेती है। वह अपनी मर्यादा जानती है और अपनी सीमा भी, वह रीटा के पिता को दूर रहने की सलाह देती है। रीटा के पिता सोमली को समझाते हैं कि यह सब तो पुराने–जमाने की बात है, छू लेने से कोई कैसे अशुद्ध हो जाता है ? अरे आज तो तु अपने हाथों से चाय बना और मैं पिऊँगा। तब सोमली अपने आप को बड़ी मुश्किल में पाती है। वह रीटा के पिता को समझाती है, कि मालकिन आपको कभी माफ नहीं करेंगी। रीटा के पिता उसके तर्क–वितर्क का उत्तर यही देते हैं कि–"गाँधीजी जैसे महान व्यक्ति ने भी भंगी के हाथों का बनाया भोजन किया फिर भी वे

अशुद्ध न हुए तो हम कैसे अशुद्ध हो जाएँगे ?" फिर भी सोमली मालकिन की रसोई को छूना नहीं चाहती। वह फिर सेठ जी को समझाती है कि मालकिन तो छः–छः मास का व्रत रखती हैं, फिर मैं अछूत होकर उनकी रसोई को भला कैसे स्पर्श कर सकती हूँ ? रीटा के पिता उसका हाथ पकड़कर चूम लेते हैं, तब सोमली उनसे कहती है–

"लो, चूम लो जितना चूमना हो आज के दिन।"[90]

आदमी की जात ही ऐसी होती है जहाँ सुंदर स्त्री देखी वहीं लार टपकने लगती है। रीटा के पिता अपनी माँ की तसवीर के नीचे बैठक रुम में सोमली को बैठा देखते हैं, जिसकी सोमली जैसी ही स्थिति थी। जब वे सोमली से यह कहते हैं, तो उन्हें भूतकाल की बातें याद आती हैं। उन्हें सोमली में अपनी माँ दिखाई देने लगती है। तब सोमली सोचती है कि मैं एक सफाई करने वाली स्त्री हूँ तो सेठजी को कैसे अच्छी लग सकती हूँ। सेठजी के ऐसे व्यवहार से सोमली आहत होती है उसे अपमान का अहसास होता है। कहीं वह यह भी महसूस करती है कि सेठजी के बहकावे में आकर वह अपने धर्म से चूक गई है। सेठजी ने भले ही उसे उकसाया किंतु उसे अपनी जाति को नहीं भूलना चाहिए था। एक अछूत स्त्री किसी सेठ के प्रेम की पात्र भला कैसे बन सकती है ? ऐसा सोचकर वह तेज गति से उनके घर के बाहर निकल जाती है। उस दिन के बाद वह उस घर की और कभी नहीं आती।

3.3 परंपरा का विद्रोह

1. 'शैली का व्रत'– विट्ठलराय श्रीमाली

प्रस्तुत कहानी में विरल एवं उसकी पत्नी सरु शिक्षित दलित व्यक्ति हैं। विरल किसी ऑफिस में नौकरी करता है। दलित होते हुए भी उनके रहन–सहन, खान–पान, तौर–तरीका एवं घर का वातावरण सवर्ण परिवार की तरह था। उनकी पुत्री शैली दसवीं में पढ़ रही थी। शैली पढ़ने में बहुत अच्छी थी। शैली की पाँच सहेलियाँ सवर्ण थी। शैली दलित है, इससे उन पाँचों की मित्रता में कोई दूरी नहीं आती है। शैली अपनी सहेलियों के साथ स्कूल आती–जाती है, घूमने जाती है। शैली स्वयं दलित है, इस बात का एहसास उसे कभी नहीं हुआ था। वह स्वयं को अपनी सवर्ण सहेलियों के समान ही समझती थी।

एक बार शैली की सहेलियाँ जया पार्वती के व्रत रखती हैं। ये व्रत लड़कियाँ अच्छा पति एवं परिवार मिले साथ ही वैवाहिक जीवन मंगलमय बने इसलिए रखा जाता है। शैली भी ये व्रत रखना चाहती है। विरल एक शिक्षित और समझदार व्यक्ति है। वह पुरुषार्थ पर विश्वास रखने वालों में से था। वह पत्नी को समझाता है कि शैली दसवीं में है, इसलिए उस व्रत रखकर अपने शरीर को कमजोर नहीं बनाना चाहिए, बल्कि पोष्टिक आहार लेकर खूब मेहनत करनी चाहिए, ताकि अच्छे प्रतिशत से पास हो सके। विरल के अनुसार शैली अच्छी पढ़ाई करके ऊँचे पद पर नौकरी करेगी तो अच्छे लड़कों की कतार खड़ी हो जाएगी। सरु इन बातों को समझती है, किंतु वह अपनी बेटी की खुशी को ज्यादा महत्त्व देती है। सारी सहेलियाँ व्रत रखकर घूमेंगी–आनंद मनाएँगी ऐसे में शैली का मन पढ़ाई में कैसे लगेगा ? इससे तो अच्छा है, उसे व्रत रखने दिया जाए। अंत में विरल पत्नी की बात मान लेता है और शैली को व्रत रखने की इज़ाजत मिल जाती है।

सुबह शैली अपनी सहेलियाँ के साथ शिवजी के मंदिर में पूजा की थाली और जल लेकर जाती है। अपने नटखट स्वभाव के कारण वह पीछे रह जाती है और उसकी सहेलियाँ मंदिर में चली जाती हैं। जैसे ही वह मंदिर में प्रवेश करती है, वहाँ के पुजारी नरभेशंकर उसे रोकते हैं। पुजारी शैली को दुत्कारते हुए कहते हैं कि–

> **''तुझे शर्म नहीं आती हमारे मंदिर में आते हुए ? नीची जाति की होकर मंदिर में आ रही है ? तेरे आने से अंदर बैठे हमारे भगवान को छूत लग जाएगी। मुझे भगवान को पंचामृत से दुबारा स्नान करवाना पड़ेगा। जा घर लौट जा। धर्म की कुछ समझ नहीं और हमारी देखा–देखी निकलगये हैं पूजा और व्रत करने। चल जल्दी भाग नहीं तो इस छड़ी से तुझे पीटना पड़ेगा।''**[91]

आज भी धर्म को सवर्ण अपनी पैतृक सम्पत्ति समझते हैं। दलित व्यक्ति किसी धार्मिक कार्य में रुचि दिखाए तो सवर्णों को यह रुचिकर नहीं लगता। वे दलितों को अपने समान होते नहीं देखना चाहते, इसलिए उन्हें अछूत कहकर उनकी सीमा में रहने के लिए विवश करते हैं। शैली सोलह वर्ष की समझदार लड़की थी। अपने घर और समाज में सभी उसे प्रेम करते थे। पुजारी की कठोर वाणी से वह स्तब्ध रह जाती है। उसे कभी ऐसा कड़वा अनुभव नहीं हुआ था। अपने अपमान को वह नहीं सह पाती और क्रोध से उसकी आँखे फट जाती हैं। उसका शरीर काँपने लगता है। क्रोध में शैली अपनी सुध–बुध खो देती है और पुजा की थाली और लोटा पुजारी के सिर पर जोर से मारती है। बाद में वह डरती है कि गाँव के लोग और पुजारी उसे दंड देंगे इसलिए वहाँ से भाग जाती है। भागते–भागते शैली को समय का कुछ ख्याल नहीं रहता और वह बेहोश हो जाती है। होश आता है तो वह देवशंकर दवे नामक प्रतिभाशाली व्यक्ति के पास वह अपने को पाती है। देवशंकर, शैली से सारी घटना सुनकर उसके माता–पिता को मानव कल्याण आश्रम में बुलाते हैं। आश्रम में उन्हें काम मिल जाता है और शैली खूब परिश्रम करते हुए अच्छे प्रतिशत लाती है। अपने परिश्रम के बल पर वह कलेक्टर बन जाती है।

शैली अपने जीवन की पुरानी बातों के विषय में सोचती है, कि एक सवर्ण व्यक्ति नरभेराम पुजारी ने उसका अपमान किया इस वजह से वह इस स्थान पर पहुँची या एक सवर्ण दवेशंकर दवे ने मानवता भरा स्पर्श एवं सहयोग दिया उसकी वजह से वह कलेक्टर बनी। शैली अपने प्रश्नों का उत्तर खोजती है। वास्तव में पुरुषार्थ या व्रत उपवास दोनों में से किसके कारण वह सफल हुई ? आखिर उसे अपने पुरुषार्थ पर भरोसा होता है। शैली के पुरुषार्थ की जीत होती है।

2. 'नरक'– धरमाभाई श्रीमाली

धरमाभाई श्रीमाली की कहानी **'नरक'** की नायिका रतन स्वाभिमानी स्त्री है। बचपन से ही उसे गंदगी से घृणा होती है। रतन का जन्म सफाई कर्मचारी के घर में हुआ था, जिसके कारण उसके माता–पिता गाँव में मरे हुए कुत्ते–बिल्ली को खींचना वार–त्यौहार घर–घर अनाज माँगने जाना आदि कार्य करते थे। रतन को यह काम अच्छा नहीं लगता था। वह ऐसे काम से नफरत करती थी। किसी के आगे भीख माँगने से अच्छा है, घर में मीर्च और रोटी खाकर जीया जाए। ऐसी सोच–समझ रखने वाली रतन का विवाह अहमदाबाद शहर में होता है। रतन के माता–पिता और स्वयं रतन खुश

थे, क्योंकि उन्हें आशा थी, कि अब उसका जीवन सुखी होगा। रतन का पति सोमा शुरुआत में रतन को गंदे शैचालय की सफाई करने से रोकता है, किन्तु कुछ वर्षों बाद सोमा को शराब की आदत पड़ जाती है। अपनी बूरी आदतों की वजह से सोमा रतन को म्युनिसिपालिटी में काम करने का दबाव डालता है।
रतन को जिस काम से नफरत थी, उसे मजबूरन वही काम करना पड़ता है। सफाई–कर्मचारी वर्ग जीते–जी नरक देखते हैं। मरे हुए पशुओं को उठाना और उसके बदले में अनाज और भोजन माँगकर लाना वास्तव में बहुत कठिन कार्य है। रतन को अपना जीवन किसी नरक के समान लगने लगा था। वह शहर में रहती थी, किंतु वह जिस बस्ती में रहती थी वहाँ गंदगी का फैलाव था। मन–ही–मन वह कहती है–

''अरे ! मोहल्ले के आगे ही है। रोज़ सुबह जाती हूँ। किसी दिन साफ हुआ हो तो ठीक .....नरक, ठीक ढंग से बैठ सकें ऐसा कहाँ होता है..... फिर भी यहाँ बैठे और यहाँ उठे। बदबू ही बदबू बाहर निकलें वहाँ तक थूक और बूक.....''[92]

अहमदाबाद की पूर्वपट्टी की गलियों और झोंपड़ियों के विस्तार में शौचालयों में इतनी गंदगी होती है कि रतन जैसी साफ–सुथरी रहने वाली स्त्री का जीवन उसे नरक के समान लगने लगता है। रतन को अपना बचपन याद आता है, जब उसकी माँ अस्वस्थ थी और गाँव में मरे हुए कुत्ते को उठाने वाला कोई नहीं था और रतन की माँ उससे कहती है–

''रतन....बेटी, जा न इतना काम कर आ मेरी बहन''
''नहीं बाई... मैं जा सकती हूँ ऐसा काम करने ?''
''अरे पर मैं भी ठीक नहीं..... रांड, हमारा अवतार है..... ऐसे मुँह फेरकर चलेगा क्या ?
जा अब जा जल्दी। गाँव में से दो–तीन बुलावे आ गए हैं.....बाद में नहीं गए तो ताने सुनने पड़ेंगे। नहीं तो लोग कुत्ते के बदले में अनाज देते होंगे वह भी न दें.....''[93]

धर्म आधारित वर्णाश्रम और वर्णाश्रम से उत्पन्न जाति आधारित कार्यों ने भोले, अनपढ, दलित शोषित पीड़ितों पर ऐसे गंदे व्यवसाय लाद दिए हैं और यह उसका धर्म है ऐसा कहकर मानसिक रुप से तैयार कर दिया गया है। सफाई कर्मचारी ऐसे कार्यों को अपना धर्म समझने लगे हैं। कहानी में गोमती नामक स्त्री रतन की बातों का विरोध करती हुई कहती है–

''ऐसी शिक्षा देने वाली नहीं देखी। ले.... भिक्षा माँगना तो हमारा धर्म है। इसमें क्या गलत है, यह तू मुझे समझाने आई है ?''[94]

रतन को न चाहकर भी म्युनिसिपालिटी के सार्वजनिक शौचालयों की सफाई करने जाना पड़ता हैं। वहाँ इतनी गंदगी रहती है कि रतन को उबकाई आने लगती है। वह यह सोचकर घर लौटती है कि–

''आज तो नेनकी का बाप मार डाले तो भी अच्छा है, लेकिन यह नरक तो अब नहीं ही सहा जाता।''[95]

रतन ऐसे गंदगी के जीवन से, नरक के समान जीवन जीने से मर जाना बेहतर समझती है। उसे अपने ही शरीर से दुर्गंध आने लगती है। उसे बार–बार वह मल–मूत्र से भरे शौचालय याद आते और वह तिलमिला उठती है।

दस्तावेजी फिल्म बताने के कार्यक्रम से कहानी में मोड़ आता है। रतन की बस्ती में एक फिल्म बताई जाती है। सिर पर मैला उठाने का दृश्य देखकर रतन का यहाँ अधिक बैठना मुश्किल हो जाता है। मासूम बच्ची को मैला ढ़ोते देखकर उसे अपना बचपन याद आ गया। यह दृश्य सोमा भी देखता है। रतन को डर था, कि सोमा उसे यह दृश्य देखकर और डाँटेगा कि तू ऐसा काम करने से मना करती है, देखा न ?... किंतु कहानीकार ने यहाँ परिवर्तन कर दिया है। सोमा, का हृदय परिवर्तित हो जाता है। अपनी पत्नी की मनः स्थिति को वह समझ जाता है और रोने लगता है। आखिर पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है।

3. 'होड' – अरविंद वेगडा

प्रस्तुत कहानी गरीबी, भुखमरी की मार झेल रहे एक दलित परिवार की है। लवजी उसकी पत्नी और एक पुत्र किशन बड़ी मुश्किल से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। किशन का बार–बार बीमार पड़ना लवजी की मुश्किलों को बढ़ता है। दिन में छः रुपये मजदूरी पर काम करने वाला लवजी डॉक्टर के पास इसलिए नहीं जाना चाहता क्योंकि यदि दवाई में पैसे चले गए, तो घर में चूल्हा कैसे जलेगा ? किन्तु पत्नी के बार–बार समझाने पर वह डॉक्टर के पास किशन को लेकर जाता है। डॉक्टर चेकअप करके दवाइयाँ देकर बारह रुपये फीस लेते हैं। दो दिन की कमाई देकर लवजी चिंता में पड़ जाता है। वह अंधविश्वासी भी है, घर आकर पत्नी से कहता है, कि बारह रुपये डॉक्टर को देने से बेहतर है सवा रुपये में माताजी का धागा बँधवा देना। लवजी की पत्नी अनपढ़ थी, किन्तु अंधविश्वासी नहीं। पति को समझाते हुए वह कहती है–

> **''परंतु पहले आप किशन को सूला तो दो ! आपकी धागे की रामायण तो मिट जाती, जरा भी गरदन दुखी तो धागा... जोर से रोने लगे तो कहते हो कि नज़र लगी, मैं तो परेशान हो गई, डॉक्टर की दवा की सिवाय कुछ भी नहीं ठीक होगा, धागे से यदि ठीक हो तो बड़ा धागा बाँध दो ! तुरंत पार..... किशन के लिए दोरा–धागा की बात करने की ही नहीं।''**[96]

किशन की माँ यह अनुभव कर चुकी है कि माताजी के नाम से धागा बँधवाकर लोगों के अंधविश्वास के कारण कई लोग गाँव की भोली–भाली प्रजा को लूटते हैं। बीमारी का कोई–न–कोई कारण अवश्य होता है। यदि धागे से सारी बीमारी ठीक हो जाती हो तो, डॉक्टर की क्या ज़रुरत होती ?

लवजी दिनभर हाडतोड़ मजदूरी करता था किन्तु बदले में उसे मात्र छः–सात रुपये मजदूरी मिलती थी। उसके परिश्रम के अनुपात में इतने कम रुपये उसे मिलते थे, उस पर भी किशन की बीमारी ने उसे अधमरा कर दिया था। आज भी गाँव में मजदूरों को मजदूरी उसके परिश्रम के अनुसार नहीं दी जाती, ऐसी स्थिति में वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति तो दूर, दो वक्त की रोटी भी नहीं जुटा पाते।

किशन को दवा देकर लवजी रात को सो नहीं पाता। उसकी पत्नी भी पुत्र की खराब होती स्थिति से चिंतित थी। रात्रि के समय किशन हरे रंग की उल्टी

करता है, उसके होठ पर लाल–लाल टपके हो गए। पुत्र की ऐसी स्थिति देखकर उसकी माँ घबराकर चीखना चाहती थी, किंतु मुँह से आवाज़ ही नहीं निकलती है। एक ओर गरीबी थी, दूसरी ओर लाचारी यह थी कि धन के अभाव में पुत्र का सही इलाज नहीं हो पा रहा था।

डॉक्टर के पास उसे लवजी दुबारा लेकर जाता है। डॉक्टर फिर निरीक्षण करते हैं और किशन को टी.बी. के लक्षण हैं, यह कहते हैं। डॉक्टर लवजी को इस बीमारी के इलाज और खर्च के बारे में समझाते हैं। पाँच–सौ रुपये खर्च की बात सुनकर लवजी चिंता में डूब जाता है। उसने तो किशन के लिए सपने देखे हैं, कि वह पढ़–लिखकर इंजीनियर बनेगा। नौकरी करेगा। फिर हमें धन की कमी न होगी।

लवजी के सपनों के समक्ष उसकी पत्नी की आँखों में मात्र फीका भविष्य आँसू बनकर बह रहा था। बेटे की बीमारी, गरीब, तकलीफों के समक्ष आखिर कोई स्त्री कैसे अच्छे सपने देख सकती है ? लवजी किसी भी तरह अपने बच्चे को बचाना चाहता है। आखिर वह उधार माँगने गाँव के गगजी पटेल के पास जाता है। गगजी पटेल गरीब, दलित लवजी की परेशानी दूर तो नहीं करता उल्टा कड़वे वचन कहता है कि–

> **''अरे तुमको देकर तो मुझे भूल ही जाना पड़ेगा ! तुम्हारी 'जाती' का क्या भरोसा! झाड़कर खड़े हो गए ! और देख अभी तो मेरे पास कसम खाने जितने भी पैसे नहीं इसलिए यह बात ही न करना''**[97]

गरीब दलितों से दिन–रात परिश्रम करवाने वाले सेठ–साहूकार उनका शोषण करते हैं और धन कमाते हैं। मानवता जैसी कोई चीज उनमें नहीं रहती। लवजी हताश होकर लौटता है। रास्ते में कुछ लोग किसी पत्थर को उठाने के लिए शर्त लगा रहे थे। जो व्यक्ति उस पत्थर को उठा लेगा उसे पाँच सौ रुपये इनाम मिलेगा।

यह बात लवजी भी सुनता है। भारी–भरकम पत्थर हिलाना भी मुश्किल था, किंतु बेटे किशन को ठीक करने के लिए वह उस पत्थर को उठाने का निर्णय लेता है। वह भारी पत्थर को उसकी तरह उठाता है जैसे उसने किशन की सूखी देह को उठाया हो। लवजी पत्थर उठा तो लेता है, किंतु दूसरे ही पल वह जमीन पर गिर पड़ता है, बेटे को बचाने की चाह में वह स्वयं अपने प्राण खो देता है।

संक्षेप में प्रस्तुत कहानी में दलित परिवार की दयनीय स्थिति का वर्णन कहानीकार ने बखूबी किया है। साथ ही उनके अंधविश्वास, दुविधा, गैरदलितों द्वारा उनका शोषण, अपमान, परिश्रम के अनुपात में कम आमदनी से गरीब दलित की बिगड़ती हालत को चित्रित किया है। कहानी का अंत चोटदार है। बेटे को बचाने के लिए एक गरीब पिता अपने प्राणों की बाजी लगा देता है।

4. 'दो बीघा जमीन'– जयंतीलाल पी दाफडा

'दो बीघा जमीन' कहानी में दलित करसन अपनी पत्नी मंगु, पुत्र रवला और बूढ़ी माँ के साथ छोटे से परिवार में संघर्षपूर्ण जीवन बीताता है। पिता की मृत्यु के बाद बारवें की विधि करने के लिए वह गाँव के मुखिया से कर्ज़ लेता है। यह कर्ज़ उसे पाँच वर्ष तक मुखिया के खेत में बेगार की मजदूरी करके चुकाना पड़ता है। करसन अनपढ़ था, इसलिए हिसाब–किताब करना उसे नहीं आता था, किन्तु वह अपने पुत्र को पढ़ा–लिखाकर बड़ा साहब बनाने का सपना ज़रुर देखता है।

गाँव में मुखिया सभी को कर्ज़ पर रुपये देते थे, किन्तु उसके व्याज और मूल कीमत के अतिरिक्त उनसे अधिक कार्य करवाकर उनका शोषण करते थे। गरीब दलित फिर भी मुखिया का मान–सम्मान करते थे, उन्हें पूजते थे, यह उनकी विडंबना थी, कि शोषण करने वाले व्यक्ति के खिलाफ वह आवाज़ भी नहीं उठा सकते थे। मुखिया को जो चीज पसंद आ जाती थी, समझ लो वह उसकी हो जाती थी। इस बार करसन के पूर्वजों की एकमात्र निशानी दो बीघा जमीन मुखिया को भा गई है। वह करसन से वह जमीन रुपये देकर खरीदना चाहता है। करसन के पास उस भूमि के अतिरिक्त कोई संपत्ति नहीं थी, यह जमीन उसके और उसके परिवार के दुःख–सुख की साथी थी।

करसन की बूढ़ी माँ ने वर्षों उस गाँव में बिताए हैं, अपने पति के साथ इस जमीन पर वह खेती करती थी, बहुत–सी यादें जुड़ी हुई हैं उसकी इस जमीन से। बेटे से इस जमीन की बात सुनकर आश्चर्य और चिंता व्यक्त करती हुई वह कहती है–

> **''बेटा, तुम्हारे पिता के पास संपत्ति स्वरुप मात्र यह दो बीघा जमीन ही थी। और बेटा, मरते समय तुम्हारे पिता ने मुझे कहा था कि इस जमीन को संभालना। यह जमीन ही हमारी सुख–दुःख की साथी है।''**[98]

करसन की बूढ़ी माँ यह जानती है, कि जब तक यह जमीन इनके पास है, तब तक किसी भी तरह का दुःख या समस्या आए तो वे उसका सामना कर सकते हैं, क्योंकि उनकी वह ज़मीन उनका आधार थी जिस पर खड़े होकर वे समस्या से लड़ सकते थे, जूझ सकते थे। यदि जमीन ही नहीं रही तो वे किस आधार के सहारे लड़ सकेंगे। करसन के पिता ने भी उसकी माँ से यही कहा था कि यह जमीन संभालना, वे भी जानते थे कि जब तक यह जमीन उसके परिवार के पास रहेगी तब तक उनका जीवन सुरक्षित रह सकेगा अन्यथा दाने–दाने को तरसना पड़ सकता है।

करसन की पत्नी मंगु अपने पति और सास की चिंता को समझती है। वह नहीं चाहती कि यह जमीन उनसे छीन ली जाए। यह जमीन ही उसके और करसन के जीने का आधार थी। वह पति को समझाती है कि किसी भी तरह मुखिया को समझाओ कि वे यह जमीन नहीं बेचना चाहते।

मुखिया इस जमीन पर घर बनवाना चाहता है, चाहे खरीदकर या हड़पकर जैसे भी हो उसे हर हाल में यही जमीन घर के लिए लेनी थी। करसन बड़ी हिम्मत जुटाकर मुखिया के समक्ष इन्कार करने का साहस बटोरता है। मुखिया को करसन का यह साहस बहुत बुरा लगा किन्तु वे कुछ सोचकर वहाँ से चला जाता है।

रात को जंमीदार वहाँ आता है और मुखिया के आरोप के तहत करसन को थाने ले जाता है। मुखिया करसन पर जूठा आरोप लगाता है, कि उसने उनके खेत में आग लगाई है। पुलिस निर्दोष करसन की निर्दयता से पीटाई करती है, वह दर्द से छटपटाता है। पुलिस, मुखिया और उसके साथी करसन की करुण स्थिति देखकर मुस्कराते हैं, किन्तु उसकी बूढ़ी माँ जान गई थीं कि बेकसूर करसन को क्यों पीटा जा रहा है, उसकी गलती सिर्फ यही थी, कि उसने मुखिया की बात को स्वीकार नहीं किया था। करसन की दयनीय स्थिति देखकर दूसरे दिन जब वह छूटकर घर आता है तो माँ और मंगू दोनों के यही शब्द थे–

''अब इस गाँव में नहीं रहना। यहाँ हमारे लिए रोटी–पानी पूरा हो गया है।''[99]

मंगू और माँ जानती थी कि मुखिया को जमीन नहीं दी इसलिए करसन की यह दुर्दशा की है। अब यह सिलसिला रुकेगा नहीं बल्कि और बढ़ता जाएगा। इसलिए वे इस जमीन के मोह में करसन को न खो बैठें, सो वे निर्णय ले लेती हैं कि जमीन जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। दूसरे दिन मंगु, करसन, बूढ़ी माँ और रवला अनजान जगह चले जा रहे थे। नन्हा रवला कहता है–

''बापु, हम कहाँ जा रहे हैं ?''[100]

रवला के इस प्रश्न का उत्तर उनमें से कोई नहीं दे सकता था। वे सभी निरुत्तर थे। उनके इस पलायन से मुखिया को मुफ्त में जमीन मिल गई और वह उस पर घर बनाने की तैयारी शुरु कर देता है। उसने अपनी खुशी के लिए चार लोगों को बेघर कर दिया था। वे चारों बेघर होकर रो रहे थे। उनकी जमीन के साथ–साथ उनका गाँव भी छूट रहा था।

प्रस्तुत कहानी में दो बीघा जमीन को मुखीया के हाथों में न सौंपना दलित करसन और उसके परिवार के लिए मुश्किल खड़ी कर देता है। पूर्वजों की एकमात्र निशानी और जीवन के एकमात्र सहारे को करसन नहीं बचा पाता। दूसरी ओर मंगू और बूढ़ी माँ को भय है, कि जमीन के कारण करसन की हत्या न कर दी जाए। उन्हें भी उस भूमि से प्रेम है, किन्तु उन्हें मुखिया की निदर्यता की चरमसीमा का भी अनुभव है। घर से बेघर होने की पीड़ा वे सह सकते थे, किन्तु करसन को खोकर वे निराधार नहीं बनना चाहते थे। कहानी में सवर्ण मुखिया का अत्याचार, दलितों की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत करता है। गाँव छोड़ कर पलायन करना दलितों की विवशता है।

5. 'मुखिया का भांजा'–विट्ठलराय श्रीमाली

इक्कीसवीं सदी में भी अस्पृश्यता दलित लोगों की प्रगति में बाधक रही है। प्रस्तुत कहानी की नायिका दमयंती और उसका पति नानजी एक मजदूर हैं किन्तु वे चाहते है कि उनका एक मात्र बेटा खूब पढ़ लिखकर अच्छी नौकरी प्राप्त करे। अपने इस सपने को पूरा करने के लिए पति–पत्नी खूब परिश्रम करते हैं। नानजी के अच्छे कार्य से शामजी मुखिया अत्यंत प्रसन्न है। मुखिया नानजी को मजदूरी के उपरांत वार–त्यौहार पर अच्छे पैसे भी देता है। दमयंती भी पति की मदद करती है।

एक दिन दमयंती घर के काम से निपटकर पति का हाथ–बँटाने खेत में जाती है, रास्ते में काला नामक व्यक्ति दमयंती को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए उस पर आक्रमण करता है। पत्नी की चीख सुनकर नानजी उसे बचाने के लिए अपनी जान गवाँ देता है। पति की हालत देखकर दमयंती घायल शेरनी की तरह काला पर प्रहार करती है। काला वहीं मर जाता है। पति की मृत्यु होने से दमयंती अपने को अनाथ समझकर आँसू बहाती है। अब नटवर कैसे पढ़ेगा ? कैसे उनका सपना पूरा होगा ? ये सारे प्रश्न उसके सामने खड़े होते हैं। इस दुखद घड़ी में मुखिया और कुछ बुजुर्ग दमयंती को सांत्वना देते हैं कि तुम अनाथ नहीं हो हम सभी तुम्हारी सहायता करेंगे।

पति की मृत्यु के सवा महीने बाद दमयंती मुखिया के खेत में मजदूरी करना प्रारंभ कर देती है। नटवर को बड़ा आदमी बनाने के अपने सपने को पूरा करने

के लिए दमयंती दिन–रात परिश्रम करती है। नटवर 12वीं तक पढ़कर शहर में होस्टल में रहकर बी.ए. फर्स्ट डिविज़न में पास होता है। दमयंती को अब अपना सपना पूरा होता नज़र आने लगता है। कुछ दिनों में माँ–बेटे के समक्ष एक कड़वी सच्चाई आती है कि वह दलित जाति का है इसलिए उसे कहीं अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती। जबकि उसके साथ के कई युवकों को अच्छी नौकरी मिल जाती है।

नटवर अपनी विधवा माँ का सहारा बनना चाहता था, किन्तु वह अपने आपको निःसहाय महसूस कर रहा था। एक दिन नटवर को पता चलता है कि सरकार शिक्षित बेरोजगार युवकों को रोजगार देने के लिए सस्ते अनाज की दुकान खोलकर देने वाली है। बस मुखिया की मदद से दौड़–भाग करके वह दुकान गाँव में ही खोल लेता है और दुकान का उद्घाटन विधि–विधान से करता है। नटवर की यह खुशी ज्यादा दिन नहीं टिकती। दुकान खुले एक महिना हो जाता है किन्तु गाँव का एक भी व्यक्ति उसकी दुकान पर अनाज नहीं लेने आता।

दमयंती और नटवर को इसका कारण समझ में नहीं आता है। कुछ लोगों से पूछने पर पता चलता है कि वे लोग हरिजन हैं इसलिए कोई भी व्यक्ति उनकी दुकान से सामान नहीं ले जाता। दमयंती पर तो जैसे पहाड़ ही टूट जाता है। वह सोचती है कि मेरा बेटा फर्स्ट क्लास लाकर भी साहब नहीं बन पाया, तो क्या छोटा व्यापारी भी नहीं बन सकता ? समाज की इस मान्यता के प्रति दमयंती को नफरत होने लगती है। वह ठान लेती है कि वह अब पीछे नहीं हटेगी। लोगों से इसका जवाब माँगेगी कि यह कैसा व्यवहार है।

मुखिया की मदद से सारे गाँव वालों को एकत्र किया जाता है। दमयंती गाँव वालों के समक्ष अपनी समस्या कहती है। गाँव वाले स्पष्ट कह देते हैं कि–

> **''तुम तो हरिजन हो। तुम्हारा स्पर्श किया हुआ अन्न हम नहीं ले सकते, हम भगवान और माताजी को प्रसाद कैसे चढ़ा सकते हैं ? किसी भी रुप में हम तुम्हारे अन्न को नहीं खरीद सकते ?''**[101]

गाँव वाले नटवर के हरिजन होने के कारण उसे अस्पृश्य कहकर उसका तिरस्कार करते हैं स्वयं को भगवान का भक्त एवं शुद्ध बताते हैं। नटवर और दमयंती इन बातों को सुनकर अवाक् रह जाते हैं। दमयंती मानवता का खून होते नहीं देख पाती और कहती है–

> **''हम तुम्हारे खेत में पैर रखते हैं तब तुम्हारा खेत नहीं खराब होता ? खेत जोदते हैं तब वह अनाज के पौधे खराब नहीं होते ? अरे हम महेनत करके काटकर खेत से निकालकर लाते हैं, उसे साफ करके दाने निकालते हैं वे दाने तुम्हरे घर की कोठी में आता है। ये सारी महेनत हम करते हैं, तब उसे छूत नहीं लगती ? खेत में पड़े अनाज पर पक्षी, गधे, कुत्ते पेशाब करते हैं। ये अनाज से आप को छूत नहीं लगती और मेरा बेटा शहर से अनाज खरीदकर लाता है, उससे आपको छूत लगती है ?''**[102]

दमयंती लोगों को समझाने का प्रयत्न करती है कि यह छुआ–छूत की विचारधारा पिछड़ी हुई बातें हैं। जब हरिजन खेत के सारे काम करते हैं तो भला उनके छूने से अन्न कैसे खराब हो सकता है। ये सारे कुरिवाज मनुष्यों के बनाए हुए हैं। ईश्वर

ने सभी को समान बनाया है। आवेश में आकर दमयंती गाँव छोड़कर चले जाने की बात कह देती है।

गाँववालों को दमयंती से हमदर्दी थी, किन्तु इस समस्या का हल उन्हें नहीं मिल रहा था। अंत में मुखिया इस समस्या का हल निकालते हैं और कहते हैं, आज से दमयंती मेरी बेटी है, मैं उसे गोद लेता हूँ, इस नाते नटवर मेरा नाती हुआ। मेरे नाती की दुकान से अनाज लेने में आप लोगों को कोई दिक्कत तो नहीं होगी न ? मुखिया के निर्णय को सभी ने स्वीकार कर लिया। नटवर की दुकान खूब चलने लगती है, नटवर से नटवर सेठ बनकर अब वह गाँव में मान–सम्मान पाने लगा।

इस कहानी का अंत चोटदार है। सवर्ण समाज की रुढिवादिता, अस्पृश्यता एक पढ़े–लिखे युवक का तिरस्कार करती है। मुखिया इस समस्या को दूर करने के लिए आगे बढ़ते हैं और लोगों की आँखों पर पड़ी अस्पृश्यता की पट्टी को खोलकर उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाते हैं।

3.4 शोषण के प्रति दलित स्त्री का विद्रोह

1. 'जेल की रोटी'– बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की **'जेल की रोटी'** कहानी अन्याय और अत्याचार के समक्ष लड़ने वाली स्त्री की है। कहानी में आरक्षण की आँधी में फँसे, परेशान दलितों की समस्या के साथ–साथ बेरोजगारी की समस्या पर भी प्रकाश डाला है। प्रस्तुत कहानी सीतापुर नामक गाँव की है जहाँ अस्पृश्यता, अन्याय, अत्याचार करने वाले सवर्णों का दबदबा है। सवर्ण यदि कोई गलती करें तो उसे कहने की किसी में ताकत नहीं और यदि दलित से कोई गलती हुई तो उसकी सज़ा पूरे कुनबे को दी जाती थी। दलित परिवार सवर्णों के अत्याचार को सहते थे, क्योंकि आजीविका का उनके पास कोई साधन नहीं था। वर्षों से उन्हें दबाकर रखा गया था, इसलिए उनके विरोध कर विचार करना ही, दलितों के लिए नामुमकिन था।

ऐसे गाँव में दलित युवक मगन, माता–पिता के कठिन परिश्रम से बी.ए पास करता है। शिक्षित होते हुए भी उसे कहीं चपरासी की नौकरी भी नहीं मिलती, जिससे वह निराश होता है। कमु एक विधवा स्त्री है जिसका एक बेटा है। कमु रुपवती है, उसे देखकर हर पुरुष उसे अपना बनाने को आतुर है, किन्तु कमु दूसरा विवाह नहीं करना चाहती। मगन भी कमु को अपना बनाना चाहता है, किन्तु अपने दिल की बात उससे कह नहीं पाता।

गाँव के मुखिया का बेटा जीवन चरित्रहीन, शराबी है। गाँव की स्त्रियों को छेड़ना उन पर बलात्कार करना उसकी आदत है। मुखिया स्वयं भी अपनी जवानी में ऐसा ही कुकर्म करता था। कमु की माँ का बलात्कार करके उसे सरेआम नग्न रुप में उसने घुमाया था। कमु इस बात को भूली नहीं थी। जीवन की हरकतों को जानती है इसलिए उससे घृणा करती है। जीवन शराबी, जुआरी, बलात्कारी होने के साथ–साथ चोरी भरी करता है। गाँव के मंदिर की मूर्ति और घंटा भी चोर लेता है। पुजारी सारी सच्चाई जानकर भी, डर के मारे कुछ कट नहीं पाते। मुखिया के बेटे के खिलाफ आखिर कौन कुछ कह सकता है ?

मगन बेरोजगार होने से खेत में मजदूरी करने पर अपने ही मित्रों द्वारा उपालंभ और तिरस्कार झेलता है। कुछ बनने के लिए वह गाँव छोड़ने का निर्णय लेता

है। उसी रात मंदिर के पास से गुजरते हुए एक स्त्री की चीख सुनाई देती है। वह मंदिर में भला कैसे प्रवेश करे ? कुछ क्षणों में मंदिर का दरवाजा खुलता है और कमु हाथ में रक्त रंजित त्रिशुल लिए साक्षात् जगदंबा जैसा रुप धारण कर बाहर निकलती है। कमु को मंदिर में काम के बहाने बुलाया गया था। धीरे–धीरे सभी वहाँ से चल गए, किन्तु उसे काम करने के पैसे न मिले तो वह इंतज़ार करने लगी। कमु मगन से कहती है कि जीवन दुबारा मंदिर की मूर्ति चोरी कर रहा था, पुजारी और जीवन के बीच हाथा–पाई में मूर्ति टूट गई। जीवन ने मूर्ति पुजारी के सिर पर मारी थी, इसलिए वे घायल होकर गिर पड़े। कमु को वहाँ देखकर जीवन उसे भीतर मंदिर में खींच लेता है और हमला करता है। पहले तो वह बचाव के लिए चीखती है फिर सोचती है–

> **''मेरे मुँह से चीख निकल गई, पर मुझे यहाँ कौन बचाए ? और बचाने वाले भी उनके। जो यदि आए तो एक से दो लोग मेरा बलात्कार करें।''**[103]

यहाँ एक दलित स्त्री की लाचारी प्रकट होती है। मंदिर में भगवान हैं फिर भी वहाँ न तो उसे कोई बचा सकता था, क्योंकि दलितों को मंदिर में प्रवेश निषेध था और नहीं सवर्ण उसे बचाएँगे वे तो बल्कि मौके का फायदा उठाएँगे। होश में आते ही पुजारी त्रिशुल से जीवन पर वार करता है, जीवन पुजारी पर दोबार वार करता है, जिससे वह फिर गिर जाता है। कमु यह दृश्य देखती है। यह वही मुखिया का बेटा था जिससे कमु की माँ पर आत्याचार किया था। अपने और अपनी माँ पर होने वाले अत्याचार का प्रतिकार लेने के लिए वह त्रिशुल पुजारी के पेट से निकालकर जीवन के सीने में, फिर उसकी इन्द्री पर घाव करती है।

मंदिर में दो लाशें पड़ी थीं। मगन कमु को समझाता है, कि यदि पुलिस को सच्चाई का पता चल गया तो उसके बेटे का भविष्य बिगड जाएगा। वह अपना प्रेम प्रस्ताव उसके समक्ष रखकर जीवन भर साथ निभाने की बात कहता है। कमु दूसरा विवाह किसी भी कीमत पर नहीं करना चाहती। कमु और उसके बेटे को बचाने के लिए शिक्षित बेरोजगार मगन सोचता है कि वैसे भी उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, यदि वह जेल में रहेगा तो दो वक्त की रोटी मिलेगी और कमु सुरक्षित रहेगी। मगन कमु को बचाने के लिए खून का गुनाह अपने सिर ले लेता है। मगन का यह बलिदान व्यर्थ जाता है, क्योंकि सवर्ण समाज बदले की आग में जलने लगता है। पूरे दलितवास को आग लगा दी जाती है। जिसमें एक दलित स्त्री और एक बच्चे की भी क्रूर हत्या कर दर जाती है। अर्थात् कमु और उसके बच्चे की हत्या कर दी जाती है।

2.'राती रायण की रताश'– बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की कहानी **'राती रायण की रताश'** में स्त्री के जातीय शोषण और नारी चेतना की बात आती है। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने पुरुष पात्र से अधिक स्त्री पात्र का आकर्षक चित्रण किया है। कहानी की नायिका केशली अन्याय के समक्ष संघर्ष करने वाली स्त्री है। केशली का रुप राती रायण जैसा है रायण का रंग पीला होता है लेकिन यह रुढ़ि प्रयोग है। लेखक ने स्पष्टता की है कि राती रायण की रताश अर्थात् बहुत सुंदर स्त्री का क्रोध। चरित्र ही मनुष्य की शोभा बढ़ाता है। भारत की आध्यात्मिक समृद्धि उसकी अखंडित चारित्र्य की रक्षा के लिए वह खून करने से भी हिचकिचाती नहीं है। जेल की रोटी का उसे कोई डर या भय नहीं है।

केशली के रुप पर मोहित होकर गाँव का सवर्ण पूजिया उसकी सुंदरता को देखता ही रह जाता है। केशली एक विवाहित स्त्री है, यह जानते हुए भी वह, उसे एक रात के लिए अपने पास आने का प्रस्ताव रख देता है। केशली की इस पर क्या प्रतिक्रिया होगी यह दीपा नहीं जानता था, उसने सोचा था कि केशली उसके प्रस्ताव को सुनकर शरमाएगी। लेकिन दीपा के शब्द को सुनते ही नाजुक, कोमल, सुंदर लगने वाली केशली शेरनी बनकर गरजने लगती है। उसकी आँखों से क्रोधाग्नि की ज्वाला निकलने लगती है। किसी शक्ति का रुप धारण करके पूजिया का कोलर पकड़कर उससे कहती है–

''मुझे लज्जित करने वाले तेरी माँ ने सवा सेर सोंठ खाई हो तो मुझे अपनी पत्नी बना। नहीं तो तू किसी बेशर्म का बेटा हो तो मेरा दूध पीकर, फिर शर्मखाकर, माँ कहकर चलता बन।''[104]

यहाँ केशली एक कर्मठ नारी के रुप में हमारे समक्ष आती है। उसके वाक्य अश्लील लगते हैं, किन्तु एक अनपढ़ स्त्री जिसके पास सबसे कींमती वस्तु उसका चारित्र्य है, ऐसी स्त्री के चरित्र पर कोई कलंक लगाना चाहे, तब वह ऐसी नहीं तो फिर कैसी प्रतिक्रिया देगी ? लेखक ने भी जो अनुभव न किया है, उसी समाज का हमारे समक्ष चित्रात्मक रुप से वर्णन किया है, फिर सभ्य समाज को वह अरुचिकर भी लगे तो इसमें लेखक का क्या दोष है ?

दीपा ने कल्पना भी नहीं की थी, कि केशली उसके प्रणय निवेदन का इस तरह गालियों की बौछार से उत्तर देगी। वह तो उसके शब्द सुनकर स्तब्ध ही रह गया। परिस्थिति की गंभीरता को देखते हुए उससे यह कहकर माफी माँगने लगा कि उससे बड़ी भूल हो गई, अब वह कभी ऐसी गलती नहीं करेगा। दीपा बार–बार उससे विनती करता है, किंतु केशली अपनी बात पर डटी रहती है, कि या तो तू मुझे अपनी माँ बना या पत्नी। जिस पर दीपा का उत्तर था–

''मैं तुझे ले जाऊँ तो तुम्हारा पति आतिया मुझे तो मन का छः शेर ही करके रख देगा ?''[105]

यहाँ दीपा की कायरता प्रकट होती है। वह तो केशली को मात्र एक रात के लिए पाना चाहता था, जीवन भर उसके साथ नहीं रहना चाहता। लेखक ने यहाँ जन समाज की कहावतें और रुढ़िप्रयोग का प्रयोग किया है, उदा. "मन का छः शेर कर देगा" लेखक की भाषा स्थल, काल और वातावरण के अनुरुप है, जिससे हमारी दृष्टि के समक्ष सारे दलित समाज का चित्र उभर कर आता है।

केशली के इस विद्रोही रुप को देखकर गाँव के सभी लोग वहाँ एकत्र हो जाते हैं। कई लोग दीपा की गलती को माफ करने की सलाह देते हैं, किंतु केशली अपनी जिद् पर अड़ी रहती है। अंत में एक बुजुर्ग के कहने पर वह दीपा को छोड़ देती है। केशली अपनी प्रादेशिक बोली में दीपा को अश्लील गालियाँ देती है। जिसे सुनकर दीपा के होश उड़ जाते हैं। दीपा की राती रायण, केशली उसे धूल चटाकर छोड़ती है। केशली दीपा जैसे चरित्रहीन, लंपट व्यक्ति को ऐसा सबक सीखाती है, कि वह दोबारा न तो केशली को छेड़ सके और न ही गाँव की अन्य स्त्रियों को छेड़ने की हिम्मत जुटा सके। वह तो दीपा को छठी का दूध याद दिलाकर ही छोड़ती है।

3. 'मेना' – बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की **'मेना'** कहानी की नायिका मेना अन्याय के समक्ष लड़ने वाली स्त्री है। जिस तरह घोर अंधेरा, अन्याय के अमावस को एक टिमटिमाता दीपक दूर कर देता है, उसी प्रकार मेना जैसी स्त्री दुःख और अत्याचार के अंधकार भरे जीवन में आत्मविश्वास और परिश्रम रुपी दीपक को जलाए रखती है। मेना एक दलित विधवा है। अपने एक बच्चे और बूढ़ी सास के साथ सगर्भा मेना सुर्योदय से लेकर सुर्यास्त तक काम करती है। प्रतिवर्ष नदी में से रेती को निकालकर नमी वाली जमीन खोजकर वह उसमें सब्जी, खरबूजा, तरबूज आदि लगाती है। यह जमीन मेना और कई दलितों को सरकार ने खेती के लिए दी थी। मेना का पति मणी बाढ़ में मृत्यु को प्राप्त हो गया था। गर्भवती मेना यदि परिश्रम न करे तो अपना परिवार कैसे पाले ? गर्भावस्था के नौवें महीने में भी मेना दिन–रात खेती के काम में लगी रहती है।

मेना यह परिश्रम इसलिए भी करती है, क्योंकि शहर के व्यापारी से पिछले साल आलू की खेती के लिए उसने बीज लिए थे। खेती तो बाढ़ में खराब हो गई, किन्तु व्यापारी का कर्ज़ा उसके सिर आ गया था। पति की मृत्यु के बाद वह व्यापारी के गंदे इरादे को समझ गई थी। वह गलत कार्य करके अपना घर नहीं चलाना चाहती थी। व्यापारी की हवस का शिकार न बनना पड़े इसलिए वह टोकरी में सब्जियाँ लेकर शहर में बेचने जाती थी, क्योंकि गाँव में एक दलित स्त्री से कोई सब्जी नहीं लेता था। उसके इस परिश्रम को देखकर गाँव वाले दाँतों तले ऊँगलियाँ दबा लेते थे। पर मेना थी, कि रुकने का नाम नहीं लेती थी। उसकी सास उसकी दशा को देख–देख कर दुःखी होती थी, किंतु चाहकर भी उसे काम करने से नहीं रोक पाती थी।

व्यापारी के गंदे मनसूबे जब पूरे होते नज़र नहीं आते तो वह पैसों के बहाने मेना पर दबाव डालना चाहता है, ताकि मजबूर होकर मेना उसके समक्ष समर्पण कर दे। मेना उसके इशारे को समझ जाती है, और फावड़ा हाथ में लेकर उसे मारने दौड़ती है। व्यापारी और उसका नौकर घबराकर भाग जाते हैं, किंतु मेना से बदला लेने की ठान लेते हैं।

उस गाँव में सभी की दशा मेना जैसी थी। सभी गरीब, भुखमरी, अन्याय, अत्याचार जैसे दूषण के शिकार थे। कोई किसी की मदद नहीं कर सकता था। मजबूरन खेती के लिए खाद या बीज व्यापारियों से उधार लेना पड़ता। पैसों के बदले व्यापारी उनकी खेती की सब्जियाँ उनसे मुफ्त में ले लेते और गरीब दलितों के हाथ परिश्रम करके भी खाली ही रहते। व्यापारी वह सब्जियाँ दुगने भाव में बेचकर दुबारा उनका शोषण दुगने जोश से करने को तैयार हो जाते। कड़ी धूप में सुबह से शाम तक परिश्रम करने वाले दलितों के घर में रखा–सूखा भोजन भी वड़ी मुश्किल से मिलता औश्र ठड़क में आराम से बैठे व्यापारी दलितों के परिश्रम से मौज करते इतना ही नहीं दलितों की स्त्रियों का जातीय शोषण भी करते।

मेना अपने पुत्र पसला को पढ़ाना लिखाना चाहती है, किंतु आस–पास कोई स्कूल नहीं थी। वह खेती का काम छोड़ दे तो पुत्र को पढ़ाने भेज सकती थी, किंतु यदि वह यह खेती न करे तो घर कैसे चले ? इसी चिंता में मेना थी कि अचानक वहाँ व्यापारी के कुछ आदमी आधमकते हैं। वह जबरन कागज पर अंगूठा लगवाने के बहाने मेना को उठाकर ले जाना चाहते हैं। इस पर मेना कहती है।

''मुझे हाथ लगाकर देखो, छठी का दूध याद न करा दूँ तो देखना।''[106]

यहाँ गर्भवती स्त्री जिसे नौवा महिना चल रहा है, ऐसी मेना अपनी आत्मरक्षा के लिए फावडा उठाकर उस व्यक्ति पर प्रहार करती है, जो उसे पकड़ना चाहता है। वह व्यक्ति घायल होकर गिर जाता है। आखिर चार–पाँच पुरुषों के समक्ष एक गर्भवती स्त्री कितना लड़ सकती थी। एक व्यक्ति उसे पकड़ ही लेता है। उसके पैर खींचकर उसे रेती में घसीटने लगता है। इसी बीच मेना को प्रसव पीड़ा उठती है और उसके बच्चे का जन्म वहीं हो जाता है। व्यापारी के सारे चेले वहाँ से भाग जाते हैं।

यहाँ पर लेखक ने दलित स्त्री की दशा कैसे दुर्दशा में तबदील होती है, यह बताया है। जिस समय एक गर्भवती स्त्री को सबसे ज्यादा सँभाला जाता है, उसी समय दलित होने की वजह से मेना जैसी विधवा स्त्री की यह दुर्गति होती है, कि जिसे सुनकर भी शरीर के रोंए खड़े हो जाते हैं। आखिर यह शोषण कब तक चलेगा ? कब तक मेना जैसी स्त्री अपने पर होने वाले अन्याय के लिए लड़ती रहेंगी ? कब तक मेना के नवजात शिशु को धरती पर जन्म लेने से पहले, जन्म लेते समय और जन्म लेने के बाद तथा जीवन पर्यन्त ऐसे अत्याचार को झेलना पड़ेगा ?

4. 'जोगन'– बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की **'जोगन'** कहानी में गैर दलित द्वारा दलित स्त्री का जातीय शोषण किया जाता है, किंतु कहानी की नायिका वाली शोषण के प्रति विद्रोह प्रकट करके आत्मरक्षा करती है। वाली विधवा स्त्री है, उसका पति कालाजी की मौत आरक्षरण मुद्दे पर हुए दंगे में हो गई थी। वाली अपने दस महीने के पुत्र कनु और ससुर रुपाजी के साथ शहर में रहती थी। पहले हाथलारी बाप–बेटे खींचते थे, अब बहू और ससुर खींचने लगे। ससुर और माता–पिता के लाख समझाने पर भी वाली दूसरा विवाह नहीं करना चाहती। वह अकेले ही अपने बेटे का पालन–पोषण करके उसे उच्च शिक्षा देना चाहती है।

एक दलित सुन्दर स्त्री के लिए अकेले जीवन काटना मुश्किल था। एकांत का लाभ लेकर कोई उसे परेशान न करे इसलिए वह ससुर और दुनिया के समक्ष लंबा घुंघट निकालती है। वह अपने रुप को छिपाकर रखना चाहती है। वह नहीं जानती थी कि घुंघट से उसका रुप और अधिक निखरने लगता था। रुपाजी भी अपनी बहू और पोते की चिंता में डूबा रहता था, उसके बाद वाली कैसे जीवन बीताएगी ? कौन उसकी रक्षा करेगा ? वगेरे प्रश्न उसे परेशान कर देते थे।

एक बार एक व्यापारी वाली की आबरु लूटना चाहता है। गाँव से आई वाली पहले तो ऐसे व्यक्तियों से चिढ़कर उनसे झगड़ा कर लेती थी, किंतु धीरे–धीरे उसने ऐसे माहौल में अपने आप को ढ़ाल लिया था। यदि कोई उससे मजाक करता तो वह हँसकर टाल जाती। अपने मन के विद्रोह को प्रकट नहीं होने देती। किंतु व्यापारी पहले उसे बहाने से अपने घर किताबें रखने बुलाता है और बाद में उस पर हमला करता है। वाली समझ जाती है कि अब उसकी इज्जत नहीं बच सकती, वह दौड़कर बाल्कनी में जाती है, जब व्यापारी उसके पास आता है तो वह गुस्से में आकर उसके दोनों पैर पकड़कर ऊँचा कर देती है, जिससे व्यापारी पाँचवी मंजिल से नीचे गिर जाता है। घबराई हुई वाली नीचे दौड़कर आती है लेकिन अपने ससुर से इस विषय की चर्चा नहीं करती। वर्षा की डरावनी रात थी, चारों ओर अंधकार फैला था। काले बादलों में

रह–रहकर बीजली चमक रही थी। भयभीत करने वाले वातावरण में भक्त कवयित्री पानबाई की एक पंक्ति–

''बीजली की चमक में मोती पूरे पानबाई''[107]

वाली और उसके ससुर की चेतना में प्रकट होकर समग्र स्थिति को एक नया अर्थ देती है। जिस तरह बीजली का जीवन क्षणिक होता है, उसी तरह मनुष्य का जीवन भी क्षणिक है। पानबाई क्षणिक जीवन को सार्थक करना चाहती है। दलित नारी वाली भी उसी तरह जीवन की क्षणभंगुरता के बीच अपनी अस्मिता के मोतियों की माला पूरने का आग्रह करती है। उसी में वह अपने जीवन की सार्थकता समझती है। दलित जीवन की अपमानपूर्ण स्थिति के बीच पानबाई के आध्यात्मिक सत्य की यह एक बिल्कुल नई और विशिष्ट प्रतीति है।

दलित स्त्री वाली को अपने किए पर कोई पछतावा नहीं था, उसने वही किया था, जो किसी भी स्त्री को अपनी आत्मरक्षा के लिए करना चाहिए। चिंतित ससुर से वह कहती है–

''आप मेरी चिंता न करें। मुझे या कनु को कुछ नहीं होगा। मेरे पास मारने के लिए कुछ नहीं होगा तो भी यह मेरे दाँत और यह नाखुन तो हैं न ? ये मेरे त्रिशुल हैं।''[108]

यहाँ हम दलित स्त्री में शोषण के प्रति विद्रोह के भाव को देख सकते हैं। रुपाजी को आज वाली किसी देवी के समान लगती है। उसके तेज के समक्ष बीजली की चमक भी फीकी लगने लगती है। यह चमक अत्याचार के समक्ष विद्रोह से उत्पन्न आत्मविश्वास की शक्ति से उसे प्राप्त हुई थी। अपने क्षणिक जीवन को अब वह डरकर या शोषण सहकर नहीं बीताना चाहती थी, वह तो अब स्वाभिमान के साथ निडर बनकर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई अपने जीवन को सार्थक करना चाहती है। प्रस्तुत कहानी में नारी चेतना की बात आती है। नारी यदि जगदंबा बने, उसका जोगिन रुप व्यक्त करे तो उसके समक्ष आने वाले को दंडित कर सकती है, यह इस कहानी से प्रकट होता है।

5. 'साकडा' (पायल)–विट्ठलराय श्रीमाली

लाली एक दलित स्त्री है। वह सुंदर, परिश्रमी, साहसी है। वह घर के कार्य में निपुण है, साथ ही पति शना की लम्बी बीमारी के कारण खेती की जिम्मेदारी भी निपुणता से निभाती है। वह बीमार पति को बैल–गाड़ी में बिठाकर अपने साथ खेत में ले जाती है। पति की सेवा और बाहरी जिम्मेदारी निभाते हुए वह गाँव की स्त्रियों का आदर्श बन जाती है। गाँव के सरपंच तो उसकी तारीफ करते नहीं थकते। बैलगाड़ी चलाती हुई जब वह गाँव से खेत की ओर जाती है, तो गाँव के सारे पुरुष उसे देखते ही रह जाते हैं।

लाली की हिम्मत एवं परिश्रम का परिणाम उसे अच्छा मिलता है। उसकी खेती अच्छी होती है, जबकि गाँव के अन्य घरों में पुरुष स्वयं खेती पर इतना ध्यान नहीं देते थे, इसलिए उनकी खेती उतनी अच्छी नहीं हुई। सरपंच लाली के परिश्रम का उदाहरण देकर गाँव के भीमा को मेहनत करने की सलाह देते हैं। भीमा, लाली के

सौन्दर्य से प्रभावित होता है और उस पर कुदृष्टि रखता है। एक रात लाली खेत से लौट रही थी। उसके अकेलेपन को देखकर भीमा उसकी साड़ी पकड़ता है। भीमा सोचता है कि लाली का पति मरीज है, लाली पति की कमजोरी की वजह से किसी पर पुरुष का साथ स्वीकार लेगी। भीमा की सोच गलत निकलती है। लाली का पति भले ही मरीज हो, किन्तु वह उससे अत्यंत प्रेम करती है, उसकी सेवा करने में वह अपना पूरा जीवन समर्पण कर सकती थी। लाली, भीमा की आवाज़ पहचान जाती है और उससे डरे बिना, उसे कहती है कि यदि तुम्हारी माँ ने सवासेर सोठ खाई हो तो, तू भागना मत। लाली हसिया लेकर उसे मारने दौड़ती है। भीमा घबराकर भाग जाता है।

लाली का पति उसे एक किलो की पायल दिलाता है, जिसे पहनकर उसकी सुंदरता और निखर जाती है। लाली स्वयं का असली गहना पति को ही मानती है, किन्तु स्त्री होने के कारण उसकी एक प्रबल इच्छा थी कि उसके पास एक सुंदर, वजनदार पायल हो। यह पायल उसी के परिश्रम के कारण खरीदी जा सकी थी।

खेत में काम करती लाली पर भीमा पीछे से हमला करता है। पहले तो लाली संभल नहीं पाती, किन्तु अपनी लाज बचाने के लिए वह रौद्र रुप धारण कर लेती है। भीमा स्त्री को अबला समझ रहा था, किन्तु हर स्त्री अबला नहीं होती, यह उसके जीवन की बहुत बड़ी भूल सिद्ध होती है। लाली के पति ने उसे जो पायल दिलाई थी, वह पायल मात्र शृंगार ही नहीं उसके हथियार की तरह काम में आती है। लाली ने भीमा को पायल के प्रहार से तोड़ डाला। दूसरी बार किसी स्त्री को परेशान न कर सके, इसलिए उसने भीमा की कमर ही तोड़ दी।

भीमा की कमर तोड़ने वाली लाली एक सबला नारी होने का परिचय देती है। एक स्त्री के लिए उसकी पवित्रता से बढ़कर कुछ नहीं होता। दलित स्त्री जी–तोड़ मेहनत करके अपना गुजर कर सकती है, किन्तु अपनी पवित्रता नहीं खोना चाहती।

6. 'वंटोड'–भी.न.वणकर

भी.न.वणकर की **'वंटोड'** कहानी में दलित जीवली अकेले ही फतेसंग–शंकरीया जैसे सवर्ण पुरुषों का मुकाबला करती है। गरीब, दलित जीवली आत्मरक्षा के लिए हवसखोरों को सबक सीखाती है। जीवली सवर्णों के गंदे इरादों को नाकाम कर देती है और कहती है–

> **''गरीब हूँ, अछूत हूँ और अबला हूँ इसलिए किसी के पैर के नीचे पीस नहीं जाऊँगी। समझे ! तुम जाओ, शर्मनाक जीवन जीने से तो मैं लड़ लूँगी।''**[109]

ऐसा प्रतिकार करने वाली जीवली से हारकर सवर्ण दलितवास में आग लगा देते हैं। जीवली को हासिल न कर पाने पर वे उसे जलती ज्वालाओं के बीच फेंक देते हैं। कहानी का ऐसा करुण अंत अप्रतीतिकर लगता है। जीवली का एक रुप सबला का, तो दूसरा अबला नारी का दिखाया गया है। कहानी के अंतिम अनुच्छेद में–

> **''सूरज साक्षी है परंतु वह भी अभी क्षितिज में डूब जाएगा और सर्वत्र.... अनावश्यक है।''**[110]

प्रस्तुत कहानी प्रतीकात्मक है। अनेक अर्थ निष्पन्न होते हैं। एक

तो प्रकृति में उठाने वाला 'बंवडर'(वंटोड) तो है ही। इसके अतिरिक्त जीवली को देखकर फतेसंग शंकरीया में उठने वाला वासनारुपी बवंडर, जीवली में इन पापियों के समक्ष उठने वाले क्रोध का बवंडर, दलितवास में आग लगाई गई इस घटना से जीवली में उठने वाला प्रतिकार का बवंडर। डॉ.शरीफा बीजलीवाला ने लिखा है कि–

''वन में घुमनेवाला बवंडर अंत में आग के तांडवरुप बवंडर में परिवर्तित हो जाता है।''[111]

7. 'रुपा का पानी'–बी. केशरशिवम्

प्रस्तुत कहानी में लेखक बी. केशरशिवम् ने मुख्यतः रोटी, कपड़ा और मकान की प्राथमिक आवश्यताओं की बात के साथ–साथ दलितों के लिए प्राथमिक आवश्यकता पानी को महत्त्व दिया है। कहानी की नायिका रुपा नलसरोवर के नज़दीक के गाँव में अपने पति ओधड़ के साथ रहती थी। गाँव में पीने के पानी की समस्या थी। तीन गाँव पार करके सवर्ण रामजी नामक व्यक्ति के हेन्डपंप से पानी लाना पड़ता था। रामजी अपने हेन्डपंप से पानी नहीं देना चाहता है। जिसे पानी चाहिए उसे राजमी के खेत में मुफ्त में मजदूरी करनी पड़ती थी। स्त्रियों का वह शारीरिक शोषण भी करता है। मजबूरी में दलित स्त्री–पुरुष रामजी के अत्याचार को सहते थे, क्योंकि उससे दुश्मनी करने का नतीजा बूंद–बूंद पानी के लिए तरसना था। एक बार ओधड़ को पानी भरते समय रामजी ने धक्का दे दिया था, तब से वह वहाँ पानी भरने नहीं जाता था, किन्तु जीवन के लिए अति–आवश्यक वस्तु पानी के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता इसलिए रुपा वहाँ पानी भरने जाती है।

रामजी रुपा की मजबूरी जानता था। मौके का फायदा उठाकर वह रुपा को आँख मारता, तो कभी उसका स्पर्श करता। रुपा को यह सब अच्छा नहीं लगता था। अपने पति से वह सारी बातें बताती है। गाँव में पानी खारा था, इसलिए ओधड़ भी रामजी के समक्ष आवाज़ नहीं उठा सकता था। वह जानता था कि रुपा हिम्मती है, वह डरने वाली नहीं। वह सोचता है–

''वैसे तो रुपा कोई डर जाय ऐसी नहीं। यदि कोई उसका स्पर्श करेगा तो उसके सिर पर घड़ा मारकर आए ऐसी है।''[112]

रुपा जितनी सुंदर थी उतनी ही, सजग भी थी। वह जानती थी कि रामजी के मन में क्या चल रहा है। रामजी दलित स्त्रियों को लालच देकर किस तरह उनका शारीरिक शोषण करता है, उन्हें खेत में बेगार की मजदूरी करवाता है, यह सब से रुपा ने अपने आपको तकलीफों का सामना करने के लिए तैयार कर लिया था। रुपा बलवान और बहादूर थी। उसके पति को भी उस पर विश्वास था, कि वह किसी का अत्याचार नहीं सहेगी बल्कि उसे सबक सीखाकर आएगी।

दलितों को भर पेट खाना नसीब नहीं होता था, तो घर की तो बात ही क्या ? किन्तु बाड़ में रुपा और ओधड की झोंपडी बह गई थी, इसलिए सरकार ने उन लोगों की झोंपड़ी पर घांस की जगह विलायती कवेलु लगवाये थे। रुपा और ओधड़ की खुशी का ठिकाना न था। रुपा के चार बच्चे थे, किन्तु मोहल्ले में अधिकतर दलितों के लगभग दस–दस बच्चे थे। एक ओर गरीबी दूसरी ओर उस पर इतनी बड़ी फौज का भरण–पोषण करना उनके समक्ष बहुत बड़ा प्रश्न था। भूमि के खारे होने से सुअर बेचकर

ही भरण–पोषण करते थे। खाने मे बंटी (एक प्रकार का अनाज) की रोटी साथ ही नल सरोवर में से मछली, बतक, तालाब की मूर्गी मारकर उनका उपयोग करते थे।

एक बार ओधड़ को पुलिस ने तालाब में से चोरी करते हुए पकड़ लिया था और उसे इतना मारा था कि वह खड़ा नहीं हो सकता था। उस दिन से उसने चोरी करना बंद कर दिया था।

जयमाल ओधड़ का मित्र है जिसे सरकार से पचास प्रतिशत सबसिडी से जीप मिली थी। अर्जुन सिंह जयमाल को पाँच सौ रुपये देकर अंगूठा लगवा लेता है और बैंक में हफ्ता भरकर जीप पर अपना कब्जा कर लेता है। दलितों की दयनीय स्थिति सुधारने के लिए सरकार जो नियम बनाती है उसका लाभ उन दलितों से अधिक सवर्णों को मिल जाता है। जयमाल की आर्थिक स्थिति में सरकारी रजिस्टर में सुधार देखा जा सकता है, किन्तु वास्तविकता कुछ और थी, कि उसके पास एक मटका खरीदने के भी रुपये न थे। सरकारी नियमों के अनुसार जो दलितों को आर्थिक मदद मिलती है, उसमें भी रिश्वत देनी पड़ती है, अन्यथा वह आवेदन–पत्र आगे बढ़ता ही नहीं, रोक दिया जाता है।

मित्र से बात करते हुए भी ओधड़ का मन बैचेन था। रुपा पानी लेकर नहीं लौटी थी। चिंता में वह इधर–उधर मंडराने लगा। दूर से वह रुपा को बिना घड़े के आते देखता है। रुपा उसका हाथ पकड़ कर उसे झोंपड़े में लेजाकर हाँफते–हाँफते कहती है–

> **''आज पानी भरने के बाद उस रामजी ने मेरी आबरु लेने के लिए मुझे अपनी बाहों में ले लिया। आस–पास कोई नहीं था। मुझे वह नहीं छोड़ रहा था। उसने मेरा ब्लाऊज फाड़ दिया।''**[113]

एकलता का लाभ उठाकर रामजी रुपा पर हमला करता है, उसके कपड़े फाड़ता है, उसके इस व्यवहार से रुपा अबला का रुप छोड़कर सबला, बहादुर स्त्री बन जाती है। क्रोध में उसकी आँखें लाल हो जाती हैं और वह रामजी का गला घोटकर उसकी जान ले लेती है। रुपा की आँखों में ओधड़ को तमतमाते हुए सूर्य के तेज से भी अधिक गर्माहट दिखाई दे रही थी, जिसमें ओधड़ भी जलने लगा था।

यहाँ रुपा का चरित्र स्त्री शक्ति को प्रस्तुत करता है। नारी के दोनों रुपों में से रुपा सबला नारी बनकर अपनी आत्मरक्षा करती है और रामजी जैसे व्यक्ति जो अपने नाम की भी मर्यादा नहीं रखते ऐसे राम के रुप में रावण की हत्या कर देती है।

9. 'शहर की बहू'– बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की प्रस्तुत कहानी की नायिका कमू शहर में रहती थी, किंतु उसका विवाह गाँव में किया जाता है। शहर के स्वच्छंद वातावरण में पढ़ी–लिखी कमु गाँव की गरीब, अनपढ़ स्त्रियों की दशा को तब समझती है, जब वह स्वयं गाँव में दलित स्त्री को किस तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, यह देखती है। जब गाँव का सवर्ण व्यक्ति गरबड़ उसे छेड़ता है और उसका हाथ पकड़ लेता है, कहानी में इसका वर्णन इस प्रकार है–

> **''उसने कमु का हाथ पकड़ा। करशन ने कमु हाथ छुडाने के लिए उसके हाथ पर काट लिया।.... करशन की चीख सुनकर कमु ने उसके सिर पर**

रखा मटका उस गरबड़ के सिर पर मार दिया। गरबड़ नीचे गिर गया। कमु तुरंत उसकी छाती पर चढ़ बैठी। वह लगातार उसे मुक्का मारने लगी। गरबड़ के होठ और दांत पर चोट लगने से उसके मुँह से खून निकलने लगा।''[114]

नौ वर्षीय करशन अपनी मुँहबोली भाभी कमु को बचाने के लिए गरबड़ को काटता है। तब तक कमु अपने हाथ को छुड़ाने का प्रयत्न करती है किंतु जैसे ही गरबड़ करशन को चोट पहुँचाता है, कमु, में न जाने कहाँ से शक्ति आ जाती है। वह गरबड़ को उसके किए की सज़ा उसकी पिटाई करके देती है। कमु उस समय चण्डी का रुप धारण कर लेती है।

कमु के इस साहस भरे काम से उसका परिवार और दलित समाज संकट में आ जाता है। गरबड़ अपने साथियों को लेकर कमु को सजा देने आता है। बहुत गालियाँ देता है, बड़ी मुश्किल से उसे वहाँ से यह कहकर लौटाया जाता है कि अब दोबारा ऐसी गलती नहीं होगी। कमु का पति उससे नाराज़ होता है। वह गुस्से में कमु पर हाथ उठा देता है। दुःखी होकर कमु अपने मायके चली जाती है। उसके जाने के बाद गाँव में सारा मामला ठंडा हो जाता है। कमु को भी अपने पति एवं परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य का अहसास होता है। इसलिए जब वह अपने ससुराल लौटती है, तो वह पहले वाली शहर की कमु नहीं रहती, वह एक गरीब, दलित वर्ग की स्त्रियों की तरह अपने हुनर और परिश्रम का परिचय इस प्रकार देती है–

''वह कवेलु के टुकड़े बिन लाती और घर के सामने ढ़ेर लगाती जब मजदूर प्लास्टर करने के लिए टुकड़े लेने आते तब वह सबसे पहले टोकरी लेकर दौड़ती। एक टोकरी के दो या तीन आने मिलते। रेलवे की पटरी पर से आधे जले कोयले और कोयले का चूरा ले आती। तालाब में से मिट्टी लाकर उसके साथ यह कोयले के चूरे को मिलाकर उसके उपले बनाकर सूखाती। उसे सिगड़ी में जलाती कपास के छिलके न फेंककर, गोबर के साथ मिलाकर, उसके उपले बनाकर सूखाती.... कमु अब तो जैसे पहले की कमु ही न रही थी।''[115]

कमु के परिश्रमी जीवन की कड़वी वास्तकिकता के साथ समस्त दलित समाज की कड़वी सच्चाई का चित्र उभरकर आता है।

पुरानी बातों को भूलकर कमु नए सिरे से अपने जीवन को जीना चाहती है, किंतु आरक्षण के प्रति विद्रोह हुआ जिसमें करशन फँस गया। करशन की माँ पूंजी को परेशान देखकर कमु उसे बचाने के लिए पूंजी के साथ जाती है। करशन को लेकर जैसे ही वे दोनों लौटती हैं कि रास्ते में दंगाई उन्हें घेर लेते हैं। करशन को चोट से बचाने के लिए कमु पहले तो स्वयं उस पर लेट जाती है और लाठियों की बरसात सहती है। लेकिन जब एक लाठी करशन के सिर पर लगती है, तो उसकी चीख सुनकर कमु जैसे अपनी सुध–बुध खोकर करशन को मारने वाले व्यक्ति गरबड़ को पकड़ लेती है। एक बार फिर वही व्यक्ति उसके समक्ष था जिसे वह पहले घायल कर चुकी थी। कमु के शरीर में गरबड़ को देखकर कपकपी दौड़ गई। उसकी आँखें और चेहरा लाल हो गया। उसकी नाक से गरम हवा निकलने लगी। उसका शरीर साक्षात् जगदंबा जैसा लगने लगा, केवल उसके हाथ में त्रिशूल ही नहीं था। वह कहती है–

''उस दिन तो वह रबारी आ गया था इसलिए तू बच गया था। आज देखती हूँ तुझे कौन बचाएगा ?''[116]

कमु का यह विद्रोही रुप कुछ समय के लिए लुप्त हो गया था, किन्तु वह खत्म नहीं हुआ था। विपरीत परिस्थिति में उसका यह जगदम्बा का रुप फिर से जागृत हो जाता है। वह गरबड़ के शरीर के अंग जैसे नाक, कान को अपने दाँतों से काटकर फैंक देती है। आज वह उसे किसी शेरनी की तरह खा जाना चाहती थी। कमु के इस विद्रोही रुप को देखकर कोई उसके पास फटकने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। कमु क्रोध से काँप रही थी और कहती जा रही थी–

''मैं देवी हूँ, खप्पर लेनेवाली देवी। आओ मेरे पास। अभी तो मुझे तुम्हारा खून पीना है। यह मेरे दाँत और नाखून मेरे त्रिशूल हैं।''[117]

कमु ने अपना एकमात्र भाई ऐसे ही आरक्षण के झगड़े में खो दिया था। भाई के समान करशन की जान जब खतरे में आती है तो कमु के अचेतन मन पर छाई हुई देवी शक्ति जागृत हो जाती है। यह शक्ति उसे अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। यहाँ कमु नारी में रहे शक्ति रुप को प्रकट करती है।

9. 'खील'–बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की प्रस्तुत कहानी **'खील'** पानी और उका नामक पति–पत्नी के जीवन–संघर्ष को प्रस्तुत करती है। दलित उका जिस गाँव में रहता था वहाँ पर घोर अस्पृश्यता के साथ–साथ सवर्णों द्वारा दलितों पर अत्याचार करना आम बात थी। सवर्णों का दबदबा इतना अधिक था कि यदि दलित के पास पैर में पहनने के लिए चप्पल हो तो भी वह नंगे पैर चलने के लिए मजबूर थे।

फ्लेश बेक पद्धति का प्रयोग प्रस्तुत कहानी में किया गया है। नायक उका उन बीती बातों का याद करता है जो बचपन में उसने अपने दलित होने के कारण भोगी थी। आज वह शहर में रहता है और अपने परिवार का भरण पोषण करने के लिए कचरे में से पोलीथीन बेग, पुरानी स्लीपर, लोहा, लकड़ी आदि इकट्ठा करके उन्हें बेचकर अपना जीवन–यापन करता है। उसके पैर में दो रंग की चप्पलें देखकर मोहल्ले के दो बच्चे उसका मजाक उडाते हैं। जीवन भर नंगे पाँव चलने वाला उका, अपने बचपन की उन कड़वी यादों में खो जाता है, जिस दिन उसने चाचा द्वारा दी गई चप्पल पहली बार जीवन में पहनी थी। वह बहुत खुश था। गाँव के जोइताजी से उसकी यह खुशी बर्दाश्त नहीं हुई कि उनके समक्ष एक दलित ने चप्पल कैसे पहन ली ? उन्होंने एक लकड़ी दूर से ऐसी फेंकी कि उसके घुटनों पर जोर से लगी। उका वहीं गिर पड़ा। जोइताजी ने उससे कहा

''अब रोए बिना चप्पल निकाल दे नहीं तो पैर तोड़ दूँगा।''[118]

गाँव में सवर्णों के समक्ष कोई दलित यदि चप्पल पहनता था, तो उसकी ऐसी दुर्गती होती थी। इसलिए दलित चप्पल पहने हुए हों भी तो दूर से किसी सवर्ण को आता देखते, तो चप्पल उतारकर अपनी टोकरी में रख देते। तेज धूप, कांटे, पत्थर, कंकड आदि में नंगे पाँव चलना उनकी विवशता थी। गरीबी के कारण चप्पल खरीदने की शक्ति उनमें वैसे भी नहीं थी, किन्तु यदि वे खरीद भी लेते थे तो पहनने का

अधिकार उन्हें नहीं दिया गया था। उका को याद आता है कि एक बार बिना चप्पल पहने वह पानी के साथ ईधन के लिए लकड़ियाँ लेकर गाँव लौट रहा था। पानी ने चप्पल पहन रखी थी। उका के पैर में काँटा लगा गया। पानी उसकी वेदना देखकर गुस्से से उसे कहती है कि–

''मैं कब से कह रही हूँ चप्पल पहन लो।''[119]

इस पर उका कहता है–

''मैं तेरी चप्पल पहनूँ तो फिर तू क्या पहनेगी ? मुझे लगा ऐसा कांटा तुझे न लगता ?''[120]

पति–पत्नी के इस प्रेम भरे वार्तालाप को दिलूभा जैसे सवर्ण व्यक्ति की नज़र लग जाती है। वह पानी पर बूरी नज़र डाले एक महीने से फिराक में था। पानी और उका इस बात की भनक पड़ते ही उसकी मजदूरी करना छोड़कर, उससे दूर रहते हैं। किन्तु एक बार उका की मौजूदगी में ही दिलूभा पानी पर हमला करता है। उका स्तब्ध रह जाता है, किन्तु वह अपना होश संभालकर दिलूभा के पैर पकड़ लेता है और पानी को वहाँ से भागने को कहता है। पानी जब तक घर ने पहुँच जाए तब तक वह उसके पैर नहीं छोड़ता। दिलूभा अपने हाथों से उका को इतना मारता है फिर भी उका जोंक की तरह उससे चिपट जाता है। बाद में वह दिलूभा के इस अपराध के लिए उसे दंड देता है। पहले उसकी नाक, फिर आँख और बाद में उसका गला दबा देता है। उका उससे कहता है–

''मैं मर जाऊँ तो परवाह नहीं परंतु तुझे तो मार ही दूँगा। लोग भी जानेंगे कि मेरे जैसे उका के हाथों तेरी मौत हुई है। फिर मुझे उसकी कोई चिंता नहीं। भले ही मुझे जेल जाना पड़े।''[121]

उका अपनी पत्नी की रक्षा के लिए दिलूभा की हत्या कर देता है। किसी का शोषण सहकर जीवन जीने से अच्छा अपनी आत्मरक्षा करते हुए मर जाना यह उसे ज्यादा उचित लगता है। गाँव में उसका रहना उचित नहीं था, इसलिए वह रातों रात पानी को लेकर कंकर, पत्थर, काँटों में दौड़ता हुआ शहर आ गया था। यहाँ का जीवन भले ही संघर्षों से दूर न था किन्तु गाँव जैसी दुर्दशा यहाँ नहीं थी।

पानी और उका को अपना गाँव छोड़ना पड़ता है। संपूर्ण जीवन अभावों में रहकर भी पैर में उका एक जोड़ी चप्पल खरीदने में असमर्थ है। चाहे गाँव हो या शहर दलितों की स्थिति में ज्यादा अंतर नहीं, फिर भी गाँव के दलितों से शहर के दलित आज अधिक सुखी हैं। प्रस्तुत कहानी में ग्रामीण समाज में दलितों के प्रति होने वाला अत्याचार, भेदभाव, शोषण आदि पर प्रकाश डाला गया है। भाषा में प्रादेशिकता देखी जा सकती है। उका द्वारा आत्मरक्षा के लिए उठाया गया कदम दलित चेतना, दलित शक्ति, स्वाभिमान, निडरता को प्रस्तुत करता है।

10 'डाईंग डेक्लेरेशन'—बी. केशरशिवम्

प्रस्तुत कहानी **'डाईंग डेक्लेरेशन'** दलित नारी के जीवन की पीड़ा को प्रस्तुत करने वाली है। कहानी की नायिका मणी और उसकी पुत्री जड़ी एक सवर्ण मालिक के घर काम करने जाते हैं। यह मालिक गरीब दलितों को आवश्यकता पड़ने पर कर्ज़ देता था और बदले में मजदूरी करने आए पुरुष और स्त्री का शोषण करता था। सुंदर स्त्रियों का शारीरिक शोषण होने से दलित पति–पत्नी के बीच दूरियाँ आती है। पति शराब पीने लगता है और पत्नी को पीटकर अपना क्रोध शांत करता है। वह मालिक के समक्ष अपना विरोध प्रकट नहीं कर सकता था, इसलिए अपने आपको कष्ट देता है।

मणी का पति धनिया ऐसी ही स्थिति का सामना करता है। मालिक ने उसकी शादी में एक हजार रुपये कर्ज़ दिया था। बदले में उसका ससुर, धनिया उसके घर और खेत में हाड़तोड़ मेहनत करते थे, किन्तु मूल कीमत वहीं की वहीं रहती है। समाज में अंधविश्वासपूर्ण रीतिरिवाज और झूठे दिखावे के कारण व्याज पर लिए गए रुपयों के बोझ से उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ती जाती है और उसकी भरपाई करने के लिए स्त्री को मजबूरन मालिक के समक्ष समर्पण करना पड़ता है।

यह दुःख उस गाँव में मात्र मणी का नहीं उसकी सहेली खली के साथ भी यह समस्या थी। उसका पति भी उसे पीटता और उसकी पत्नी को चरित्रहीन समझकर दुःखी रहता। मणी रवली की पीड़ाजनक बातें सुनकर अपने भूतकाल में खो जाती है। उसे याद आता है कि धनिया भी मालिक के साथ उसके (मणी के) अनैतिक संबंधों को जानकर दुःखी हुआ था। उसे पीटकर शराब के नशे में डूबकर वह अपने दुःख को दूर करना चाहता है। एक बार मालिक की पत्नी धनिया को प्रेम संबंध स्थापित करने का अवसर देती है। बदले की भावना से धनिया उससे शारीरिक संबंध स्थापित करता है। मालिक को एक दिन इस बात की जानकारी हो जाती है। वह धनिया को बूरी तरह पीटता है। धनिया को कोई अफसोस नहीं था। वह मणी पर हुए अत्याचार का बदला ले चुका था, यदि उसे इस कार्य के लिए कठोर दंड दिया जाय तो वह स्वीकारने को तैयार था। अपनी पत्नी के स्वाभिमान को वह न बचा पाया था, इसलिए वह मालिक को भी उसी आग में जलते देखना चाहता है, जिसमें वह स्वयं कब से जल रहा था। क्योंकि वह गरीब, निःसहाय था किन्तु मालिक उसे मरवाकर जमीन में गाड़ देता है। मणी सब कुछ जानकर भी कुछ नहीं कर पाती। इतना ही नहीं मालिक मणी के ससुर पर अपनी पत्नी की हत्या का आरोप भी लगाता है और उसे जेल की सज़ा हो जाती है।

मणी की सास और मणी पर चोरी का इल्जाम लगाकर उन्हें चोरी कबूल करने के लिए विवश किया जाता है। न स्वीकारने पर उनकी यौनी में मीर्च डाली जाती है। दलित यदि चोरी न भी करे तो भी उन्हें उस चोरी के करने का दंड दिया जाता है, वे गूँगे बनकर सब कुछ सहन करने के लिए विवश थे। बूढ़ी सास इतनी पीड़ा सहन नहीं कर पाती और कुछ दिनों में मर जाती है।

अब अकेली मणी अपनी जवान होती पुत्री जड़ी के साथ मालिक के घर में ही काम करने लगती है। उसे जड़ी की चिंता है, वह उसके हाथ पीले करना चाहती है, क्योंकि मालिक का छोटा भाई गोपाल जड़ी पर बुरी दृष्टि डालता है। गोपाल की पत्नी जड़ी से वैर करती है और पति के साथ मिलकर जड़ी को जहर खिला देती है। दुःखी मणी अपनी मरती हुई बेटी को अस्पताल ले जाती है। पुलिस उसका बयान लेती है

जिसमें जड़ी कहती है कि मालीक और गोकुल की पत्नी ने जहरीली दवा पीलाकर मेरी बेटी को मारने की साजिश की है।

जड़ी निर्दोष थी किन्तु गोपाल के दुष्कृत्य की सज़ा उसे दी जाती है। गोपाल को सुधारने की जगह उसकी पत्नी जड़ी का अंत करके उसे रोकना चाहती है। जड़ी के भावि पति के कारण पुलिस थाने में शिकायत दर्ज की जाती है और मेजिस्ट्रेड के सामने जड़ी का बयान लिया जाता है। गोपाल और उसकी पत्नी को दोषी पाया जाता है और सज़ा हो जाती है।

जड़ी की मृत्यु हो जाती है। उसके विवाह का सपना, सपना ही बन जाता है। उसकी मेहंदी देखकर मणी फूट–फूट कर रोती है। मणी का बेटा बुधिया अपनी बहन के मृत देह के साथ वह मेंहदी बांध देता है। उसे मेंहदी के साथ–साथ जड़ी के सुहागन होने का सपना बुधिया को अग्नि में जलता दिखाई दे रहा था।

प्रस्तुत कहानी में दलित धनिया की पत्नी मणी, जड़ी, खली, उसके सास–ससुर सभी सवर्णों के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण के झेलते हैं। अंधविश्वास, अशिक्षा, बाह्यआडंबर दलितों को कर्ज़ लेने के लिए विवश करते हैं, जिसमें फँसकर वे अपना वर्तमान तो जीते हैं किन्तु भविष्य चौपट कर देते हैं। मालिक का अत्याचार स्त्री–पुरुष दोनों को सहना पड़ता है। अंत में मणी अपनी बेटी के लिए इंसाफ पाना चाहती, है और दोषी को सज़ा दिलवाती है। इस तरह 'सौ सुनार की एक लुहार की' वाली बात यहाँ मणी करती है। अब बहुत हो चुका यह सोचकर मणी नई पीढ़ी को उसे अत्याचार से मुक्त करने का नया मार्ग बनाने का प्रयास करती है।

3.5 दलित महिलाओं का पारिवारिक शोषण

1. 'इसमें सीता का क्या दोष' – विट्ठलराय श्रीमाली

प्रस्तुत कहानी में भीखा नामक दलित व्यक्ति अपनी पत्नी दो बेटे और एक बेटी सीता के साथ रावणवास नामक गंदी बस्ती में रहता है। गधों पर सामान की हेरा–फेरी करके किसी तरह अपना गुजारा चलाता है और शाम को तंबूरा बजाकर गीत गाकर अपना तथा गाँव वालों का मनोरंजन करता है। पन्द्रह वर्षीय सीता अपने माता–पिता की सहायता और घर के काम में मदद भी करती है। सीता की सुंदरता को देखकर गाँव का ही एक सवर्ण युवक धीरा उस पर बुरी नज़र रखता है। एक रात मौका पाकर वह घर की खिड़की से भीतर आकर सीता का स्पर्श करता है। सीता जाग जाती है। बाहर बैठा भीखा बेटी की आवाज सुनकर भीतर आता है, तब तक धीरा रफुचक्कर हो जाता है।

भीखा एक गरीब, दलित पिता है। वह धीरा के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहता। सारा गाँव धीरा की बुरी आदतों से वाकीफ है, वह किसी भी सुंदर स्त्री को देखकर उसे पाने के लिए आतुर हो जाता है। कई बार उसे इसी वजह से मार भी खानी पड़ी, किन्तु वह सुधरा नहीं। इस घटना के बाद भीखा की तो नींद ही हराम हो गई। आज अचानक सीता उसे युवा लगने लगी। सीता के विवाह की चिंता में उसे रात–भर नींद नहीं आई। बेटी की बदनामी न हो इसलिए भीखा गम खाकर रह गया। यदि वह पटेल के विरुद्ध आवाज भी उठाएगा तो उसकी रोजी–रोटी और दूसरा व्यवहार

भी बंद हो जाएगा। सब कुछ समझकर वह निर्णय लेता है कि जल्द–से–जल्द सीता का विवाह कर देना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह भीखा पास के गाँव में विवाह की बात करने जाता है। सीता कुएँ से पानी भरकर लौट रही थी। धीरा अपने मित्रों के साथ वहाँ खड़ा था। वह सीता का हाथ पकड़ लेता है और कहता है कि यह घड़ा मेरे घर उतार और मेरे घर चल। बस सीता को क्रोध आ गया उसने हाथ छुड़ाकर, घड़ा नीचे रखा और धीरा के बाल पकड़कर उसे चार तमाचे गाल पर जमा दिये। ये दृश्य देखकर धीरा के मित्र वहाँ से फरार हो जाते हैं। सीता के पराक्रम की बात पूरे गाँव में फैल जाती है। सीता के जवाब से मन–ही–मन सभी स्त्रियाँ प्रसन्न होती हैं। साथ ही सीता की माँ की चिंता और बढ़ जाती है। शाम को भीखा सीता का विवाह तय करके लौटता है तो पत्नी उसे सारी बात बताते हुए चिंतित होकर कहती है।

> **''सीता के पराक्रम की बात पूरे गाँव में फैल गई है। उसमें हमारी औरतें तो, मुझे एक जगह बैठने भी नहीं देती। वे कहती है कि हमारी दबी हुई कोम, हमारी लड़की से ऐसा हो सकता है ? अब क्या होगा ? गाँव को छोड़कर जाने का समय आ गया है।''**[122]

बेटी की बहादुरी की तारीफ सुनकर भीखा की चिंता बढ़ जाती है। जो समस्या सीता के समक्ष थी। वही समस्या सारे गाँव की युवतियों के समक्ष भी थी, किन्तु सीता धीरा को ईंट का जवाब पत्थर से देती है। ऐसा कार्य करने का साहस गाँव की किसी दलित स्त्री में नहीं था। भीखा की चिंता और बढ़ जाती है। जल्दबाजी और मजबूरी में वह उस युवक से सीता का विवाह कर देता है, जो शराबी था। सुहाग की सेज पर सीता अपने पति का इंतजार कर रही थी। पति मुलजी मित्रों के साथ भजन गाने चला जाता है। धीरा मौके और अंधेरे का फायदा उठाकर सीता के कमरे में चला जाता है। सीता धीरा को अंधेरे में पहचान नहीं पाती और अपना पति समझकर उसके समक्ष समर्पण कर देती है। थोड़ी देर में धीरा वहाँ से भाग जाता है और मुलजी सीता के पास आता है। उसकी बातों से मुलजी को पता चल जाता है कि उससे पहले कोई पुरुष सीता के साथ था। बस सुबह होते ही वह पिता से शिकायत करता है, कि सीता चरित्रहीन है, मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए।

पूरे समाज को बुलाकर सीता और मूलजी का तलाक करा दिया गया। रामायण की सीता की तरह यह सीता भी निर्दोष थी, किन्तु उसकी निर्दोषता को कौन स्वीकार करता ? सीता को दोहरा आघात लगता है। उसकी जिंदगी तहस–नहस हो जाती है। उसका सर्वस्व लुट चुका था। वह पागलों की तरह हँसने लगती है। वह चीख–चीख कर धीरा को गालियाँ देने लगती है। यहाँ सीता का जातिगत शोषण तो होता ही है, उसका पारीवारिक शोषण भी किया जाता है जिसके कारण वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है।

2. <u>'भूल किसी की भोगे कोई'– विट्ठलराय श्रीमाली</u>

प्रस्तुत कहानी की नायिका हीरा 13–14 वर्ष की नाबालिक लड़की है। हीरा का पिता गरीब है और खेत में मजदूरी करता है। पिता यह सोचता है कि बेटी को अच्छा घर मिल रहा है, यह सोचकर रुपये लेकर एक मील मजदूर के साथ हीरा का विवाह कर देता है। हीरा सातवीं तक पढ़ी थी, वह अपनी आगे की पढ़ाई करना चाहती

है, किंतु पिता अपनी जिम्मेदारी को जल्द निपटाने की सोचकर बिना सोचे समझे बेटी का विवाह कर देता है। गाँव के साधारण वातावरण में पली–बढ़ी हीरा शहर पहुँच जाती है।

हीरा का पति मोहन उससे उम्र में 11–12 वर्ष बड़ा था। मोहन को अपनी पत्नी से कई अपेक्षाएँ थी, कि वह शहरी लड़कियों की तरह सज–धज कर रहे। उसे अच्छा भोजन बनाकर खिलाए, साथ ही उससे प्रेमपूर्ण वार्तालाप करे। हीरा, पति की अपेक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाती। वह एक निर्दोष बच्ची थी। पति को कैसे खुश किया जाता है, कैसे सज–धज कर उसे मोहित किया जाता है। ये सारे गुणों के लिए वह न तो शारीरिक रुप से तैयार थी, न ही मानसिक रुप से। मोहन हीरा को पत्नी के रुप में पाकर खुश नहीं होता। अपनी माँ से वह कहता है कि–

> **''यह गँवार औरत मेरे गले किसने बाँध दिया ? कुछ समझती ही नहीं। यह तो पत्नी है या गधी ? पूरे गाँव की गँवार आई है।''**[123]

गाँव की अबोध हीरा, पति के स्वभाव और अपेक्षाओं को समझ नहीं पाती। मोहन भी अबोध हीरा से प्रेम से नहीं बल्कि अत्यधिक कठोर व्यवहार करता है। मोहन, हीरा को गालियाँ देता है, उसे अपमानित करता है। मोहन की माँ अपने बेटे का साथ देती है। वह भी हीरा को अपशब्द कहती है। स्त्री होते हुए भी उसमें स्त्री सुलभ प्रेम और भावुकता या समझदारी बिल्कुल नहीं थी। वह हीरा से कठोर व्यवहार करती है। हीरा अबोध बाला है उसे घर–गृहस्थी को समझने में थोड़ा समय देना चाहिए, ऐसी समझदारी उसमें नहीं थी। वह तो हीरा से ऐसे बातचीत करती है जैसे वह कोई उम्र में बड़ी और अनुभवी युवती हो। एक नाबालिग लड़की से अपने बेटे का विवाह करने वाली माँ अपने बेटे के दोष को छिपाती है, और बेटे को सज़ा देने की जगह अबोध हीरा को गालियाँ देती है।

मोहन अपने मित्रों के साथ शराब पीकर आता है और घर पर खीचड़ी बनी है, यह सुनकर हीरा को गालियाँ देता है। बाद में हीरा को जोर से ढ़केल देता है, जिससे हीरा चूल्हे की आग से जल जाती है। गौने की पहली रात को ही वह ऐसे अत्याचार का शिकार बनती है। मोहन मिल में मजदूरी करता है, इसलिए वह अन्य मजदूरों की तरह अपनी पत्नी को पैर की जूती के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता। शराब के नशे में चूर मोहन हीरा को इतना पीटता है कि वह बेहोश हो जाती है।

रात को तीन बजे तिस्कृत हीरा का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। मोहन और उसकी माँ हीरा के रौद्र रुप को देखकर घबरा जाते हैं। उन्हें लगता है, हीरा पर माताजी सवार हो गई है। हीरा माताजी के रुप में कहती है कि–

> **''बेचारी अभी तो बाला है। उसे संसार का क्या अनुभव। मोहनिया आ...आ तू काहे को पति बनकर बैठा है। और हीरा से पत्नी का हक माँगता है। तू पच्चीस वर्ष का गधा यह मात्र 12 वर्ष की। बिल्कुल कच्ची कली जैसी गरीब बाप की बेटी। हउस, हउस''**[124]

गरीब हीरा के अरमान उगे और खिलने से पहले ही मुरझा गए। हीरा देवी का रुप धरण करके मोहन और उसकी माँ को उनकी गलतियों को ऐहसास दिलाती है। हीरा का भूत उतारने किसी तांत्रिक को बुलाया जाता है, वह तांत्रिक हीरा को खूब पीटता है, हीरा अधमरी सी हो जाती है।

अपमान, तिरस्कार, पारिवारिक अत्याचार, गरीबी, असलामती से हीरा का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। उसके कोमल हृदय पर इतना आघात लगा कि वह उसे सहन न कर सकी। इसमें किसकी भूल है ? एक भूल हीरा के पिता ने की थी। अपनी अबोध बेटी का विवाह करने की। दूसरी भूल मोहन की थी। अपने से 13 वर्ष छोटी लड़की से विवाह करके ? इस बाल विवाह और अनमेल विवाह की वजह से हीरा जैसी कई बालाएँ अनेक प्रकार की यातनाएँ सहती आई हैं और आज भी सहन कर रही हैं। उसमें उसका क्या दोष है। दोष तो हमारे समाज का है जो ऐसे विवाह पर प्रतिबंध नहीं लगा पाता। जब तक हमारे समाज में बाल विवाह या अनमेल विवाह को रोका नहीं जाएगा, तब तक हीरा जैसी कितनी ही बालाएँ पारिवरिक अत्याचार के कारण यातनाएँ सहेंगी। आखिर ऐसी हीरा का साथ कौन देगा ?

मोहन, हीरा को उसके पिता के घर छोड़ आता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या हीरा अपने जीवन की इस घटना को भूल पाएगी ? उसका दूसरा विवाह हो पाएगा? क्या अब समाज में बाल विवाह नहीं होंगे ? क्या ऐसे अनमेल विवाह रोके जा सकेंगे ? क्योंकि ऐसे विवाह में भूल किसी ओर की होती है और उसकी सज़ा किसी और को भोगनी पड़ती है।

3. 'गाठाण'–प्रवीण गढ़वी

प्रवीण गढ़वी की **'गांठाण'** सर्वथा उपेक्षित स्त्री–पुरुष के संघर्ष के बाद करुण अंत की कहानी है। जीवली की एक आँख में रोशनी नहीं है और एक पैर से भी अपाहिज है, किन्तु उसका रुप किसी बनिये की बेटी जैसा था। बोली में मीठी किन्तु थोड़ा तोतला बोलती थी। काम करने में वह बहुत फुर्तीली थी। उसका विवाह हुलामणा नाम से चर्चित गाठाण नामक व्यक्ति से होता है। गाठाण कृष्ण जैसा रुपरंग में सुंदर था, किन्तु अठारह अंग वक्र होने से तीस वर्ष की उम्र में जीवली के साथ उसका विवाह होता है।

गाठाण मरे हुए प्राणी ढुँढकर उसके चमड़े में से कमिशन लेता था और बाल्टी भरकर मांस मिल जाने पर तो दो–तीन दिन के भोजन का काम चलता है, बचा हुआ मांस सुखा देता है। इस तरह उनका वैवाहिक जीवन सुखी था।

सुबह में ही गाठाण लकड़ी लेकर मरे हुए प्राणी ढुँढ़ने जाता है और जीवली गोबर बीनने, और मजदूरी करने निकल जाती थी।

जीवली खेतों में से हाथ डालकर भूमरा (ईंधन की सूखी लकड़ी) इकट्ठा करने में मशगूल थी। चैत्र की धूप थी, वहीं गीध की तरह घूमने वाला हालाजी का बेटा पीरुजी आ जाता है। जीवली खड़ी हो जाती है और घुंघट निकालकर कहती है,

''नमस्कार बापु, माई बाप'' तब पीरुजी कहता है–
''सालो तुम्हारी जात, जंगल में एक भी जंगली पौधे रहने मत दो''[125]

कहता हुआ वह घोड़ी पर से नीचे उतरता है। जीवली बड़े अनुनय के साथ कहती है कि–

''घर में चूल्हा जलाए बिना रोटी कैसे बना सकते हैं ?''[126]

इस पर पीरुजी क्रोधित होकर उसे डाँटता है और दो थप्पड जड़ देता है। जीवली नीचे गिर जाती है। पीरुजी को इस पर भी तसल्ली नहीं होती, वह जीवली की साड़ी खींच लेता है, जीवली के सवर्णों स्त्री से सुंदर मुख को देखकर वह स्तब्ध रह जाता है। इस पर जीवली एक भी शब्द नहीं बोल सकी।

घर आकर भी जीवली कुछ कहती नहीं सिर्फ रोती जाती है। उसकी ऐसी स्थिति देखकर गाठाण परेशान हो जाता है। पूरी रात पूछने के बाद जीवली उसे अपने अपमान की बात बताती है। गाठाण यह सुनकर काँप जाता है। जीवली और गाठाण इस बात को जानते हैं कि दलित वर्ण में जन्मे वे इस अपमान को सहने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते। गाठाण उसे समझाता है। कि–

''हम नीची जात हैं, खून ठंडा गरम हो जाए तो भी क्या करें ? उन लोगों के समक्ष लड़ना कोई बच्चों का खेल नहीं।''[127]

पीरुजी और उसके परिवार का इतना दबदबा था, उस गाँव के दलितों पर कि अपनी बहन–बेटी–पत्नी की लाज बचाना मुश्किल था। जब चाहें वे किसी भी स्त्री को उठाकर ले जाते थे। इसलिए गाठाण ऐसी परिस्थिति को जीवली के साथ घटने नहीं देना चाहता। जीवली को वह इस घटना को भूलने की सलाह देता है और कहता है–

''इस बात को भूल जाना। ऐसे देखने जाएँ तो मोहल्ले में कोई अछूता नहीं है। डाया की बेटी को लेकर चला गया था, उसे सप्ताह के बाद दिया था।''[128]

दलितों की स्त्रियों का जातीय शोषण करना, उन पर अत्याचार करना, सवर्णों का शोख बन गया था। जिसे चाहते उसे अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए निकल जाते। जीवली अपने पर बीती हुई घटना को भूल नहीं पाती। बार–बार दोहराती है।

राहत का काम शुरु हुआ था। जीवली वहाँ जैसे–जैसे मजदूरी करने जाती है। दोपहर को गाठाण घर आता है तो जीवली बेहोश थी। पूरा मोहल्ला उसकी झोपड़ी में आ गया था। जीवली को जीन्न (भूत) चढ़ गया है। चौराहे पर खोदने का काम कर रही थी, वहाँ काँच के शिशे पर कुदाल लगा। वह फूटा और उसमें से जीन्न सीधा जीवली के पेट में गया। तभी से जीवली बेहोश हो गई।

दस दिनों तक ओझा ने जीवली का भूत उतारने के लिए प्रयास किया। मुसलमान के पीर की दरगाह पर ले गए, जीवली को सीकड़ से मारा। गाठाण यह सब देखकर दुःखी होता। वह कहता है कि–

''अरे कहता हूँ कि जीन–फीन कुछ नहीं। यह तो साले का बेटा पीरुजी.....''[129]

किन्तु पुरी बात कह नहीं पाता। उसकी अंतर्रात्मा उसे सच कहने से रोकती है, क्योंकि सच सुनने के बाद भी कोई उसकी बात स्वीकार नहीं करेगा। इस बात को वह जानता था।

जीवली को तरह–तरह की यातनाएँ दी गई। ओझा कभी बर्फ जैसा ठंडा पानी उस पर डालता, कभी गर्म तेल के छींटे डालता, दस दिनों तक गाठाण सोता नहीं

है। बिना खाए–पीए जीवली अशक्त हो जाती है। ठाकुर और भरवाड का ओझा उसके पास से मुर्गा, नारियल, दाल आदि चींजे माँगते हैं। वे भी छुआ–छूत में विश्वास रखते हैं। दूर से ही जीवली पर मंत्र–तंत्र करते हैं, किन्तु गाठाण की दी हुई सामग्री को वे अवश्य स्वीकार लेते हैं, क्योंकि यही उनकी आमदनी थी।

अनेक यातनाओं को दस दिनों तक सहने के बाद जीवली हाड़पिंजर जैसी बन जाती है। इसके बावजूद वह पीरुजी का नामोल्लेख नहीं करती। मोहल्ले में आग लगा दी जाती है। दस दिनों तक अन्न का एक दाना उसके मुँह में नहीं गया उस पर ओझाओं की जानवरों के समान मार–पीट जीवली नहीं सह पाती और उसके प्राण पखेरु उड़ जाते है। गाठाण की आँखों में आँखों में आँसू आ जाते हैं, वह अपनी पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहता है–

''इसे जलाना नहीं है। जानवरों की तरह चीरकर उसका माँस साले के घर भेजो। और कहना कि, खिला अपने बेटे को.... ।''[130]

यहाँ गाठाण के शब्द सवर्णों की वास्तविक रुप को चित्रित करते हैं। पीरुजी और अन्य सवर्ण उनके जैसे दलितों का वैसा ही शोषण करते हैं, जैसे कोई गीध अपने शिकार को खाता है। जीवली मर गई किन्तु उसकी मौत का असली जिम्मेदार पीरुजी था। वह उस अपमान को नहीं झेल पा रही थी, न ही व्यक्त कर पा रही थी। वह अपने प्राण वह दे देती है।

कहानी में दलितों की भीरुता, अशिक्षा, अंधश्रद्धा, रीति–रिवाज आदि देखने को मिलते हैं, जिसकी वजह से जीवली अपने अपमान का बदला न लेते हुए अपने जीवन का अंत कर देती है। गाठाण भी जीवली को न्याय नहीं दिला पाता, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रुप से वह पीरुजी का सामना किसी भी दृष्टि से करने में असमर्थ पाया जाता है।

4.'दीकरा नी बहु' (बेटे की बहू)–प्रवीण गढ़वी

प्रवीण गढ़वी की **'दीकरा नी वहू'** और रमेश दवे की 'मोक्ष' शीर्षक कहानी विशिष्ट प्रकार की है। दोनों कहानियों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, सवर्णों के हृदय में दलितों के प्रति सद्भावना एवं प्रेम है। 'दीकरा नी वहू' कहानी में एक ब्राह्मण बुजुर्ग की मनोदशा का चित्रण है। बुढ़ा ब्राह्मण इसलिए समाज से बहिस्कृत किया जाता है, क्योंकि समाज के नियमों को तोड़कर उसने अपनी जवान विधवा पुत्री का पुर्नविवाह करने की हिम्मत की थी। उसके इस साहस से वह अपनी बेटी की ज़िंदगी में खुशियाँ लाना चाहता था। बेटी का एक पुत्र है, उसके विवाह के लिए भी समस्या यह रहती है, कि कोई अपनी पुत्री उस घर में ब्याहना नहीं चाहता। बूढ़ी माँ अपने पुत्र की बहू को देखने के लिए सपने संजोए रहती है। परिवार की ईच्छाओं की पूर्ति के लिए शिवशंकर जाति–पाति पूछे बगैर बहू का सौदा करके अर्थात् खरीदकर एक लड़की को अपनी पत्नी के रुप में घर में ले आता है। जिस घर में छुआछूत का अधिक पालन किया जाता था, ऐसे घर में एक दलित लड़की बहू बनकर आती है। उसके व्यवहार, कामकाज, साफ–सफाई, अच्छे भोजन बनाने के गुणों से परिवार के सभी सदस्य अत्यंत प्रसन्न रहने लगते हैं। जैसी बहू की उन्होंने कामना की थी मंगू बिल्कूल वैसी ही थी।

पाँच छः महीने के बाद पुलिस मंगू की तलाश करते हुए शिवशंकर के घर पहुँच जाती है, तब बूढ़े पिता को पता चलता है कि उनकी बहू तो नीची जाति की है।

नीची जाति की बहू के हाथों का बना खाना खाने से पिता को शरीर अशुद्ध होने का पाप लगता है। पत्नी और शिवशंकर उसे मनाने का प्रयास करते हैं, किन्तु वह नहीं मानता। बुढ़ी पत्नी जब अपने पति का मनपंसद भोजन बैंगन की सब्जी बनाकर उसे खिलाती है, तो पहले निवाले को मुँह में रखते ही नीची मानी हुई बहू के हाथ की बनी बैंगन की सब्जी का स्वाद याद आ जाता है और बूढ़ा रो पड़ता है। बूढ़े का यह रोना नीची जाति की बहू को माफ करना एवं स्वयं का प्रायश्चित कहा जा सकता है। ब्राह्मण समाज की रुढ़िगत परंपरा को तोड़कर दलित स्त्री के प्रति जागा प्रेमभाव ही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। कहानी में जिस रीति का इस्तेमाल किया गया है, वह विशिष्ट प्रकार की है।

कहानी के अंत में बूढ़े ब्राह्मण को पश्चाताप के आँसू बहाते हुए दिखाकर उसको हृदय का परिवर्तन होते दिखाया है। यदि ऐसा अंत न होता और बूढ़ा बहू को ही कोसता, तो कहानी में नयापन भला क्या होता ?

मंगू का चरित्र परिश्रमी एवं शांत स्वभाव का है। गरीब दलित स्त्री होने के कारण उसे बेच दिया जाता है। दलित होने के बावजूद वह ब्राह्मण परिवार की बहू के सारे कर्त्तव्यों का पालन करती है और उस परिवार को दिल से अपना लेती है। पुलिस उसे वहाँ से ले जाती है। मंगू को सुख न तो अपने दलित होने पर मिला था और न ही सवर्ण से विवाह करने पर ही। एक स्त्री होना और उसमें भी एक दलित स्त्री होने से उसका दोहरा शोषण होता है। कहानी में दलित युवतियों की खरीद–फरोख की जटिल वर्तमान समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है।

3.6 दलित महिलाओं की आर्थिक समस्याएँ

1. 'रोटलो नज़राई गयो' जोसेफ मेकवान

हेता दलित वर्ग की स्त्री है, जिससे वह प्रतिदिन चार बाजरी की रोटी बनाती है। उसका परिवार इसी रोटी को कभी लहसून से तो कभी चटनी के साथ खाता है। तीन रोटी पोटली में बांधकर पति के लिए रखती है और एक रोटी के दो समान टुकड़े करके उसमें से एक भाग स्वयं खाती है और दूसरा टुकड़ा अपने पुत्र रघु को देती है। रघु यह रोटी शीघ्रता से खा जाता था, परंतु अपनी माँ के विषय में सोचकर आधी रोटी में ही संतोष कर लेता था। रघु स्कूल में रोटी ही लेकर जाता था। स्कूल में अन्य विद्यार्थियों के बीच वह भी नाश्ता करने बैठता। खाते समय वह आस–पास ध्यान न देता, किंतु पिछले चार–पाँच दिनों से वह देख रहा था कि उसके सहपाठी उसका मजाक उडाते हैं। बिच्छू के डंख जैसे उनके शब्द रघु को दुःखी करते हैं। सहपाठी रघु के लिए नाश्ता करने की जगह भी नहीं रखने लगे। सभी सहपाठी एक–दूसरे के नाश्ते की बड़ाई करते हैं, किंतु रघु की रोटी की कोई प्रशंसा नहीं करता बल्कि उसकी रोटी को हीन दृष्टि से देखते हैं। इससे रघु स्कूल में नाश्ता ले जाना बंद कर देता है। हेता को समझ में नहीं आता कि वह स्वयं अपने हाथों से पीसकर, संपूर्ण जीव डालकर रोटी बनाती है, और फिर भी बेटे को क्या हो गया है, वह रोटी क्यों नहीं लेकर जाता ?

पति कानजी मजदूरी करने जाता है। पहले तो सरकार ने ऐसा नियम बनाया था जिसके तहत मजदूरों को जमीनदार दोपहर को रोटी या चावल, अरहर की दाल देता था। पुरुषों को दो रोटी (मक्का की) और स्त्रियों को डेढ़ रोटी, जिससे साथ जाने वाले बच्चों का भी पेट भर जाता था। अब सरकार ने गरीबों के लिए यह कानून

बंद कर दिया है। इन सारी बातों के बारे में सोचकर हेता कई बार चिंता में डूब जाती थी। वह स्वयं अपने पेट पर पट्टा बांधकर अपने पुत्र को शिक्षा दिलाना चाहती है। उसने जैसी कमर–तोड मजदूरी की है, वैसी मजदूरी पुत्र को न करनी पड़े, ऐसी उसके हृदय की महत्त्वाकांक्षा है। उसके पास रुपये नहीं हैं, इसलिए कंजूसी से बाजरी की रोटी बनाती है। अब रघु वह रोटी नाश्ते में लेकर जाना नहीं चाहता, जिससे हेता को अपने पुत्र की लालीमा सुखती नज़र आती है। हेता को शंका होती है कि–

"उसकी रोटी को किसी की नज़र लग गई है ?"[131]

इससे उसका रोटी के प्रति मोह कम होता जा रहा है। हेता रघु की नज़र लाल मीर्च से उतारती है और आधी रोटी ब्राह्मण को तथा आधी रोटी गाय को खिलाती है। अपने पुत्र के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी करती है। पुत्र के अजीब व्यवहार से वह असमंजस में पड़ जाती है। रघु पहले तो अपने घर में अपनी पढ़ाई की बातें करता था, तब हेता प्रसन्नता का अनुभव करती है। रघु अपने घर को अंग्रेजी में 'हाऊस' नहीं किंतु 'हट' कहा जाएगा, ऐसा कहता है, तब रघु की आवज़ में कुछ हीन भाव के दर्शन हेता को परेशान कर देते है। बेटा रघु स्कूल में रोटी नहीं ले जाता और घर पर खाता भी है, बिना मन के कुछ बोलता भी नहीं, यह सब हेता अपने पति से कहती है। वह पूरी रात सोती नहीं। रघु के पिता के कहे अनुसार वह गुड और रोटी उसे नाश्ते में ले जाने को देती है तब रघु कहता है रोटी के अलावा दूसरा तुझे क्या आता है, सुबह भी और शाम को भी रोटी ही। तब रोती आँखों से हेता उसे देखती रह जाती है। एक प्रश्न दिनभर उसे घुन की तरह चूसता रहता है। अच्छा–अच्छा भोजन वह कैसे बनाए ? वह कंट्रोल की दुकान से मिले गेहूँ निकालती है। उसे पीसकर दलीया बनाती है और आधे का हलवा बनाती है, पुत्र से कहती है–

''तुम्हारे लिए कुछ नया बनाया है, अन्नदेव का अनादर नहीं करना चाहिए।''[132]

रघु गरम–गरम दो–चार निवाले खाता है और कहता है कि गेहूँ की रोटी यदि तुम बनाकर दो तो मैं स्कूल लेकर जाऊँगा। हेता समझ जाती है कि पुत्र को क्या परेशानी है, किंतु निःश्वास छोड़कर पुत्र को समझाती है, कि गेहूँ रोटी तेल के साथ ही अच्छी लगती है, गरम होती है तो ही खाई जा सकती है। हमारे पास रोज़ तेल के लिए रुपये नहीं हैं, जबकि बाजरी की रोटी हमारे लिए अनुकूल है, क्योंकि नमक डाली रोटी को पानी के साथ भी खाया जा सकता है। पहले कष्ट उठाकर पढ़ लो फिर सब अच्छा होगा। दूसरे दिन उसके पति को बुखार आ जाता है और रघु को एस.टी. बस पास के लिए पैसे चाहिए थे, तब हेता चूल्हे में जलती अग्नि की ओर देखती है और बचाए हुए 15 रुपये और पाँच रुपये अपने पड़ोसी से उधार मांगकर रघु को देती है। तब उसका चेहरा उतरा हुआ था। रुपये न होने से पति की सेहत बिगड़ती जा रही थी। तीन दिन मजदूरी पर न जाने की वजह से गेहूँ के आँटे की राब बनाती है। रघु उसे नहीं खाता तब वह चिढ़कर, रोष में कह उठती है।

''तू जब पढ़ लिख कर लाड साहब बनना, तब अपना मन पसंद खाना, खाना अभी हमारा खून मत पी।''[133]

रात को तीनों जागते हैं। धनजी बुखार के कारण, हेता पुत्र पर रोष करने के कारण और रघु कभी चोरी करके किसी का नाश्ता नहीं खाना चाहिए यह सोचकर। सुबह रघु नाश्ते के लिए हेता से बाजरी की रोटी माँगता है तब हेता कहती है कि तीन दिनों से तुम्हारे पिता मजदूरी पर नहीं गए, इसलिए घर में आँटा नहीं है। कल तुझे रोटी बनाकर दूँगी। इस तरह हेता अपने पुत्र में आए बदलाव को महसूस करती है। वह इस बदलाव से खुश हो या दुःखी उसे समझ में नहीं आता।

प्रस्तुत कहानी में दलितों की अत्यंत दयनीय स्थिति, गरीबी, आर्थिक विपन्नता आदि को चित्रित किया गया है साथ ही बाल मनोविज्ञान का भी प्रयोग देखा जा सकता है। हेता और रघु की गरीबी की समस्या को चित्रित करके लेखक ने उन तमाम दलित माता एवं पुत्र की मूलभुत समस्या पर प्रकाश डाला है।

2. 'मुंझारो'–दलपत चौहान

दलपत चौहान द्वारा रचित **'मुंझारो'** कहानी की नायिका का नाम जीवी और उसके पति का नाम रणछोड़ है। दलित होने के कारण मजदूरी करने के साथ–साथ गाँव के मृत पशुओं को उठाना उनका कार्य था। गाँव के लगभग सभी दलित मरे हुए पशुओं के मांस को पकाकर बड़े चाव से खाते भी थे। किसी एक को यदि मृत पशु मिलता तो, वह अन्य लोगों को बांटकर पकाकर खाया जाता। गरीब जीवी बड़ी मुश्किल से अपनी गृहस्थी चलाती है। ऐसे में रणछोड़ की अनुपस्थिति में उसे लवजीभा, जो कि गाँव के धनी व्यक्ति थे उनके घर से मृत पाडे को लाने का संदेश मिलता है। जीवी शीघ्र ही उनके घर पहुँचती है। वहाँ पहुँचकर उसे पता चलता है कि पाडा तो अभी जीवित है। जीवित पाडे को वह नहीं लेकर जा सकती। किंतु लवजीभा की माँ मणिमां ने उससे कहा कि इसे ले जाओ रास्ते में मर जाएगा। जीवी का मन फिर भी जीवित पाडे को लेकर जाने का न हुआ, आखिर दलितों के भी कुछ नियम–कानून होते हैं। अंत में मणिमां बीमार पाडे से छुटकारा पाने के लिए जीवी को लालच देती हैं कि यदि इस पाडे को तुम ले जाओगी तो मैं तुम्हें पाँच किलो बाजरी दूँगी। न चाहते हुए जीवी पाँच किलो बाजरे को पाने के लिए जीवित पाडे को घसीट कर ले जाती है।

जीवी जानती थी कि उसका पति रणछोड़ इस बात से नाराज़ होगा, इसलिए वह रणछोड़ से यह बात छुपाती है, कि पाड़ा अभी जीवित है। रणछोड़ जब उस पाडे को काटने के लिए औजार से वार करता है, तो वह जीवित होने के कारण छटपटाने लगता है। रणछोड़ स्तब्ध रह जाता है, थोड़ी देर में पाड़ा मर जाता है। रणछोड़ ने अंजाने में एक जीव की हत्या कर दी थी, जिसका उसे बड़ा दुःख हो रहा था। रएाछोड़ जीवी पर नाराज़ होता है, किंतु जीवी ने यह कार्य मजबूरी में पाँच किलो बाजरे की लालच में किया था। रणछोड़ एक पशु को मारने के कारण अपने आपको पाप का भागी समझता है।

रणछोड़, लवजीभा से इस बात की पूछ–परछ करने के लिए लाठी लेकर चलने लगता है तो जीवी घबराकर कहती है–

''देखो.....देखो..... कोई झगड़ा न करना, प्रभु सब देखते हैं, हमने कोई पाड़ा नहीं मारा।''

''चुप रह, प्रभुवाली, खाना बना, मैं अभी आया।''

''मैंनें क्या कहा झगड़ा करना ठीक नहीं। अकेला लवजीभा नहीं, पूरी बिरादरी पाड़ा मारती है।''[134]

गरीब जीवी पति की नाराज़गी को समझती है, किंतु वह जानती है कि सवर्णों की जाति में जीवित पशु को कसाई को सौंपना कोई नई बात नहीं है। लवजीभा ही नहीं उनके जैसे अन्य लोग बीमार, अंतिम सांसे लेते पशुओं की देखभाल न करके उसे जीवित ही कसाई–खानों में भेजकर उससे मुक्ति पा जाते हैं। रणछोड़ ने भले ही अंजाने में पाड़ा था, फिर भी दूसरों की गलतियों को वह अनदेखा नहीं करना चाह रहा था।

लवजीभा के सामने आते ही रणछोड़ घबरा जाता है। उसका सारा क्रोध गायब हो जाता है। आखिर लवजीभा के समक्ष उसकी औकात ही क्या थी, जो वह उनसे कोई सफाई माँग सकता ? बिना कुछ कहे वह वहाँ से लौट आता है जीवी ने उस पाडे की सब्जी बनाई थी, किंतु रणछोड़ उसे देखकर घबरा जाता है, बार–बार उसे पाड़ा जीवित और छटपटाता हुआ नज़र आता है। अंजाने में किए अपराध के लिए वह उस दिन उपवास करके प्रायश्चित करता है। दूसरी ओर लवजीभा अपराध करके भी प्रायश्चित नहीं करते बल्कि खुशी में एक नई भेंस खरीद लाते हैं।

प्रस्तुत कहानी में जिस परिवेश का वर्णन किया गया है, वहाँ सिर्फ सवर्णों का ही बोल–बाला था। दलित उनके इशारे पर कार्य करने के लिए विवश थे। सवर्ण यदि कोई पाप भी करे, तो उनके लिए कोई नियम–कानून नहीं था। साथ ही वे दलितों को पाप करने के लिए विवश करते थे। गरीबी के कारण जीवी जीवित पाडे को लेकर आती है और पति से इस बात को छुपाती है, यहाँ एक दलित स्त्री की मनोदशा, परेशानी, गरीबी, भुखमरी आदि स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सवर्ण दलितों की मजबूरी और गरीबी को जानते हैं, इसलिए जो पाप वे स्वयं नहीं करते वे दलितों के हाथों करवाकर खुद बच जाते हैं। दलित रणछोड़ द्वारा उपवास करके अपनी गलती का प्रायश्चित करना दूसरी ओर सवर्ण लवाजीभा का अपराध करके भी नई भेंस लाकर खुशी मनाना, यहाँ कहानीकार ने दलित और सवर्ण की सोच पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। एक अपरिचित पाडे को मारने का रणछोड़ को गम होता है, किंतु स्वयं के पालित पशु की मृत्यु से सवर्ण लवाजीभा प्रसन्न होता है।

3.'हड़सेलो'–मणिलाल न. पटेल 'जगतमित्र'

दलितवास में रहने वाला मंगा लंगड़ा और अशक्त था। उसकी पत्नी टी. बी. मरीज थी। उसकी तीन बेटियाँ अरुणा, कुसुम और कोमल तथा छोटा बेटा था। गाँव में सरपंच की सीट आरक्षण कोटे में दूसरी बार आती है। अशोक नामक सवर्ण व्यक्ति इस सीट के लिए मंगा को चुनाव में खड़ा करना चाहता है। ऐसा करके वह नाम मंगा का और काम स्वयं का करने की चाल चलता है। इसके लिए वह मंगा से मीठी–मीठी बातें करके उसके घर का पानी पीकर पहले उसका भरोसा जीतता है, बाद में अपनी बात रखता है।

मंगा की बड़ी बेटी अरुणा सुंदर थी। अशोक उसे जब देखता है, तो उसकी आँखें लोहचुम्बक की भाँति अरुणा के सौन्दर्य से हटती नहीं। मंगा से वह अरुणा के विषय में जाल बिछाते हुए कहता है–

''आपकी अरुणा के लिए नौकरी की चिंता मत करो। इडर में मेरे एक मित्र के चाचा की ऑफिस में उसे लगा देंगे। वह नौकरी करने लगेगी तो अच्छा वर–घर मिल जाएगा।''[135]

वास्तव में अशोक एक ओर सरपंच के चुनाव में मंगा को जीताकर उसका लाभ स्वयं लेना चाहता है और दूसरी ओर अरुणा को नौकरी का लालच देकर उसके सौंदर्य को लूटना चाहता है। ऐसा करके उसके दोनों हाथों में लड्डू आ गए थे।

गरीब, अनपढ़, दलित मंगा पूर्व दलित सरपंच चमन से दुश्मनी नहीं मोल लेना चाहता था, किन्तु अशोक ने उसे ऐसा जाल में फँसाया कि वह ना न कर सका। चुनाव में मंगा पाँच वोटों से जीत गया। अशोक की मेहनत का फल उसे मिल गया। साथ ही इस दरम्यान उसने अरुणा को भी अपने जाल में फँसा लिया था।

अशोक मंगा को पाँच हजार रुपये दवा खर्च के रुप में और दो हज़ार रुपये घर खर्च के लिए देता है। ऐसा करके वह मंगा के परिवार में अपनी अच्छाई का प्रदर्शन करता है। उनकी नज़रों में महान बनना चाहता है, किन्तु वास्तव में वह अरुणा से शारीरिक संबंध बनाता है और उससे मिले सुख के बदले में उन्हें रुपये देता है।

अरुणा को एक अदृश्य भय खाए जा रहा था। वह गर्भवती थी। उसके अरमानों की होली जल रही थी। अपने अपाहिज पिता के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए उसने अपना सर्वस्व होम कर दिया था। एक बार शारदा के समक्ष वह रो पड़ी थी। उसकी माँ शारदा भी उसकी स्थिति समझती थी, वह रोते हुए कहती है–

''बेटी, तेरे पिता पैर से लाचार हैं नहीं तो मैं तुझे न करने जैसा काम नहीं करने देती।'' अरुणा उत्तर देती है–
''माँ, मेरा तो जो होना था वह हो चुका, मुझे अब शादी नहीं करनी..... किन्तु कुसुम और कोमल का क्या होगा ?....मेरे पाप से वे बेचारी..... और यदि मुआ अशोक।''[136]

अशोक अरुणा का एबोर्शन करवा देता है। अरुणा नहीं चाहती थी, कि उसकी जैसी दशा उसकी छोटी बहनों की हो। माता–पिता की गरीबी और लाचारी के लिए वह स्वयं तो भस्म हो जाती है किन्तु उसे अब चिंता अपनी नहीं अपनी बहनों की थी।

अशोक की दानत अब अरुणा की छोटी बहन कंकु पर बिगड़ती है। वह कंकु को फँसाना चाहता है। अरुणा और अशोक के संबंध की चर्चा पूरे गाँव में थी। इसलिए अरुणा का विवाह होना मुश्किल था। ऐसा ही व्यक्ति अब उसे मिल सकता था, जिस में स्वयं में कोई खोट हो अर्थात् किसी अपाहिज के साथ ही अब उसका विवाह हो सकता था। अरुणा तो बदनाम हो चुकी थी, उसका भविष्य अशोक ने नष्ट कर दिया था। उसकी पवित्रता को नष्ट करके उसने अरुणा को किसी की पत्नी बनने के लायक नहीं छोड़ा था। स्वयं अरुणा भी शादी करके किसी को धोखे में नहीं रखना चाहती थी। अरुणा अशोक को लेकर सुरेश्वर की बड़ी केनाल (नहर) पर आती है। अशोक को अरुणा का कोमल स्पर्श बहुत भाता है। अशोक अब अरुणा को हासिल कर चुका था, इसलिए उसके निशाने पर अब कुसुम थी। वह अरुणा से बड़ी चालाकी से अपनी बात करते हुए कहता है–

''हाँ' अरु, हमें तो जो करना है, कर ही डालना है.....कुछ हो तो फिर अस्पताल नहीं जा सकते क्या ? किन्तु अरु, एक बार कुसुम को....मेरे साथ....कुछ नहीं मात्र मस्ती, समझाना उसे.....समझी ?''[137]

अरुणा की बहन कुसुम से मजाक–मस्ती की बात का अर्थ वह खूब समझती थी। अशोक ने उसके साथ भी शुरुआत ऐसे ही की थी। अरुणा उसका उत्तर तो सहमती में देती है, लेकिन इसके साथ ही वह अशोक को केनाल में धक्का दे देती है। अशोक डूबकर मर जाता है। अरुणा उसे मरते हुए देखती रहती है और कहती जाती है–

''मेरी सास दीमक.....लेती जा लड्डू मेरी दुश्मन.....लेती जा लड्डू, मेरी सास दीमक.... ।''[138]

यहाँ अरुणा के घर में लगी दीमक उसे अशोक के रुप में अपने जीवन को धीरे–धीरे खाने वाली लगती है। दीमक और अशोक की साम्यता यहाँ दिखाई गई है। अशोक को दीमक की उपमा दी गई है दोनों का कार्य धीरे–धीरे किसी चीज़ को नष्ट करना है। अशोक भी मंगा के परिवार का धीरे–धीरे मंद गति से अपनी चपेट में लेता है और उन्हें विवश कर देता है, कि वे अपना सब–कुछ उसे समर्पित कर दे।

अरुणा अपने जीवन को बर्बाद कर चुकी थी, इसलिए वह अपनी बहन कुसुम को अशोक से बचाना चाहती थी। अशोक को केनाल में धक्का देकर वह अपनी बहन को बचा लेती है। इस तरह वह अशोक से प्रतिशोध ले लती है। अशोक रुपी दीमक को अपने और अपने परिवार के जीवन से वह जड़ से निकालकर दूर फेंक देती है।

प्रस्तुत कहानी में अरुणा दलित परिवार की बेटी है, किन्तु माता–पिता की गरीबी और अत्याचारी वश वह अपने आपको अशोक के समक्ष समर्पित करती है। ऐसा करके वह एक ओर अपने परिवार का सहारा बनती है, किन्तु दूसरी ओर अपना विनाश कर देती है। अरुणा अशोक से प्रेम नहीं करती। वह अशोक के हाथ की कठपुतली बनना नहीं चाहती। वह अपने परिवार की बड़ी बेटी नहीं बड़ा बेटा बनकर अपनी छोटी बहन की रक्षा करने के लिए अशोक का विनाश कर देती है। कहानी में प्रादेशिक बोली का प्रयोग किया गया है।

4.'कमली'–बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की प्रस्तुत कहानी **'कमली'** रोजी–रोटी के लिए आदिवासी प्रजा के भटकते जीवन को चित्रित करती है। कमली एक आदिवासी स्त्री है, जो अपने पति और तीन महीने के बच्चे के साथ शहर में मजदूरी की तलाश में आई है। उसका पति सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक मजदूरी करता है। उसकी गैरमौजूदगी में कमली अपने दो बच्चों का ख्याल रखती है। सर पर छत नहीं है, ओढ़ने के लिए गर्म कपड़े नहीं हैं और न ही पेट भरकर खाना है। कमली ऐसी स्थिति में भी घबराती नहीं। एक कांट्राक्टर कहानीकार को सलाह देता है कि–

''साहब, अभी हमने वॉचमेन रखा नहीं है। वह औरत घर और सामान भी सँभालेगी।''[139]

कड़कड़ाती ठंड़ी में तीन महीने के बच्चे को लेकर ठिठुरती हुई कमली पर कॉट्राक्टर को दया आती है। लेखक ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है।

> **''मैंनें उस आदिवासी औरत को देखा। उसने आधी बाहीं का ब्लाउज पहना था। कंधे पर और एक बाहीं का कपड़ा फटा हुआ था। उसके ब्लाउज का दो बटन खुला था। अभी ही उसने अपने बच्चे को स्तनपान कराया होगा। उसके मातृत्व के समक्ष उसकी जवानी की मानो उसे कोई सुध नहीं थी।''**[140]

कमली इतनी ठंडी में भी फटेहाल जीवन जीने के लिए विवश है। अपने बच्चों की जिम्मेदारी वह अकेले ही उठा रही है। वह घर से निकल पड़ी है और शहर में पहुँचकर जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रही है। वह एक माँ है, इसलिए अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है। आदिवासी महिलाओं में अधितर यह दृश्य देखा जाता है, जो लेखक ने भी देखा। कमली की असहाय करुण दशा को देखकर लेखक ने उसे अपने बन रहे नए घर में रहने और काम करने की इज़ाजत दे दी।

सिर पर छत मिलते ही कमली अपने परिश्रमी होने का परिचय देती है। वह दिन में चार बार दीवारों पर पानी डालती है और घर की देख–रेख अच्छी तरह करती है। उसका काम देखकर लेखक प्रसन्न थे। जिस मोटर से वह पानी छांटती थी उसका स्वीच खराब और खुला हुआ था। लेखक को कमली के लिए चिंता थी, सो कॉट्राक्टर के लापरवाही करने पर वह स्वयं वह स्वीच बनवाते हैं। स्वयं कमली भी डरती नहीं थी। अपनी धुन में वह काम में लग जाती थी, तो रोते हुए बच्चे को भी काम पूरा करने के बाद ही गोद में लेती है। जिस खुले वायर को लेकर लेखक चिंतित थे, कमली उससे बेफ्रिक थी। उसे खुले वायर से करंट लगने का कोई डर नहीं था। आए दिन यह अखबार में पढ़ने को मिलता है, कि मजदूर को करंट लग गया और वो मर गया। ऐसी लापरवाही के कारण आदिवासी मजदूरों की मृत्यु आम बात हो गई है, किन्तु इसमें कॉट्राक्टर की लापरवाही की सज़ा निर्दोष मजदूरों को मिलती है और उसका कोई वजीफ़ा भी उन्हें नहीं मिलता।

आदिवासियों में होली के त्यौहार का बड़ा महत्त्व होता है। काम–काज छोड़कर पन्द्रह दिनों के लिए सभी मजदूर अपने गाँव लौटकर आते हैं। कमली भी गाँव जाती है। उसकी जगह जो दूसरा वॉचमेन आता है उसकी पत्नी दरवाजे में बैठकर ही नहाती है, जो लेखक को बड़ा बुरा लगता है। उस समय उन्हें कमली की याद आती है। उसके काम के लिए लेखक को कभी शिकायत का मौका नहीं मिला था।

लेखक के घर के गृहप्रवेश के अवसर पर कॉंट्राक्टर उन्हें बताता है कि जो कमली उनके घर में काम करती थी वह मारबल घीसने की मशीन चला रही थी उसमें इलेक्ट्रिक वायर लूज था, जिससे उसे करंट लग गया और उसकी मौत हो गई। रोजी–रोटी के लिए अज्ञात जीवन जीने वाले आदिवासी कई बार ऐसे कार्य करते हैं जिसका अनुभव उन्हें नहीं होता और न ही उससे होने वाली दुर्घटना का अहसास उन्हें होता है। ऐसी स्थिति में कॉंट्राक्टर की गैरजिम्मेदारी की सज़ा मजदूर वर्ग को उठानी पड़ती है। लेखक को जिस बात का डर था वही होता है। परिश्रमी कमली अपने कार्य के प्रति इतनी समर्पित थी, कि इस समर्पण भाव में वह यह भूल गई कि अपनी सुरक्षा का ख्याल उसे रखना है। अनपढ़ अनजान कमली का करुण अंत लेखक को स्तब्ध कर देता है।

प्रस्तुत कहानी में आदिवासी प्रजा का शहर की ओर मजदूरी के लिए पलायन बताया गया है। मजदूरी की तलाश में आदिवासी कई बार बिना ट्रेनिंग लिए, बिना ज्ञान के ऐसे काम भी करने लगते हैं, जिसमें उनकी जान को खतरा होता है। कॉंट्राक्टर कम मजदूरी देकर ज्यादा काम करवाते हैं और अनुभवहीन लोगों से खतरे का काम भी करवाते हैं, परिणामस्वरुप कमली जैसे लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। आदिवासी स्त्रियों का रहन–सहन, वेश्भूषा, खान–पान, भाषा आदि का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है।

5. 'आँख खुल गई'–बी. केशरशिवम्

कहानी की नायिका गज़रा के पिता अहमदाबाद की एक मिल में काम करते थे। माता–पिता मिलनसार और परिश्रमी थे। एक छोटा भाई भी था। उनका जीवन सुखी एवं शांतिमय रुप से बीत रहा था। गजरा का विवाह बड़े धूम–धाम के साथ किया गया। मिल के बंद हो जाने से पिता बेरोजगार हो गए। बस्ती में अब खुशहाली नहीं भूख का नग्न तांडव हो रहा था। दलित वर्ग अगरबत्ती बनाकर, प्लास्टिक बीनकर बड़ी मुश्किल से दिन काट रहे थे। पहले आनंद के लिए कांकरिया जाते थे, किन्तु अब आत्महत्या करने वहाँ लोग जाने लगे।

गजरा के विवाह को वर्षो बीत गए उसका छोटा भाई पढ़–लिखकर ऊँचे ओहदे पर नौकरी करने लगा। दोनों वर्षों तक एक दूसरे से मिल नहीं पाते। गजरा के सीरियस होने की सूचना मिलते ही छोटा भाई अपनी पत्नी और बच्चों को घर छोड़कर अपनी गाड़ी लेकर निकलता है। उस बीच उसे भूतकाल की बातें याद आती हैं। बचपन में बड़ी बहन से उसकी अधिक घनिष्टता थी। बड़ी बहन की शादी और बिदाई का दृश्य आज भी उसकी यादों में ताज़ा था। गजरा के जन्म के बाद उनके घर में आर्थिक सुधार हुआ था और जाने के बाद खुशहाली चली गई थी।

शादी के कुछ दिनों बाद गजरा पति से झगड़ा करके मायके आई थी। पति ने उसे पीटा था वह बहुत रो रही थी, किन्तु पिता उससे कहते हैं–

> **''जिस रास्ते आई है उसी रास्ते लौट जा। अब तेरा घर तेरे ससुराल में है।''**[141]

जो माता–पिता अपनी बेटी को बड़े लाड–प्यार से पालते हैं। जो पिता अपनी अंगुली पकडाकर उसे दुनिया दिखाते है आज वह पिता बेटी के विवाह के बाद, उसके संकट के समय उसे वही अंगुली दिखाकर ससुराल को उसका घर कहकर घर से निकाल देते हैं। गजरा की माँ रोती रही किन्तु पति के समक्ष बेटी का पक्ष नहीं ले सकती थी। गजरा रोती–रोती ससुराल चली जाती है।

उसके बाद वह जब भी मायके आई हँसते हुए ही आई। बेटियों को विवाह के बाद दुःख होता भी है, तो वह माता–पिता से नहीं कहती क्योंकि उनका आखरी घर तो पति का ही होता है। उसी घर को वे अपने जीवन का अंतिम ठीकाना मानकर संतोष प्राप्त करती हैं। गजरा अपने छोटे भाई की पढ़ाई में सहयोंग देती है। मेट्रीक की परीक्षा देने के लिए माँ–बाप के पास रुपये नहीं थे, तब गजरा का पति उसके गहने बेचकर छोटे भाई की फीस भरता है ताकि वह आगे पढ़ सके, कुछ बन सके। होता भी यही है छोटा भाई मैट्रीक पास करके क्लर्क की नौकरी के साथ–साथ पढ़ाई भी करता है और एक दिन बड़ा अधिकारी बन जाता है। समाज और ऑफिस में उसे बहुत मान–सम्मान

मिलता है। पत्नी–बच्चे और ऑफिस ही उसके जीवन का केन्द्र बन जाते हैं। वह अपनी बहन और परिवार से धीरे–धीरे दूर होता जाता है। क्योंकि जिस ऊँची सोसायटी में वह रहता था, वहाँ उसने सभी से अपने दलित होने की बात छिपाई थी।

गजरा अपने बड़े बेटे से कई बार छोटे भाई को पत्र लिखवाती है, जिसमें उसके पति को टी.बी. की बीमारी और आर्थिक स्थिति खराब होने की बात लिखवाती है। छोटा भाई न तो पत्र का उत्तर देता है, न ही मिलने जाता है। पति की मृत्यु के बाद गजरा टूट जाती है। छोटा भाई इतना व्यस्त रहता है कि बहन का दुःख भी उसके कठोर हृदय को पीघला नहीं पाता। एक वर्ष में गजरा की हालत भी खराब हो जाती है। उसका पुत्र मामा को पत्र में लिखता है–

> **''पूज्य मामाश्री, मेरी माँ की तबीयत बहुत खराब है आपको एक बार आँखों से देखने की उनकी इच्छा है। समय निकालकर आ जाओ तो अच्छा होगा, आपको बहुत याद करती हैं। यह पत्र उन्होंने आग्रह करके लिखवाया है।''**[142]

लायक भाई के होने के बावजूद गजरा उससे मदद तो दूर उसे देखने के लिए भी तरसती है। छोटा भाई उसके सीरियस होने के तार मिलते ही घर से निकलता है। गजरा जैसे उसके आने का इंतजार ही कर रही थी। वर्षों बाद छोटे भाई को देखकर वह खुश तो होती है लेकिन उठकर बैठ भी नहीं सकती। वह कहती है–

> **''भाई, आपके बहनोई के देहांत के समय भी आप नहीं आए। आपको बहुत काम रहता होगा न। आपकी मैट्रीक की परीक्षा थी तब, आपके बहनोई ने मेरी चेन बेचकर आपकी फीस के रुपये दिए थे। आपको इसकी जानकारी नहीं है। आपके बहनोई ने यह बात आपको कहने से मना किया था इसलिए यह बात तुम्हें कहाँ से पता होगी ? आए होते तो उनकी आत्मा को शान्ति मिली होती।''**[143]

छोटा भाई बड़ी बहन गजरा के त्याग को भूल जाता है, उसके सहयोग को अनदेखा करता है। सभी संबंधियों से नाता तोड़ देता है, ताकि हाई सोसायटी के लोगों के बीच जाति छिपाकर मान–सम्मान पा सके या उसे खोने से बचा सके। इस झूठी शान–बान, दिखावे की दुनिया के लिए वह उन लोगों को दुःख पहुँचाता है जो उसे ऊँचाई तक पहुँचने में सीढ़ी बने थे। बड़ी बहन की मदद से ही वह उच्च पद पर आसीन था। गजरा की आँखें हमेशा के लिए बंद हो जाती हैं किन्तु छोटे भाई की आँखे खुल जाती हैं। भाई अपनी गलती के लिए पछताता है।

प्रस्तुत कहानी में भूख, गरीबी और अस्पृश्यता जैसी दलितों की मूल समस्या पर प्रकाश डाला गया है। यह समस्याएँ दलितों को अपनो से भी दूर करके दुःख पहुँचाती है। मिल में भी दलितों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है गजरा अपने आर्थिक संकट के समय छोटे भाई की मदद पाना चाहती है, किन्तु छोटा भाई उससे जाति छिपाने के कारण संबध नहीं रखना चाहता। एक बहन के लिए इससे अधिक पीड़ा की बात क्या होगी ? गजरा को उससे बहुत उम्मीदें थीं, किन्तु भाई उन पर खरा नहीं उतरता वह स्वयं की प्रगति तो करता है, किन्तु समाज की प्रगति में सहायक नहीं बनना चाहता। अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव मनुष्य से उसकी मानवता जैसे अमूल्य वस्तु भी उससे छीन लेती है। खून के रिश्ते भी यहाँ कमजोर पड़ जाते हैं।

दलित शिक्षित वर्ग में वर्तमान समय में जातिगत हीन भावना आज देखने को मिल सही है परिणाम स्वरुप दलितों के लिए आदर्श एवं प्रेरणा जो बन सकते हैं ऐसी नयी पीढ़ी के युवा दलित वर्ग जातिगत हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण अपने मुलभूत कर्त्तव्य से भटक गये हैं।

6. 'पोक'–बी. केशरशिवम्

'पोक' कहानी मथुर और धनी के जीवन की कहानी है। मथुर गरीब दलित है, किन्तु स्वाभिमानी, निडर और संतोषी स्वभाव का है। जबकि धनी परिश्रमी, सहनशील और समझदार स्त्री है। दोनों गरीबी में रहते हुए भी एक दूसरे के साथ से खुश थे। मथुर को कभी–कभी इस बात का खेद होता था कि हमें और हमारे मोहल्ले के लोगों को कठोर परिश्रम करने के बाद भी पेटभर भोजन नहीं मिल पाता है। रात की रुखी रोटी और कभी–कभी तो तीन दिनों की बासी रोटी खाकर भी लोग मजदूरी करते है, पसीना बहाते हैं। इस पर भी मालिक गाली और अपमानित किए बिना उनसे बात नहीं करता है। मथुर स्वाभिमानी है, इसलिए मालिक की चार बातें सुनने से अच्छा कम पैसों के कार्य को चुनता है। वह एक थैले में प्लास्टिक के टुकड़े, पोलीथीन बेग, पुराने स्लीपर, चप्पल आदि बटोरकर, उन्हें बेचकर आठ रुपये जितनी कमाई कर लेता है। धनी उससे खेत में मजदूरी करने के लिए कहती तब उसका विचार इस प्रकार का होता था–

> **''काली मजदूरी करने के लिए वह तैयार था, किन्तु खेतवालों की गाली सुनते ही उसका खून उबलने लगता था। गाँव में और खेतों में बचपन से इस तरह की अवहेलना और गालियों को वह सुनता आया है। उसके स्वाभिमानी मानस पर जैसे हथौड़े पड़ने लगते थे। इससे अच्छा दो–चार रुपये कम मिलें किन्तु स्वाभिमान से खा तो सकते हैं, इसलिए उसने खेत में मजदूरी करनी छोड़कर थैला कंधे पर डाला था।''**[144]

मथुर ने बचपन से ही सवर्णों द्वारा अत्याचार और अवहेलना को सहा था, किन्तु अब वह स्वाभिमान के साथ जीवन जीना चाहता है। धनी अपने पति के स्वाभिमान की कद्र करती है, किन्तु घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण वह उसे खेत में मजदूरी करने की सलाह देती है। मथुर के इंकार करने पर वह स्वयं खेत में मजदूरी करती है और उससे मिलने वाले रुपयों से ही घर का खर्च जैसे–तैसे चल रहा था। धनी को कई बार ऐसा लगता है कि मथुर अपने घमंड के कारण खेत में मजदूरी करने नहीं जाता, वह बासी रोटी खाने में नखरे करने वाले मथुर से कहती है–

> **''आपको भी थैला कंधे पर डालकर घूमने की आदत पड़ गई है। इससे तो अच्छा होता आप मेरे साथ खेत में आते तो एक बार दिन में बैंगन की सब्जी रोटी तो खाने को मिल ही जाती। किन्तु यह तो फिर शेर की गुफा है। इन्हें तो किसी के द्वारा कही गई बातें सुनना अच्छा नहीं लगता।''**[145]

धनी के समक्ष एक ओर आर्थिक समस्या है दूसरी ओर पति का स्वाभिमानी स्वभाव वह एक को महत्त्व देने जाती है तो दूसरा छूट जाता है। वह भी अपने घर में रोटी के साथ सब्जी खाना चाहती है, किन्तु पति के स्वाभिमान को ठेस न पहुँचे इसके लिए रुखी रोटी खाकर जीवन गुजारती है।

गाँव में सवर्णों का अत्याचार इतना अधिक था कि दलितों को वे मनुष्य समझते ही नहीं थे, पशुओं की भाँति उनसे परिश्रम करवाते थे। दलित जाति में पैदा होना उनके लिए किसी अभिशाप से कम नहीं था। अनपढ़ दलितों की मजबूरी थी, इसे सहने की। पढ़े–लिखे दलित भी बेरोजगारी के कारण मजदूरी करने के लिए विवश थे।

धनी को मथुर की चिंता है, क्योंकि आरक्षण के दंगे कल से शुरु हो गए हैं, किन्तु मथुर निडर और बेफिक्र है उसे कौन–सी नौकरी लेनी है सरकार से ? मथुर थैला लेकर अपने काम पर निकल जाता है और धनी भी खेत चली जाती है। आरक्षण के विरोधी टोले के लोग मथुर को पीटते है और उसे सिर पर गंभीर चोट लगती है। समाचार मिलते ही धनी सिविल अस्पताल मथुर के पास पहुँचती है। मथुर की बुरी हालत देखकर धनी जोर से चीखती है। उसकी यह चीख चारों दिशाओं में गूँजती है।

जिस स्थिति का सामना धनी ने किया वह कोई पहली बार नहीं हुआ था। आरक्षण के दंगों में हमेशा से निर्दोष लोगों की जाने ली गई हैं, ली जाती है। मथुर जैसा गरीब दलित होने की सज़ा भुगतता है और धनी अपने पति को घायल देखकर चीखने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती है ? कौन उसकी चीख सुनकर उसकी मदद करने आएगा ? कौन उसके दुःख से पिघल जाएगा ? प्रस्तुत कहानी में लेखक ने आरक्षण के आंदोलन, दंगें, बेरोजगारी, गरीबी और सवर्णों के अत्याचार जैसी गंभीर समस्या पर एक साथ प्रकाश डाला है। गाँव की प्रादेशिक बोली से कहानी अधिक यथार्थ के वातावरण में रंग गई है। कहानी की नायिका धनी सशक्त नारी पात्र न होकर असहाय विवश, मजबूर स्त्री के रुप में चित्रित की गई हैं।

7.'लोही की लागणी'–डेनियल मेकवान

प्रस्तुत कहानी की नायिका मंगु है। कुबेर की पुत्री मंगु अपने छोटे सात भाई–बहनों के लिए अपनी पढ़ाई छोड़कर खेतों में मजदूरी का काम करने लगती है। उसे अपने से अधिक फिक्र अपने छोटे भाई बहनों की है क्योंकि विकराल मुँह खोले हुए गरीबी उसके समक्ष तांडवनृत्य कर रही थी। ऐसी स्थिति में यदि वह स्वयं परिवार को आर्थिक मदद नहीं करती है, तो उनको न तो शिक्षा मिल पाएगी न ही उनकी प्रगति हो सकेगी। पिता को मंगु की चिंता है, क्योंकि उसने सबके कल्याण के लिए बलिदान दिया है, पिता को चिंता मुक्त करते हुए वह कहती है–

''मेरी बात छोड़ो पिताजी। दूसरी भाई–बहनों की चिंता करो।''[146]

अपनी बड़ी बेटी के इस उच्च, आदर्श और त्यागमय स्वभाव को देखकर कुबेर की खुशी का ठीकाना नहीं रहता। उसकी छाती अपनी बेटी के गुणों को देखकर फूलने लगती थी। मंगु के विषय में वह सोचता–

''संसार है तो उसके योग्य पति उसे मिल जाएगा परंतु उसके त्याग से अन्य भाई–बहन तो पढ़ेंगे न। इससे तो वे तो सुखी होंगे न।''[147]

कुबेर को ईश्वर पर विश्वास है कि बेटी मंगु के बलिदानी और सुंदर विचार हैं, तो उससे मेल खाने वाला जीवनसाथी उसे अवश्य मिल जाएगा। उसके सहयोग से अन्य बच्चे पढ़–लिख गए तो वे भी सुखी ही रहेंगे। अपने परिवार को सहयोग देना, यह मंगु की सबसे बड़ी खुशी थी।

मंगू परिश्रमी होने के साथ–साथ निडर और साहसी भी थी। खेत से लौटते समय एक दिन गाँव के सवर्ण भलाभाई का भतीजा उसे एकलता का लाभ लेकर उसका दाहिना हाथ पकड़ कर उसे खेतों के बीच बनी झोपड़ी में ले जाना चाहता है। रुपयों का लालच देकर वह मंगु को अपना शिकार बनाना चाहता है। गाँव में गरीबी इतनी थी कि गाँव की अन्य युवतियाँ थोड़े से रुपयों के लिए अपना शरीर बेचने को तैयार हो जाती थी। मंगु उन सबसे अलग थी। वह परिश्रम करके रुपये कमाना चाहती है, न की किसी का शोषण सह के। वह दिपला की दी गई लालच को ठुकराते हुए कहती है–

''दिपला। यह दाहिने हाथ का हसिया तेरा संबंधी नहीं रहेगा। तेरी मा–बहन है कि नहीं ?''[148]

मंगु अपने हसिये को दिखाकर दिलीप को चेतावनी देती है कि, वह उसके रुपयों के लोभ में नहीं आने वाली है, साथ ही अपना बचाव भी वह कर सकती है। दिलीप फिर भी उसे नहीं छोड़ता तब वह हसिये से उसके हाथ और कंधे पर वार करती है। दिपला जैसे ही उसकी ओर हाथ बढ़ाता है, मंगु हसिए की नोक उसमें चुभा देती है। दिलीप ने कल्पना नहीं की थी, कि मंगु उस पर वार करने का साहस कर सकती है। वह मंगु के रौद्र रुप को देखकर, साथ ही घायल होकर वहाँ से भाग जाता है। इस तरह मंगु स्वयं अपनी रक्षा करती है।

मंगु के साहस से दिलीप और उसका परिवार बदले की आग में जलने लगा। रात होते ही वे लोग मंगु के मोहल्ले में हथियार लेकर आ पहुँचते हैं। दलितों का यह मोहल्ला सवर्णों के समक्ष कायर बन जाता था। उनका सामना करने का साहस किसी में नहीं था। जेठा नाम का युवक ही था, जो सवर्णों के अत्याचार और शोषण के खिलाफ विद्रोह करना चाहता था। उसका साथ देने वाला कोई नहीं था, किन्तु वह अकेला ही निर्णय ले लेता है कि वह सवर्णों के अत्याचार के खिलाफ असहाय नहीं बनेगा उनका सामना करेगा। वह कूद पड़ता है मंगु की रक्षा करने। उसके साहस को देखकर दलितवास के अन्य लोग धीरे–धीरे निकलने लगते है। जेठा पर वार कर रहे लोग इस चमत्कार को देखकर घबरा जाते हैं और दलितों के समूह से बचकर भाग जाते हैं। इस मोहल्ले में पहली वार किसी दलित ने शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई थी।

जेठा को इस घटना को बाद भी तसल्ली नहीं मिली थी। वह सवर्णों को ऐसी सज़ा देना चाह रहा था, जिससे भविष्य में वे दलितों की बहू–बेटियों पर अत्याचार करने का साहस न कर सकें। संतोक भलाभाई की पुत्री और दिलीप की बहन थी। सवर्णों में उसके जैसी सुंदर, बुद्धीशाली युवती नहीं थी। जेठा उसका अपहरण करके सवर्णों को अपमानित करने की ठान लेता है। वह मौके की तलाश में कई दिनों तक रामपुरी चाकू लेकर घूमता है। उसे ईश्वर से नाराज़गी है वह कहता है–

''उपरवाला ? कहाँ है उपरवाला ? होता तो यह दुःख ही नहीं होता, ना पीडा, ना दुविधा, ना अग्नि, ना जलन होती। अपमान और नीची जाति, अछूत का भेदभाव नहीं हो ता।''[149]

अछूतों की पीड़ा यही थी कि जन्म लेते ही उन्हें जीवनभर दुःख झेलने के लिए मजबूर किया जाता था। अपमानित होना, शोषण सहना जैसे उनकी नियति बन गई

थी। जेठा एक दिन संतोक से बदला लेने के लिए उसे अकेले में मिल ही जाता है। जैसे ही वह उसके नज़दीक जाना चाहता है, दो अनजान युवक संतोक पर हमला कर देते हैं। संतोक उनसे बचने के लिए जेठा से कहती है–

''जेठा भाई...जेठा भाई.....तुम्हारी बहन पर यह..... ।''[150]

ऐसा कहती हुई संतोक भक्षक को रक्षक समझकर उससे मदद माँगती है। संतोक पर आई मुसीबत जेठा को अपनी ही लगती है। वह उन दोनों युवकों की पीटाई करता है और स्वयं घायल भी हो जाता है। जेठा आज संतोक के लिए किसी भगवान से कम नहीं था। उसके कारण गाँव की इज्जत बच जाती है। जेठा को उकसाने वाला दिनिया जब अस्पताल में उससे मिलता है तो जेठा कहता है–

''दिनिया। तुम सच कहते हो। वैसे भी अपना खुन हल्का तो हल्का ही, दूसरा क्या हो सकता है ?''[151]

बदले की भावना में जलने वाला जेठा संतोक को मुसीबत में देख उसकी रक्षा करता है। वह भक्षक नहीं रक्षक बन जाता है। यहाँ मानवता का धर्म जेठा के लिए अपने बदले की भावना से ऊँचा बन जाता हैं, बदला स्थूल अर्थ में नहीं होता।

प्रस्तुत कहानी में मंगु अपने आपको बचा लेती है, किन्तु उसके अपमान को जेठा पूरी बस्ती का अपमान समझता है। दूसरी ओर सवर्ण मंगु को दोषी समझते हैं क्योंकि विद्रोह करने वाला दलित उनका दुश्मन है। जेठा की बदले की भावना परिस्थिति बदलने पर परिवर्तित हो जाती है। दलितों की दयनीय स्थिति, गरीबी, भुखमरी, सवर्णों के अत्याचार आदि के वातावरण के बीच मंगु के पिता का बच्चों को शिक्षित बनाने का सपना, मंगु का भाई–बहनों के लिए त्याग अंधकार में आशा की एक किरण के रुप में हमारे समक्ष आता है। कहानी का शीर्षक 'लोही की लागणी' उचित है, किन्तु 'मैं' कथन कई जगह दुविधाजनक लगता है।

8.'कुलदीपक'–शैलेषकुमार क्रिस्टी

शैलेषकुमार क्रिस्टी द्वारा रचित **'कुलदीपक'** कहानी दलितों के एक ऐसे मोहल्ले का चित्रण करती है, जो बेहद ही गंदगी से भरा है। जहाँ गरीबी, भूख, और विवशता इतनी अधिक है, कि स्त्रियाँ अपनी देह का व्यापार करके अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण बड़ी मुश्किल से कर पाती हैं। कहानी की नायिका सवली उनमें से एक है। उसका पति नौकरी करने बम्बई गया है। पति की अनुपस्थिति में एक बच्चे के साथ अपना जीवन बसर करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। एक दलाल की मदद से वह भी देह–व्यापार से जुड़ जाती है।

सवली भले ही वेश्या का काम करती है, किन्तु उससे पहले वह एक पत्नी और एक माँ है। अपने बीमार छोटे से पुत्र को छोड़कर वह किसी ग्राहक के पास नहीं जाना चाहती। झोंपड़ी में अकेली बीमार बच्चे के साथ वह चार दिन उसकी सेवा में गुजारती है, किन्तु वह ठीक नहीं होता। उसके पास इतने रुपये नहीं थे कि वह अपने बच्चे को अच्छे अस्पताल में ले जाए। दलाल उसे ग्राहक के पास ले जाना चाहता है, किन्तु वह नहीं जाना चाहती। बिना रुपयों के वह इलाज कैसे करवाएगी यह सोचकर वह ग्राहक को घर में भेजने की अनुमति विवशता में दे देती है।

एक ओर सवली का रोता हुआ बीमार बच्चा तो दूसरी ओर शराब के नशे में मदमस्त ग्राहक सवली को रातभर के लिए खरीदता है। ग्राहक ने सवली के लिए अधिक रुपये दिये थे, सो वह सवली पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, हवस पूर्ति के लिए अपनी ओर उसे खींचता है तो दूसरी ओर रोता–बीलखता बीमार बच्चा अपनी माँ सवली को अपनी ओर बुलाता है। रात–भर सवली एक तरफ ममता और जिम्मेदारी तो दूसरी तरफ रुपये और मजबूरी के बीच झूलती है, अंत में ममता पर मजबूरी हावी हो जाती है और रोता बच्चा रोते–रोते दम तोड़ देता है। सुर्योदय होते ही कई रातों से जागी हुई सवली अर्धनिद्रा से उठकर अपने बच्चे के पास जाती है तो उसका कुलदीपक बुझ चुका होता है।

ग्राहक ने अपने रुपयों के बदले सवली के शरीर पर जीत हासिल कर ली थी, किन्तु जिस बच्चे के इलाज के लिए सवली ने अपना शरीर बेचना स्वीकार किया था, वह बच्चा रोते–रोते मर चुका था। ग्राहक के दिए हुए नोट पर सवली रोते हुए गाली देकर कहती है–

> **''लेता जा तेरे रुपये.....जिसके लिए बैठी थी...वह दीपक बुझ गया, तो यह कागज का क्या करुँगी..... ।''**[152]

बेटे की दवा के लिए बिकने वाली दलित सवली उसी कारण अपने पुत्र को खो देती है। उसकी करुण स्थिति को लेखक ने चित्रित किया है। कहानी में घटना और स्थिति को उसकी भावभिव्यंजकता की दृष्टि से अधिक प्रभावक नहीं बना पाए हैं लेखक, किन्तु दलितवास के वातावरण, परिवेश को बड़ी सुक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।

कहानी के शीर्षक 'कुलदीपक' को झोंपड़ी के लालटेन तथा स्ट्रीट लाइट के बुझने, सूरज का बादलों के बीच ढँकना जैसे किया सादृश्यों तथा सवली ग्राहक और कुतीया–कालीया के कथाघटकों के बीच के सादृश्य की रचना का थोड़ा बहुत प्रयास अवश्य किया है।

9.'भोरींग'–बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् की प्रस्तुत कहानी **'भोरींग'** में गरीब दलितों की तनतोड़ महेनत करने के बाद भी पेटभर भोजन न मिलने की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। कहानी में मगन और पूंजा दोनों घनिष्ट मित्र हैं। रंग–रुप में दोनों एक जैसे हैं और एक ही पिता की संतान लगते हैं। वास्तव में पूंजा की माँ और मगन के पिता के बीच अनैतिक संबंध थे, दोनों एक ही पिता की संतान थे, ऐसा गाँव वाले और सोमला स्वयं भी सोचता है। दलित वर्ग में जातीय शोषण या स्वेच्छा से अन्य पुरुष के साथ शारीरिक संबंध की घटना कोई नई बात नहीं थी। सोमला की शंका गलत नहीं थी। उसे अपनी पत्नी से नाराज़गी है।

आठ वर्षीय मगन और पुंजा इन बातों से बेफिक्र अपने बचपन को जी रहे थे। दलितवर्ग में इतनी गरीबी थी कि घर में चावल का बनना किसी उत्सव से कम नहीं था। चावल उनके लिए घी के लड्डू के समान थे। इसलिए माताजी को प्रसाद में चढ़ाया जाता था। गाँव का एक वृद्ध व्यक्ति जला अपनी पत्नी से इसलिए झगड़ा करता है, क्योंकि वह उसे रोज़ बाजरी की रोटी और राब खिलाती है, उसकी मनपंसद, वस्तु चावल नहीं बनाती। जला की पत्नी पर नाराज़ होता है। जला की पत्नी अपने पति की तीव्र इच्छा को पूरा करना चाहती है, किन्तु उसके पास चावल खरीदने के लिए रुपये

नहीं हैं। भूख और अस्पृश्यता इस कहानी का केन्द्र विषय रहा है। यह प्रश्न दलित समूह का प्राणप्रश्न है।

मगन और पूंजा हरपल अपने जीवन में भूख और अस्पृश्यता जैसे दूषण का सामना करते हैं। भूख और अस्पृश्यता से दलित समाज जीवनभर जूझता है किन्तु उससे मुक्ति नहीं मिलती। आठ वर्षीय पूंजा दो दिनों से भूखा था, किन्तु अपने मित्र के कहने पर भी चोरी करके भोजन नहीं खाना चाहता। यहाँ बाल मनोविज्ञान का प्रयोग लेखक ने किया है। पूंजा बच्चा है, किन्तु उसके संस्कार अच्छे हैं।

जला की पत्नी अपने पति की छोटी सी इच्छा को पूर्ण नहीं कर पाती, क्योंकि उस मोहल्ले में तनतोड मेहनत करने के बावजूद किसी के घर इतना भोजन नहीं बनता कि सभी सदस्य पेट भर भोजन कर सकें। एक समय बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा भोजन मिल सकता था। ऐसे लाचार, भूखे दलितों को सवर्णों की सेवा के बदले में मात्र गालियाँ और अपमान ही मिलता था। सवर्ण दलितों की मजबूरी का भरपूर लाभ उठाते थे।

एक ओर पूंजा जला के लिए कहीं से चावल लेकर आता है दूसरी ओर जला की वृद्ध पत्नी अपने पति की इच्छा पूर्ति के लिए घर के बर्तन को बेचकर एक कटोरी चावल को पकाती है। वह प्रसन्न थी, क्योंकि जला चावल खाने के लिए तड़प रहा था। वह अपने पति के लिए चावल लेकर खेत में उसे खिलाने जाति है, किन्तु जला अपनी चावल खाने की तीव्र इच्छा को पूर्ण किए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। दो लोग जला के लिए चावल लाते हैं, परंतु जला नहीं खा पाता।

'भोरींग' (सर्प) के डंख से जला की मृत्यु हो जाती है, पाठकों के मन में 'भोरींग' प्रतीकात्मक रुप में आता है। कहानी में प्रादेशिक शब्दों के प्रयोग से वातावरण जीवंत बन जाता है। एक दलित पत्नी की समस्या थी कि वह अपने पति को भर पेट भोजन न बनाकर खिला सके। उसकी मृत्यु के बाद जीवनभर इस दुःख को लेकर जीना कितना कष्टकर हो सकता है, यह इस कहानी में देखा जा सकता है।

10.'रामली'—बी. केशरशिवम्

बी. केशरशिवम् द्वारा रचित **'रामली'** कहानी में कहानीकार ने सफाई कर्मचारी के जीवन की सूक्ष्मता को मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका रामली नगरपालिका में सफाई कर्मचारी है। कुछ महीने पहले उसके पति की मृत्यु हो जाती है। परिवार में उसका पाँच महीने का पुत्र के अतिरिक्त और कोई नहीं है। वह अपने बच्चे को एक पड़ोसी बूढ़े के पास छोड़कर स्वयं सफाई का काम करने जाती है। यदि वह काम न करे तो घर में चूल्हा नहीं जलेगा। एक ओर मासूम बच्चा दूसरी ओर पेट की आग। गरीब रामली एक परिश्रमी और स्वाभिमानी स्त्री है। वह दूसरा विवाह करने से इंकार कर देती है और अपने पुत्र को अकेले ही पालने का निर्णय लेती है।

रामली जिस शहर में रहती थी, वहाँ चारों ओर प्लेग की बीमारी फैल जाती है। रामली अपने कर्त्तव्य से डरती नहीं और प्लेग से भयभीत होने के बावजूद वह अपने सफाई कार्य में लगी रहती है। यदि वह सही ढ़ंग से कार्य नहीं करेगी तो उसकी नौकरी जा सकती है। यदि नौकरी नहीं रही, तो उसकी आमदनी का जरीया खत्म हो जाएगा। वह सस्पेन्ड नहीं होना चाहती। इसलिए जब उसे पता चलता है कि पाँच लोगों को अच्छा कार्य न करने पर सस्पेन्ड किया गया है, तो वह डर जाती है और सोचती है कि—

''उनमें वह स्वयं तो नहीं होगी ? यदि निकाल देंगे तो वह क्या खाएगी ? और अपने बच्चे के लिए दूध कहाँ से आएगा ? उसे भी तो बड़ा करके पढ़ाना है और बड़ा अफसर बनाना है।''[153]

रामली की गरीबी उसकी मौत के लिए कारण बनती है। अपने कर्त्तव्य के प्रति ईमानदार रामली प्लेग का शिकार हो जाती है। टी. वी. समाचार में 'रामली' के नाम का उल्लेख कहीं नहीं होता। कहानी के अंत में लेखक ने समाज पर कटाक्ष करते हुए तंत्र की जड़ता की घोर उपेक्षा रामली जैसे कर्मचारियों के प्रति व्यक्त की है।

निष्कर्ष

कहानियों के अध्ययन के लिए निर्धारित मुद्दों के आधार पर विवेचन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में भाषा और भौगोलिकता का अलगाव अवश्य हो सकता है, लेकिन सारी जीवन स्थितियाँ हर जगह एक–सी हैं। चाहे गुजरात हो या राजस्थान, बिहार हो या उत्तर प्रदेश, पंजाब हो या मध्यप्रदेश भारतीय समाज में दलित नारी के प्रश्न, समस्याएँ, दुविधा एवं मौजूदा स्थितियों में कोई खास अंतर नहीं है।

विवेच्य कहानियों में दलित नारी की संवेदना की दृष्टि से सवर्णों द्वारा जातीय शोषण को झेलने वाली दलित नारिया हैं तो उस शोषण के प्रति कुछ दलित नारियों का विद्रोह भी देखा जा सकता है। अस्पृश्यता से पीड़ित दलित नारी की संवेदनाएँ हैं, तो सवर्णों की स्वार्थी मनोवृत्ति को भी देखा जा सकता है। दलित नारी की आर्थिक समस्याएँ हैं, पारिवारिक शोषण को वे झेलती हैं फिर भी उनमें स्वाभिमान, प्रेम, पतिपरायणता, संस्कार, परिवार के प्रति प्रेम, भारतीय नारी के गुणों से युक्त दलित नारी का रुप भी प्रकट होता देखा जा सकता है। परिवार को आर्थिक रुप से सहायता करने वाली दलित नारी है। रुढ़िवादी परंपरा जिससे स्त्रियों को परतंत्र रखा जाता है, उस पर रीतिरिवाज़ों को थोपा जाता है, दलित नारियाँ उनके प्रति विद्रोह करती देखी जा सकती हैं। बहुधा दलित नारी लाचार दयनीय, व्यथीत–पीड़ित, दुःख, ताप, अन्याय का भोग बनती देखने को मिलती हैं। देश को स्वतंत्रता मिले वर्षों बीत गए किन्तु इस स्तंत्रता का लाभ दलित नारी को कितना प्राप्त हुआ है ? वह यदि स्वतंत्र हुई तो क्या होगा ? गुलाम रहे तो क्या होगा ? दलित स्त्री को अन्न, वस्त्र के अभावपूर्ण जीवन एवं अपने आबरु खोने की गुलामी में से कब मुक्ति मिलेगी ?

प्रस्तुत अध्याय में ग्रामीण परिवेश की कहानियों की बहुलता है जिसमें नारी–जीवन के जो विविध रुप हमें प्राप्त होते हैं, वह हमें उस प्रदेश एवं क्षेत्र के सामाजिक जीवन एवं परिवेश को भली–भाँति समझने में सहायक हो सकते है। शहरी परिवेश की कहानियों में नारी संवेदना को प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ आंशिक पाई गई है।

दलित नारी की संवेदना की दृष्टि से श्रेष्ठ कहानियों में मोहन परमार की 'थड़ी', बी.केशरश्विम् की 'राती रायण की रताश', 'मेना', 'मंकोड़ा', हरीश मंगलम् की 'दायण', दलपत चौहान की 'गंगामाँ', विट्ठलराय श्रीमाली की सांकड़ा', 'रोटलो नजराई गयो' जैसी कहानियों में दलित स्त्री के सकारात्मक व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। प्रवीण गढ़वी की 'दरुपदी' एवं पुष्पा माधड की 'गोमती' कहानियों में मिथ के माध्यम से दलित नारी की संवेदना को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार संपूर्ण अध्याय में दलित नारी की एक ऐसी छबी हमारे समक्ष आती है, जो परंपरागत रुप से पुरुष प्रधान भारतीय समाज द्वारा शोषित होती आई है। दलित नारी को मात्र बाह्य व्यक्तियों से ही नहीं उसे अपने पारिवारिक सदस्यों से भी संघर्ष करना पड़ता है। वह अपने घर में एक सफल गृहिणी के कर्त्तव्य को निभाती है, तो साथ ही मजदूरी, परिश्रम करके आर्थिक रुप से भी अपने परिवार के लिए सहायक बनती है। इन सबके बावजूद समाज एवं परिवार में उसे वह मान–सम्मान एवं स्वतंत्रता नहीं मिलती, जिसकी वे हकदार हैं। स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान से जीने की उसकी साधरण सी इच्छा को सवर्ण अपने पैरों तले कुचलने के लिए आतुर रहते हैं। वह हर तरह के अत्याचार और अन्याय को सह रही है, किंतु वह निराश बिल्कुल नहीं हुई है। उसे विश्वास है कि शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता से उसे वे सारे अधिकार एवं स्वतंत्रता मिल सकेंगी जिसे पाने के लिए सदियों से दलित स्त्री जूझ रही है। अब यह अत्यंत आवश्यक है कि उनकी स्थिति में सकारात्मक सुधार आए। अपने अधिकारों के प्रति दलित नारी में आई जागृति आज भले की संख्या की दृष्टि से आंशिक हों, किन्तु भविष्य में जागृति की इस रोशनी से संपूर्ण दलित नारियों को रोशनी से परिपूर्ण किया जा सकता है। जिस प्रकार यदि जलता हुआ एक दीपक हो तो उससे कई दीपकों को प्रज्वलित करना संभव होता है, उसी प्रकार आज की ये जागृत दलित नारियाँ कम हैं, किन्तु आने वाले कल में वे ऐसी असंख्य नारियों के लिए प्रेरणा बनेंगी।

संदर्भ सूची

1. दलित साहित्य आंदोलन डॉ. चनद्रकुमार वरठे पृ. सं. 31
2. वही पृ. सं. 31
3. **'मंकोड़ा' –** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 6
4. वही पृ. सं. 8
5. वही पृ. सं. 9
6. **'लाखु' (लक्षण) –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 147
7. वही पृ. सं. 147
8. वही पृ. सं. 148
9. वही पृ. सं. 149
10. वही पृ. सं. 150
11. वही पृ. सं. 150
12. वही पृ. सं. 151
13. वही पृ. सं. 151
14. **'थणी' (दहलीज) –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 132
15. वही पृ. सं. 135
16. वही पृ. सं. 137
17. वही पृ. सं. 139
18. वही पृ. सं. 141
19. फा.गु.सा. त्रैमासिक जनवरी–मार्च 1998 पृ. सं. 63
20. **'सोमली' –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 236
21. वही पृ .सं. 236
22. वही पृ. सं. 236
23. वही पृ. सं. 237
24. वही पृ. सं. 239–240
25. वही पृ. सं. 240
26. **'रखोपा का साँप' –** गुजराती दलित वार्ता पृ. सं. 73
27. वही पृ. सं. 79
28. **'भींस' –** सं.मौलिक बोरीजा पृ. सं. 2
29. वही पृ. सं. 5
30. **'दरुपदी' –** अंतरव्यथा–सं. प्रवीण गढ़वी पृ. सं. 12–13
31. **'छगना को न समझ में आते सवाल' –** दलित वार्तादृष्टि–सं. मोहन परमार पृ. सं. 33
32. **'कडण' –** कुभी–सं. मोहन परमार पृ. सं. 195
33. वही पृ. सं. 195
34. प्रत्यक्ष जुलाई–सितंबर 1997 पृ. सं. 37
35. वार्ता संदर्भ–सं. शरीफा वीजलीवाला पृ. सं. 127
36. **'अधूरा पुल' –** गुजराती दलित कहानी–सं. मोहन परमार पृ. सं. 158
37. **'मेली मथरावटी' –** गुजराती दलित वार्ता–सं. मोहन परमार पृ. सं. 117
38. वही पृ. सं. 115

39. वही पृ. सं. 172
40. वही पृ. सं. 117
41. वही पृ. सं. 110–111
42. वही पृ. सं. 219
43. **'झाड़' –** वार्तालोक–सं. हसमुख वाघेला पृ. सं. 311
44. वही पृ. सं. 315
45. वही पृ. सं. 316
46. वही पृ. सं. 316
47. वही पृ. सं. 316
48. वही पृ. सं. 317
49. वही पृ. सं. 317
50. वही पृ. सं. 316
51. वही पृ. सं. 317
52. वही पृ. सं. 317
53. **'गोमती' –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 120
54. वही पृ. सं. 120
55. वही पृ. सं. 120
56. वही पृ. सं. 121
57. **'सगपण' (सगाई) –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 114
58. वही पृ. सं. 114
59. **'दाई'–** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 25
60. **'नवी'–** नवी–सं. योगेशजोषी, हयाती वर्ष 1 अकं 1 मार्च 1998–सं. मोहन परमार पृ. सं. 61
61. वही पृ. सं. 61
62. वही पृ. सं. 63
63. **'फुट रे भुंडा' –** वार्तालोक–सं. प्रीतम लखमाणी पृ. सं. 92
64. वही पृ. सं. 94
65. वही पृ. सं. 94
66. वही पृ. सं. 94
67. वही पृ. सं. 96
68. वही पृ. सं. 97
69. **'कदाच' (शायद) –** वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 219
70. वही पृ. सं. 220
71. वही पृ. सं. 220
72. वही पृ. सं. 222
73. **'रोकडी'–** चकु का वर–सं. चंद्राबेन श्रीमाली पृ. सं. 104
74. वही पृ. सं. 74
75. **'गोरुचंदन' –** विलोपन–सं. भी.न.वणकर पृ. सं. 50
76. वही पृ. सं. 74
77. **'एबोर्शन' –** तलप–सं. हरीश मंगलम् पृ. सं. 77
78. **'गंगामा' –** मुंझारो–सं. दलपत चौहान पृ. सं. 6

79. वही पृ. सं. 98
80. वही पृ. सं. 99
81. **'रेड कार्पेट' –** वार्तालोक–सं. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. सं. 332
82. वही पृ. सं. 332
83. वही पृ. सं. 332
84. वही पृ. सं. 332
85. **'राजीनामा' (इस्तीफा) –** राती रायण नी रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 329
86. वही पृ. सं. 340
87. वही पृ. सं. 341
88. **'गूँगी चीख'–** गुजराती दलित वार्ता पृ. सं. 108
89. **'बोटेली वस' –**वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 39
90. वही पृ. सं. 39
91. **'शैली का व्रत' –**साक्षी साबर नी –सं. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. सं. 132
92. **'नरक'–** नरक–सं. धरमाभाई श्रीमाली पृ. सं. 1
93. वही पृ. सं. 2
94. वही पृ. सं. 2
95. वही पृ. सं. 5
96. **'होड़' –** हयाती मार्च 1998–सं. मोहन परमार, मघुकान्त कल्पित पृ. सं. 73
97. वही पृ. सं. 77
98. **'दो बीघा जमीन' –** वणबोटी वारताओ–सं. मघुकान्त कल्पित पृ. सं. 96
99. वही पृ. सं. 97
100. वही पृ. सं. 98
101. **'मुखिया का भांजा' –** साक्षी साबरनी–सं. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. सं. 34
102. वही पृ. सं. 35
103. **'जेल की रोटी '–** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 69
104. **'राती रायण की रताश' –** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 48
105. वही पृ. सं. 49
106. **'मेना' –** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 87
107. **'जोगन' –** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 79
108. वही पृ. सं. 79
109. **'वटोड'–** विलोपन–सं. भी.न.वणकर पृ. सं. 22
110. वही पृ. सं. 22
111. वार्ता संदर्भ–सं. डॉ.शरीफा वीजलीवाला पृ. सं. 85
112. **'रुपा का पानी' –** राती रायण की रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 312
113. वही पृ. सं. 317
114. **'शहर की बहू' –** दलित चेतना की कहानियाँ–सं. भार्गव ओमगुरु पृ. सं. 59
115. वही पृ. सं. 58
116. वही पृ. सं. 59
117. वही पृ. सं. 59
118. **'खील'–** रातीरायण की रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 321

119. वही पृ. सं. 324
120. वही पृ. सं. 324
121. वही पृ. सं. 327
122. 'इसमें सीता का क्या दोष' – साक्षी साबरनी–सं. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. सं 70
123. 'भूल किसी की भोगे कोई'– साक्षी साबरनी–सं. विट्ठलराय श्रीमाली
पृ. सं. 137
124. वही पृ. सं. 139
125. 'गाठाण'– वार्तालोक–सं. हरीश मंगलम् पृ. सं. 48
126. वही पृ. सं. 48
127. वही पृ. सं. 48
128. वही पृ. सं. 49
129. वही पृ. सं. 49
130. वही पृ. सं. 50
131. 'रोटलो नज़राई गयो' – वणबोटी वारताओ–सं. मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 56
132. वही पृ. सं. 57
133. वही पृ. सं. 60
134. 'मुंझारो'– वार्तालोक–सं. हरीश मंगलम् पृ. सं. 72
135. 'हडसेलो' – वार्तालोक–सं. हरीश मंगलम् पृ. सं. 202
136. वही पृ. सं. 202
137. वही पृ. सं. 207
1368. वही पृ. सं. 207
139. 'कमली' – राती रायण नी रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 136
140. वही पृ. सं. 136
141. 'आँख खुल गई' – राती रायण की रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 168
142. वही पृ. सं. 191
143 वही पृ. सं. 193
144. 'पोक' – राती रायण नी रताश–सं. बी.केशरशिवम् पृ. सं. 85
145. वही पृ. सं. 84
146. 'लोही की लागणी'– वणबोटी वारताओ–सं.मधुकान्त कल्पित पृ. सं. 74
147. वही पृ. सं. 74
148. वही पृ. सं. 75
149. वही पृ. सं. 79
150. वही पृ. सं. 79
151. वही पृ. सं. 80
152. 'कुलदीपक' – गुजराती दलित वार्ता–सं. राजेन्द्र जाड़ेजा पृ. सं. 34
153. 'रामली'– रातीरायण नी रताश–सं. बी.केशर शिवम् पृ. सं. 67

चतुर्थ अध्याय

''हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन''

अध्याय – 4

हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. बाबा साहब आम्बेडकर के जीवन दर्शन तथा विचार धारा ने दलित लेखन को नई शक्ति प्रदान की है। आज का दलित साहित्य जन–समुदाय से जुड़कर जनभाषा में क्रान्ति का बिगुल बजाकर और अन्याय की इस दुनिया में आग लगाकर सामजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष कर रहा है। प्रो. खरे के अनुसार

> **''दलित साहित्य का मूल अर्थ दलित समस्याओं के निराकरण को माना जाता है, न कि उच्च वर्णों को कोसने से। यह तो सत्य है कि वर्ण व्यवस्था ने दलितों की स्थिति को अत्यधिक कष्टमय बनाया तथा उन्हें अनगिनत समस्याओं से सम्बद्ध कर दिया। जो समाज सामाजिक असमानता तथा भेदभाव की नींव पर खड़ा होता है, वह कभी भी समाज के सभी वर्ग के लोगों के साथ न्याय नहीं कर पाता है। परंतु भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत वैदिक काल से ही ऊँच–नीच और अस्पृश्यता के दूषित विचारों ने न केवल दलितों को दयनीय अवस्था में पहुँचा दिया, वरन उनके विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर उन्हें कठिनाइयों व समस्याओं में भी घेरा दिया।''**[1]

आज भी दलित अपनी अनेक समस्याओं के कारण पशुवत् जीवन जीने को विवश हैं। आज भी दलित, विशेषकर ग्रामीण परिवेश में रहने वाले दलितों को अशिक्षा, स्वास्थ्य, सम्मान जनक जीवन, रोजगार का अभाव, आवास, निर्धनता, अस्पृश्यता जैसी समस्याओं के चंगुल में जकड़ा हुआ है। सबसे बड़ी समस्या यदि महिलाओं की देखें, तो वह है उनका सवर्णों द्वारा होने वाला जातीय शोषण। अपने आत्मसम्मान, स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए वह आज भी संघर्ष कर रही हैं। कहीं दलित महिलाओं को अस्पृश्यता का शिकार बनाने की कोशिश की जाती है, तो कहीं उसकी अस्मिता को रौंदा जाता है। शिक्षा और प्रतिभा के माध्यम से प्रगति की ओर कदम बढ़ाने वाले दलितों को गैरदिलतों द्वारा रोका जाता है।

दलित महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या का कारण उनकी गरबी भी है, तो कहीं गैरदलितों की वासनावृत्ति दलित महिला के बलात्कार का कारण बनती है। आर्थिक तंगी से त्रस्त दलित महिला स्वयं मजदूरी करती हैं और अपने परिवार के भरण–पोषण में सहायक बनती है, किंतु कामकाजी दलित महिलाओं का आर्थिक एवं जातीय शोषण उनके लिए बड़ी समस्या बन जाती है। मैला ढ़ोने, शहर एवं गाँव में लोगों की गंदगी साफ करने, मरे हुए पशुओं को खींचने आदि परंपरागत कार्यों को करने के लिए उन्हें विवश किया जाता है। आज दलितों में जातिगत हीन भाव की समस्या भी देखी जा रही है, शिक्षित उच्च पदाधिकारी सवर्णों से सम्मान पाने के लिए अपनी जाति को छिपाना ही बेहतर समझते हैं। शिक्षित होने पर भी दलित महिलाओं को अस्पृश्यता जैसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अशिक्षित दलित महिलाएँ तो अस्पृश्यता की जैसे आदी ही बना दी गई हैं। सवर्णों के साथ–साथ दलित समाज भी कन्या को शिक्षा

से दूर रखने का प्रयास करता है। यह समस्या आज बहुत बड़ी कही जा सकती है, क्योंकि एक कन्या को शिक्षित करने का मतलब है एक परिवार को शिक्षित करना।

4.1 समस्याओं की साम्यता और विषमता

4.1.(1) अस्पृश्यता की समस्या

विवेच्य कहानियों में अस्पृश्यता की समस्या को हिन्दी–गुजराती की दलित कहानियों में क्रमशः '**अम्मा**' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), '**दायण**'(हरीश मंगलम्), '**फुलवा**'(रत्नकुमार सांभरिया), '**गंगामाँ**'(दलपत चौहान), '**सिलिया**'(सुशीला टाकभौरे), '**एबोर्शन**'(हरीश मंगलम्), '**टूटता वहम**'(सुशीला टाकभौरे), '**नवी**'(योगेश जोषी), '**सनातनी**' (अमर स्नेह), '**शैली का व्रत**'(विट्ठलराय श्रीमाली), '**अत्तू और अम्मा**'(सूरजपाल चौहान), '**राजीनामा**'(बी.केशरशिवम्), '**खटिया की जाति**'(सुरेन्द्र नायक), '**गोरुचंदन**'(भी.न.वणकर), '**टिल्लू का पोता**'(सूरजपाल चौहान), '**फट रे भुंडा**'(प्रीतम लखमाणी), '**अब का समय**'(प्रहलाद चन्द्र दास), '**मुखिया का भांजा**'(विट्ठलराय श्रीमाली), '**गूँगीचीख**'(हरीशकुमार मकवाणा), '**बदला**'(डॉ.सुशीला टाकभौरे), '**युज एण्ड थ्रो**'(डॉ.पूरनसिंह), '**दर्द**'(मोहनदास नैमिशराय), '**हम कौन हैं**'(रजतरानी 'मीनू'), आदि में देखा जा सकता है। इन कहानियों के कहानीकारों ने दलितों के जीवन से जुड़ी हुई मुख्य समस्या के रुप में अस्पृश्यता की समस्या पर कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें जातिगत भेदभाव, ऊँच–नीच, को मानने वाले सवर्णों द्वारा दलितों के प्रति अस्पृश्यता को चित्रित किया गया है। उनमें से कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जहाँ सवर्णों ने एक ओर दलितों का स्वार्थवश उपयोग भी किया है और दूसरी ओर उनके उपकार को भूलकर उन्हें अस्पृश्य कहकर उनका अपमान भी किया है। हिन्दी की '**अम्मा**' और गुजराती की '**दायण**' ऐसी ही कहानियाँ हैं। **'अम्मा'** कहानी में अम्मा एक मैला ढ़ोने वाली बुजुर्ग महिला हैं। वह लोगों की गंदगी का स्पर्श कर उसे साफ करती है, किन्तु वह जीन लोगों का मैला स्वयं अपने हाथों से साफ करती है, उनका स्पर्श गलती से भी नहीं कर सकती। इसी तरह गुजराती की कहानी **'दायण'** की नायिका बेनी माँ भी एक वृध्दा दलित महीला है, जो एक कुशल दाई भी है। सवर्ण पशली को सुरक्षित प्रसव करवाकर वे उसे और उसके पुत्र को जीवनदान हैं, किन्तु बदले में वही बच्चा कुछ वर्षों बाद बेनी माँ को अस्पृश्य कहकर उनका अपमान करता है। अम्मा का पात्र धीरे–धीरे अस्पृश्यता का आदी बन जाता है, किन्तु बेनी माँ सवर्ण की स्त्रियों का प्रसव करतवाती है, तब उन्हें स्पर्श करती है, बच्चे को जीवनदान देती है, तब वह उनके लिए महान बन जाती है, किन्तु संकट का समय बीतते ही वह फिर से परंपरागत दूषण अस्पृश्यता का शिकार बनती है। यहाँ सवर्णों की स्वार्थपरता को बखूबी प्रस्तुत किया गया है। बेनी माँ शोषण के प्रति खामोश हो जाती है। '**बदला**' कहानी की छौआ माँ भी बेनी माँ की तरह सफाई एवं प्रसूति का कार्य करती हैं। वह वर्षों तक निःस्वार्थ भाव से सवर्णों की सेवा करती है, किन्तु अपने नाती पर किए गए अत्याचार के समक्ष वह चुप नहीं बैठती और विद्रोह करती है। '**बदला**' कहानी में '**दायण**' कहानी की तरह सवर्णों की स्वार्थपरता पर प्रकाश डाला गया है। छौआ मां का पात्र अस्पृश्यता के प्रति प्रतिकार करता है, ताकि उसकी भावि पीढ़ी स्वाभिमान से जी सके। '**गंगामाँ**' कहानी की बुजुर्ग गंगा माँ भी दाई के कार्य में कुशल थी। गाँव के सवर्ण मुखिया रायसंग की पुत्रवधु की सुरक्षित प्रसुति करवाने वाली गंगामाँ के जाने पर रायसंग

सोने के आभूषण को पानी में डालकर उस शुद्ध पानी से पूरे घर को शुद्ध करवाता है, सारे कपड़े घर से बाहर निकाले जाते हैं। गंगामाँ सारी अस्पृश्यता को नज़रअंदाज करके एक स्त्री की पीड़ा को दूर करके अपने कर्त्तव्य का पालन करती है। यहाँ गंगामाँ का चरित्र इतना उदार है कि उसके समक्ष सवर्ण पात्र छोटे नज़र आते हैं। गंगामाँ की पुत्रवधू पर बलात्कार करने वाला पथु अस्पृश्यता भूल जाता है। अस्पृश्यता यहाँ सामाजिक भेद–भाव को दिखाने के लिए है, उन पर बलात्कार के समय यह जाने कहाँ चली जाती है?

'**सिलिया**' कहानी में दलितों को अस्पृश्यता के कारण सवर्णों के कुएँ से पानी न भरने जैसी घटनाएँ दिखाई गई हैं एवं सिलिया को अस्पृश्यता के कारण सवर्ण के घर प्यासी होने पर भी पानी नहीं दिया जाता। जबकि '**शैली का व्रत**' कहानी में शैली को सवर्णों के मंदिर में प्रवेश करने से पंडित रोकता है, क्योंकि वह दलित है। सिलिया और शैली दोनों इस छुआछूत को समाज से निर्मूल करने के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर समाज को बदलना चाहती हैं। किन्तु शैली उस पंडित के सिर पर पूजा की थाली मारकर अपने अपमान और अस्पृश्यता का खंडन करती है। शैली का पात्र अपने अपमान को सह नहीं पाता, जबकि सिलिया अपमान सह लेती है।

'**यूज एण्ड थ्रो**' कहानी में मंदिर प्रवेश करने पर दलित राजो और उसके पति को सरेआम अपमानित करके अपमानजनक दंड दिया जाता है। कुछ समय बाद वही सवर्ण श्यामलाल का उपयोग करके उसे मृत्यु के घाट उतार देते हैं। सदियों से सवर्णों की उपयोगिता वृत्ति के समक्ष अस्पृश्यता कहीं अदृश्य हो जाती है और समय बीतने पर, स्वार्थ सिद्ध होने पर अचानक लौट आती है। '**गोरु चंदन**' कहानी में रामीबहन अपने पुत्र का बलिदान करके सवर्ण के पुत्र को बचाती है। यहाँ रामीबहन की महानता बताई गई है, किन्तु वह बच्चा बड़ा होकर दलितों से छुआछूत रखता है, वह भूल जाता है कि उसने एक दलित स्त्री का दूध पिया है। दलित स्त्री ने ही उसे जीवन दान दिया है। अस्पृश्यता की खाई किसी **'गोरुचंदन'** से दूर नहीं की जा सकती, यह इस कहानी में दिखाया गया है। साथ ही सवर्णों की '**यूज एण्ड थ्रो**' एवं '**गोरुचंदन**' दोनों कहानियों में स्वार्थपरता एवं अस्पृश्यता के विरोधी स्वभाव को एक साथ देखा जा सकता है। दोनों ही कहानी के अंत में स्त्री पात्रों का अंत में यह निर्णय लेना कि अब हमें किसी के स्वार्थ के लिए बलिदान नहीं देना है, यह एक नई सोच की ओर, नई शुरुआत की ओर हमारा ध्यान खींचता है।

'**अत्तू और अम्मा**' कहानी में अत्तू को इसलिए सवर्ण बलवंत सिंह पीटता है, क्योंकि वह अपने बैल का जूठा पानी उसकी भैस को पिला देता है। यहाँ मनुष्य से अस्पृश्यता के साथ पशुओं से भी अस्पृश्यता को दिखाया गया है। दलित चित्रा को अस्पृश्य मानने वाला सवर्ण उससे बलात्कार का प्रयास करता है। उसी तरह '**मुखिया का भांजा**' कहानी में दमयंती के पुत्र नटवर की अनाज की दुकान से कोई सवर्ण अनाज नहीं खरीदता, क्योंकि वह दलित है। गाँव के मुखिया द्वारा इस अस्पृश्यता को दूर करने के लिए आगे आना एक नई विचार धारा का द्वार खोलता है। सामान्य तौर पर इस प्रकार की कहानियाँ कम देखने को मिलती है, जहाँ सवर्ण स्वयं ही अस्पृश्यता का खंडन करते दिखाए गए हों। '**फुलवा**' कहानी में दलित फुलवा के पुत्र का उच्च अधिकारी बनना और समृद्धि पूर्ण वातावरण में फुलवा को देखकर गाँव के सवर्ण रामेश्वर का हैरत

में पड़ना एवं स्वयं की दरिद्रता पर विचारना, फिर भी अस्पृश्यता को न छोड़ते हुए फुलवा के घर का पानी तक न स्वीकरना, अस्पृश्यता की गहरी पैठी जड़ता को चित्रित करता है। कहानी के अंत में रामेश्वर का फुलवा के घर लौटना इस अस्पृश्यता को छोड़ने की उसकी मजबूरी और स्वार्थी मानसिकता की ओर संकेत करता है। '**एबोर्शन**' कहानी में शिक्षित दलित इंदु को कोई नौकरानी नहीं मिलती और जो मिलती है, वह इसलिए काम छोड़ देती है, क्योंकि वह दलित है। एक बंजारन स्त्री जो गरीब है, अशि़क्षित है, वह भी अस्पृश्यता को मानती है। यहाँ लेखक ने अस्पृश्यता का प्रश्न एक गरीब बंजारन से करवाकर अस्पृश्यता की चरम सीमा पर कटाक्ष किया है।

'**टूटता वहम**' कहानी में नायिका स्वयं शिक्षित पात्र है एवं अध्यापिका है, फिर भी अपने कॉलेज के साथी कर्मचारियों से छुआछूत एवं अस्पृश्यता का भेदभाव देखती है। यहाँ अस्पृश्यता को शिक्षित वर्ग में नए ढंग से दबे, ढँके रुप में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि वे शिक्षित हैं, इसलिए इस छुआछूत को वे जाहिर तौर पर व्यक्त करने में संकोच करते हैं। '**राजीनामा**' कहानी में सीमा को इसलिए मजबूर किया जाता है, कि वह नौकरी से इस्तीफा दे क्योंकि वह दलित है। वह किसी सवर्ण से प्रेम नहीं कर सकती। यहाँ सवर्णों का पूरा समाज, जैसे विद्यार्थी, शिक्षक, प्रिंसिपाल, ट्रस्टी सभी दलित सीमा पर आक्षेप लगाते हैं। कहानी में अस्पृश्यता के कारण दलित सीमा को वर्षों तक संघर्ष करना पड़ता है, जबकि उसका सवर्ण प्रेमी सरलता से दूसरी नौकरी पाकर सुखी जीवन बीताता है। '**टूटता वहम'** और '**राजीनामा'** दोनों कहानियों में शिक्षित वर्ग में अस्पृश्यता देखी गई है। '**टूटता वहम**' की नायिका इस समस्या को कड़वा घूंट समझकर पी लेती है, किन्तु '**राजीनामा**' की सीमा इसका कड़ा विरोध करती है और सवर्णों से संघर्ष करती है।

'**सनातनी**' कहानी में दलित 'अनुआ' को अस्पृश्यता के कारण सवर्णों की पाठशाला में प्रवेश नहीं दिया जाता। किन्तु अनुआ एकलव्य की तरह शिक्षा प्राप्त कर गुरु को अचंभे में डालकर इस अस्पृश्यता को दूर करने में सफल होता है। गुरु का हृदय परिवर्तन और अस्पृश्यता पर अनुआ की जीत कहानी को विशेष बनाती है। '**फट रे भुंडा**' की कंकु को बहकाने में असफल भरतसिंह अस्पृश्य कहकर अपमानित करता है। वही कंकु भरतसिंह के शरीर से सर्प का जहर अपने मुँह से चुसकर निकालती है और उसे जीवनदान देती है। यहाँ सवर्णों के स्वार्थ के समक्ष दलितों की उदारता को अधिक ऊँचा बताया गया है, किन्तु उदारता के बदले में बार–बार अपमानित होने वाली कंकु का चरित्र पूर्ण विकास नहीं प्राप्त कर सका है।

'**खटिया की जाति**' कहानी में दलित शिप्रा का जातीय शोषण करने वाला सोमेश निर्जीव खटिया को शुद्ध करने के लिए धोता है। क्योंकि उसमें छूत लगी है, जबकि वह स्वयं अपने को ऐसा कर्म करने से नहीं रोक पाता, यहाँ लेखक ने करारा व्यंग्य किया है, खटिया के माध्यम से। यहाँ '**खटिया की जाति**' एक सांकेतिक शीर्षक है। '**गूंगीचीख**' का छगन अपनी बूढ़ी माँ एवं पूरी जाति को संकट में न डालने के लिए वह शिक्षक की नौकरी छोड़ देता है। अस्पृश्यता में डूबे सवर्ण लोगों की आँखों पर लगी रुढ़िगत परंपराओं की पट्टी को छगन नहीं खोल पाता अपने इस कार्य में असफल हो, वह अपनी बूढ़ी माँ को निराधार छोड़कर इस दुनियाँ से चला जाता है। यहाँ अस्पृश्यता एक दलित युवक की जान ले लेती है।

'**इस समय में**' कहानी में शहरी स्कूल में दलित छात्रों के साथ शिक्षकों का भेद–भाव पूर्ण व्यवहार बच्चों की मानसिकता पर कैसा बुरा प्रभाव डालता है ? यह बताया गया है। '**हम कौन हैं ?**' कहानी में भी शहरों की स्कूल में बच्चों की सरनेम जानकर शिक्षक उनकी जाति के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं, यह अस्पृश्यता को जीवित रखने का मोर्डन तरीका है। दलित बच्चे एवं माता–पिता इस समस्या से शहर में भी बच नहीं पाते हैं, यह दिखाया गया है। '**अब का समय**' कहानी में सवर्ण लोग स्वार्थ वश दलित अंजू और उसके पति सतीश का उपयोग करते हैं, किन्तु अपने भीतर की परंपरावादी अस्पृश्यता को न भूलकर उनका अपमान करते हैं। अंतर्जातीय विवाह को इस समस्या के समाधान के रुप में प्रस्तुत किया गया है। '**टिल्लू का पोता**' कहानी में कमला और उसके पति को सवर्ण किसान कुएँ से पानी नहीं भेरने देता एवं कमला को अपशब्द कहकर उसका अपमान करता है। कमला का पानी को 'जहर' कहना अस्पृश्यता के प्रति तीव्र प्रतिकार है। सूरजपरल चौहान की '**पाँचवी कन्या**' कहानी में लेखक ने सवर्णों की कथनी और करनी के अंतर पर करारा व्यंग्य किया है। यह कहानी अस्पृश्यता के कट्टर समर्थकों की पोल खोलती है। पाँचवी दलित कन्या के साथ किस तरह श्रीमती मिश्रा ने स्नेह जताया और जैसे ही उसे उसकी जाति पता चली 440 वोल्ट के करन्ट का झटका खा गई। यह एक श्रीमती मिश्रा की ही बात नहीं, संपूर्ण हिन्दू मानसिकता का ही उल्लेख है व परिचायक है। '**दर्द**' कहानी में दलित 'हरभजन' का प्रमोशन इसलिए रोका जाता है, क्योंकि एक अस्पृश्य व्यक्ति दलित को कोई उच्च पद पर नहीं देखना चाहता। अस्पृश्यता की चरमसीमा हरभजन की जान ले लेती है और उसके परिवार को अधजल में छोड़ देती है। कहानी में शहरों की सरकारी एवं प्रायवेट ऑफिसों में अस्पृश्यता को लेकर होने वाले भेद–भाव को केन्द्र में रखा गया है। '**लोकतंत्र में बकरी**' कहानी में दलित की बकरी प्रकृति की सीमा को नहीं जानती और विनोद बाबू और अन्नपूर्णा की बकरी को सवर्ण के खेत में जाने के बहाने से मार डालते हैं। '**रात**' कहानी में कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ ही प्रिंसिपाल भी दलित राजेश के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं। दलित राजेश को शहर में किराए का घर दलित होने की वजह से सरलता से नहीं मिलता। यहाँ '**रात**' शीर्षक अस्पृश्यता एवं अज्ञानता रुपी अंधकार का प्रतीक है।

इस प्रकार हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों में अस्पृश्यता की समस्या को केन्द्र में रखकर कई कहानीकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। गुजराती की दलित कहानियों में अस्पृश्यता की समस्या अधितम् ग्रामीण परिवेश की मिलती हैं जैसे '**दायण**', '**नवी**', '**गोरुचंदन**', '**फट रे भुंडा**', '**मुखिया का भांजा**', आदि और शहरी परिवेश में यह समस्या '**एबोर्शन**', '**राजीनामा**', कहानियों में चित्रित है। हिन्दी में '**अत्तू और अम्मा**', '**टिल्लू का पोता**', '**सिलिया**', '**सनातनी**', '**बदला**', '**लोकतंत्र में बकरी**', जैसी कहानियों में यह समस्या ग्रामीण परिवेश की हैं, जबकि '**इस समय में**', '**यूज एण्ड थ्रो**', '**हम कौन हैं ?**', '**अब का समय**', '**टूटता वहम**', '**खटिया की जाति**', '**फुलवा**', '**दर्द**', '**रात**' जैसी कई कहानियाँ है, जहाँ अस्पृश्यता की समस्या को शहरी परिवेश में चित्रित किया है। इस तरह देखा जा सकता है कि गुजराती की तुलना में हिन्दी की दलित कहानियों में इस समस्या का वर्णन अधिक कहानियों मे हुआ है, जहाँ आज के समय में शहरों में किस रुप में दलितों को जातिभेद की समस्या से जूझना पड़ रहा है। अशिक्षित ग्रामीण ही नहीं शिक्षित शहरी दलित भी आज की 21 वीं सदी में नए ढंग से अस्पृश्यता का भोग बनाए जा रहे हैं। इस समस्या का तीव्र प्रतिकार हिन्दी में '**बदला**', '**टिल्लू का पोता**' कहानियों में किया गया है, जबकि '**सनातनी**', '**फुलवा**' जैसी कहानियों के अंत में इस समस्या को

दूर करने की पहल भी की गई है। जबकि गुजराती में ऐसी कोई भी कहानी नहीं मिलती है, जहाँ इस समस्या का समाधान या उसे दूर करने का संकेत किया गया हो। गुजराती कहानियों में अस्पृश्यता की समस्या का मार्मिक वर्णन करके लेखक ने उसे वहीं छोड़ दिया है। इस समस्या के प्रति दलित पात्रों में कोई खास विरोध या प्रतिकार दिखायी नहीं देता, जिससे कहानी में कोई नई सोच लक्षित नहीं की जाती।

4.1 (2) दलित नारी के जातीय शोषण की समस्या

स्त्रियों का जातीय शोषण दलित समाज के लिए एक गंभीर समस्या है। इससे न केवल दलित महिला की शारीरिक मानहानी होती है, बल्कि उसे गहरा मानसिक आघात भी पहुँचता है। जातीय शोषण का शिकार होने वाली स्त्री के जीवन में यह घटना मानसिक रुप से जड़ता पैदा करने वाली हो जाती है। ऐसी घटना से दलित किशोरियाँ स्वाभाविक चपलता, अल्हड़पन, बालसुलभ स्वत्व गँवा देती हैं। युवतियों को इससे गहरा आघात पहुँचता है और दूषित होने व आत्मतिरस्कार की भावना का अनुभव करती हैं, जबकि विवाहित स्त्री का जब बलात्कार होता है, तो उस नारी की मनोव्यथा के साथ–साथ उसके पति को भी गहरा मानसिक आघात पहुँचता है। दलित नारी का जातीय शोषण मुख्य तौर से श्रमिक नारी की आर्थिक जरुरत, दलित समाज की भीरुता, दलित वर्ग का आजीविका के लिए सवर्णों पर निर्भर रहना, बिरादरी की पंचायत का शोषित को ही दंडित करना, कई बार परिवार के सहयोग न मिलना आदि कई ऐसे मुद्दे हैं, जो इस समस्या का कारण हैं। गुजराती की दलित कहानियों में ऐसी कई कहानियाँ मिलती हैं जिसमें दलित स्त्रियों के जातीय शोषण का कारण उनके मालिकों पर आर्थिक निर्भरता से जुड़ा हुआ देखा जाता है।

दलित कथाकारों ने अपनी रचनाओं में दलित महिलाओं के जातीय शोषण की अभिव्यक्ति में गहरी संवेदना, मनोव्यथा, कुछ हद तक लाचारी का भाव, हताशा, आक्रोशपूर्ण विरोध जैसे स्वरुप धारण किए हैं, पंरतु उल्लेखनीय बात यह है कि उसमें खलनायक अधिकतर उच्च वर्ग का पुरुष ही रहा है और वह लेखकों के आक्रोश का पात्र भी रहा है। दलित नारी का जातीय शोषण एक अत्यंत संवेदनशील मुद्दा है, फिर भी सामान्यतः उस पर खुली चर्चा नहीं की जाती। कहानीकार या साहित्यकार इस समस्या का निराकरण नहीं कर सकते, किन्तु इस विषय पर वे गहरी चिंता, जागरुकता को लेखन के ज़रिए पाठकों तक पहुँचा सकते हैं। इससे इस जटिल समस्या के निराकरण की दिशा में सकारात्मक शुरुआत हुई है। ऐसे ही हिन्दी कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कावेरी, सूरजपाल चौहान, विजयकांत, कुसुम वियोगी, कुसुम मेघवाल, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम, रत्नकुमार सांभरिया, अमर स्नेह, प्रेम कपाड़िया आदि हैं। जबकि गुजराती में हरीश मंगलम्, बी.केशरशिवम्, डॉ.मोहन परमार, हरिपार, धरमाभाई श्रीमाली, जोसेफ मेकवान, भी.न.वणकर, मघुकान्त कल्पित, प्रवीण गढ़वी, मौलिक बोरीजा आदि कहानीकार हैं।

हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों में दलित स्त्रियों के जातीय शोषण की समस्या का मार्मिक वर्णन किया गया है। हिन्दी की दलित कहानियों में निम्न कारणों से दलित महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या जैसे की आर्थिक निर्भरता, गरीबी–भुखमरी, कामकाजी स्त्रियों की समस्या, सवर्णों की हवस एवं सवर्णों द्वारा छल पूर्वक दलित युवतियों का जातीय शोषण किए जाने जैसे विषय पर कहानियाँ लिखी गई हैं।

1. आर्थिक निर्भरता या गरीबी–भुखमरी के कारण जातीय शोषण की समस्या–**'हरिजन'** (प्रेम कपाड़िया), **'भूख'** (डॉ. सी.बी.भारती), **'कर्फ्यू'** (अखिलेश कुमार),
2. कामकाजी महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या–**'अत्तू' और अम्मा'** (सूरजपाल चौहान), **'मंगली'** (कुसुम मेघवाल), **'जंगल की रानी'** (ओमप्रकाश वाल्मीकि), '**जंगल में आग**'(गौरी शंकर), '**मंगली**'(कुसुम मेघवाल), '**सुमंगली**'(कावेरी), '**आखेट**'(रत्नकुमार सांभरीया)
3. सवर्णों की हवस वृत्ति के कारण महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या–'**मरीधार**' (विजयकांत) '**आंतक**'(राजेशकुमार बौद्ध), '**अंतिम बयान**'(कुसुम वियोगी), '**अंगारा**'(सूरजपाल चौहान), '**अंगूरी**'(सूरजपाल चौहान), '**अपना गाँव**'(मोहनदास नैमिशराय), '**कर्ज़**'(मोहनदास नैमिशराय), '**उसका फैसला**'(कालीचरण प्रेमी),
4. छल पूर्वक किया गये महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या–'**एक दलित लड़की**'(डॉ. रामसिंह यादव), '**खटिया की जाति**'(सुरेन्द्र नायक), '**बात**'(रत्नकुमार सांभरिया)

गुजराती की दलित कहानियों में दलित महिलाओं के जातीय शोषण पर लिखी कहानियाँ–

1. आर्थिक निर्भरता या गरीबी–भुखमरी के कारण जातीय शोषण की समस्या–'**मेली मथरावटी**'(राघवजी माधड़), '**एक छालियु दाल नी खातर**'(वसंतलाल), '**सपायडो**'(विट्ठलराय श्रीमाली), '**थड़ी**'(मोहन परमार), '**सोमली**'(हरिपार), '**भींस**'(मौलिक बोरीजा),
2. कामकाजी महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या–'**मंकोड़ा**'(बी. केशरशिवम्), '**श्रद्धा**'(हरीश मंगलम्), '**अधूरापूल**'(मधूकांत कल्पित),'**जोगन**'(बी. केशरशिवम्), '**रखोपा का साँप**'(अरविंद वेगड़ा),
3. सवर्णों की हवस वृत्ति के कारण महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या– '**शहर की बहू**'(बी. केशरशिवम्), '**सगपण**'(प्रज्ञा पटेल), '**कडण** '(मोहन परमार), '**गोमती** '(पुष्पा माधड), '**साडं**'(हसमुख वाघेला)
4. छूलपूर्वक किये गये महिलाओं के जातीय शोषण की समस्या–'**लाखु**'(मधुकांत कल्पित), '**जूती पहनने का मन**'(प्रवीण गढवी), '**दाझवुं ते**'(धरमाभाई श्रीमाली), '**छगना को न समझ में आते सवाल**'(जोसेफ मेकवान)

4.1.(2)1. आर्थिक निर्भरता, गरीबी, भुखमरी की समस्या

प्रेम कपाड़िया की '**हरिजन**' कहानी में देवदासी प्रथा से पीड़ित परबतिया का जातीय शोषण पुजारी द्वारा किया जाता है। गरीब दलित स्त्रियाँ मजबूरन इस अपमान जनक कार्य से जोड़ी जाती हैं और उसके परिणामस्वरुप उनसे जन्में बच्चे कहानी के नायक प्रेम की तरह भटकने के लिए विवश होते हैं। परबतिया इस शोषण को सहज स्वीकार लेती है। वर्षों बाद प्रेम अपनी माँ एवं उसी की तरह की अन्य स्त्रियों को मुक्त करके उन्हें आत्मसम्मान पूर्ण जीवन जीने का अवसर देता है। बी. केशवशिवम् की '**चामड़ी घसावानी वेदना**'(चमड़ी घीसने की वेदना) की काशी पहले बिन–व्याही माँ बनती है और बाद में दलित बच्चों की शिक्षा, रोज़गार समाज सुधार के लिए कॉलगर्ल बन

जाती है। वह स्वयं दलदल में धँसकर दूसरों को दलदल से बचाने का महान कार्य करती है। अपने पुत्र के उज्जवल भविष्य के लिए मज़बूरन काशी जातीय शोषण का भोग बनती है। काशी की आर्थिक कमजोरी उसे इस घृणास्पद कार्य से जोड़े रखती है, किन्तु पाप के रास्ते से कमाए रुपयों का जनकल्याण में उपयोग करके उसके सारे पाप धुल जाते हैं। '**हरिजन**' की काशी एक मूक प्राणी की तरह जातीय शोषण को सहती है और अपने बेटे के लिए कुछ नहीं कर पाती जबकी '**चामडी घसावानी वेदना**' की काशी अपने बेटे के जीवन को सँवारने के लिए एवं अन्य दलितों को शोषण मुक्त करने के लिए हर तरह के प्रयास करती है। डॉ. सी.बी. भारती की '**भूख**' कहानी में गरीब आदिवासी पिता अपनी विवाहित पुत्री किशनी और उसके बच्चों को सवर्णों के हाथों बेच देता है। आदिवासी समाज की अधिकतर स्त्रियों का जातीय शोषण गाँव के सवर्ण करते थे। पेट की भूख एक पिता को विवश करती है, बेटी को बेचने के लिए। किशनी की कोई प्रतिक्रिया कहानीकार ने व्यक्त नहीं की है, जिससे कहानी में अपूर्णता का अनुभव होता है। आदिवासियों में गरीबी से मजबूर परिवार द्वारा सहमती से स्त्रियों को बेचना उस समाज की कमजोरी के साथ परिवार की पेट की भूख की तीव्रता को व्यक्त करता है। वसंतलाल की '**एक छालियु दालनी खातर**'(एक कटोरी दाल के लिए) कहानी में विधवा गरीब कंकुडी अपने पुत्र की दाल खाने की इच्छापूर्ति के लिए सवर्ण रसोइये से शारीरिक संबंध स्थापित करती है और गर्भधारण करती है। कुंकडी का पुत्र के लिए इतना बड़ा त्याग उसकी गरीबी की चरम सीमा को अभिव्यक्त करता है। '**भूख**' एवं '**एक छालियु दाल नी खातर**' दोनों कहानी में क्रमशः एक पिता और एक माँ पेट की भूख के लिए सवर्णों के समक्ष समर्पण करती हैं। अखिलेश कुमार की '**कर्फ्यू**' कहानी की फुलिया और उसकी माँ गुजरी का जातीय शोषण शहर में हुए दंगे के कारण कर्फ्यू की परिस्थिति में होता है। गुजरी पर दंगाई बलात्कार करते हैं जबकि अपने छोटे भाई–बहनों की पेट की भूख को मिटाने के लिए फुलिया रसिक जैसे अधेड़ वय के लंपट पुरुष के समक्ष समर्पण करती है। फुलिया जैसी गरीब युवती गरीबी का शिकार होने से यह कदम उठाने के लिए विवश दिखाई गई है। शहर में दिहाड़ी मजदूरी करने वालों की करुण स्थिति का वर्णन इस कहानी में किया गया है। फुलिया का ऐसा कदम उसकी कमजोरी को प्रस्तुत करता है कहानी में फुलिया एक आदर्श युवती नहीं कही जा सकती। मौलिक बोरीजा की '**भींस**' कहानी में समु पहले पति के शोषण सहती है और तलाक के बाद आर्थिक मदद के बहाने सवर्ण मगनभाई उसका जातीय शोषण करता है। समु यहाँ दोहरे शोषण का शिकार बनती है। गरीब दलित स्त्री जो पति द्वारा त्याग दी जाती है, उसकी विवशता समु के पात्र में दिखाई गई है। विट्ठलराय श्रीमाली की '**सपायड़ो**'(सिपाही) में डांग के समृद्ध जंगल की रामड़ी गरीबी के कारण शराब बनाकर बेचती है और सिपाही उसी के घर में उस पर बलात्कार करता है। यहाँ रामड़ी की गरीबी लाचारी उसके दुःख का कारण बनती है, किन्तु वही रामड़ी न्याय न मिलने पर सिपाही की हत्या करके स्वयं अपने दोषी को दंड देती है। यहाँ रामड़ी शोषण के प्रति विद्रोह करती दिखाई गई है। हरिपार की '**सोमली**' कहानी की सोमली भी गरीबी के कारण शराब बेचने का कार्य करती है। गरीब सोमली का शरीरिक शोषण गाँव का मुखिया करता है और सोमली जब मुखिया के पुत्र को जन्म देती है, तो वह उसे अस्वीकार करता है। वर्षों बाद जब सोमली की पुत्रवधू का मुखिया जातीय शोषण करना चहता है तब उसे बचाने के लिए मुखिया की हत्या कर देती है। यहाँ परंपरागत रुप से चले आ रहे जातीय शोषण का वर्णन किया गया है। सोमली अपनी लाज़ नहीं बचा

पाती, किन्तु बहू की लाज बचाकर वह कई दलित स्त्रियों के शोषण से बचाती है और दोषी का दंड देती है। यहाँ सोमली का पात्र पहले कमजोर है बाद में निडर देखा जा सकता है। मोहन परमार की '**थड़ी**' कहानी की रेवी पति की अनुपस्थिति और गरीबी के कारण सवर्ण मानसिंह के जातीय शोषण का शिकार बनती है, किन्तु अपने बच्चे, पति, परिवार का मान–सम्मान के लिए वह एक युक्ति से मानसिंह से हमेशा के लिए मुक्ति पाती है। यहाँ रेवी का पात्र पहले लाचार, विवश बताया गया है किन्तु अंत में आत्मविश्वासी, निडर, स्वाभिमानी एवं अपने अधिकार के लिए लड़ने वाला बन जाता है। राघवजी माधड़ की '**मेली मथरावटी**' कहानी की गंगा आर्थिक संकटों से घीरी रहती है, मुखिया उसका जातीय शोषण करता है। उसके माता–पिता भी असहाय बनकर विरोध करने से डरते हैं। यहाँ परिवार की भीरुता गंगा को अपमानित जीवन जीने के लिए विवश करते हैं।

इस प्रकार आर्थिक कारणों से जातीय शोषण का भोग बनने वाली दलित स्त्रियों की कहानी हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य में मिलती हैं, किन्तु गुजराती में ऐसी अधिक कहानियाँ लिखी गई हैं, हिन्दी की अपेक्षा। हिन्दी की '**भूख**', '**हरिजन**', '**कर्फ्यू**', कहानी की नायिका क्रमशःकिशनी, परबतिया, फुलिया जातीय शोषण सहती हैं, किन्तु इन पात्रों में लाचारी, विवशता का वर्णन अधिक देखा जा सकता है। किसी भी नारी का चरित्र विद्रोह करता हुआ या शोषण का प्रतिकार करता हुआ चित्रित नहीं किया गया है। गुजराती की '**मेली मथरावटी**', 'एक छालियु दालनी खातर','**भींस**', की नारी पात्र क्रमशः गंगा कंकुडी, समु, जातीय शोषण सहती हैं, किन्तु विद्रोह नहीं करती जबकि '**चमडी घीसने की वेदना**' की काशी समाज सेवा के कार्य से जुड़कर अपने जीवन को सार्थक बनाती है। '**थड़ी**' की रेवी युक्ति का प्रयोग कर शोषक को सबक सीखाती है। '**सपायड़ो**' की रामडी दोषी को स्वयं दंड देती है और '**सोमली**' की सोमली भी शोषण के समक्ष विद्रोह करती है।

4.2.(2)2. दलित कामकाजी महिला का जातीय शोषण

हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में ऐसी कई कहानियाँ मिलती हैं, जिसमें दलित कामकाजी महिलाओं का जातीय शोषण सवर्ण पुरुष, ठेकेदार, मुखिया आदि के द्वारा किया गया दिखाया गया है। जिनमें हिन्दी की सूरजपाल चौहान की '**अत्तू और अम्मा**', कुसुम मेघवाल की '**मंगली**',ओमप्रकाश वाल्मीकि की '**जंगल की रानी**', कावेरी की '**सुमंगली**', रत्नकुमार सांभरिया की '**आखेट**', कहानी तथा गुजराती में बी. केशरशिवम् की '**मकोड़ा**', हरीश मंगलम् की '**श्रद्धा**', मधुकांत कल्पित की '**अधूरा पुल**', बी. केशरशिवम् की '**जोगन**', कहानियाँ मिलती हैं।

'**अत्तू और अम्मा**' की चित्रा एक विधवा सफाई कार्य करने वाली स्त्री है। वह जिस सवर्ण के घर सफाई का कार्य करती है वह पुरुष एकलता का लाभ लेकर चित्रा को अपने बहुपाश में लेता है, शोर मचाने पर लोग एकत्र होते हैं और दोष निर्दोष चित्रा के सिर पर लगाया जाता है। सर्वण भला दलित स्त्री को कैसे स्पर्श कर सकता है ? चित्रा का पक्ष लेने वाला कोई नहीं क्योंकि सभी सवर्ण दलित का शोषण करना जानते हैं, उनका पक्ष समर्थन वे नहीं कर सकते। बी. केशरशिवम् की '**मंकोड़ा**' की संतोक जिस सवर्ण रणछोड़ के खेत में मजदूरी करती है, वह उसका जातीय शोषण करना चाहता है, साथ न देने पर जबरन उसके पति की उपस्थिति में उसके घर में वह संतोक पर हमला

करता है। बहादुर संतोक पति की जान और स्वयं की आबरु बचाने के लिए रणछोड़ का लिंग काट देती है। यहाँ संतोक का जातीय शोषण करने का सपना–सपना ही रह जाता है। संतोक एक विद्राही नारी, के रुप में चित्रित की गई है। कुसुम मेघवाल की '**मंगली**' एक कामकाजी विधवा स्त्री है, अपने ठेकेदार की वासना को न पहचानते हुए वह उसे संवेदना, सहानुभूति समझती है। वह गरीब हैं, किन्तु परिश्रम करके जीने को तैयार है किसी की रखैल बनकर अपमानित जीवन नहीं जीना चाहती। मंगली का कमजोर एवं सशक्त रुप कहानी में दिखाया गया है। वह शोषण के समक्ष विद्रोह करके दोषी को पुलिस के हाथों सौंपती है। किन्तु मधुकांत कल्पित की '**अधूरा पुल**' की नायिका मजदूरिन ठेकेदार की वासना का शिकार बनती है। पति एवं पुत्र की उपस्थिति में यह शोषण होता है। नायिका का चरित्र कमजोर बन जाता है। क्योंकि वह सहजता से ही यह शोषण स्वीकारने लगी हो ऐसा प्रतीत होता है। कावेरी की '**सुमंगली**' में अनाथ नाबालीग सुगिया ठेकेदार की कुदृष्टि का शिकार बनकर उसका जातीय शोषण सहने को विवश है। सुगिया जीवनभर दुःखों का सामना करती है। सुगिया की संवेदना एवं मनोव्यथा का चित्रण मार्मिक है, किन्तु वह विद्रोह करती हुई नहीं दिखाई देती। शोषण के समक्ष हमेशा विवश दिखाई गई है। बी. केशरशिवम् की '**जोगन**' की वाली शहर में बूढ़े ससुर के साथ मजदूरी का कार्य करती है। विधवा वाली की सुंदरता सारे व्यापारी के आकर्षण का केन्द्र बनती है। वाली व्यापारी के हमले से अपनी आत्मरक्षा करने के लिए उसके सिर पर वार करती है। उस व्यापारी की मृत्यु हो जाती है। यहाँ वाली में नारीशक्ति की झलक देखी जा सकती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की '**जंगल की रानी**' की कमली एक शिक्षिका थी। सवर्ण अधिकारी उसका जातीय शोषण करना चाहते है, जब वे निष्फल होते हैं तब उसकी हत्या कर देते हैं। कहानी में अभिव्यक्त सच दलित जीवन का ऐसा भयावह सच है जिसका दर्द बलात्कृत स्त्री का परिवार कई पीढ़ियों तक सहता है। राजनीति, उच्चपदाधिकारी एवं रक्षक के मुखौटों को कहानी में उतारकर फैंका गया है। कमली का पात्र मरते दम तक हिम्मत नहीं हारता, यह बात उसे एक यादगार पात्र बनाता है। हरीश मंगलम् की '**श्रद्धा**' की धनी पति के पलायन से मजदूरी करती है। सेठ सुंदरलाल उसकी एकलता का लाभ उठाता है। परिस्थिति वश धनी समर्पण करती है किन्तु उसे अपनी गलती पर अफसोस होता है। कहानी में अंधश्रद्धा धनी को श्रद्धा की ओर ले जाती है। रत्नकुमार सांभरिया की '**आखेट**' की रेवती पर गाँव के ठाकुर की कुदृष्टि होती है। रेवती अपनी आबरु बचाने के लिए उसकी नाक काटकर उसे कड़ा दंड देती है। शहर में भी बुजुर्ग सवर्ण उस पर कुदृष्टि रखता है। यहाँ रेवती की सुंदरता उसे चैन से जीने नहीं देती। रेवती का पात्र अत्यंत ही साहसी, निडर, परिश्रमी एवं आदर्श कहा जा सकता है। शोषण के प्रति विद्रोह करके वह शोषक को सबक सीखाती है।

'**जंगल में आग**' (गौरीशंकर नागदंश) की फुलतोड़नी मिल में काम करती थी। वहाँ दलित युवतियों की खरीद–बिक्री की जाती थी। विलासी सिंह जैसे सवर्ण से विवाह और बाद में विधवा होकर कई पुरुषों के जातीय शोषण का शिकार बनती है। राजनीति में प्रवेश करके वह उच्च पद प्राप्त करती है किन्तु बसमतिया की लाज बचाने के लिए हत्या कर बैठती है। यहाँ फुलतोड़नी स्वयं जातीय शोषण का भोग बनती है, किन्तु वह किसी दूसरी युवती को इसका भोग बनने से बचाकर उसे नया जीवन देती है वह शोषण के प्रति विद्रोह करती है।

'**रखोपा का साँप**'(अरविंद वेगड़ा) रुडी जिस जीलुभा के खेत में मजदूरी करती है, वह उस पर बलात्कार करता है। गरीब रुड़ी बीमार पति वीरजी से अत्यंत प्रेम करती है, किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वह अपने शरीर को वासना खोर से नहीं बचा पाती। कामकाजी रुड़ी की विवशता, गरीबी, भुखमरी एवं उसका भरपूर फायदा उठाने वाला जीलुभा जैसे पात्र से रुड़ी की मनोव्यथा का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार दलित कामकाजी महिलाओं के जातीय शोषण '**अत्तू और अम्मा**', '**सुमंगली**' की पात्र क्रमशः चित्रा और सुगिया, दोषी के समक्ष कमजोर पड़ जाती हैं किन्तु '**मंगली**', '**जंगल की रानी**' की नारी पात्र क्रमशः मंगली, एवं कमली अत्याचारी के समक्ष संघर्ष करती हैं, कमली अपनी जान गँवाती है किन्तु मंगली न्याय पाने के लिए कदम बढ़ाती है। इसी प्रकार '**आखेट**' की रेवती नारीशक्ति का परिचय देती है। गुजराती में '**मंकोडा**' की संतोक भी रेवती की तरह आत्मरक्षा के लिए संघर्ष करती हुई चित्रित की गई है। '**जोगन**' की वाली भी साहसिक नारी का रुप लेती है। जबकि '**अधूर पुल**', '**श्रद्धा**' कहानी की नायिका परिस्थिति वश कमजोर पड़ जाती हैं।

4.1.(2)3. सवर्णों की हवस का शिकार दलित स्त्रियाँ

हिन्दी एवं गुजराती की दलित कहानियों में ऐसी कई कहानियाँ मिलती हैं, जिसमें दलित स्त्रियाँ पुरुषों की वासना एवं हवस का शिकार बनती हैं। कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें दलित पुरुष से बदला लेने के लिए उसकी पत्नी, बहन, बहू आदि का सवर्ण पुरुष जातीय शोषण करते हैं। कई ऐसी भी हैं, जिनमें सवर्ण पुरुष अपनी वासना की तृप्ति के लिए दलित स्त्रियों का शोषण करते हैं। सवर्ण पुरुषों के लिए दलित स्त्रियाँ उनकी शरीर की भूख मिटाने का एक साधन मात्र हैं, जिन्हें वे जब चाहें भोग सकते हैं और मारकर फेंक सकते हैं, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। उन्हें दंड देने की शक्ति किसी दलित में नहीं होती। विजयकांत द्वारा रचित '**मरीधार**' का नायक चमकू ठाकुरों के घर का मैला ढोने के कार्य से इंकार कर देता है, जिसके परिणामस्वरुप उसे गाँव से निष्काशित कर दिया जाता है। जेल भेजा जाता है और पत्नी सुगिया से अमानुषिक व्यवहार एवं बलात्कार किया जाता है। यहाँ दलित पुरुष के विद्रोह करने का दंड उसकी पत्नी को दिया जाता है। '**कडण**'(मोहन परमार) कहानी में सवर्ण वनुभा दलित मफला की हत्या करवाकर उसकी पत्नी का बलात्कार करता है। उस स्त्री को मारकर कुँए में उसके देवर के साथ फेंक देता है। यहाँ वनुभा अपने पाप को छिपाने के लिए दलित स्त्री एवं उसके देवर पर झूठा आरोप लगाता है। कहानी में वनुभा जैसे सवर्ण पुरुष को अत्यंत ही वासनाखोर एवं क्रूर बताया गया है, जबकि दलित स्त्री की चारित्रिक विशेषताएँ दब गई हैं। '**आंतक**'(राजेशकुमार बौद्ध) में दलित राखी के बेटे के छोटे से झगड़े का कठोर दंड उसे दिया जाता है। पहले मारपीट, फिर बलात्कार एवं निर्वस्त्र करके गाँव में घुमाया जाता है, अंत में जिंदा जला दिया जाता है। उसका साथ देने वाली विमला को भी निर्वस्त्र करके मारा–पीटा जाता है। यहाँ सवर्ण ठाकुर द्वारा दलितों पर अत्याचार की चरमसीमा देखी जा सकती है। दलितों के मोहल्ले में सरेआम दो महिलाओं पर अत्याचार करना एवं थानेदार की उपस्थिति में यह अत्याचार का, होना हमारे देश के न्यायतंत्र के समक्ष प्रश्न खड़ा करने वाला है। विमला का विद्रोह करके सात लोगों पर गोली चलाना क्या अनुचित कहा जाएगा ? यदि जुल्म करना गलत है, तो सहना भी गलत ही है। '**गोमती**'(पुष्पा माधड़) कहानी की गोमती मंदिर के

पुजारी द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। परिवार को सवर्णों के अत्याचार से बचाने के लिए आत्महत्या करती है। यह कहानी एक ओर दलितों की विवशता एवं दूसरी ओर सवर्णों के शोषण का बयान करती है। स्वर्ग के इन्द्र भी गोमती को न्याय देने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। दलित नारी को पृथ्वी लोक एवं स्वर्गलोक में कहीं भी न्याय नहीं मिलता। '**अंगूरी**'(सूरजपाल चौहान) की अंगूरी गाँव के मुखिया के बलात्कार के प्रयास को निष्फल करती हुई एक सबला नारी के रुप में हमारे समक्ष आती है। इस विषय में प्रमोद सिंह का विचार है कि–

> **''इस कहानी के माध्यम से लेखक ने बताया है कि दुश्मन कितना ही बलशाली क्यों न हो, यदि साहस और जान हथेली पर लेकर मुकाबला करने की सामर्थ्य है और उसके बल पर मुकाबला किया जाए, तो दुश्मन को खदेड़ना कठिन नहीं है।''**[2]

शहर की बहू' (बी. केशरशिवम्) की कमु दोहरे शोषण को झेलती है। उसका पति सवर्ण का विरोध नहीं करता, किन्तु शहर में रही कमु गाँव में होने वाली दलित स्त्रियों के जातीय शोषण का शिकार नहीं बनना चाहती। वह सवर्ण गरबड़ को नारीशक्ति का परिचय देती है। '**अंतिम बयान**'(कुसुम वियोगी) की अतरो सवर्ण कामुक राजेन्द्र जैसे भेड़िये को किसी दलित स्त्री का जातीय शोषण करने लायक नहीं छोड़ती। अतरो '**अंगारा**' की नायिका की तरह साहसी नारी के रुप में हमारे समक्ष आती है। सवर्ण पुरुषों की वासनापूर्ति के लिए हर दलित स्त्री यह कदम नहीं उठा पाती। '**सगपण**'(प्रज्ञा पटेल) की मणकी का जातीय शोषण एक डॉक्टर द्वारा किया जाता है। चौकीदार पिता बेटी को इंसाफ दिलान में निष्फल होता है। डॉक्टर जैसे शिक्षित व्यक्ति के वासना के भूखे व्यक्तित्व को समाज के समक्ष लाने नहीं दिया जाता। मणकी का जातीय शोषण उसे मानसिक क्षती पहुँचाता है, साथ ही उसका मंगेतर का जीवन भी नष्ट–भ्रष्ट कर देता है। यहाँ जातीय शोषण के परिणामों को लेखिका ने बखूबी प्रस्तुत किया है। '**उसका फैसला**'(कालीचरण प्रेमी) की बिंदो पहले पारिवारिक शोषण एवं बाद में गाँव के प्रधान से बलात्कार का शिकार बनती है। बिंदो को इंसाफ कहीं नहीं मिलता। वह आत्महत्या कर लेती है। यहाँ गाँव में प्रधान के परिवार के पुरुषों की हैवानियत एवं कामभावना दलित स्त्री के जीवन को तहस–नहस करती है, तो परिवार द्वारा बिंदो की अवहेलना उसे आत्महत्या का निर्णय लेने पर विवश करती है। '**झाड़**'(हसमुख वाघेला) कहानी में दलित दलिया जलती होली से नारियल चुराता है, परिणामस्वरुप उसकी गर्भवती पत्नी को सवर्ण नग्न करके प्रताड़ित करता है। सवर्णों की स्त्रियों की उपस्थिति में एक दलित स्त्री का घोर अपमान होता है। यहाँ दलिया की पत्नी कंकुडी के साथ अग्नि में कूदना कहानी का करुण अंत एवं दलितों की कमजोरी को व्यक्त करता है। '**कर्ज़**'(मोहनदास नैमिशराय) कहानी में रामप्यारी और उसकी बेटी का गाँव के महाजन द्वारा बलात्कार किया जाता है। रामप्यारी का बेटा 'कर्ज़' की परंपरा को तोड़ता है, महाजन बेटे के इस निडर एवं साहस को तोड़ने के लिए एवं उसे सबक सीखाने के लिए अपने कारिंदे के साथ मिलकर दलित स्त्रियों पर अत्याचार करता है। अशोक जैसा युवा दलित परंपराओं को बदलने का कठोर दंड पाता है, किन्तु वह दोषी को स्वयं दंड देकर शोषण की परंपरा को रोकने का प्रयास करता है। '**अपना गाँव**'(मोहनदास नैमिशराय) कहानी में कबूतरी को उसके पति की अनुपस्थिति में गाँव के ठाकुर की शारीरिक भूख न मिटाने पर उसे निर्वस्त्र करके गाँव में घुमाया जाता है। कबूतरी को

पुलिस से न्याय नहीं मिलता, किन्तु उसका पति पूरे गाँव को एक साथ करके न्याय पाने के लिए संघर्ष करता है। यहाँ सवर्णों की हैवानियत, दलित स्त्री की विवशता एवं उसके परिवार की परिस्थिति को चित्रित किया गया है।

आज भी आए दिन न्यूज चैनल एवं समाचार पत्र में यह देखा जाता है, कि दलित स्त्री को निर्वस्त्र करके गाँव में घूमाया गया, जिंदा जलाया गया, कोड़े बरसाए गए, बाल काटे गए, मुँह काला किया गया, बलात्कार किया गया, घर जलाए गए आदि। सवर्ण स्त्री की अपेक्षा आज गाँव में दलित स्त्री अपने आपको असुरक्षित महसूस करती हैं। जो स्त्री सवर्ण की वासना की पूर्ति करने से इंकार कर देती हैं, अधिकतर ऐसी दलित महिलाओं को सवर्ण किसी अन्य षडयंत्र में फँसाकर उन्हें अपमानित करके अपने कलेज को ठंड़क पहुँचाते हैं। ऐसी अमानवीय घटनाएँओं को रोकना अत्यंत आवश्यक है।

4.2.(1)4. छल पूर्वक किया गया जातीय शोषण

हिन्दी एवं गुजराती दलित कहानियों में ऐसी कई कहानियाँ हैं, जहाँ सवर्ण पुरुष दलित स्त्री की कमजोरी को जानकर उनसे छल पूर्वक संबंध बनाते हैं और उनका जातीय शोषण करते हैं। जीवनभर अभाव में रहने वाली दलित स्त्री कई बार छोटी–छोटी ज़रुरतों की वस्तुओं के लिए तरसती हैं। सवर्ण पुरुष दलित महिलाओं को चीज–वस्तु का लोभ देकर, उन्हें अपने वश में करने का प्रयास करते हैं। कुछ सवर्ण दलित युवतियों को विवाह करने का वादा करके उनका जातीय शोषण करते हैं। गाँव, शहर, स्कूल, कॉलेज, आदि में भी शिक्षित, अशिक्षित दलित महिलाओं का जातीय शोषण किया जाता है। सवर्ण पुरुष के वासनामय प्रेम के छल को जो दलित युवतियाँ पहचान नहीं पाती, वे जीवनभर अपने साथ हुए छल को भूल नहीं पाती। डॉ. रामसिंह यादव की '**एक दलित लड़की**' की लक्ष्मी का जातीय शोषण विश्वविद्यालय की विभागाध्यक्ष द्वारा किया जाता है। विवाह करने का वादा करके किया गया जातीय शोषण लक्ष्मी को सिवाय बदनामी, धोखे, अपमान के अतिरिक्त कुछ नहीं देता। लक्ष्मी का जातीय शोषण इसलिए होता है, क्योंकि एक दलित लड़की विभागाध्यक्ष के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगा पाएगी, यदि आरोप लगाती भी है, तो कोई उसका विश्वास नहीं करेगा। शिक्षित होते हुए भी लक्ष्मी सवर्ण पुरुष के छल को नहीं पहचान पाती। प्रवीण गढ़वी की '**जूती पहनने का मन**' की गगी अशिक्षित है। भोली–भाली गगी को बहला–फुसलाकर प्रहलाद पैर में पहनने की जूती दिलाने का वादा करता है और विवाह करके शहर ले जाने का वादा करता है। जीवन भर गंगी ने पैर में जूती नहीं पहनी थी, अभावों एवं अवहेलना से भरे जीवन में प्रहलाद का प्रेम उसे आकर्षित करता है। गगी के साथ प्रहलाद का संबंध मात्र शारीरिक आकर्षण था, जिसे गगी प्रेम समझती थी। गगी को अपनी भूल का एहसास बहुत देरी से होता है। प्रहलाद जैसे स्वार्थी, छली, वासनाखोर पुरुष किस प्रकार दलित युवती को अपने शिकंजे में फँसाते हैं, यह इस कहानी में देखा जा सकता है। सुरेन्द्र नायक की कहानी '**खटिया की जाति**' में होस्टेल के सफाई कर्मचारी की बेटी शिप्रा का जातीय शोषण होस्टेल के वार्डन का बेटा सोमेश करता है। शिप्रा का रात के अंधेरे में जातीय शोषण करने वाला सोमेश दिन में खटिया को धोकर शुद्व करता है। गर्भवती शिप्रा को सोमेश अस्वीकार करता है। विवाह करने के वादे पर शिप्रा अपना समर्पण सोमेश के समक्ष करती है, किन्तु उसके साथ छल किया गया था। दलित विशाल पर झूठा आरोप लगाया जाता है, किन्तु विशाल सोमेश की पोल खोल देता है। कहानी के अंत में सच्चाई तो सबके समक्ष आ जाती है, किन्तु शिप्रा को न्याय मिला या नहीं यह प्रश्न

पाठकों पर छोड़ दिया गया है। दोषी को कोई दंड देने की बात का वर्णन नहीं किया गया है। इसी प्रकार गुजराती की '**दाझवुंते**' (जलनवह) धरमाभाई श्रीमाली की कहानी में सवर्ण परबत प्रेम का नाटक करके दलित बबली का जातीय शोषण करता है। बबली से विवाह का वादा करके उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर करने की बात कहता है, किन्तु विवाह एक सवर्ण युवती से करता है। गर्भवती बबली परबत की बारात में सिर पर पेट्रोमेक्स लेकर चलती है। यहाँ पर बबली की मनोव्यथा को बहुत ही प्रतीकात्मक रुप में प्रस्तुत किया गया है। दलित युवती जिसे प्रेम समझती थी, वह तो मात्र वासना, धोखा, और उसका भ्रम था। वह ठगी गई थी और यह बात समझने में उसे बहुत देरी हो जाती है। रत्नकुमार सांभरिया की '**बात**' कहानी में दलित सुखी की आर्थिक कमजोरी और बच्चे की फीस के लिए उधार के रुपयों के बदले में सवर्ण धींग उसका जातीय शोषण करना चाहता है। सुरती का कठोर परिश्रम उसे बचा लेता है, किन्तु इस कहानी में धींगा जैसे वासना के भूखे व्यक्ति का छल–कपट, षडयंत्र, एवं दलित महिला की मजबूरी का फायदा उठाने की उसकी गंदी नियत को उजागर करने में कहानीकार को सफलता मिली है। सुरती के माध्यम से गाँव की अनपढ़, गरीब स्त्रियों के जातीय शोषण की समस्या को कहानी में चित्रित किया गया है। सुरती इस अन्याय के समक्ष विद्रोह करती है, क्योंकि वह अन्याय के समक्ष कमजोर नहीं बनना चाहती, न्याय के लिए लड़ना जानती थी। मधुकांत कल्पित की '**लाखु**' (लक्षण) कहानी में गाँव की अनपढ़, गरीब काली एक मजदूरिन युवती है, जिसके पैर के लक्षण की जूठी तारीफ करके सवर्ण रमतूजी उसका जातीय शोषण करना चाहता है। काली पहले उसके बदले व्यवहार को पहचान नहीं पाती क्योंकि यह वही रमतूजी था जो दुनिया के समक्ष पहले उसे अस्पृश्य कहता था, आज एकांत में उसका स्पर्श उसे ठीक नहीं लगता। यहाँ काली रमतूजी के छल को भाँप जाती है और जातीय शोषण से बच जाती है। वह हँसिया उठाकर रणचंडी के रुप में रमतूजी को ऐसा सबक सीखाती है, कि वह जान बचाकर भागने पर विवश हो जाता है। जोसेफ मेकवान की '**छगना को न समझ में आते सवाल**' सवर्ण कल्याणजी बापुजी आदिवासियों के मसीहा के रुप में लोगों के समक्ष जिस युवक को गोद लेते हैं बाद में उसी की पत्नी का जातीय शोषण करते हैं। गरीब छगना की पत्नी कुमली पर अत्याचार रक्षक के रुप में भक्षक करता है। सवर्णों के दोहरे व्यक्तित्व पर यहाँ प्रकाश डाला गया है और दलितों की गरीबी, दयनीयता, लाचारी को प्रकट किया गया है।

इस प्रकार छल पूर्वक किए गए जातीय शोषण की कहानियों में '**खटिया की जाति**' की शिप्रा '**जूती पहनने की इच्छा**' की गगी, '**दाझवुं ते**' की बबली '**एक दलित लड़की**' की लक्ष्मी सवर्ण पुरुष के जातीय शोषण का शिकार बनती हैं, किन्तु इस शोषण को देरी से पहचानती हैं और बाद में अपनी मूर्खता पर, झूठे प्रेम के वादे पर विश्वास करने की भूल, के लिए दुःखी होती हैं। जबकि '**बात**' की सुरती, '**लाखु**' की काली जैसी नायिका सवर्ण पुरुष के दिखावे के प्रेम के पीछे छीपे असली रुप को पहचान जाती हैं और अत्याचार, अन्याय के समक्ष विद्रोह करती हैं। अशिक्षित होते हुए भी वह सवर्ण पुरुष की चालाकी एवं उसके षड़यंत्र को समझ जाती हैं। जबकि '**एक दलित लड़की**' की लक्ष्मी जैसी शिक्षित युवती सवर्ण पुरुष के बहकावे में आकर उसके समक्ष समर्पण कर देती है। दलित नारी के लिए आज यह अत्यंत आवश्यक है कि वह शिक्षित बनें एवं अपने जीवन के निर्णय सोच–समझकर करें, क्योंकि यदि वे स्वयं सजग रहेंगी तो कोई उनके साथ छल नहीं कर पाएगा।

4.1.(3) आर्थिक समस्याएँ

दलित समाज का हजारों वर्षो का इतिहास और सत्य यह है कि यहाँ स्त्री पुरुष के ऊपर बोझ नहीं होती हैं। वह पुरुष के बराबर कमाती हैं। चाहे वह घास खोदे, दूसरों के घर–खेतों में मजदूरी करें शहरों में झाडू–पोंछा, बर्तन सफाई, घरेलू नौकर, कागज–प्लास्टिक चुनना–बेचना, बेलदारी, सड़क–निर्माण, अनाज व साग–सब्जी के बाजारों में मजदूरी करना, सड़कों पर घूम–घूमकर कंघी–बिंदी बेचना, कपड़ों के बदले बर्तन बदलना, सिलाई, मोची, मलमूत्र साफ करना जैसे कार्यों में औरतें लगी हैं। इन असंगठित क्षेत्रों में ज्यादा परिश्रम, कम मेहनताना न कोई प्रसूति अवकाश और न साप्ताहिक अवकाश न ही सामाजिक सुरक्षा है। कमाने में या परिश्रम करने में वह पुरुष से कहीं भी पीछे नहीं है। सवर्ण स्त्रियों को कमाने की ज़रुरत नहीं पड़ती थी, क्योंकि उनके पास जमीन–जायदाद आदि आय के इतने पर्याप्त स्रोत होते थे कि वे दलित महिलाओं को नौकरानी के रुप में काम करवाती थी। इस तरह देखें तो सवर्ण स्त्रियाँ आर्थिक रुप में अपने पुरुषों पर आश्रित थी। जबकि दलित स्त्रियों के पास घर बैठकर आरामपूर्वक जीवन बीताना असंभव कहा जा सकता है। जीवन जीने के लिए उन्हें पुरुष के साथ मिलकर कमाना पड़ता है। लेकिन दलित पुरुष इस बात को नहीं समझता कि समान रुप से कमाने वाली, घर की एवं बाहर की जिम्मेदारियों को निभाने वाली स्त्री को समानता चाहिए। उसे भी घर में सम्मान से जीने का अधिकार मिलना चाहिए।

आज हम भारतीय समाज व्यवस्था को देखें तो उसमें सबसे ज्यादा प्रताड़ित और उपेक्षित वर्ग आदि कोई है, तो वह भारत की दलित नारी। दलित नारी इस देश में सदियों से शिक्षा, ज्ञान, आर्थिक साधन आदि से वंचित रही है और आज भी वह इन सबसे वंचित ही है। घर एवं बाहर तनतोड़ मेहनत करने वाली दलित नारी अपने बच्चों एवं परिवार के लिए परिश्रम करती है, फिर भी वह अपने बच्चों को दो वक्त का भोजन, शरीर पर कपड़े, पैरों मे चप्पल, शिक्षा या बीमार बच्चे के लिए दवाईयों का इंतजाम करने में असमर्थ है। दलित स्त्री यदि गाँव में है, तो उसकी जमीन सवर्ण महाजन के पास गिरवी होगी, या महाजन के क़र्ज तले दबे परिवार के साथ वह भी आर्थिक तंगी को झेलेगी। यदि खेती नहीं है, तो वह सवर्णों के खेत में मजदूरी करती है। अफसोस तो यह है कि सुबह से शाम तक परिश्रम करने के बदले में कभी फटे–पुराने कपड़े तो कभी बासी खाना दे दिया जाता है। मजदूरी के रुप में कुछ रुपये नहीं मिलते। डॉ. कुसुम मेघवाल इस विषय में कहती हैं कि–

> **''परिवार का आर्थिक आधार बनने वाली दलित महिलाएँ उत्पादन के हर क्षेत्र में पुरुष का बराबर साथ देती हैं, किन्तु उनके सहयोग को नज़र–अंदाज कर दिया जाता है और केवल पुरुष को ही कमाऊ माना जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि अर्थोपार्जन में नारी की अतिरिक्त भूमिका रहती है। वह पुरुष से कहीं अधिक श्रम करती है। किन्तु उसके श्रम का सही मूल्यांकन नहीं होता और उसका शोषण होता रहता है। चाहे नौकरी पेशा महिलाएँ हों या खेतिहर मजदूर महिलाएँ, उन्हें शोषण की दोहरी चक्की में पिसना पड़ता है। अर्थोपार्जक कार्यों के साथ–साथ वह घर गृहस्थी के सभी कार्य स्वयं निपटाती है। इतना सब करने के बावजूद भी उसे मिलती है झिडकियां और तिरस्कार जिसे नारी अपनी नियति मान बैठी है। खेत–खलिहानों के अतिरिक्त पशुओं को चारा**

डालना, दूधदुहना, गोबर डालना, कंडे थापना, लीपा–पोती करना जैसे अनगिनत हाड़–तोड़ कार्य करते रहने के बीच कमजोर वर्ग की नारी को इतनी फुर्सत ही कहाँ मिलती है कि वह अपने विषय में सोचे अपने उत्थान के विषय में सोचे।''[3]

दलित महिलाओं को इतना परिश्रम करने के बावजूद आर्थिक कमजोरी के कारण कभी अपने बच्चे, तो कभी परिवार, आदि के कारण सवर्णों के अत्याचार को, अपमान को, बलात्कार को, सहना पड़ता है, तो कभी वह विवश होकर स्वयं अपना शरीर बेचने के लिए मजबूर हो जाती है। कभी पिता या पति उसे इसलिए बेच देते हैं क्योंकि वे अपने पेट की भूख से तंग आ जाते हैं। आर्थिक समस्याओं के कारण दलित पुरुष अपनी नई–नवेली पत्नी को छोड़कर गाँव से शहर चला आता है। गाँव में सवर्ण उसका जातीय शोषण करते हैं। सवर्ण भी नहीं चाहते कि दलितों की स्थिति आर्थिक तौर पर सुधरे, क्योंकि यदि वे आर्थिक रुप से मजबूत बन गए तो वे किसका शोषण करेंगे ? उनकी गुलामी कौन करेगा ? दलितों की आर्थिक कमजोरी का लाभ लेकर ही सवर्ण आरामदायक जीवन व्यतीत करते हैं और कम पारिश्रमिक देकर अधिक परिश्रम का काम करवाते हैं। गरीबों को आवश्यकता पड़ने पर कर्ज़ देते हैं और बदले में वर्षों तक उनका शोषण करते हैं, उनकी स्त्रियों पर अपना अधिकार समझने लगते हैं, दलित महिलाओं से मनमाने कार्य करवाते हैं, कई बार दलित महिलाएँ इसी कारण सवर्णों के जातीय शोषण का शिकार बनती हैं।

इस प्रकार दलित महिलाएँ अपने जीवन की शुरुआत से अंत तक आर्थिक समस्याओं का सामना करती हैं। आर्थिक समस्याओं के कारण वे कभी मजदूरिन, सफाई कर्मचारी बनती हैं, तो कभी देवदासी, वेश्या, रखैल बनकर स्वयं को मिटाकर अपनों का जीवन सँवारती हैं। हिन्दी एवं गुजराती में आर्थिक समस्याओं से जुड़ी कई कहानियाँ मिलती हैं, जिसमें दलित स्त्रियों के जीवन में आर्थिक अभावों को चित्रित किया गया है।

मोहनदास नैमिशराय की '**आधा सेर घी**' की सुमति और उसका पति बलवंता अपने एकमात्र बेटे को पढ़ाने के लिए अपनी ज़मीन, घर सब कुछ बेचने के लिए विवश हो जाता है। विधवा होने पर सुमति अपने बेटे की घी से चिपड़ी रोटी जैसे साधारण सी इच्छा की पूर्ति के लिए बहुत परिश्रम करती है और 'आधा सेर घी' इकट्ठा करके भी बेटे को नहीं खिला पाती, क्योंकि बनिया उसका घी छीनकर ले जाता है। यहाँ पर 'आधा सेर घी' दलित सुमति और उसके पुत्र के लिए छप्पन भोग से कम नहीं है, किन्तु दलितों को यह कहाँ नसीब हो पाता है। बनिये के हाथों घी छीनना, दलितों की खुशियों को छीनने जैसा है। कहानीकार ने यहाँ घी के माध्यम से दलितों की छोटी–छोटी अधूरी इच्छाओं, उनके अभावों एवं हर युग में दलित की दयनीय स्थिति इसी प्रकार की रही है, इस समस्या को केन्द्र में रखा है।

'**रोटलो नजराई गयो**' की दलित हेता भी सुमति की तरह अपने पुत्र को उसका मनचाहा भोजन बनाकर नहीं खिला पाती। हाड़तोड़ परिश्रम करके जैसे–तैसे बाज़रे की चार रोटी ही बना पाती है। स्वयं पेट पर पट्टा बांधकर पुत्र को शिक्षा दिलाने के लिए संघर्ष करने वाली हेता नहीं चाहती कि उसके पुत्र को ऐसी मजदूरी करनी पड़े, जिसमें दो वक्त का भोजन भी न मिलता हो। कहानी में दैनिक मजदूरी करने वाले हेता के परिवार को न तो पेट भर भोजन मिल पाता है, न ही बच्चों को शिक्षा दिला पाते हैं,

बीमार हो तो मजदूर परिवार की आर्थिक समस्या अधिक बढ़ जाती है। हेता का पुत्र रघु माता–पिता की इन आर्थिक समस्याओं को नहीं समझ पाता यहाँ रघु की बालसुलभ इच्छाओं एवं उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण बखूबी किया गया है। इस प्रकार हेता और सुमति दोनों नारी पात्र अपने बच्चों की सामान्य सी इच्छाओं की पूर्ति आर्थिक समस्याओं के कारण नहीं कर पाती।

अमर स्नेह की '**सनातनी**' कहानी की चन्द्रो एक सफाई कर्मचारी है, किन्तु पुत्र को अच्छी शिक्षा देना चाहती है। गाँव में दलितों को पाठशाला में पढ़ने की अनुमति नहीं है। आर्थिक संकटों को झेलने वाली चन्द्रो अपने पुत्र अनुआ को भले ही पाठशाला न भेज पाई हो, किन्तु स्वयं अच्छे संस्कार देकर एक आदर्श माँ का कर्त्तव्य पूर्ण करती है। यहाँ चन्द्रो की जाति, उसकी गरीबी उसके और उसके बच्चे के दुःख का कारण बनती है, किन्तु उसके विचारों से गुरुजी भी चकित रह जाते हैं। चन्द्रो का पुत्र की शिक्षा के लिए दलित जाति का होने के कारण बार–बार अपमानित होने पर भी रास्ते से भटकता नहीं है, यहीं उसकी चरित्र की विशेषता है।

बी. कशरशिवम् की '**भोरींग**' कहानी में एक दलित स्त्री अपने पति की चावल खाने की तीव्र इच्छा की पूर्ति करने के लिए संघर्षों का सामना करती है। दूसरी ओर गरीब बच्चा पूंजा दो दिनों से भूखा है, किन्तु चोरी करके भोजन नहीं खाता। यहाँ गरीबी के कारण चावल जैसी मामूली वस्तु को खाने के लिए जला की लालसा एवं इच्छापूर्ति के बिना ही मृत्यु हो जाना भूख की चरम सीमा है, दलितों की आर्थिक करुण स्थिति का बयान किया गया है। गरीबी के कारण कई दलितों को सही इलाज और दवाईयाँ नहीं मिल पातीं, जिसकी वजह से उनकी मृत्यु हो जाती है।

रत्नकुमार सांभरिया की '**डंक**' कहानी का दलित पात्र खेरा ब्राह्मण के धोखे की मार से अपना सारा धन गँवा देता है। उसकी पत्नी माँगी गरीबी के कारण पति का इलाज नहीं करवा पाती। कहानी में सवर्णों की अहसान फरामोशी और दलितों पर उनका अन्याय देखा जा सकता है। माँगी के पति की दवाईयों के लिए अपने ही उधार दिये रुपयों के माँगने पर ब्राह्मण द्वारा अपमानित होना उसकी करुण स्थिति को चित्रित करता है। यहाँ कहानी में दलितों का आर्थिक शोषण सवर्ण द्वारा होता देखा जा सकता है।

इसी तरह की मोहनदास नैमिशराय की '**मजूरी**' कहानी में सुमति को उसकी मजदूरी सवर्ण महेश नहीं देता। विधवा सुमति अपने पुत्र के इलाज के लिए अपने किए गए परिश्रम की मजदूरी पाने के लिए बार–बार अपमानित होती है और महेश के पालतू कुत्ते का शिकार बना दी जाती है। यहाँ सवर्ण महेश की कठोरता एवं सुमति की दयनीयता दिखाई गई है। सुमति और उसके पुत्र को न तो पेट भर भोजन मिल पाता है न ही दवाईयाँ। परिश्रम करने पर भी दलितों की स्थिति करुण ही है।

कुसुम मेघवाल की '**मंगली**' कहानी की मंगली भी एक मजदूरिन है। अपने बीमार पति के लिए दवाईयाँ खरीदने के लिए रुपये उसके पास कम हैं। अधिक परिश्रम करने पर भी मजदूरी कम पाने के कारण दलितों के जीवन में ऐसी समस्याएँ जीवनभर आती ही रहती हैं। मंगली दवाईयों के अभाव में पति को खो देती है, उसकी गरीबी को उसकी कमजोरी समझकर ठेकेदार उसका जातीय शोषण करना चाहता है। इस प्रकार

की परिस्थिति पर गुजराती में कहानियाँ नहीं मिलती हैं जहाँ पर नायिका को आर्थिक समस्याओं के कारण पति, बच्चे या स्वयं को संसार छोड़ना पड़ता है।

दलितों को कर्ज़ में रुपये देकर उनका आर्थिक शोषण सवर्णों द्वारा किया जाता रहा है, साथ ही उनकी स्त्रियों का जातीय शोषण करके उनकी गरीबी एवं लाचारी का दुरुपयोग भी सवर्णों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार दलितों की आर्थिक विवशता को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानियों में–

रत्नकुमार सांभरिया की '**बात**' कहानी है। सुरती विधवा स्त्री है। बेटे की पढ़ाई के लिए तीन सौ रुपये धींग नामक सवर्ण से उधार लेती है। धींग इसके बदले में उसका जातीय शोषण करना चाहता है, किन्तु सुरती अधिक परिश्रम करके अपनी लाज बचाना चाहती है। यहाँ सुरती का अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष, आर्थिक समस्याएँ, सवर्ण का अत्याचार दलित महिला का अकेले संघर्ष सुरती को कमजोर नहीं बना पाता।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी '**अपना गाँव**' में कबूतरी का पति गाँव के ठाकुर से उधार रुपये लेकर शहर नौकरी करने जाता है। ठाकुर उसके बदले में कबूतरी का जातीय शोषण करना चाहता है। कबूतरी के इन्कार करने पर उसे नग्न करके गाँव में घुमाया जाता है। दलितों की आर्थिक कमजोरी सवर्णों की ताकत बन जाती है। सवर्ण इसी कमजोरी का भरपूर फायदा, उठकार अपनी मनमानी करते हैं।

मोहनदास नैमिशराय की '**कर्ज़**' कहानी में भी यही समस्या देखी जा सकती है। रामप्यारी का बेटा अशोक अपने पिता के तेरहवीं में (मृत्यु के बाद की जाने वाली विधि) कर्ज़ लेकर कोई क्रिया कर्म नहीं करना चाहता। महाजन उसे कर्ज़ के जाल में फँसाना चाहता हैं। अशोक के विद्रोह की सज़ा उसकी माँ–बहन का बलात्कार एवं हत्या करके ली जाती है। यहाँ दलितों द्वारा आर्थिक रुप से सवर्णों के समक्ष आधारित बनाए रखने के लिए दलितों को विवश करने की समस्या देखी जा सकती है।

बी. केशरशिवम् की '**डाईंग डेक्लेरेशन**' कहानी में दलित मणी का पति विवाह के समय सवर्ण से कर्ज़ लेता है। बदले में दिन–रात बेगार करके भी कर्ज़ उतार नहीं पाता। उसका आर्थिक शोषण किया जाता है और गाँव के परंपरागत नियमों के अनुसार उसकी पत्नी का जातीय, शोषण भी किया जाता है। यहाँ '**कर्ज़**', '**अपना गाँव**', '**बात**', और '**डाईंग डेक्लेरेशन**' सभी कहानियों में आर्थिक समस्या और आर्थिक शोषण के साथ जातीय शोषण की समस्या जुड़ी हुई देखी जा सकती है। दलित महिलाओं की गरीबी सवर्ण पुरुषों के लिए सुख का संकेत बन जाती है। गुजराती की अपेक्षा हिन्दी में इस प्रकार की कहानियाँ अधिक मिलती हैं।

आर्थिक समस्याओं के कारण आज दलित गाँव को छोड़कर शहर की ओर रोज़गार करने के लिए पलायन कर रहे हैं। गरीबी उनका पीछा वहाँ भी नहीं छोड़ती। जो शोषण गाँव में होता था वही शहर में भी होता है। महेश कुमार केशरी '**राज**' की '**कैद**' कहानी का विष्णु पासवन गाँव की गरीबी से तंग आकर रोजगार की तलाश में एक दलाल के हाथों फँस जाता है। वह शहर में बंधुआ मजदूर बन जाता है। वह कुँए से निकला है, किन्तु खाई में चला जाता है। बी. केशरशिवम् की '**पोक**' कहानी का पात्र मथुर अपने पारंपरिक सफाई कार्य को छोड़कर गाँव से शहर आता है। गाँव में काली मजदूरी करके भी उसे अपमानित होना पड़ता था, जबकि शहर में कंधे पर थैला लटकाकर कचरे में से प्लास्टिक, पोलीथीन बेग आदि बीनकर वह अपना गुजारा कम

रुपयों में चलाना चाहता है। '**पोक**' और '**कैद**' कहानी के नायक गाँव से शहर की ओर पलायन रोज़गार के लिए करते हैं जिसमें '**कैद**' का विष्णु और '**पोक**' का मथुर दोनों शहर में स्वाभिमान से जीवन जीने के लिए आते हैं, किन्तु दोनों ही शहर में षड़यंत्र एवं राजनीति का शिकार बनते हैं।

आर्थिक समस्याओं के कारण दलित स्त्रियों को सवर्णों के हाथों या तो बेच दिया जाता है, या वे स्वयं अपना शरीर बेचने पर विवश हो जाती हैं। हिन्दी एवं गुजराती में इस समस्या को केन्द्र में रखकर कई कहानियाँ लिखी गई हैं। अखिलेश कुमार की '**कर्फ्यू**' कहानी की फुलिया कर्फ्यू के समय भूख से बिलखते अपने छोटे–भाई बहनों के लिए भोजन का इंतजाम करने के लिए सवर्ण अधैड़ रसिक के समक्ष समर्पण करती है। तो शैलष कुमार क्रिस्टी की '**कुलदीपक**' कहानी की सवली अपने बीमार बच्चे को बचाने के लिए वेश्या व्यवसाय में जुड़ने के लिए विवश हो जाती है। अपने कुलदीपक को बचाने के लिए सवली अपनी देह का व्यापार करती है, किन्तु वह दीपक बुझ जाता है। कहानी में शहर में दलितों की बस्ती में होने वाले देह व्यापार का चित्रण है। साथ ही इस व्यापार में उसके पति की संमति का भी जिक्र है। प्रेम कपाड़िया की '**हरिजन**' कहानी की परबतिया देवदासी प्रथा से जुड़कर अपना शरीर मंदिर के पुजारियों के समक्ष समर्पित करती है। वसंतलाल परमार की '**एक छालियु दालनी खातर**' (एक कटोरी दाल के लिए) कहानी की नायिका अपने एकमात्र पुत्र को एक कटोरी दाल खिलाने के लिए सवर्ण बावरची के समक्ष समर्पण कर देती है। यहाँ कंकुडी का पात्र कमजोर बन जाता है,। क्योंकि पुत्र के लिए ऐसा बलिदान किसी भी दृष्टि से उचित नहीं दिखाई देता।

डॉ. सी. बी. भारती की '**भूख**' कहानी में आदिवासी समाज के फिरतो के पेट की भूख के लिए विवाहित पुत्री एवं उसके दो बच्चों को बेचना दलितों की विकट आर्थिक समस्या को चित्रित करती है। आदिवासी परिवार की इस समस्या का भरपूर लाभ उठानेवाले सवर्ण किस प्रकार उनका शोषण करते हैं, यह भी दिखाया गया है। इस प्रकार की कहानी हिन्दी एवं गुजराती में मेरे विचार से नहीं लिखी गई हैं। राघवजी माधड़ की '**मेली मथरावटी**' कहानी की गंगा के परिवार की गरीबी का फायदा उठाकर मुखिया उसका जातीय शोषण करता है। यहाँ गरीबी माता–पिता बेटी के सम्मान एवं शोषण के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाते, क्योंकि मुखिया के समक्ष विद्रोह करने का मतलब था, भूखों मरना। यहाँ गंगा को बेचा तो नहीं जाता, किन्तु उसे बचाया भी नहीं जाता।

बी. केशरशिवम् की '**मेना**' कहानी की मेना विधवा स्त्री है। वह परिवार का भरण पोषण करने के लिए सब्जी बेचने का कार्य करती है, किन्तु व्यापारी उसका आर्थिक शोषण करता है। बी. केशरशिवम् की '**जोगन**' कहानी की विधवा नायिका वाली अपने बूढ़े ससुर के साथ शहर में ठेला खींचने की मजदूरी करती है, जिस पर सवर्ण व्यापारी कूदृष्टि रखते हैं। मणिलाल न. पटेल की '**हडसेलो**' कहानी में दलित अरुणा के परिवार की आर्थिक समस्या का लाभ सवर्ण अशोक उठाता है। नौकरी दिलवाने के बहाने वह अरुणा का जातीय शोषण करता है। बी. केशरशिवम् की '**कमली**' कहानी की कमली शहर में मजदूरी का कार्य करती है, जहाँ बिजली का करंट लगने से उसकी मृत्यु हो जाती है। आदिवासी कमली गरीबी के कारण गैरजिम्मेदार कोन्ट्रेक्टर की गलती का भोग बनती है। इस कहानी में आदिवासियों का मजदूरी के लिए शहर की ओर पलायन एवं शहर में उनकी स्थिति का चित्रण करती है।

बी. केशरशिवम् की '**रामली**' में भी सफाई कर्मचारी रामली विधवा स्त्री है। गाँव में चारों ओर प्लेग की बीमारी फैली है, फिर भी गरीबी, भुखमरी के कारण अपने नवजात शिशु के दूध के इंतजाम की चिंता उसे है, इसलिए अपनी चिंता किए बिना अपने कर्त्तव्य को प्रामाणिकता से निभाती है और अंत में प्लेग से उसकी मृत्यु हो जाती है। '**रामली**' और '**कमली**' दोनों ही गरीबी एवं आर्थिक समस्याओं के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार हिन्दी एवं गुजराती की दलित कहानियों में, दलित नारी के जीवन की सबसे बड़ी समस्या '**आर्थिक समस्या**' को कई कहानियों में चित्रित किया गया है। आर्थिक समस्या से जूझती दलित नारी एवं उसका परिवार किस प्रकार की मानसिक, शारीरिक यातनाओं का भोग बनता है, उसे भी देखा जा सकता है।

4.1. (4) जातिगत हीन भावना की समस्या

स्वतंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से अनुसूचित जातियों, अनुसुचित जनजातियों, अति पिछड़ी जातियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों, महिलाओं की रक्षार्थ तथा उनके विकास के प्रवधान किए गए हैं। इस हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं का केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा संचालन किया गया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि एक कल्याणकारी राष्ट्र के रुप में समाज के सभी वर्गों, विशेषकर पिछड़े और निर्धन लोगों का चहुंमुखी विकास करना राष्ट्र का उत्तरदायित्व है। हमारा संविधान सबको न्याय, समानता तथा समान अवसरों का अधिकार प्रदान कराता है। भारत के संविधान में दलित जातियों के स्त्री–पुरुषों के शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से उत्थान करने और उनकी सामाजिक योग्यताओं को दूर करने के उद्देश्य से उनको आवश्यक सुरक्षा तथा संरक्षण प्रदान करने के उपाय किए गए हैं। इसके लिए या तो कुछ विशेष व्यवस्थाएँ की गई है या फिर नागरिक के रुप में उनके सामान्य अधिकारों पर जोर दिया गया है। मैट्रिक पूर्व मैट्रिक बाद की छात्रवृत्तियां, उच्च शिक्षा के विदेशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति, डॉ. आम्बेडकर फांउडेशन, अनुसूचित जनजाति विकास, जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण, कम साक्षरता वाले क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति की लड़कियों के लिए शिक्षा, विकास परिसंघ, ग्रामीण अनाज बैंकों की योजना बनाकर चहुंमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है।

सरकार से मिलने वाली सहायता एवं स्वयं के परिश्रम के बल पर अल्पसंख्या में दलितों का विकास हुआ है। ये शिक्षित दलित आज प्राईवेट एवं सरकारी नौकरी करने लगे हैं। बैंक, सरकारी कार्यालय, रीसर्च सेन्टर, स्कूल, कॉलेज, व्यापार आदि में अपनी आर्थिक एवं समाजिक स्थिति को मजबूत बनाने वाले शिक्षित दलित अपने ही समाज के लिए आदर्श बन सकते हैं। हमारे दलित समुदाय की यह विडम्बना है कि वह जिसकी बदौलत इतना आगे पढ़ सका है, उसी को विस्मृत करता जा रहा है। किन्तु इनमें से आज अधिकतर दलित उच्च पदों पर पहुँचने के बाद या अधिक धन आ जाने पर अपनी ही जाति के लोगों से या सगे–संबंधियों, मित्रों से संबंध तोड़ लेते हैं। इसका कारण यह है, कि पदाधिकारी बनने पर वे नहीं चाहते कि गरीब, अशिक्षित, पिछड़े लोगों का आना–जाना उनके घर पर रहे और उन्हें देखकर उनकी सोसायटी के सवर्णों को यह पता चले कि वे दलित हैं। समाज में सवर्णों से मिलने वाले मान–सम्मान, प्रतिष्ठा में वे किसी प्रकार की कमी नहीं होने देना चाहते। डॉ. एस.एल परिहार के हृदय

को कितना आघात लगा होगा, उसकी कल्पना हम उन के द्वारा दिए गए इस विचार से समझ सकते है। उन्होंने लिखा–

> **''आज स्वयं दलित समाज द्वारा अम्बेडकर के आदर्शों को अपनाना तो दूर उन्हें याद तक नहीं किया जाता है। दलित समाज के लोग आज सरकारी नौकरियां में उच्च पदों पर बाबा साहब की बदौलत ही बैठे हैं। लेकिन इस समाज से ही नहीं बल्कि अपने परिवार से भी कट गये हैं। वे अपने ड्राइंग रुम में श्री देवी या गोविंदा की तस्वीरें तो दिल खोलकर टांगते हैं लेकिन अम्बेडकर की तस्वीर सिर्फ इसलिए नहीं टांगते कि कहीं कोई सवर्ण मित्र उनके घर आने पर यह न समझ बैठे कि वे अनुसूचित जाति के हैं। ऐसे लोग अकसर अपनी जातियाँ छुपाकर संभ्रांत कोलोनियों मे रहते हैं। इस प्रकार दलित समाज में ही एक ब्राह्मण वर्ग पैदा हो गया है, जो शेष दलितों को अछूत मानता है। यह वर्ग डॉ. अम्बेडकर के एहसान को भूल गया है।''**[4]

ऐसे दलित कई बार अपनी जाति छिपाने के लिए अपनी सरनेम बदल देते हैं, तो कभी झूठ बोलकर अपनी जाति सवर्ण बता देते हैं। कुछ तो अपने दलित सहकर्मचारियों से बात तक करने से कतराते हैं, कुछ अपने बच्चों से भी अपनी जाति छिपाते हैं। नई पीढ़ी के नौजवान दलित भी अपनी जाति को हीन समझकर अपने भाग्य को कोसते हैं, एवं अपने माता–पिता को दोष देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो जाति छिपाकर अपनी पुत्री का विवाह सवर्ण युवक से करते हैं। इस विषय पर हिन्दी एवं गुजराती में कहानियाँ लिखी गई हैं, गुजराती में बहुत कम कहानियाँ मिलती हैं, किन्तु हिन्दी में ऐसी कई कहानियाँ हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की '**अंधड़**' कहानी का दलित मि. लाल जीवन में कई संघर्षों का सामना करते हुए जिस दूर के संबंधी की सहायता करने पर वे रिसर्च सेन्टर में वैज्ञानिक बनता है, उसी संबंधी से वह संबंध तोड़ लेता है। मि. लाल अपनी जाति इसलिए छिपाता है, क्योंकि वह उच्च सोसायटी के लोगों की दृष्टि में हीन न समझा जाए। अपने बच्चों से भी वह अपनी जाति एवं सगे–संबंधियों को दूर रखता है। जो मि. लाल दलित युवा पीढ़ी के लिए एक आदर्श बन सकता था, वह उस व्यक्ति की मदद कर सकता था, जिसने उसका जीवन सँवारा, किन्तु जातिगत हीन भावना की समस्या उस पर इस कदर हावि हो जाती है, कि वह वर्षों तक अपनी हीन भावना को नहीं दूर कर पाता। अपनी पत्नी सविता के मायके से भी संबंध नहीं रखता। इस विषय में शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि–

> **''अंधड कहानी दलित जाति में पैदा होने से उपजी हीनता ग्रंथि के कारण जाति छिपाकर समाज में सम्भावित जीवन जीने का छद्म पालने वाले उन लोगों की मानसिकता पर गहरा कटाक्ष करती है जो इस छद्म को वास्तविक मानकर पुराने जीवन की याद तक को गुनाह समझते हैं। सुक्कड़लाल के एस. लाल बने श्री लाल ऐसे लोगों के ही प्रतिनिधि हैं देश के जाने माने वैज्ञानिक बनकर अपने छद्म–उच्च मध्यमवर्गीय जीवन की रंगीनियों में वे इतना रम गए हैं कि उस जिन्दगी की याद से भी उन्हें रोमांच होता है, जो कभी उनका हिस्सा थी।''**[5]

बी. केशरशिवम् की '**आँख खुल गई**' कहानी का नायक पढ़–लिखकर उच्च पदाधिकारी बन जाता है, किन्तु जिस बहन ने गरीबी में अपने गहने बेचकर उसकी परीक्षा की फीस भरी थी उसे ही भूल जाता है। वास्तव में वह हाई सोसायटी में जाकर अपनी जाति छिपाकर रहता है, इसलिए गरीब बहन–बहनोई या रिश्तेदारों से कन्नी काट लेता है। ऐसा करके वह अपनी जातिगत हीन भावना से बचना चाहता है, किन्तु अपने कर्त्तव्य को भूलकर '**अंधड़**' के मि. लाल की तरह सवर्णों के मान–सम्मान को पाना चाहता है। दोनों की आँखें तो खुलती हैं, किन्तु वर्षों का समय बीतने के पश्चात।

मोहनदास नैमिशराय की '**सिमटा हुआ आदमी**' कहानी का दलित पात्र सरकारी उच्च पदाधिकारी बनकर भोला जैसे दलित चपरासी से दूरी रखता है और एस. सी एसोसिएशन की मिटिंग में उपस्थिति नहीं होता। वह नहीं चाहता कि उसके प्रमोशन में कोई रुकावट या उसकी छबि बिगड़े जातिगत हीन भावना उसे अपनी ही जाति के सहकर्मचारियों से दूर रखती है, यहाँ दलित उच्च पदाधिकारी के सिमटे हुए व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है। सूरजपाल चौहान की '**घाटे का सौदा**' कहानी का डोरीलाल अपने जाति में जन्म लेकर दलित समाज से घृणा करने वाला डोरीलाल से डी. लाला बन जाता है और बाबा साहेब का फोटो घर में रखने से अपनी इज्जत कम समझता है। इस विषय में नारायण राठोड़ का विचार है कि–

> **''दलित समाज के कुछ पढ़े लिखे, अनपढ़ से भी बेकार हैं। उसकी भलाई के बारे में वह तनिक भी नहीं सोचता। ऐसे लोगों की चमड़ी पर चर्बी चढ़ जाती है। वे अपने भूखे माता–पिता की भूख नहीं मिटाते। ऐसे लोग दलित समाज के लिए एक कलंक है। हमारे देश में ऐसे लोग हर कार्यालय में कहीं–न–कहीं नज़र आते हैं।''**[6]

इस कहानी के विषय में जय प्रकाश कर्दम ने लिखा है कि–

> **'''घाटे का सौदा' दलितों की जातीय हीनता बोध की कहानी है।''**[7]

कहानी का पात्र डोरीलाल स्वयं उच्च पदाधिकारी है, किन्तु बेटी का विवाह जाति छिपाकर सवर्ण परिवार के युवक से करता है। बेटी रजनी भी लेक्चरर होकर न चाहते हुए भी पिता की जिद्द के समक्ष हार जाती है। डोरीलाल की जाति सच्चाई जब बाहर आती है, तो बेटी का विवाह संबंध खतरे में पड़ जाता है।

रजत रानी मीनू की '**हम कौन हैं ?**' कहानी नायिका उमा अपनी बेटी का पब्लिक स्कूल में एडमिशन करवाती है, किन्तु सरनेम नहीं लिखती। अज्जू की टीचर रोज उसकी सरनेम पूछती है। उमा अपनी जाति छिपाने के लिए सरनेम नहीं बताती, एक शिक्षित दलित स्त्री नहीं चाहती कि उसकी बेटी को स्कूल में हीन दृष्टि से देखा जाए या सवर्ण बच्चों के द्वारा उसके प्रति अलग व्यवहार किया जाए। उमा की उलझन एवं अज्जू की परेशानी जातिगत हीन भावना की समस्या को लेकर है। गुजराती कहानी में जोसेफ मेकवान की '**रोटलो नज़राइ गयो**' का पात्र रघु अपने स्कूल में अपनी ही कक्षा के सहपाठियों द्वारा अवहेलना, भेदभाव, हीन दृष्टि से देखा जाता है, परिणामस्वरुप रघु के कोमल बालसुलभ हृदय पर हीनता के भाव के कारण कई प्रश्न उठते हैं। उसमें और अन्य बच्चों में क्या अंतर हैं ? वह अच्छे कपड़े, अच्छा भोजन, अच्छा स्कूल वेग आदि

क्यों नहीं पा सकता ? सवर्ण सहपाठी उसके साथ अपना नास्ता क्यों नहीं मिल बाँटकर खाते ? उसके साथ कोई क्यों नहीं खेलता ? इस तरह रघु छोटी सी आयु में हीन भावना का शिकार बनता हैं। जिस बालक को बचपन में ही दलित जाति का होने के कारण इतना भेदभाव सहना पड़े, उसे जीवन भर कड़वी यादों के रुप में हीनता का बोध करायेगी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कावेरी की' '**रिश्वत**' कहानी की नायिका स्वयं शिक्षित नारी है। अपने बेटों को अच्छी शिक्षा देती है, किन्तु नौकरी न मिलने पर बेटा अपने माता–पिता को दोष देता है। शिक्षित युवक नौकरी में मिलने वाली असफलता के लिए अपनी जाति को दोष देता है। दलित युवकों को कैम्पस सिलेक्शन में न लिए जाने पर होने वाली जातिगत हीन भावना को कहानी में देखा जा सकता है। साथ ही वर्तमान समय में माता–पिता अपने शिक्षित बच्चों के रोज़गार के लिए कितने चिंतित हैं, उसका भी चित्रण किया गया है।

'**उपमहाद्वीप**' अजय नावरिया की कहानी का पात्र सिद्धार्थ स्वयं एक सरकारी संस्थान में मैनेजर है। पत्नी कॉलेज में लेक्चरर है। सिद्धार्थ को अधिकारी होने पर भी अपने से छोटे कर्मचारियों द्वारा मान–सम्मान नहीं मिलता। सिद्धार्थ अपनी जाति के छोटे कर्मचारियों से दूरी रखना चाहता है, किन्तु वे बार–बार सिद्धार्थ के पास आकर अपने साथ होने वाले भेद–भाव, एवं अन्याय की शिकायत किया करते हैं। सिद्धार्थ ने इस भेद–भाव को स्वयं गाँव में झेला था, किन्तु शहर में वह सवर्णों से दुश्मनी नहीं करना चाहता था। यहाँ सिद्धार्थ अपने कड़वे अनुभवों की वजह से अपनों से कन्नी काटना चाहता है। जातिगत हीन भावना की समस्या उसे ऐसा करने के लिए विवश करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'भय'** कहानी में दलितों के मन की हीनता–ग्रंथि के चलते छिपाई जाति की पहचान के उघर जाने से उपजा भय है। अपनी दलित होने की पहचान को छिपाए हुए दिनेश सवर्णों की कालोनी में रामप्रसाद तिवारी जैसे ब्राह्मण से पारिवारिक संबंध बनाए हुए वर्षों से रह रहा है। रुढ़ि तथा संस्कारों में ग्रस्त अपनी माँ के इस आग्रह को वह नहीं टाल पाता कि कुल की देवी, माई मदारन की पूजा के लिए वह सूअर के बच्चे की बलि चढ़ा कर उसका गोश्त लाए, ताकि पूजा में उसे प्रसाद के रुप में उपयोग किया जा सके। शिवकुमार मिश्र के अनुसार–

> **''उसका एक आयाम रामप्रसाद के जरिए उसकी असलियत उजागर हो जाने की आशंका से जुड़ा है–जाति की सच्चाई उधर जाने से उपजा भय है, यह किन्तु दूसरे आयाम पर यह भय अनचाहे अपने द्वारा की गई हिंसा से उपजा भय भी है। यह हिंसा उसने माँ के दबाव के चलते की जो उसे गहरे झकझोर देती है उसका संवेदनशील मन बच्चे की चीख को भुला नहीं पाता और ना ही उसकी माँ मादा सुअर की उस मुद्रा को जिसे उसने उससे उसके बच्चे को छीनते समय देखा था। भय के ये दोनों संदर्भ एक दूसरे से गुथकर कहानी में आए हैं और संश्लिष्ट तो बनाते ही हैं, जाति के छिपाने पर उपजे हीनभाव के प्रति लेखक के कटाक्ष तथा अनपेक्षित हिंसा के प्रति उसकी मानवीय संवेदना दोनों को एक साथ**

चित्रात्मक अभिव्यक्ति देने की उसकी रचनात्मक क्षमता को भी उजागर करते हैं।''[8]

राज वाल्मीकि की '**इस समय में**' कहानी का नायक अपनी जाति छिपाकर शहर में अपने पत्नी, पुत्र एवं पुत्री के साथ रहता है। कथानायक नहीं चाहता था, कि उसके बच्चों को जातिगत हीन भावना को झेलना पड़े, इसलिए वह पुत्री मिली को भी नहीं बताता कि वे दलित वाल्मीकि जाति के हैं, जिन्हें सवर्ण हीन समझते हैं। मिली की शिक्षिका जब उसे उसकी जाति की सच्चाई बताती है, उसके बाल मानस पर इसकी प्रतिक्रिया का बखूबी चित्रण लेखक ने किया है। साथ ही युवा पीढ़ी द्वारा इन्टरकास्ट मैरिज को इस समस्या का समाधान बताया गया है।

मेरी दृष्टि में शिक्षित दलित अपनी जाति को छिपाकर, जाति के विषय में झूठ बोलकर या अपनी जाति के सगे–संबंधी, रिश्तेदारों, मित्रों आदि से संबंध तोड़कर यदि प्रगति करना चाहते हैं, तो वे बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। ऐसे शिक्षित दलित तो नई पीढ़ी के लिए आदर्श बनकर उनका मार्गदर्शन करके अपनी जाति के लोगों का हौसला बढ़ा सकते हैं, उन्हें नई दिशा दे सकते है, संघर्ष के लिए शक्ति प्रदान कर सकते हैं। यदि वे स्वयं छिपकर, सिमटकर रहेंगे तो दलितों की जातिगत हीन भावना की समस्या कभी खत्म नहीं होगी, बल्कि बढ़ेगी। आज ज़रुरत है, समस्या का सामना करने की न ही उससे मुँह छिपाने की। गौर करने की बात है कि अधिकतर कहानियों में जातिगत हीनभावना कहानी के पुरुष पात्रों में दिखाई गई है, वे ही अपनी जाति छिपाकर सवर्णों के बीच सवर्ण बनकर रहने में अपनी शान समझते हैं, जबकि नारी पात्र पुरुष पात्रों के विचारों का खण्डन करती हुई दिखाई गई हैं जैसे '**अंधड़**' की 'सविता' '**भय**' की 'माँ' का पात्र, '**घाटे का सौदा**' की 'रजनी'।

गुजराती की दलित कहानियों में जातिगत हीनता का बोध हिन्दी कहानियों के प्रमाण में कम देखने को मिलता है। हिन्दी के कहानीकारों ने वर्तमान समय में, शहरी परिवेश में भी जातिगत हीनता की दलितों की बढ़ती हुई समस्या को अपनी लेखनी द्वारा चित्रित करने की पहल कर दी है।

4.2 परिवेश

हिन्दी की दलित कहानियाँ

आधुनिक कहानी एवं उपन्यास के स्वरुप के निर्माण में परिवेश तत्त्व ने महत्त्वपूर्ण भाग निभाया है। कथासाहित्य को यथार्थ बनाने के लिए परिवेश की भूमिका अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। परिवेश एक ऐसा केन्द्र है, जहाँ रचनाकार ने जिस स्थल–देशकाल को संपूर्णरुप से जाना–पहचाना एवं अनुभव किया है, उन सभी को एकत्र करके इस रुप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिससे की पाठक भी उसी देशकाल, स्थल एवं देश की विशिष्ट सत्ता का परिचय पाते हैं। रचनाकार जिस वास्तविकता का अनुभव स्वयं कर चुका है, वह बड़ी खुबसुरती के साथ अपने पाठकों को भी उसी परिवेश में ले जाकर वही आनंद या उसी वास्तविकता पूर्ण यथार्थ से परिचित करवाता है।

हिन्दी में 'परिवेश' शब्द के पर्याय के रुप में 'वातावरण', 'देशकाल', 'परिदृश्य', जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में 'परिवेश' से

समानता रखने वाले शब्द हैं Setting, Background, Place, Location, Landscape, Circumstance और Description आदि।

हिन्दी की दलित कहानियों में कहानीकार ने अपनी कहानी में देशकाल, शहरी, ग्रामीण स्थल को ध्यान में रखते हुए परिवेश को चित्रित किया है। जैसे–

जयप्रकाश कर्दम की **'सांग'** कहानी में दलित परिवेश मिलता है। यहाँ स्थल के रुप में ग्रामीण परिवेश, रीतिरिवाज, व्यवसाय, खान–पान आदि से परिवेश प्रकट होता है। जैसे गाँव में संध्या के समय का दृश्य, नीड़ को लौटते पक्षियों के कलरव और खेत जोतकर घर लौटते बैलों के गले में बजती घंटियों की आवाज़, बैलों के खूंटे, भूसे की सानी और चरी, कमेरे, नंगे–अधनंगे बच्चे रेत, मिट्टी उड़ाते, पत्थरों के सिल–बट्टों पर मसाला पीसती, हांडिया छोंकती, चून मांडती स्त्रियाँ, मुखिया की चौपाल, नीम के पेड़, टाट–पट्टी के टुकड़े, ढोलक और नगाड़े, सांग खेल के लिए ग्रामीण लोगों की उमंग, कुल्हाडा, एवं खेत में पानी लगाना, बंध लगाना, मुहाला खोलना, क्यारी बदला आदि प्रकार के परिवेश में रहकर शोषित–पीड़ित पात्रों की समस्या कही गई है। ग्रामीण पुरुष एवं नारी पात्र परंपरागत शोषण को विशेष परिवेश में झेलते हुए दिखाए गए हैं।

डॉ. कुसुम वियोगी की **'अंतिम बयान'** कहानी में ग्रामीण परिवेश मिलता है। गाँव में प्रातःकाल हलकारों द्वारा अपने बैलों को खेतों में ले जाना, पनघट पर पनिहारिनों द्वारा पानी भरना, मजदूरी करने वालों का मजदूरी करने के लिए घर से निकलना, गाय–भैंस के न्यार फूस लाना रकम की ऊनी–दूनी ब्याज बेनामा करना, न्यार–टोली, दशंती, कट्टा, न्यार की गठरी, छप्पर की तीलियां, पुलिस की साईरन बजाती गाड़ियाँ, कुए, लाठियां भांजना, कुए की मुंडेर, नीम का पेड, कऊओं की कांव–कांव, सिपाही, सिविल अस्पताल, आंगन, बीड़ी सुटियाना, सरपंच प्रधान, पोस्टमार्टम, बांछे खिलना, आदि परिवेश में बंधते तत्त्वों में मात्र शोषण ही नहीं किन्तु दलित समाज की विशेषता भी प्रकट होती है। दलितों की दिनचर्या, खान–पान, जीवनशैली, रहनसहन, कार्यव्यापार, समस्या आदि को परिवेश में गूँथ लिया गया है।

सूरजपाल चौहान की **'टिल्लू का पोता'** कहानी में अलीगढ़ जिले के छोटे से गाँव सोनपुर के ग्रामीण परिवेश में गाँव की बगिया वाली प्याऊ, इक्का–गाड़ी, पगडण्डी, जेठ माह की तपती दुपहरी, बगिया की धर्मशाला, थ्रेसर, खेत की मेंड, हुक्का, बाल्टी को रेत से माँजकर साफ करना, आदि से उस गाँव में सवर्णों द्वारा दलितों के प्रति अस्पृश्यता, घृणा एवं ईर्ष्या को लेखक ने बखूबी प्रकट किया है। ग्रामीण बोली का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही किया गया है।

सूरजपाल चौहान की **'अंगूरी'** कहानी का परिवेश ग्रामीण क्षेत्र है। कहानी में लेखक ने गाँव में दलितों की दीन–हीन दशा, बेगारी, खेत जोतना, जानवरों को चारा खिलाना, घर–घर जाकर लिपाई–पुताई करना, सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियों से की जाने वाली छेडछाड, दलित स्त्रियों के जातीय शोषण, घर के चौके, हँसिया, घर की वाडी, आले में जलते दीये की रोशनी, घर की चौखट आदि परिवेश में अंगूरी की समस्या एवं समस्या के प्रति उसमें रहे साहस को दिखाकर गाँव की दलित स्त्री के नए रुप को उज़ागर किया है।

सूरजपाल चौहानी की **'घाटे का सौदा'** कहानी का परिवेश शहर का है। लेखक शहर में रहने वाले उच्च पद पर आसीन दलित के हृदय में रहने वाली जातिगत

हीन भावना को प्रकट किया है। जहाँ पॉश काम्लोनी, कोठी, सरकारी दफ्तर, कार, टेलीफोन, बंगला, अंग्रेजी स्कूल, कॉलेज, ड्राइंगरुम, बाबा साहब की तस्वीर, ऑफिस, प्रमोशन के आर्डर की फाइल आदि के साथ आंशिक रुप में लल्लनपुर गाँव की बस्ती के कच्चे घर, तंग गलियाँ, गाँव की स्कूल, छुआछूत से पीड़ित तमाम साथी और अध्यापक, हीनभाव आदि का वर्णन कर कहानीकार ने दलितों की गाँव एवं शहर के परिवेश में स्थिति, समस्या, एवं सवर्णों के दलितों के प्रति विचारों को वाचा दी है।

सूरजपाल चौहान की **'साजिश'** कहानी में नगर के परिवेश में दलित नत्थू की बेरोजगारी की समस्या, ट्रान्सपोर्ट का धन्धा, बैंक का कर्ज़, सरकारी नौकरी के लिए दी जाने वाली रिश्वत, पिगरी लोन, पिगरी फार्म, हेड क्लर्क, बैंक मैनेजर, सूअर पालने का धन्धा, ट्रेंड चेंज करना, पैतृक धन्धा, जूठन खाना, खानदानी धन्धा, दारु, मुहल्लों की सफाई, टोले–मुहल्ले, गाँवों को टोलों, धरना देना, विशाल जन–समूह, नेतृत्व, नारे लगाना, जिला प्रशासन, पॉलिटिक्स, नेता, आदि परिवेश के माध्यम से शहरों में दलितों के प्रति की जाने वाली साजिश का पर्दाफाश किया है। साथ ही दलितों में आई जागृति को भी उनके कथनों के माध्यम से प्रकट होते दिखाया है।

डॉ.कुसुम वियोगी की **'और वह पढ़ गई'** कहानी में शहर में दलित शिक्षित एवं अशिक्षितों दोनों के परिवेश, रहन–सहन, खान–पान, सोच–विचार, कार्यकलाप आदि को प्रकट किया है। जैसे–ड्राईंग रुम, जमादारिन का झाड़ू–पंज्जर, सिर पर टोकर, मोहल्ला कमाना, स्कूल की ड्रेस, तंबाकू का 320 नं. का पान, पिच्च से थूकना, गालियाँ, तमाशीबीनों, जाति–हीनता, पुश्तैनी धंधा। इसी के साथ लेखक ने वाल्मीकि बस्ती का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

> **''हमारी बस्ती तो दारुबाजों की जुआरिओं की बस्ती है। आए दिन सुअरों की टांगें पकड़ पेट में छुरी बुच्च.....रोज–रोज की चीं–चीं, चिल्ल–पों सुन–सुन मेरे कान पक से गये हैं। कौम की दाढ़ में खून जो लग गया है मांस–मट्टी का, झाड़–फूस जलाकर गली के बीचों–बीच सुअरों को भूनना, कितना अजीब–सा जगता है अंकल.....मर्दों की टोली द्वारा हुक्के की गुड़गुडाहट, सारा दिन चिलम के धंए में फूंक देना.....।''**[9]

राजेश कुमार बौद्ध की **'आतंक'** कहानी में एक ऐसे गाँव के परिवेश को लिया गया है, जहाँ दलितों पर विशेषतः दलित स्त्रियों पर सवर्णों के अमानुषिक अत्याचार को प्रस्तुत किया है। गाँव में ठाकुरों का बोल–बाला, बाडीगार्ड, बन्दूक, लाठी, पुलिस थाने में भी ठाकुरों की अधिकता, दबंग ठाकुरों के अत्याचार एवं दबदबे। सूरज की लालिमा, निर्वस्त्र राखी, मार–पीट, बलात्कार, कैद, भयभीत गाँववासी, अमानवीय यातनाएँ, तड़पना, कराहना, अत्याचार, थाना प्रभारी, पंचनामा, पोस्टमार्टम हाऊस आदि परिवेश में दलित नारी की करुण दशा, एवं सवर्णों के अत्याचार को दिखाया गया है।

कालीचरण प्रेमी **'उसका फैसला'** में दलित महाशय जी के रुप में लेखक ने दलित अधैड़ पुरुष की छबी को हमारे समक्ष उपस्थित किया है। जैसे–रंग गेहुंआ, सिरके आधेबा सफेद और आधे काले, अधकचरी दाढ़ी, लम्बा, पतला, शरीर गाल अन्दर को पिचके हुए, पीले पड़ गए दाँत, एक अदद चीकट कमीज, एक मटमैली धोती, घर के नाम पर एक कच्चा कोठरा आदि। गाँव के रस्म–रिवाजों, ब्याह, दहेज के सामान में एक

निवाड का पलंग, साइकिल, संदूक, टोकरी, परात, बर्तन–भाँडे आदि। घर में भैसों का न्यार–पानी का कार्य, ताश खेल, जंगल, गालियाँ, दारु, पारिवारिक शोषण, पंचायत, प्रधान, कुँए वाले चबूतरे आदि से दलित स्त्री के सामाजिक, पारिवारिक एवं सवर्णों द्वारा होते शोषण को शब्दबद्ध किया गया है। गाँव में पुरुष प्रधान समाज में पंचायत द्वारा एक तरफे फैसले, अन्याय को दिखाया गया है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी **'बकरी के दो बच्चे'** में कहानीकार ने गाँव के परिवेश का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

> **''सर्दभरी जनवरी का वर्णन उन्मैष। बन्द आसमान। ठहरी धरती। सहमा परिवेश। घना कोहरा। कोहरे की श्वेत चादर ने सूमूचे गाँव को ढाँप लिया हो जैसे। सेही का भी सिर सिहरा देने वाले जाड़े से कँपकँपाते, घूजते, ठिठुरते लोग। लोग–बाग मिन्नतें मनाये कि कोहरा छँटे और वे अपने काम–धन्धे पर चले जाएँ।''**[10]

दलितों के कच्चे घर, सवर्णों की आसमान बतियाती हवेली, पक्का चबूतरा, दलितों का कच्चा चबूतरा, दलितों का पशुप्रेम, सवर्णों की ईर्ष्या, घृणा, चूल्हे में उपले जलाना, धुआँ, आग तापना, भूख की भभूकी, छींके पर बाजरे की बासी रोटियाँ, अंगारा, कुरकुरी रोटी को कुटुर–कुटुर चबाना, बकरी का ब्याना, वेदना भरी मिमियाहट, छप्पर, दलपत का घुटनों में सिर खोंसकर बैठना, बकरी के मुर्दा बच्चे, हुक्का गुडगुडाना, तमाकू की थैली, पाँवों में कड़ियाँ, हाथ में कड़ले, गले में हाँसुली, गाँव में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र, गाँव में बस स्टेण्ड पर पीपल का एक रुख, टेम्पो, दारोगा का चेम्बर, थाना–कचहरी, सफाई कर्मचारियों की युनियन हथकड़ी, एफ.आई.आर दर्ज कराना, गिरफ्तारी, खूँटी से टंगी बन्दूक, दो फीते वाला हवलदार आदि।

सूरजपाल चौहान की **'बदबू'** कहानी में ग्रामीण एवं नगरीय दोनों परिवेश दोनों में दलितों के रहन–सहन, खान–पान, दीनचर्या, काम–काज आदि को देखा जा सकता है। गाँव में दलित परिवार में कन्या शिक्षा की एहमियत, इंटर–कॉलेज की परीक्षा पास करने पर दलित युवती संतोष की स्थिति, उच्चशिक्षा से दलित युवतियों को वंचित रखने के पीछे दलितों के तर्क–वितर्क, दलितों की खेत मजदूरी, गाय, भैंस, बकरियों का पालन, रिश्तेदारों की परंपरागत विचारधारा, दिल्ली में एम.सी.डी. सफाई कर्मचारी, त्रिलोकपुरी व खिचड़ीपुर के बीच बनी झोंपड़–पट्टी, शंकरपुर व लक्ष्मीपुर के इलाके में मोहल्ले कमाने का कार्य, मयूर विहार के क्वार्टरों में झाड़ू–पोंछा। खुड्डी पालन, गंदे नाले में सूअरों का लोट मचाना, उनका चिंचियान, झाड़ू–पंजे से पाखानों से मल–मूत्र सँकेलना, मल–मूत्र को टोकरी में सिर पर उठाना, पारिवारिक अत्याचार लेखक दिल्ली में मैला ढोने एवं साफ करने के दृश्य को इस प्रकार चित्रित करते हैं।

> **''.....कुछ देर बाद अन्दर से बाल्टी भरकर फेंके गए पानी के साथ गंदगी का रेला पाखाने के पिछवाड़े से बहकर सास के कदमों के पास आ गिरा। मल–मूत्र से मिले पानी के छीटों से सास के पैर सन गए थे। संतोष थोड़ी दूर हटकर खड़ी थी, लेकिन पानी का रेला इतना तेज था कि कुछ छींटे उसकी साड़ी पर आ गिरे। सास ने संतोष को आवाज़ देते हुए कहा कि वह पानी से मल निकालकर जल्दी टोकरे में रखे।.....गंदगी**

और मल से टोकरा बजबजा रहा था और उस पर असंख्य मक्खियाँ भिन–भिना रही थीं।''[11]

इन वर्णनों द्वारा कहानी में कहानीकार ने ऐसे परिवेश का शब्दबद्ध किया है, जो जीवंत बनकर हमारे समक्ष उभरकर आ जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'अम्मा'** कहानी में शहर में सफाई कार्य करने वाली दलित स्त्रियों की दीनचर्या, गरीबी, परंपरागत कार्य करने की विवशता को दिखाया गया है। सुबह–सबेरे हाथ में झाड़ू–कनस्तर थामे हुए गली–मुहल्लों में सफाई करती स्त्रियाँ। लेखक ने बाकायदा इस कार्य के लिए बहुओं को सास द्वारा दी जाने वाली ट्रेनिंग को इस प्रकार प्रकट किया है–

''कैसे दरवाजे पर पहुँचकर आवाज देना है। कैसे टट्टी में घुसना है, कैसे पानी डालना है। फिर झाड़ू के कितने हाथ दाएँ, कितने बाएँ चलाने हैं। किस घर में किसे कैसे और कितनी बात करनी है। घर–आँगन में कितनी दूर तक जाना है। आँगन में पड़ी चीज को नहीं छूना है। कोई चाय पानी दे तो कप या गिलास वापस कहाँ रखना है। हरेक ठिकाने में आँगन के किसी कोने, आले या छोटे–मोटे पेड़ की किसी टहनी पर एक आध कप या गिलास सास ने सँभालकर रखे थे। जो वक्त–ज़रुरत पर काम आते थे।''[12]

दलित पर कर्ज़ा, सूद चुकान, दलित स्त्रियों का जातीय शोषण, ठिकाना को बेचना–खरीदना, गालियाँ, नगरपालिका में रिश्वत लेना, बेरोजगारी, अनमेल विवाह, दलित स्त्री का स्वाभिमान, आदि को प्रस्तुत करके कहानीकार ने शहर में दलित समाज के परिवेश की चर्चा की है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की **'अंधड़'** कहानी में उच्च शिक्षित दलित नायक राजधानी की पॉश कॉलोनी के शानदार फ्लेट में रहता हैं। बच्चे अंग्रेजी पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं, किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए वह जिस गाँव में पला बढ़ा था, पढ़ा था वहाँ का परिवेश कुछ इस प्रकार का था जैसे–घर में ही सुअर–बाड़ा, तीस–चालीस सुअर, सूअरों की ची–चाहट, छावनी की गाड़ी में गोश्त लादकर मेस में पहुँचाना, मक्खियों की भिनभिनाहट, बूचड़खाना, मारना, दूणना, साफ–सफाई करना, धोना, काट–कूट करके छोटे टुकडों में काटना, जिस्म से सुअर के गोश्त की गंध आना, सहपाठी द्वारा 'खटीक' कहकर चिढ़ाना आदि। शहर में मान–सम्मान औपचारिकता, भ्रमजाल, जातिगत हीनभावना, जाति छीपाना, अतीत से दूर भागना एवं उसे भूलाना, अकेला हो जाना, सामाजिक सोच और मान्यताओं से पीड़ित होना, झूठी जिंदगी को सच मानना आदि के माध्यम से नगरीय परिवेश मे दलितों की मानसिक स्थिति का आलेखन मिलता है।

कावेरी की **'रिश्वत'** कहानी वर्तमान समय में नगरीय परिवेश में शिक्षित बेरोज़गार दलित समाज की वेदना को वाचा दी गई है। दलित जीवन वर्तमान समय के विकट प्रश्नों का निरुपण किया गया है, जैसे : आरक्षण का व्यंग्यबाण, कैम्पस सलैक्शन में जातिगत भेदभाव, भाई–भतीजावाद, योग्यता का सही माप न होना, रिश्वत, दलाल, ऊपरी कमाई, संयुक्त परिवार का भार, प्रतियोगिता, साक्षात्कार, मंत्री और विधायक की सिफारिश, कम्पीटीशन फेस करना, बिना पैरवी और रिश्वत के नौकरी का सपना बन

जाना, नामांकन करवाना, नौकरी की चिंता में नींद हराम होना, परिवार में विद्रोह, मानसिक डिप्रेशन, जीवन बीमा का सहारा आदि।

अनिता भारती की **'नई धार'** कहानी में दलितों के प्रति उच्च वर्ण के शिक्षित लोग कैसा भेदभाव रखते हैं और अपने से निम्न समझकर किस प्रकार उनकी अवहेलना करते हैं, उसका निरुपण समग्र परिवेश द्वारा किया गया है। जैसे– दलित भेदभाव विरोधी समिति की स्थापना, दलितों सरेआम हत्या का विरोध, दलित ग्रुप, शिक्षक, प्रोफेसर, बैंक ऑफिसर, लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता आदि दलितों का संगठन, गाँव के गुंडा तत्त्व, बाबा साहब का नाम लेकर गरीब भोली, मासूम और भावुक दलित जनता को राजनैतिक पिछलग्गुओं द्वारा छला जाना, दलित आंदोलन में छल–कपट और अवसरवाद की विकृत परिपाटी, जातिविहीन समाज की कल्पना बर्बरता पूर्वक पुलिस दमन, महिला संगठन, मानव अधिकारवादी संगठन, आदिवासियों अल्पसंख्यकों के अधिकारों की लड़ाई में शिरकत, प्रेस कवर, प्रगतिशील डेमोक्रैटिक राइट थिंकिग फोरम, मीडियाकर्मी इतिहासकार, वकील आदि।

डॉ.पूरनसिंह की **'यूज एन्ड थ्रो'** कहानी में गाँवों एवं शहरों में दलित समाज के एक ऐसे परिवेश का देखा जा सकता है, जहाँ सवर्णों द्वारा दलितों का उपयोग करके उन्हें फेंक दिया जाता है। ग्रामीण परिवेश दलितों को सवर्णों के मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध, चमारों का अलग मंदिर, आर्थिक दंड दिया जाना, ब्राह्मणों के जूते में जबरन पानी पीने का दंड, असहनीय पीड़ा देना, दहशत फैलाना, सम्प्रदायिक झगड़ों में दलितों का उपयोग करना धर्म के नाम पर दलितों का शोषण, झूठ तथा ढ़ोंग के सहारे लोगों को धोखा देना। शहरी परिवेश में जैसे दुर्गावाहिनी संगठन, मंदिर–मस्जिद के झगड़े, लवमैरिज, सवर्ण अधिकारियों द्वारा दलित लोगों को यूज करना आदि।

राज वाल्मीकि की **'क्रान्ति'** कहानी का परिवेश दिल्ली की एक स्लम बस्ती का है जहाँ पर दलित सामज के वाल्मीकि समुदाय के लोग शैक्षिक रुप से बहुत पिछड़े हुए हैं। कहानी में दलित समाज का परिवेश इस प्रकार का है।– दलितों में जागरुकता की कमी, अज्ञान, पितृसत्तात्मक समाज, स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखना, शराब का नशा, अन्य महिलाओं से अवैध संबंध, लड़ाई–झगड़े, अंध विश्वास, फिजूल खर्चे, लड़का–लड़की में भेदभाव करना आदि। इसी के साथ इससे मुक्ति के लिए दलित समुदाय के शिक्षित वर्ग द्वारा सोशल वर्क से जुड़कर दलितों में शिक्षा के प्रति जागरुकता, स्लम बस्ती का सर्वे करना, जुड़कर दलितों में शिक्षा के प्रति जागरुकता, स्लम बस्ती का सर्वे करना, उत्थान कार्य करना सरकार का सफाई कर्मचारी के बारे में 1993 कर एक्ट जिसमें मल ढोने की प्रथा को गैरकानूनी बताकर उस पर प्रतिबंध लगाया गया है, पुनर्वास योजना, सीनियर सिटीजन की सुविधाएँ जगया गया है, पुनर्वास योजना, सीनियर सिटीजन की सुविधाएँ दिलवाना, सरकार की स्कीमों का लाभ उठाना, उन्हें स्वतंत्रता, समता, लैंगिक समानता, बंधुता, आत्मसम्मान का पाठ पढ़ाकर जागृति की क्रान्ति लाना आदि देखा जा सकता है।

जय प्रकाश कर्दम की **'सूरज'** कहानी का परिवेश शहरी है, जहाँ पर गैर दलितों द्वारा दलित छात्र–छात्रओं को मानसिक एवं शारीरिक यातनाएँ दी जाती थीं। रेगिंग के बहाने उन्हें इतना उत्पीड़ित किया जाता था, कि वे आत्महत्या कर लें या, पढ़ाई छोड़कर भविष्य चौपट कर लें। दलित छात्रों का मनोबल तोड़कर उनसे स्वाभिमान

पूर्ण जीवन का अधिकार छीनकर, उन्हें सामाजिक सजगता, सक्रियता और साहसिकता से दूर रखने का षड़यंत्र न रचा जाता है। और सफल न होने पर दलित छात्र की हत्या कर दी जाति है। यहाँ आधुनिक युग में दलित नगरीय परिवेश में भी शोषण मुक्त जीवन जीने के लिए संघर्षरत देखे जा सकते हैं।

डॉ.रामसिंह यादव की **'एक दलित लड़की'** कहानी में दलित लक्ष्मी का जातीय शोषण उसके ही विभागाध्यक्ष द्वारा किया जाता है। इससे उच्च शिक्षण संस्थाओं में होने वाले अन्यायपूर्ण परिवेश पर प्रकाश डाला गया है।

अमर स्नेह की **'सनातनी'** कहानी में एक ऐसे गाँव का परिवेश दिखाया गया है, जहाँ सवर्ण बच्चें पाठशाला में मुहूर्त दिखवाकर प्रवेश लिया करते थे। नई पोशाक पहनाकर ढोल–नफीरी के साथ बच्चे को पूरे कस्बे में घुमाकर पाठशाला भेजा जाता था। सवर्णों की पाठशाला में दलित बच्चों को प्रवेश नहीं दिया जाता था। दलित महिलाओं का वहाँ नाली साफ करना, स्कूल की साफ–साफाई, मोहल्ले की साफ सफाई किया करती थीं किंतु–

> **''चन्द्रो के जाने के बाद गुरुजी ने पानी भरे लौटे में गंगाजल की कुछ बून्दे टपकाई और मंत्रोच्चार के साथ पूरे स्कूल में छींटे मार के रोज की तरह फिर से शुरु कर दिया।''**[13]

डॉ. सुशला टाकभौरे की **'टूटता वहम'** कहानी नागपुर शहर की शिक्षण संस्थाओं जैसे स्कूल एवं कॉलेज के शिक्षित परिवेश में शिक्षकों, शिक्षिकाओं, प्राध्यापकों, व्यवस्थापकों आदि औपचारिक तौर पर दलितों से भेद–भाव नहीं रखते जैसे मिलजुलकर सब साथ खाना खाते, विद्यार्थी सम्मान देते, नाश्ता एक प्लेट में मिलकर खाते, खाने की चींजें उनसे परोसने को कहते, किन्तु दूसरी ओर उनकी जाति का उल्लेख बार–बार व्यवस्थापक द्वारा किया जाना, उन्हें बार–बार जाति की याद दिलाना, उनके घर के भोजन का बहिष्कार करना, उनके बगल में या साथ में जमीन या घर न खरीदना उनके बनावटी उदार, मानवतावादी, विशाल दृष्टिकोण, सहजता एवं अपनेपन की झूठी पोल को खोल देता है। ऐसे परिवेश में पढ़े–लिखे वर्ग में भी दलितों को उनके कर्म एवं व्यवहार से नहीं जाति के कारण निम्न समझा जाता है। उन्हें अपने बराबर का दर्जा नहीं देकर उनके उन्हें सुनहरे जाल के धोखे में बड़े प्यार से भरमाया जाता है।

डॉ.सुशीला टाकभौरे की **'सिलिया'** कहानी मध्यप्रदेश के एक गाँव के परिवेश की है। जहाँ कन्या शिक्षा बहुत कम पाई जाती है। गाँव में दलित सवर्णों के कुएँ की रस्सी–बाल्टी नहीं छू सकते थे, प्यास लगने पर भी सवर्ण के कुएँ से पानी नहीं माँग सकते थे। नायिका के अनुसार

> **''कुत्ता–बिल्ली उस घर में बे–रोकटोक आ–जा रहे थे पर दहलीज पर ही उसे हाथ के इशारे से रोक दिया गया था। इस व्यवस्था को मिटाने के लिए क्या कुछ भी नहीं हो सकता ?...क्या जीवन भर ऐसे ही अमानवीय दुःख भोगने पड़ेंगे ? कदम–कदम पर अपमान के घूंट पीने पड़ेगे।''**[14]

यहाँ हीनता और दीनता का भाव छोड़कर दलित स्वयं अपनी प्रगति एवं आत्मसम्मान के लिए सजग होते हैं एवं विशाल जनसमूह के विचारों में परिवर्तन लाने में सफलता पा सकते हैं।

रजत रानी 'मीनू' की **'सुनीता'** कहानी और डॉ.कुसुम मेघवाल की **'मंगली'** कहानी में शहर में मजदूरी करके अपना जीवनयापन करने वाले मजदूरों की बस्ती का परिवेश देखा जा सकता है। रोज मजदूरी करके रोज खाने वाले मजदूर वर्ग के पास बीमारी के समय दवाईयाँ खरीदना एक विकट समस्या बन जाती है। घर में दो चार बर्तन और टूटी झोंपड़ी में ही वे अपना जीवन व्यतीत करने पर विवश हैं। यहाँ तक की मृत्यु के समय उनके दाह–संस्कार के लिए रुपये न होने पर कई बार बड़े व्यक्ति को भी मिट्टी में गाड़ने की स्थिति भी आती थी। कभी चंदा इकट्ठा करके दाह–संस्कार किया जाता है। गरीबी से बड़ी कोई दुःख नहीं होता, तभी तो मंगली पति की मृत्यु के तीसरे दिन लम्बा घूंघट काढ़कर मजदूरी करने चली जाती है। ठेकेदार उसकी गरीबी और मजबूरी का ही लाभ लेकर उसका जातीय शोषण करना चाहता है।

कावेरी की **'सुमंगली'** कहानी में शहर में दैनिक मजदूरी करके जीने वाल गरीब मजदूर वर्ग की बस्ती को परिवेश के रुप में लिया गया है। ठेकेदार यहाँ मजदूरों का आर्थिक शोषण तो करता ही है, बाल मजदूरी भी करता है। साथ ही नाबालिग अनाथ लड़की का जातीय शोषण करता है। इस पर दुःखना की माँ कहती है

> **''.....हम गरीबों का जन्म ही इसलिए हुआ है। हमारी मेहनत से अट्टालिकाएँ तैयार होती हैं और उसके पुरस्कार के बदले में हमारे शरीर को रौंदा जाता है।''**[15]

कहानी में भयावनी काली रात, मूसलाधार वर्षा, दिल दहला देने वाली कडकड़ाती बिजली, अनाथ लड़की, खुले प्रकृति के आंगन में कथरी बिछाकर सोना, झोली–गठरी की गृहस्थी, नाजायज औलाद को जन्म देने की पीड़ा झेलती दलित स्त्री, दवाई न मिले पर मृत्यु मुँह में जाता हुआ छोटा बच्चा, रोती, बीलखती माँ करुण, क्रन्दन, सारे सपनों का चकनाचूर हो मिट्टी में मिलना, एकाकी जीवन जीने की विवशता एवं पशु को सच्चे साथी के रुप में चित्रित किया गया है।

रजत रानी 'मीनू' की **'सुनीता'** कहानी में एक ऐसे अम्बेडकरवाद और बौद्ध को लिया गया है जो पुराने संस्कार को आधुनिक युग में भी लेकर चलते हैं। जैसे बेटे के जन्म पर खुशी एवं मिठाइयाँ. बँटती दावतें दी जाती हैं और बेटी के जन्म पर मातम छा जाता है, उपेक्षा पूर्ण व्यवहार किया जाता है। बेटे को वंश चलाने वाला कहकर उसका विशेष ध्यान दिया जाता है, जबकि बेटी को घर के कार्य के बोझ तले दबा दिया जाता है। दलित युवती होने पर समाज में दलितों एवं गाँव में सवर्णों द्वारा कन्या शिक्षा का विरोध, बालविवाह की जल्दी, अनमेल विवाह का चलन, ताने मारना, दलितों की स्थिति एवं व्यवसाय में आज़ादी के बाद भी कोई परिवर्तन न आना, पुश्तैनी धंधा में फँसे दलित, दहेज, आर्थिक दशा खराब होना, सवर्णों की भूखी निगाहें, आरक्षण कोटे से लाभ, दलित जन हिताय, संगठन बनना, गाँव का आधुनिकीकरण, पुश्तैनी रुढ़िगत सोच, पुरुष अहम् और मनुवादी व्यवस्था की दी गई हीन भावना के दुर्ग का ढ़हना आदि समय एवं संघर्ष बाद के आए बदलाव के परिवेश को दिखाता है।

रत्नकुमार सांभरिया की **'फुलवा'** कहानी में गाँव की दलित फुलवा का बेटा शहर की पॉश कॉलोनी में एक बड़ी सी कोठी में रहता है। उसके घर में संगमरमर की रसोई, कीमती बर्तन, कीमती वस्तुएँ, सुख–सुविधा की तमाम चीज़ें उपलब्ध हैं। ऐसे परिवेश में गाँव के ज़मीदार एवं बनिये, बामन भी न रहते हों। जबकि उसी शहर में गाँव के पंडित का परिवार दरिद्र अवस्था में जीता है जिनके पास न ढँग का घर था, न ही घर में दरवाजा, न बिस्तर, न भोजन की सामग्री, एक कोने में बकरी, गेट के पास कुत्ता बाँधा था, वह भी बीमार एंव खाँसने वाला, बकरी के पेशाब की गँध, कुत्ते की उल्टी आद से पंडिताइन के घर के परिवेश एवं वातावरण की तुलना दलित महिला फुलवा से की जा सकती है।

डॉ.कुसुम मेघवाल की **'बीती रात अंधेरी'** कहानी में खेतीहर मजदूर जो सदियों के कर्ज तले पिसते चले आ रहे हैं उनके भयंकर सामाजिक शोषण चक्र को परिवेश में देखा जा सकता है। साथ ही खान–पान में ज्वार की मोटी–मोटी अकड़ी हुई रोटी, छास के लिए भी तरसना, पनीली दाल, प्याज या मिर्च के साथ गले बतारना। सवर्णों के व्यंग्य बाणों की बौछार, दाम्पत्य संबंधों पर भी मर्मातक प्रहार करना, सवर्णों की ढोर चराना, सामर्थ्यवान रुढ़ सामाजिक परम्पराओं की आड़ में आर्थिक शोषण का क्रूर चक्र, श्रमिकों के जीवन की सारी घड़ियाँ बन्धक रख लेना, शहर में भी सिर छुपाने को फूस की छत भी न नसीब होना एवं नायक के घर के परिवेश का वर्णन कहानीकार ने इस प्रकार किया है जैसे–

> **''बीसियों बरसातों की मार खाकर जरा–जर्जर वृद्ध की कमर की तरह झुक आयी गोबर पुती मिट्टी की दीवारों ढिबरी के मंद प्रकाश में उसे और भी बीमार लगने लगीं। जाने किस बरसात में दम तोड़ दें इस बात का कोई ठिकाना नहीं। खपरेलों का भार और वर्षा की मार सहकर बांस–बल्लियाँ टूट चली थीं और चूल्हे का धुंआ पर्त दर पर्त जमता हुआ उन पर कालिख की मोटी परत बनकर चढ़ गया था।''**[16]

मेहनदास नैमिशराय की **'कर्ज़'** कहानी में सुरजपुर नामक गाँव के परिवेश में दलित की मृत्यु पर प्रकृति भी शोक में व्याकुल दृष्टिगत होती है। जैसे– अंधकार के सैलाब में डूबा गाँव, श्मशान जैसी नीरवता, कालिम की ओढ़नी ओढ़ धरती का गहरी निद्रा में सोना, चाँद–सितारों की उदासी आदि। झोंपड़ी में टिम टिमाते हुए मिट्टी के दीपक, अँधेरी रात में दहशत का साया, दलितों को कर्ज़ की ब्याज के ऐवजी में महाजन के खेत में काम करना, बदले में जूठन एवं फटे–पुराने कपड़े मिलना, गाँव के लोगों द्वारा मृत्यु के बाद तेरहवीं करने पर बल देना, पुराने रीति–रिवाज़ों को जबरन सम्पन्न करने के प्रयास, डॉक्टरों को छोड़ साधु–संतों की शरण, राख और भभूत की चुटकी में विश्वास, गाँव में दलितों को शहर की तरह हक और असूल पर न चलने देना, सर्वत्र दहशत, खून जैसी लाली, दीवारों से घिरी हवेली जो भुतहाखाने जैसी थी, वासना के भूखे भड़ियों द्वारा अनगिनत दलित अबलाओं की इज्जत लूटना, कानून के रक्षकों द्वारा धनवानों की रक्षा करना, खर्चीली अदालतें आदि वर्णनों से उस परिवेश की यथार्थता स्पष्ट होती है।

उमेश कुमार सिंह की कहानी **'पहली रात का अंत'** में पृथ्वीपुर नामक गाँव में एक ओर जमींदार के राजाओं जैसे ठाट–बाट एवं राजमहल जैसी हवेली, बाग, जमीन,

शानोशौकत तो दूसरी ओर दलितों की दयनीय दशा। गाँव के रीति रिवाज़ जैसे– शादी के समय ढ़ोल–तासे बजना, बाजे वालों के साथ एक लड़कों का स्त्री वेश में नाच करना, स्वांग, आल्हा या होली पर मंडलियों को गाना–बजाना, मंगल गीत गाना, ठाकुर को सीस नवाना, बदले में कुर्त्ता–धोती, रुपये मिलना, कुत्ते की झोली फैलाकर ठाकुर से सगुन लेना, रात के समय झींगुरों, मंजीरों का संगीत गूँजना, चमारों के मुहल्ले में दुल्हे को घोड़े पर बैठकर बारात चढ़ाने की इज़ाजत सवर्णों से न मिलना, बड़ी–बूढ़ी औरतों का विवाह के अवसर पर गाली भरे–गीत गाना शगुन माना जाना, अनमेल विवाह, बाल विवाह, सियारों के बोलने की आवाज़, हवेली में भव्य और आलीशान कमरा, शानो–शोकत, सबसे बड़ी बात उस गाँव में पुश्त–दर–पुश्त सवर्णों द्वारा दलितों की नई–नवेली दुल्हन को पहली रात में किया जाने वाला जातीय शोषण उस गाँव के परिवेश में दलितों की स्थिति एवं करुणता को प्रस्तुत करते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया की **'बात'** कहानी में दलित विधवा बेटे को पढ़ाने स्कूल भेजती है, जहाँ राजनीति की शिकार स्कूल की कुछ कक्षाएँ सर्दी, गर्मी, बरसात बरामदों में ही लगती थी। द्रोणाचार्य से भी कठोर गुरु, एवं स्कूल का वर्णन कुछ इस प्रकार है–

> **''स्कूल में आस पड़ोस के गाँवों के अध्यापकों की धाक थी। स्कूल मायने आंगन में बिछी खटिया। आधा स्टाफ दिनभर अपने खेत–खलियानों, निजी कामों और ठोर डंगरों में खटत। स्टाफ रुम में ताशें बजतीं। गप्पे उठतीं। ठहाके पटाखें से फूटते राजनीति की चौसर बिछी रहती।''**[17]

दलित स्त्रियों के कानों की लवों में नीम की सींके, नाक में चांदी का कांटा गले में काला डोरा, हाथों में रबड़ की चूडियाँ, नंगे पाँव, लंबा घूंघट उनके रहन–सहन को व्यक्त करता है। तो स्कूल यातना शिविर के रुप में हमारे समक्ष आती है।

विजय कांत की **'मरीधार'** कहानी में बांस और बबूल से घिरे गाँव में एक मात्र दलित के घर सुअर बाड़ा है वह गाँव के सभी ठाकुरों का मैला ढोता है। सूम, डगरा, डाला, दौरा, मौनी, बीयन, मोर–मुकुट और सिकड़ी जैसे बांस के बनाई जाने वाली वस्तुएँ दलितों की पुश्तैनी कारीगरी थी, किन्तु सवर्ण उन्हें मैला ढोने के लिए बाध्य करते इसलिए सूअर मार दिए गए, हुनर खाक कर दिए गए। गिद्ध मरीधार के आखिरी छोर पर जहाँ मरे हुए जानवर फेंके जाते हैं, जानवरों की लाशें खसोटते विकराल गिद्धों की किटकिटाहट, मांस की बदबू, अस्थि–पंजरों का ढेर, गिद्ध–कुत्तों के नोच–खसोट से सिहरती और जानवरों की लाशों से बजबजाती मुर्दघट्टी आदि मरीधार के परिवेश हो प्रस्तुत करता है।

राज वाल्मीकि की **'इस समय में'** कहानी में शहर में रह रहे इक्कीसवीं सदी को दलित युवा पीढ़ी की विचारधारा, महत्त्वाकांक्षा, रहन–सहन, ऐशो–आराम की ख्वाहिश, मोबाइल प्रेम, एडवांस युवा पीढ़ी, जागरुक, कैरियर के प्रति सजग, जाति के जंजाल से मुक्ति के रुप में इन्टरकास्ट मैरिज में विश्वास, साथ ही जाति के टाइटल को लेकर स्कूल में भेदभाव पूर्ण वातावरण को परिवेश के रुप में देखा जा सकता है।

महेश कुमार केशरी 'राज' की **'कैद'** कहानी में ईंट के भट्ठे में बंधुआ मजदूरों की दशा एवं स्थिति को परिवेश को दिलावर खान के क्रूर व्यवहार, अत्याचार, शोषण, बर्बरता, वीभत्सता, कैदखाने में कैदी सी स्थिति। गाँव में भूख से बिलबिलाते बच्चे, इसके लिए कौन जिम्मेदार है एवं किसानों की स्थिति एवं परिवेशगत विवशता को लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

> **''अब गाँव में कुच्छो नहीं रह गया है। तुम लोग आए दिन अखबारों में पढ़ते–सुनते हो कि अब खेती–किसानी में कुछ रह नहीं गया है। नहीं तो रोज़–रोज़ अखबार में इतने किसानों की आत्महत्या की खबरें पढ़ने को काहे को मिलतीं। सरकार अनाज के दाम बढ़ा नहीं रही है। ऊपर से खाद–बीज का भाव भी आसमान छूने लगा है। पानी–बारिश का भी कुच्छे ठिकाना नहीं। हुआ–हुआ नहीं हुआ। अब किसान क्या करें। महाजन से सूद– ब्याज पर पैसा न ले तो और क्या करे। मर–मरके खेती करने का परिणाम क्या होता है। खेती करो लेकिन अनाज़ का दाम ठीक–ठीक नहीं मिलेगा। सरकार कहती है, भारत को नए युग में ले जाएँगे। भारत देश डेवलप होगा, सोचिए जरा आप लोग जहाँ खेती–किसानी का ई हाल है। और इस देश में जहां सत्तर प्रतिशत लोगों का पेशा ही खेती है तो किसान आत्महत्या नहीं करेगा तो क्या मिनिस्टर लोग आत्महत्या करेगा।''**[18]

उपर्युक्त गद्यांश से वर्तमान समय में किसानों का मजदूरी की तलाश में शहरों की ओर पलायन के कारण को दर्शाता है। साथ ही खेती प्रधान देश में किसानों की दुर्दशा दृष्टिगत होती है।

रत्नकुमार सांभरिया की **'आखेट'** कहानी में पौष की थरथरा देने वाली सर्दी में पैड़–पौधे भी जाड़े की मार खा रहे थे, शरीर चीरने लगता, दाँत किटाने लगते। मजदूरों के लिए धरती बिछावन और आकाश ओढ़न, उनके इर्द–गिर्द दुःखों का अलाव जलता, पीड़ाओं का जंगल हरा रहता, विपदाग्रस्त जीवन, टाट की बोरियों और प्लास्टिक की पन्नियों की एक तान ही उनकी झोंपड़ी, जानलेवा जाड़ा, जानवर पेड़ों से गिर कर मर रहे थे, बादल का बोलना, बिजलियों का कड़कना आदि से शहर में गाँव से आए मजदूरों की परिवेशगत स्थिति को हमारे समक्ष रखते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया की **'आधा सेर घी'** कहानी में गाँव एवं शहर दोनों का परिवेश देखा जा सकता है। दलितों के पास अतीत के नाम पर गालियाँ और लड़खड़ाता हुआ वर्तमान था, गाँव हो या शहर बड़ी जाति के आदमी दोनों जगह छोटी जात के व्यक्ति से उसका व्यक्तित्व छीन लेते हैं। दलितों का सूखी रोटी खाकर डिप्टी कलक्टर बनने का सपना देखना, मजदूरी करना साहूकार के पास जमीन गिरवी रखना, डॉक्टर या वैध का गाँव में न होना, दवाई के लिए रुपये न होना, शहर में शैडयूल्ड कास्ट के ताने सुनना साथ ही वर्तमान परिवेश में शिक्षित दलितों की स्थिति इस प्रकार व्यक्त की है जैसे यह वाक्य देखिए –

''देखो धन्नालाल जी हर साल आरक्षित प्रत्याशियों की संख्या बढ़ रही है और आरक्षण तो उतना ही है। फिर पदों की संख्या में भी कुछ खास बढ़ोत्तरी नहीं होती।''[19]

मोहनदास नैमिशराय की **'मजूरी'** कहानी में शहरी परिवेश में मजदूरी करने वालों की दयनीय स्थिति, गरीबी, भुखमरी, लाचारी एवं धनाढ्य वर्ग के लोगों में ऐशो आराम के जीवन के साथ बीयर, व्हिस्की, मूवी, मांस–मदिरा का सेवन आदि देखा जा सकता है।

मोहनदास नैमिशराय की **'सिमटा हुआ आदमी'** कहानी शहर में सरकारी ऑफिस के परिवेश को हमारे समक्ष लाती है जहाँ वेलफेर एसोसिएशन, मीटिंग हॉल, शैडयूल्डकास्ट एसोसिएशन, जातिगत हीनता का भाव, बेरोजगारी, ऐसे परिवेश में एक दलित आई.ए.एस. के विचार इस प्रकार के हैं जैसे–

''पीछले बारह वर्षों के दौरान आई.ए.एस कैडर में रहते हुए इतना तो वह सीख ही चुके थे। नौकरीशाही में दूध जैसी छबि बनाकर रखना कोई हँसी–खेल नहीं है। कभी–कभी अपनी जाति तथा परिवार के लोगों से भी किनारा करना पड़ता है। आई.ए.एस अधिकारियों के प्रमोशन प्रायः इसी बात पर निर्भर करते हैं।''[20]

साथ दलितों की बस्ती में धुएं की लकीरों, दाल भात की गंध, चूड़ियां बजने की आवाज़, मनिहार, अंगीठी पर चढ़े मांस के पकने की महक, गली के कुत्ते का मांस की महक पाकर दौड़ आना, रेडियो पर फिल्मी गीत की आवाज़ आदि शहर में रहने वाले दलितों के परिवेश को हमारे समक्ष लाते हैं।

मोहनदास नैमिशराय की **'दर्द'** कहानी में आकाश में बादल और परिवेश में उमस, बस्ती में प्रकाश की अव्यवस्था, दलित बस्ती की गली के खड़ेजे की उबड–खाबड़ स्थिति, मकानों की प्लास्टर उखड़ी दीवारें, बस्ती का परिवेश को लाहल से भरपूर, एवं शहर की सरकारी ऑफिस में पदोन्नति के लिए किया जाने वाला भेदभाव, ईर्ष्या आदि।

डॉ.सुशीला टाकभौरे की **'मेरा समाज'** कहानी में वाल्मीकि समाज के मोहल्ले के परिवेश में शराब पीने की आदत, फिजूल के झगड़े, बेरोजगारी, अशिक्षा, सफाई कार्य को आराम दायक समझने की सोच, स्कूली बच्चों से सफाई कार्य करवाते माता–पिता, किताब–कापियों का अभाव, पारिवारिक झगड़े, मार–पीटा, ऐसी घटनाएँ प्रतिदिन होतीं, परंपरागत कार्य के प्रति मोह एवं पारम्परिक विचारधारा को देखा जा सकता है।

सुशीला टाकभौरे की **'बदला'** कहानी में गाँव के परिवेश में दलित अछूतों के साथ दुर्व्यवहार, अपमान, अत्याचार की घटनाएँ, न पुलिस, न कानून बस अन्धा कानून, अस्पृश्यता एक तरफे न्याय को देखा जा सकता है।

अखिलेश कुमार की **'कर्फ्यू'** कहानी में शहर में दैनिक मजदूरी करने वाले दलित परिवार में प्रतिदिन मांस के साथ दारु पीना, शहर में दंगा, वारदात, हत्या, कर्फ्यू,

सन्नाटा, बलात्कार, भूख, रोते–बिलखते बच्चे, पुलिस की गाड़ी का सायरन, कर्फ्यूग्रस्त सुनसान सड़क एक भय के परिवेश को उपस्थित करता है।

सूरजपाल चौहान की **'अत्तू और अम्मा'** कहानी में दिहाड़ी मजदूरी करने वालों की स्थिति, फैक्ट्री मालिकों के अन्याय, दलितों के पैबंद लगे कपड़े, तार–तार, ओढ़नी, घर के नाम पर फूंस की कच्ची कुठरिया, सवर्णों के अत्याचार अपमान, जातीय शोषण, ढ़िबिया की रोशनी में पढ़ाई, गरीबी, सवर्णों के अन्यायपूर्ण परिवेश को हमारे समक्ष रखता है।

दीपक कुमार 'अज्ञात' की **'जोजना'** कहानी में खेत में धान कमाने जाना, 'मड़सटका' भात बनाना, झींगे की चटनी बनाना, हांडी, चूल्हा आदि से एक ग्रामीण परिवेश उभरकर आता है। सरकारी स्कूल में मिलने वाले अनाज की काला बाजारी, दलाली, अखबार में भंडाफोड़, राजनीति, खून–खराबा, धोखा, गाँव सरकारी स्कूलों में दलितों पर होने वाले अन्याय को चित्रित किया गया है।

शिवकुमार कश्यप की **'रात'** कहानी में दलितों को सरकार से मिलने वाले समानता के अधिकारों से वंचित रखना, भेदभाव रखना, ईर्ष्या, एवं छोटे शहर में दलितों को किराए पर घर न मिलने की समस्या, पढ़े–लिखे सवर्णों की मानसिकता, गाँव एवं शहर के परिवेश में समान देखा जा सकता है।

डॉ.सी.बी भारती की **'भूख'** कहानी में विकास के नाम पर गाँव से शहर में तबदील हुए भुइसर टोले के परिवेश का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

> **''एक समय था, जब भुइसरटोली की समूची भूपट्टी हरे–भरे जंगलों से आबाद थी।.....जंगलों के उत्पाद, पत्तियों, फूलों, शहद आदि को बेचकर आदिवासी किसी तरह अपना गुज़ारा करते थे। फिर आई विकास की वह आँधी, जिससे पेड़ कटते गए और फ़ैक्टरियाँ आबाद हुई। आदिवासियों के विकास का बहाना लेकर चारों तरफ गैर आदिवासियों की गगन चुम्बी अट्टालिकाऐं खड़ी होती गई। धीरे–धीरे शोषण का अन्तहीन सिलसिला निरन्तर जारी रहा, पर अब उसका रुप बदल गया था। मोहल्ले–मोहल्ले में शराब के ठेके, लौटरी की दुकानें, अंग्रेजी स्कूल और पोस्ट ऑफ़िस खुलते गए। जैसे से यहाँ कुछ भी कभी भी उपलब्ध हो सकता है। मुलिया रम्पा, फुल कुँवारी कोई भी हो, पेट की आग से त्रस्त हो बिकने को तैयार रहती है मजबूर होकर। सिनमा और लौटरी ने आदिवासी सभ्यता को पूरी तरह ढ़ँक लिया और इसके मांस एवं हड्डी में अपने खूनी दाँत गडा दिए।''**[21]

कुसुम मेघवाल की **'अंगारा'** कहानी में गाँव में सवर्णों द्वारा होते अत्याचार, थानेदार द्वारा रिपोर्ट लिखने के लिए रिश्वत माँगना, अत्याचारियों को पुलिस और मंत्रियों द्वारा संरक्षण दिया जाना, युवा दलितों में प्रतिशोध की भावना जागना आदि नये परिवेश के रुप में देखा जा सकता है।

श्याम नारायण कुन्दन की **'सुनरी'** कहानी में एक ऐसे गाँव के परिवेश को लिया गया है, जहाँ आज़ादी के साठ वर्ष बाद भी बिजली का नामोनिशान नहीं है। किंतु मोबाइल अवश्य है, भले ही शिक्षा, परिवार कल्याण के बारे में जागरुकता नहीं आई हो। युवकों का फिल्मी अंदाज़ की हेयर स्टाइल, लुंगी छोड़ जीन्स टीशर्ट पहनना, झोंपडियों की जगह पक्के मकान, बेरोजगारी दलितों और सवर्णों के अलग कुँए होना, दलितों का मजबूरन गंदा पानी पीने पर विवश होना आदि के कारण दलितों में जागृति आना आदि से उस गाँव में सवर्णों का मैला ढोने वाले, उनकी जूठन फेंकने वालों की स्थिति का जाना जा सकता है।

सुरेन्द्र नायक की कहानी **'खटिया की जाति'** में ऐसे में ऐसे छात्रावास के परिवेश को लिया गया है जहाँ सामंतकालीन वर्णीय व्यवस्था आज भी व्याप्त है। अंतरिक्ष युग में सड़ी गली मानसिकता, छात्रावास में सवर्णों एवं दलितों के रहने की अलग व्यवस्था, वर्ण–संघर्ष, शिक्षण संस्थान की सड़ांध, दलितों के प्रति दारोगा के कटु विचार आदि से दलित छात्रों के शिक्षा में आने वाले संघर्ष पूर्ण वातावरण को प्रस्तुत किया गया है।

लखनलाल पाल की **'बदरिया'** कहानी में धूल भरी हुई गलियों के गाँव, फसल में होने वाले नुकसान, गरीबी, गाँव में नाले पर बने चैकडेम, खेतों में सरकारी बंधे, पर्दा प्रथा, शराब, द्यूत क्रीड़ा, घरेलू कलह दलितों में हरिजन एक्ट की जानकारी का होना, अनमेल विवाह, दलित स्त्री का बिना पुरुष के रहने में आने वाली मुश्किलें, कर्ज़, ब्याज, आर्थिक शोषण की परंपरा आदि।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'चिड़ीमार'** कहानी में शहरी परविेश में दलितों से की जाने वाली अस्पृश्यता, भेदभाव, क्षेत्रीयता, जाति, भाषा, बेरोजगरी, के बीच दलित युवती को सरेआम शहर के बीच सवर्ण युवकों द्वारा नाम लेकर पुकारना, फिकरे कसना, भद्दे, अश्लील इशारे करना, द्विअर्थी शब्दों में बोलना, भंगिन जमादारनी, मेहतरानी, चूहड़ी कहकर अपमानित करने जैसी हरकते देखी जा सकती हैं। दलित इंस्पैक्टर भी दलित होने के कारण सवर्ण अधिकारी से बार–बार अपमानित होता दिखाया गया है। इससे शहरी परिवेश में वर्तमान समय में शिक्षित दलितों की परिस्थिति, विवशता को समझा जा सकता है।

रजतरानी 'मीनू' की कहानी **'हम कौन हैं ?'** में शहरी परिवेश में स्कूल के बच्चों के एडमिशन की बढ़ती हुई फीस, अभिभावकों पर बढ़ते बोझ, पब्लिक स्कूल में शिक्षकों द्वारा जातिगत भेदभाव, सरकारी स्कूलों में ब्राह्मणवादी संस्कारों के कर्मकाण्डी अध्यापक, मिशनरी स्कूलों में अंग्रेजी प्रभाव की शिक्षिकाओं की मानसिकता, चन्दौसी से दिल्ली तक के परिवेश में दलितों के लिए साम्यता, अबोध दलित बच्चों को शिक्षकों द्वारा मिलने वाली मानसिक यातना अपमान आदि।

जय प्रकाश कर्दम की **'लाठी'** कहानी में गाजियाबाद के नज़दीक के मढ़ैया, हरसांव, सरदपुर, रईसपुर, काजीपुरा, महरौली, रजापुरा आदि गाँवों में समाज का ध्रुवीकरण जाति के आधार पर होना, जाटों का बोलबाला, लाठी और जाति के बलबूते पर दलितों पर अत्याचार खेतों में सिंचाई के एक मात्र साधन अपरगंग नहर से निकलता बम्बा, सरकारी पानी से खेतों की माप के आधार पर पानी के समय घंटे बँटे होना, इन्हें

'वार' कहा जाना, माँग की तुलना में आपूर्ति कम होना, आस–पास के खेत वालों में झड़प–झगड़े दूसरों का वार हथिया लेने की घटनाएँ, दलितों में एकता की कमी, भीरुता, आक्रोश आदि।

अजय नावरिया की **'उपमहाद्वीप'** कहानी में गाँव एवं शहर दोनों परिवेश में दलितों की स्थिति का चित्रण किया गया है। गाँव में दलित दुल्हे को घोड़े पर बैठकर बारात निकालने का अधिकार नहीं था, नए कपड़े वे नहीं पहन सकते थे, सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियों को जूतियों से मारना, दण्ड लगाना, थूक चटवाना, गालियाँ देना, धर्म–ईमान के नाम पर सूखा, हैजा–प्लेग फैलाने का अंधविश्वास, परंपरागत भांडो वाली पंडित की वेशभूषा, कंधे पर रामनानी, हाथ में मनकों वाली माला, औरतों के रोने–चिल्लाने की आवाज़ों, से आसमान का भांय–भांय रोने लगना, दूल्हे का पैदल जाना, घोड़ी का लौट जाना, नायब थानेदार का दलित विरोधी होना, गाँव में दलितों की स्थिति इस प्रकार थी–

> **''हर क्षण छोटे होने का अहसास। दूर–दूर तक रेत है, पानी से निचुड़ी, जहाँ हमारे लिए न थाना–पुलिस है, न अस्पताल, न कचहरी गाँव की पंचायत है, पर वह हमारी नहीं है। उस पंचायत में हमारे लिए न्याय नहीं है, सुनवाई नहीं है। सिर्फ उपहास है। वहाँ खेत न थे, ज़मीन न थी हमारी, बस मेहनत थी। फसल उनकी थी, खेत उनके थे, घर उनके थे धरती उनकी थी हमारे पास एक झोंपड़ी थी। हमारे पास सिर्फ नमक था, मिर्च थी, आधे पेट के लिए रोटी थी, आधे के लिए पानी था। पर कुआं नहीं था। हमारे पास नया कपड़ा नहीं था, जूती नहीं थी।''**[22]

जबकि शहर में दलित सरकारी संस्थान में मैनेजर होने से सुसज्ज घर, गाड़ी, ड्राईवर, फेमिली डॉक्टर, एयकंडीशन, लिफ्ट, म्जूजिक टीच, मैकडोनॉल्ड, पीजाहट, हल्दीराम आदि शहरी सुख–सुविधा, किन्तु शहर में भी शिक्षितों द्वारा जातिगत ताने, भेदभाव पूर्ण वातावरण आदि शहर एवं ग्रामीण परिवेश में दलितों की स्थिति में साम्यता एवं वैषम्यता को चित्रित करता है।

गुजराती की दलित कहानियाँ

गुजराती की दलित कहानियों में विट्ठलराय श्रीमाली द्वारा रचित **'सपायडो'** कहानी में डांग प्रदेश के गाँव के परिवेश एवं गरीब दलितों के रहन–सहन खान–पान, वेश–भूषा, कार्यकलाप इस प्रकार वर्णित है–

> **''चारों ओर ऊँचे हरियाली से भरे पर्वत, साग, साल, सीसम, केसुडा और खाखरा के वृक्षों से बनहुआ घना जंगल, बारह मास बहती अंबिका नदी और उसके किनारे पर मिट्टी एवं जंगली लकड़ी से बनी हुई छोटी सादी झोंपड़ी में परिवार के साथ रहता था वेस्ता। उसकी पत्नी रामड़ी और पाँच छोटे बच्चे ही उसका घर संसार था। सौ बाय सौ फुट की जमीन के तीन भाग थे। गाढ़ जंगल से घिरी हुई इस बिन ऊपजाऊ खेती की जमीन में वेस्ता प्रति वर्ष नागली, मक्का और लाल ज्वार की खेती करता था। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजारा हो इतना ही अनाज ऊगता था।**

उसमें से परिवार का पोषण नहीं होता था, इसलिए वेस्ता आस पास के जंगलों से लकड़ी फाटकर ले आता था। उसकी पत्नी रामड़ी उसके गट्ठर बना कर बड़े गाँव में बेचने जाती थी। उसके छोटे नंग धड़ंग बच्चे दिन भर दो भेंस और चार बकरियों को, जंगल में चराने जाते थे।''[23]

इस प्रकार डांग प्रदेश में हर घर में शराब की भट्टी होना, शराब बेचने का व्यापार करना, पेटभर अन्न प्राप्त न होना, दूर–दूर घर होना, शराब पर प्रतिबंध के उपरांत उसका दुरुपयोग करते पुलिस कर्मचारी, आदि वर्णन के माध्यम से लेखक ने संपूर्ण डांग क्षेत्र को सजीव रुप से हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं।

विट्ठलराय श्रीमाली की **'इसमें सीता का क्या दोष ?''** कहानी में गाँव की सीमा पर आए दलित रावणवास में रहते परिवार एवं परिवेश का वर्णन इस प्रकार किया गया हैं–

''रावणवास में, कच्ची मिट्टी में से बनाए गये दस झोंपड़ी थी। प्रत्येक घर के आगे पाँच–छः गधे बँधे होते थे। गधों की लिद्द और मूत्र से रावणवास में एक तरह की दुर्गंध निकलती थी। रावण परिवार इस दुर्गंध के आदी बन गए थे।''[24]

इसके अतिरिक्त रावणवास में तंबूरा, मंजहीर, करताल बजाकर रात्रि के समय भजन गाना, ग्राम्य समाज का भजन सुनने के लिए प्रतिदिन उपस्थित होना, टूटी खटिया, फटी गुदडी, गोबर से घर लीपे जाने की सुगंध, मीठे पानी का कुँआ, गाँव में घडिया विवाह करने की प्रथा, पुरुष प्रधान समाज, पंचायत में एक तरफा न्याय आदि से कहानी का एक साकार परिवेश उपस्थित होता है।

विट्ठराय श्रीमाली की **''भूल किसी की भोगे कोई''** कहानी में अहमदाबाद के मिल में मजदूरी करने वाले परिवार एवं उसके आस–पास के परिवेश को लिया गया है। अनमेल–विवाह, बालविवाह, गरीबी के कारण बेटी को जड़ बुद्धी मिल मजदूर के हाथों सौंपना, पारिवारिक हिंसा, अंधविश्वास, तांत्रिक द्वारा मीर्च का धुँआ करना, अवचेतन मन का जागृत होकर माताजी के रुप में उपस्थित होना, शहर में जुआ, शराब आदि मजदूरों की रोजमर्रा के जीवन में आम बात होना। मजदूरों के परिवार की बस्ती में उनकी दीनचर्या को दिखाया गया है।

विट्ठलराय श्रीमाली की **'सांकडा'** कहानी में ऐसे गाँव को चित्रित किया गया है जहाँ महिला ही बैलगाड़ी हाँकती है और पुरुष के बीमार होने पर खेती, परिवार की जिम्मेदारी उठाती है। घर में छाछ के साथ रात की ठंडी रोती खाना, बच्चों का विद्यालय जाना, सरंपच का नई विचारधारा का होना, न्याय प्रिय होना, सवर्ण युवकों द्वारा दलित महिलाओं का जातीय शोषण किया जाना, पैरों की पैजनी पहनना स्त्रियों के लिए गौरव की बात होना आदि बहुत ही कम शब्दों में लेखक ने उस गाँव के परिवेश का वर्णन किया है।

विट्ठलराय श्रीमाली की **'मुखीया का भांजा'** कहानी में खेतों में दैनिक मजदूरी करने वाली दलितों के रहन–सहन, शिक्षित युवक को जातिगत भेदभाव के

कारण बेरोजगार रहता, सरकार द्वारा रोजगार न दिया जाना, शिक्षित बेकारों की हताशा, अपराध के रास्ते पर बढ़ना आत्महत्या करना, गाँव में रुढ़िचुस्तता, दलित वर्ण के लोगों के प्रति अस्पृश्यता की मान्यता, तिरस्कार की भावना ग्रामीणों की कुंठित विचार धारा आदि को परिवेश के रुप में देखा जा सकता है।

'शैली का व्रत' कहानी में विट्ठलराय श्रीमाली ने परिवेश का वर्णन इस प्रकार किया है–

> **''आषाढ़ महिने की बरसात बरसकर शांत हो गई थी। खाली हो गए बर्तन की तरह, खाली हो गए बादल आकाश में इधर–उधर घूम रहे थे। नवविवाहित के शरीर में से आने वाली मादक सुगंध की तरह ताजी गीली धरती की सुगंध आ रही थी।''**[25]

इसके अतिरिक्त उस सोसायटी में जया पार्वती के व्रत का महत्त्व, पूर्जा, अर्चना, उपवास, इस व्रत के करने से अच्छे वर प्राप्त होने की मान्यता नए वस्त्र पहनकर किशोरियों का बाग–बगीचे में घूमना, मंदिर प्रवेश में दलितों के प्रति किया जाने वाला भेदभाव, दलितों के मंदिर में प्रवेश पर प्रतिबंध लगाना, दूसरी ओर मानव कल्याण आश्रम में सवर्णों द्वारा दलितों को शरण देकर उनकी प्रगति में सहायक बनना आदि से शहरों में भी सवर्णों की मानसिकता को देखा जा सकता है।

बी.केशरशिवम् की **'राती रायण की रताश'** कहानी में एक गाँव के परिवेश में सवर्ण युवकों द्वारा दलित स्त्रियों से अश्लील मजाक करना, दलित स्त्री द्वारा बेहद गंदी गालियाँ देना, साथ ही गाँव के बुजुर्गों से पर्दा करना, गाँव में दलित स्त्री के विद्रोही रुप के समक्ष पुरुष समाज को लाचार दिखाया गया है।

'दाझवुं ते' धरमाभाई श्रीमाली की कहानी में ग्रामीण आदिवासी क्षेत्र में विवाह के अवसर के परिवेश को चित्रित किया गया है। जैसे पेट्रोमेक्ष सिर पर लिए महिलाओं का बरात में चलना, बेंडबाजा, शहनाई का सूर, ढोल का बजना, दुल्हे का सिर पर साफा, साफे में लगी कलगी, कंधे पर मखमली म्यानवाली तलवार, पैरों में जूती। इसी के साथ शराबखाना, पेट्रो मेक्ष के आस–पास घूमते जीवजंतु, गाँववालों का झुंड, मशाल की ज्योत, टोले में सीटी बजना घोड़े पर सवार दुल्हा, तोरण (बंदनबार) आदि। कहानी में आदिवासी प्रादेशिक बोली का उपयोग किया गया है, जिसमें गालियों का भी समावेश देखा जा सकता है।

पुष्पा माधड़ की **'गोमती'** कहानी में पृथ्वीलोक के साथ स्वर्गलोक के परिवेश को भी देखा जा सकता है। जहाँ इन्द्र की सभा, गंधर्व का संगीत, अप्सराओं का नृत्य, देवराज इन्द्र, देवर्षि नारद, अमृत कटोरे की उपस्थिति है। पृथ्वीलोक में दलितोद्धार के लिए दलितों को मिलने वाली सहायता, बलात्कार होने पर मिलने वाले रुपयों में होने वाली बढोत्तरी, मंदिर में बलात्कार, गाँववालों द्वारा किया जाने वाला बहिष्कार आदि।

डॉ. मोहन परमार की **'थड़ी'** कहानी में आदिवासी ग्रामीण परिवेश को चित्रित किया गया है। जहाँ धान कूटना, ओखली–मूसल, गोबर से लीपा हुआ आँगन, वणकर–चमारों का मोहल्ला, स्त्री–पुरुषों का अपने समाज के बड़े बुजुर्गों के प्रति आदर, मज़दूरी के लिए गाँव छोड़ते जवान, आंगन में टूटे हुए खिलौने से और कंची से खेलता

बच्चा, हसिया, कटाई पर जाते ग्रामीण, अंधकार में भरी रसोई की कोठरी, पतरे की संदूक, दीवारों की दरारें, खेतों में बनी मचिया, सवर्णों में सामाजिक मर्यादा के खोने का भय, जाति में बेटी के विवाह की चिंता आदि। लेखक ने परिवेश के अनुरुप आदिवासीयों की प्रादेशिक बोली का प्रयोग किया है।

मधुकान्त कल्पित की **'लाखु'** कहानी का परिवेश एक गाँव का है, जहाँ मुहल्ले में धना नीम का पेड़, इमली का पेड़, उसकी छाया में बैठते पशु, तालाब की मिट्टी से लथपथ भैंसें अपने घर कि ओर जातीं, एक कतार में बने दलितों के घर, घर के पतरे की छत पर जंग के चिह्न, बंदरों से रक्षण हेतु नलिए वाले छतों पर कँटीली जाली बाँधी जाती थी, कितने मिट्टी के घर मात्र घास–फूस के बने थे। झोंपड़ी में फानूस की पीली रोशनी, टूटी खटिया, सुबह–सुबह मजदूरी के लिए जाते ग्रामीणजन, अपने साथ पोटली में गाद्य पदार्थ बाँधे, सिर पर जरुरी सामान लेकर घर से निकलते लोग आदि से उस गाँव का परिवेश हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

हरिपार की **'सोमली'** कहानी की शुरुआत में कोर्ट के परिवेश को चित्रित किया है, जहाँ न्यायधीश, वकील आदि हैं साथ ही कटघरा भी है। गुजरात के आदिवासी क्षेत्रों में शराब के व्यापार, गैरकानूनी शराब का धंधा, जबरन नाबालिग दलित बच्चों को सवर्णों के घर पशु चराने की विवशता, गुलामी के बदले मिलने वाली जूठन, पुराने कपड़े, दलितों को सरकारी सहायता जैसे कुँआ, बैल, खादी की साड़ी पर सवर्णों का कब्जा होना, पीढ़ी–दर–पीढ़ी किया जाने वाला दलित का शोषण दलितों में विवाह के अवसर पर कन्यादान में दी जाने वाली गाय की प्रथा, नववधु का सवर्ण पुरुषों द्वारा किया जाने वाला परंपरागत जातीय शोषण, पात्रों द्वारा आदिवासी बोली का उपयोग आदि से उसे गाँव के वातावरण एवं परिवेश को जाना जा सकता है।

हरीश मंगलम् की **'दायण'** कहानी की शुरुआत गुजरात की साबरमती नदी के किनारे के परिवेश के वर्णन से शुरु होती है। साबरमती के किनारे कतारबंद वृक्षों की हरियाली, लाल सूरज का उदय, आंबेडकरवास में से निकलते लोगों का समूह मजदूरी के लिए खेतों की ओर जाना, दलितों की अंधेरी कोठरी फलों की खरीदी दलितों की पहुँच से दूर होना, गाँव में आज भी दाई द्वारा की जानेवाली प्रसव–सेवा, सवर्णों द्वारा दलितों के प्रति बरती जाने वाली अस्पृश्यता, सूर्य को काले बादलों में घिरा दिखाना आदि।

डॉ.केशुभाई देसाई की **'बोटेली वस'** कहानी में गुजरात के इडर शहर के परिवेश को लिया गया है जहाँ सोसायटी में सफाई कर्मचारियों द्वारा सफाई करना, बदले में रात का बचा हुआ भोजन, पुराने कपड़े, टूटे हुए कप में चाय देना, कप टोयलेट की खिड़की पर रखना, पीछे के रास्ते से सफाई के लिए आना–जाना, तुलसी के पौधे न छूना, कपड़ों को न छूना, शहर में मुँह माँगी पगार माँगने वाली नौकरानियों की समस्या, अस्पृश्यता, गरीबी, भुखमरी, अधिक संतान आदि दलितों के लिए आज भी एक बड़ी समस्या है। इन सारे वर्णनों से इडर की एक सोसायटी का परिवेश उभरकर हमारे समक्ष आता है।

बी. केशरशिवम् की **'रामली'** कहानी में गुजरात के शहर में फैली प्लेग की बीमारी एवं उस बीमारी में सफाई कर्मचारियों की स्थिति एवं परिवेश को चित्रित किया गया है। जैसे गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी समाचार देखने के लिए दलित की झोंपड़ी में टी.

वी. के समक्ष भीड़ का उमटना, शहर में मनुष्य से ज्यादा कचरे अधिक दिखाई देना, शहर में दलितवास में दिनभर मलमूत्र का दुर्गंधयुक्त वातावरण, चारों ओर गंदगी का जत्था, गटरों का भरना, जगह के अभाव में गटर पर खटिया रखकर सोने की विवशता, शहर में वी.आई.पी. लोगों की बैठक, उनके होस्पिटल का निरीक्षण, मरीज़ों से बात–चीत, शहर छोड़ते लोगों की भीड़, रेलवे स्टेशन, बस स्टोप पर उनकी चेकिग के काऊँटर, चूहों से बड़े आदमियों का डरना, लेबोरेटरी में एक साथ दो सौ चूहों को जीवत ही जला देना, स्कूल, परीक्षा, सिनेमाघर, दुकान, काम धंधा, मिल, फेक्ट्री, आदि बंद एवं विवाह और जन्मदिन का उत्सव मनाना भी बंद हो जाना, सफाई कर्मचारियों का सफाई न करने पर सस्पेन्ड करने की धमकी, दलितों को प्लेग से ज्यादा चिंता नौकरी की होना आदि।

बी.केशरशिवम् की **'जेल की रोटी'** कहानी में सीतापुर गाँव की बस के लिए धक्का–मुक्की करते लोग, खिड़की से बच्चों को बस में चढ़ाते लोग, अस्पृश्यता, भगवान की मूर्ति की चोरी, विद्यालय में पढ़ते दलितों के कारण विद्यार्थियों का घर पर जाकर पानी के छींटे लेना, दलित विद्यार्थी को पीने का पानी न मिलना पानी पीने के लिए दलितों को अपने मोहल्ले में घर पर ही जाने की विवशता, परंपरागत छींटे लेने की प्रथा, दलित शिक्षित युवकों की बेरोजगारी, शिक्षित दलित युवकों को भी खेती एवं मजदूरी करने की विवशता, ग्रामीणों से उन्हें मिलने वाला तिरस्कार, उपालंभ, मज़ाक उड़ाया जाना, बेरोजगारों का ड्रग्स और शराब बेचने के व्यापार के प्रति बढता कदम। बुद्ध पूर्णिमा की चाँदी जैसे उजाले में तालाब के पास मंदिर, तालाब में चंद्र की किरणों का आह्लादक दृश्य, दलितों के मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध, प्रवेश करने पर उसके परिवार ही नहीं संपूर्ण दलित बस्ती का सामूहिक बहिष्कार किया जाना, मारपीट करना, मोहल्ला जलाना, दलित स्त्री का सामूहिक बलात्कार, जिंदा जलाया जाना, क्रूर हत्या, सवर्णों का अत्याचार एवं प्रशासन की नज़रअंदाजी। आदिवासी बोली का प्रयोग कहानी में किया गया है।

बी.केशरशिवम् की **'कमली'** कहानी में गुजरात के शहरी परिवेश में मजदूरी के लिए आदिवासियों की बढ़ती संख्या, घर, बिल्डींग के निर्माण कार्य में उनकी मजदूरी, मजदूरों का परिश्रमी जीवन, इलेक्ट्रिक मशीन से पानी बनते मकानों पर छाँटना, निर्माणकार्य के अंतर्गत की जाने वाली लापरवाही के कारण मजदूरों की मौत, बदले में उन्हें कोई हरजाना न मिलना, आदिवासी महिलाओं में शरीर के ढँके जाने वाले अंग को न ढँककर घूँघट करके परिवार के पुरुषों से पर्दा करने की परंपरागत प्रथा, आदिवासियों में अन्य त्यौहारों से अधिक होली के त्यौहार का अधिक महत्त्व होना। आदिवासी महिला का खुले स्थल पर उघाड़े बदन स्नान करने में संकोच न करना आदि से शहरों की ओर दलितों का पलायन एवं बहाँ उनकी दीनचर्या को देखा जा सकता है। शुद्ध गुजराती एवं आदिवासी बोली का मिश्रण किया गया है।

बी.केशरशिवम् की **'शहर की बहू'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में दलितों के मोहल्ले में महिलाएँ घर पर ही हाथ की चक्की से अनाज पीसती हैं, कुँए से पानी भरती हैं, रंगबीरंगी मोतियों से भी उड़ली सिर पर रखकर उस पर घड़ा रखती हैं। कवेलु के टुकड़े बीनकर उन्हें निर्माण कार्य के लिए बेचना, रेलवे की पटरी से आधे जले हुए कोयले बीनकर उन्हें पीसकर तालाब की काँप लाकर उनके साथ कोयले के बुरे को

मिलाकर उनके उपले बनाकर सुखाती। सीगड़ी में उन्हें ईंधन की तरह उपयोग में लेतीं, कपास के छिलके न फेंककर उसे पीसकर गोबर के साथ मिलाकर उसके उपले बनाकर सुखाती वर्षाऋतु में जब लकड़ियाँ गीली हों तो ये उपलों में से भोजन पकाती, खेती में जुताई–बोआई के साथ खरपतवार निकालने की मजदूरी करतीं साथ ही निर्माण कार्य में मजदूरी भी करतीं। गाँव में आरक्षण के मुद्दे पर हिंसा भड़कना, दलितों को घेरकर सवर्णों द्वारा उन्हें पीटना, पत्थरों की बरसात करना, लाठी से मारना आदि।

बी. केशरशिवम् की **'पोक'** कहानी में एक दलित मोहल्ले का वर्णन है, जहाँ गरीबी के कारण लोग गुड़ की चाय पीते हैं और मेहमानों को शक्कर की चाय पीलाते हैं। चाय के साथ रात की बची हुई बाजरे की रोटी खाते हैं। रात की रोटी सूखकर कड़क हो जाती है, फिर भी लोग तीन–तीन दिन की सुखी रोटी भी खाते हैं। खेत में पुरुषों के साथ महिलाएँ भी मजदूरी करती हैं, जहाँ सवर्ण उनके साथ गाली से बातें करते हैं। जबकि कुछ दलित रास्ते की पोलीथी, प्लास्टिक के टुकड़े, पुराने स्लीपर, चप्पल, हड्डी, कागज बीनकर उन्हें भंगार में बेचकर सात–आठ रुपये कमाते हैं। दलित महिलाओं को सवर्णों द्वारा छाछ दी जाती है, जिसके लिए उन्हें अपनी निश्चित बारी वाले दिन ही छाछ मिलती है, ताकि सभी को छाछ मिलने का अवसर मिल सके, यह छाछ सवर्ण महिला द्वारा इस प्रकार दी जाती है, जिससे दलितों का बर्तन उसे स्पर्श न कर सके। दलित महिलाएँ मजदूरी से लौटते हुए अपनी टोकरी में रास्ते में मिलने वाले गोबर, लकड़ी के टुकड़े आदि ईंधन लेकर आती हैं। रोटी के साथ प्याज खाई जाती है, कोई सब्जी घर पर बनना किसी त्यौहार से कम नहीं होता। आरक्षण के मुद्दे पर होने वाले झगड़े में गरीब दलितों को चोट पहुँचाई जाती है। कहानी में गुजरात की बोली का प्रयोग किया गया है।

स्वप्निल मेहता की **'कदाच'** कहानी में गुजरात के पंचमहाल जिले के एक गाँव का परिवेश लिया गया है, जहाँ गरीब आदिवासी की झोंपड़ी आग की लपटों में जलने लगती है, सवर्ण धन प्राप्ति की लालसा में राजनीति में प्रवेश करते हैं, वे दलितों का राजनीतिक लाभ के लिए उपयोग करते हैं। दलितों को झोंपड़ी बनवाकर राजनीतिक कार्य में उनका उपयोग करना, उन्हें खादी का पजामा–कुर्ता, साड़ी देना आदि। ठंडी में सुबह की कोमल ओस द्वारा दलित की जली हुई झोंपड़ी की आग को बुझाने का सफल–असफल प्रयत्न करना, सवर्णों की अवसवादीता, दलितों की भुखमरी, गरीबी, दीनहीन दशा, भोलापन को लेखक ने आदिवासी बोली में प्रस्तुत किया है।

वसंतलाल परमार की **'एक छालियु दालने खातर'** कहानी में सुमेरपुर नामक गाँव में एक ओर जमींदार की हवेली उसके समक्ष चोक दूसरी ओर चमारों का मोहल्ला, चमारों के मुखीया द्वारा सवर्ण जमींदार को चार हाथ दूर से ही जमीन पर हाथ छूकर उन्हें सलाम करने का रिवाज़ दलितों का परंपरागत रुप से सवर्णों के पशुओं को चराने की गुलामी करना, बदले में मक्का की सूखी रोटी मिलना, समाज के नियम तोड़न वालों को झोंपड़ी तोड़ना, गाँव से बाहर निकालना समाज के लोगों का भोज करवाना जैसे दंड दिए जाना। विधवा दलित महिला का पुर्नविवाह या दूसरे पुरुष को स्वीकार करने पर समाज की सहमती मिलना। अकेली रहनेवाली विधवा पर समाज द्वारा लांछन लगाना, उस पर शंका करना, अत्यंत गरीबी को परिवेश के रुप में देखा जा सकता है।

जयंतीलाल पी. दाफड़ा की **'दो बीघा जमीन'** कहानी में गाँव में सूर्यास्त के समय का वर्णन जिसमें प्रकृति के साथ पशुओं का वर्णन भी है। खेतों से घर की ओर लौटते बैलगाड़ी में लगे बैलों के गले में घंटीयों की आवाज़, मजदूरों का बैलों के साथ घर की ओर लौटने का दृश्य, उनके फटे कपड़े, फटी हुई पगड़ी वहाँ के परिवेशगत स्थिति को चित्रित करती है। गाँव में मृत व्यक्ति से कर्ज़ लेने की विवशता, बदले में पाँच कई वर्षों तक बेगार करने की मजबूरी, दलितों की जमीन पर मुखीया का जबरन अधिकार करना, पुलिस द्वारा सर्वर्णों का साथ देकर दलितों पर अत्याचार करना, उन्हें झूठे आरोप में फँसना आदि। कहानी में लेखक ने आदिवासी परिवेश के अनुरुप आदिवासी बोली का प्रयोग किया है।

डेनियल मेकवान की **'लोही नी लागणी'** कहानी में दलित युवती दैनिक मजदूरी करके सात भाई–बहनों को शिक्षा देना एवं भरण–पोषण की जिम्मेदारी उठाकर परिवार को सहायक बनती है। समाज गाँव में सवर्णों का बोलबाला दलितों की दीनहीन दशा, गरीबी को चित्रित किया गया है।

जोसेफ मेकवान की **'रोटलो नज़राई गयो !'** कहानी में गुजरात के आदिवासी परिवेश में मजदूरों के मोहल्ले को चित्रित किया गया है, जहाँ दलित महिला गिनकर चार बाजरे की नमक डालकर रोटी बनाती है। साथ में प्याज, लहसून खया जाता है। शहर की स्कूल में दलित बच्चे की बाजरी की रोटी का सवर्ण बच्चों द्वारा तिरस्कार करना। एक ओर पुराने डब्बे में बाजरे की रोटी दूसरी ओर स्टील, या तो सुंदर रंगीन प्लास्टिक के डब्बे में पूड़ी, घी से चिपड़ी रोटी, सेन्डवीच आदि व्यंजन। दलित स्त्री–पुरुषों की दैनिक मजदूरी करना, सरकार द्वारा एक समय का भोजन देने की योजना को शुरु करके अचानक बंद करने पर गरीब मजदूरों की स्थिति बिगड़ना, परिश्रम के अनुपात में मजदूरी न मिलना, भरपेट भोजन न मिलना, मँहगाई का बढ़ना, पेट पर पट्टा बाँधर बच्चों को शिक्षा दिलाना, बीस मील चलकर स्कूल पहुँचना, लालटेन की रोशनी में पढ़ना स्कूल में दलित बच्चों के प्रति सवर्ण बच्चों एवं शिक्षकों का भेदभाव पूर्ण व्यवहार, इलाज के लिए रुपयों का अभाव आदि।

प्रज्ञा पटेल द्वारा रचित **'सगपण'** कहानी में शहर के दलित मोहल्ले एवं एक अस्पताल के परिवेश को लिया गया है। बरसात का मौसम दिन में सफाई कर्मचारी एवं दोपहर एवं रात में अस्पताल में डयूटी करने वाले दलित, बेटी की बिदाई में देने के लिए वस्तुएँ एकत्र करना, डॉक्टर द्वारा दलित युवती पर बलात्कार एवं हत्या करना, दलित को न्याय न मिलना आदि से शहर में होने वाले गरीब दलितों की स्थिति हमारे समक्ष आती है।

प्रवीण गढवी की **'दरुपदी'** कहानी एक ऐसे गाँव के आदिवासी परिवेश को लिया गया है, जहाँ के दलित स्त्री–पुरुष मजदूरी करते हैं, वर्ष में आठ महीना एक समय का भोजन उन्हें सवर्णों से मिल जाता है, जबकि रात्रि के भोजन में खिचड़ी आदि बनायी जाती है। मोहल्ले में किसी के घर पशु खरीदा जाता तो भी कटोरा भरकर भोजन मिल जाता है। गाँव के अधिकतर दलित पुरुष जुआ खेलते, शराब पीते, पत्नी के गहने गिरवी रखते, ठाकुर, भील, बंजारे, पटेल आदि भी शराब पीते। सवर्ण दुकानदार दलितों से सामान के पैसे पर पानी के छींटे मारते फिर उसे उठाते थे, जरुरत से ज्यादा परिश्रम करवाने पर मजदूरों को टी.बी. की बीमारी हो जाती, आंकड़ा, मटका जैसी जुए की

आदतों से पानी को भी गिरवी ही रख दिया जाता जिसका जातीय शोषण सवर्ण करते अपने प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखाने के लिए राजनीति के चलते दलित महिला को सरेआम निर्वस्त्र करके घुमाया जाता। उन्हें चरित्रहीन समझा जाता अर्थात् सवर्णों के पाप का दण्ड भी दलितों को ही दिया जाता। परिवेश के अनुरुप आदिवासी बोली का उपयोग किया गया है।

प्रवीण गढ़वी की **'सपाटु पेरवानु मन'** कहानी में गुजरात के आदिवासी क्षेत्र के एक गाँव के परिवेश को चित्रित किया गया है, सवर्ण दलितों से छुआछूत बरतते हैं, किन्तु दलित युवतियों के स्पर्श का आनंद भी लेना चाहते हैं। दैनिक मजदूरी, ईंधन रास्ते से बीनकर लाना, गाँव में तालाब, आकाल की स्थिति में कम मजदूरी पर मजदूरों से काम लेने वाले सवर्ण जैसे तीसरी मंजिल पर घड़ा भरकर पानी भरना, मिट्टी, सिमेन्ट, ईंट आदि चढ़ाना। आदिवासी क्षेत्रों में पूनम के दिन मेला लगना एवं मेले को अधिक महत्त्व होना, आदिवासियों में झूले पर बैठने की उत्कंठा, सवर्णों के मोहल्ले में दलितों को चप्पल पहनकर नहीं जाने की इजाजत मिलना, उन्हें ऐसा करने पर सिर पर चप्पल रखकर जाना पड़ता था, साईकिल पर से भी उतरकर जाना पड़ता था, रास्ते के बिल्कुल किनारे पर दबकर चलना पड़ता था, सिर पर पल्लू ढ़ँककर चलना पड़ता था, दलित सवर्ण के घर पानी नहीं माँग सकते थे, सवर्णों का दलित युवतियों को मेले में ले जाने, चीज वस्तुएँ दिलाने का लालच देकर उनका जातीय शोषण करना आदि। आदिवासी बोली का प्रयोग किया गया है।

प्रवीण गढ़वी की **'दीकरा नी बहु'** कहानी में एक गाँव के सवर्ण एवं दलित समाज के परिवेश को लिया है, जहाँ सवर्ण बकरी पालते हैं एवं बकरी के दूध की चाय पीते हैं, ब्राह्मण समाज में विधवा विवाह की हिंमत किसी में नहीं ऐसा करने वाले को गाँव से निकाल दिया जाता था, विधवा का पुर्नविवाह करने पर उन्हें समाज से हमेशा के लिए उन्हें अपना क्षेत्र छोड़ना पड़ता था, निकाल दिया जाता था। विवाह के लिए दलित युवती को ब्राह्मण समझकर खरीदना, उस पर जातिगत शंका करना, अस्पृश्यता की भावना, दलित के स्पर्श किए गए भोजन को ग्रहण करने में पाप लगने का भय कहानी में आदिवासी क्षेत्र में युवतियों की खरीदी, बीक्री करना, समाज से निकाले जाने पर ब्राह्मण परिवार में रहने वाली जातिगत अंहकार आदि।

बी. केशरशिवम् की **'रुपा का पानी'** कहानी में एक नलसरोवर के किनारे बसे हुए गाँव का परिवेश लिया गया है। इस गाँव में सरकार ने स्वैच्छिक संस्था से सहायता लेकर ग्रामीणों को एक कमरे का कवेलु वाला घर बनाकर दिया है। उसके चारों ओर मिट्टी की दीवार, उस पर गोबर से लीपा गया था, उन दीवारों पर चित्र बनाए गये थे, दरवाजे के चारों ओर सितारे लगाए थे, गाँव में बस्ती ज्यादा थी, एक घर में दस–बाहर बच्चे थे। नलसरोवर के किनारे की जमीन खारी होने के कारण बिनऊपजाऊ थी, उसमें जंगली पौधे के अतिरिक्त बंटी नामक अनाज ही उगता था, जिसकी लोग रोटी बनाते थे। । थेक नामक वनस्पति भी वहाँ उगती थी। मच्छरों, जंगली जानवरों का उत्पात था, मछली, बतक आदि देखे जाते थे, नलसरोवर को सरकार ने अभयारण्य बना दिया था, तब से सैलानियों ही संख्या बढ़ने लगी थी, कान में बीड़ी लगाते मजदूर, जीप भरकर मजदूरी करने जाते मजदूर, सरकार ने दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए पचास प्रतिशत सबसिडी देकर उन्हें जीप दी थी, किन्तु सवर्ण दलितों को पाँचसौ रुपये देकर उनका अंगुठा लगवाकर जीप हथिया लेते थे और लोन का हप्ता स्वयं भरते

थे। गाँव में पानी की किल्लत, तीन मील दूर पानी लेने की लाचारी, सवर्णों की लोलुप दृष्टि आदि।

बी. केशरशिवम् की **'राजीनामु'** कहानी में शहर के एक कॉलेज परिवेश को लिया गया है, कॉलेज केम्पस, स्टाफ, विद्यार्थी एवं अभिभावकों का हड़ताल पर उतरना, दलित युवती से त्यागपत्र जबरन माँगना, बिदाई सभारंभ, दलित युवती का ब्राह्मण युवक से प्रेम को कॉलेज परिवार द्वारा न स्वीकारना, दलित जाति के अध्यापकों द्वारा षडयंत्र रचकर दलित अध्यापिका को मानसिक यातना देना, विद्यार्थियों की शक्ति का दुरुपयोग करना आदि। कहानी में शुद्ध गुजराती भाषा का प्रयोग है।

बी. केशरशिवम् की **'चामड़ी घसावानी वेदना'** काहनी में फुलपुरा गाँव एवं शहर दोनों का परिवेश लिया गया है। फुलपुरा गाँव में दलित स्त्रियों पर पुरुषों का अत्याचार खुलेआम होना, पानी, बीजली की सुविधा न होना, दलित समाज के बच्चों में शिक्षा का अभाव, सरपंच से शिक्षिका का शारीरिक संबंध, शिक्षिका का समाज सुधार एवं दलितोद्धार के लिए कॉलगर्ल बनना, गाँव की स्कूल में इर्ष्या खने वाले शिक्षकगण प्रामणिक दलित ऑफिसर को उन्हीं के साथियों द्वारा एन्टीकरप्शन के जाल में फँसाना, सस्पेन्ड करवाना लंबे समय तक चलने वाली कानूनी प्रक्रिया के कारण अर्धपागल अधिकारी का आत्महत्या करना, समाज में पति बिना की स्त्री के साथ छूट लेता पुरुषवर्ग, विवाह से पहले शारीरिक संबंध बनाने वाले युवा, जातिगत झगड़े से होने वाली हानि।

बी. केशरशिवम् की **'आँखो खुली गई'** कहानी में अहमदाबाद में चलने वाली मिलों, मिल मजदूरों के लिए बनाए गए कतारबंद घर, कांकरीया तालाब, नगीनावाड़ी का बगीचा, भेलपुरी, पानी पुड़ी, मिलों के बंद होने पर भूख का नग्न तांडव, मिलमजदूरों का अगरबत्ती, बीड़ी आदि के काम से गुजारा करना, खेतों में मजदूरी करना एवं आत्महत्या के प्रयास। बच्चों के मिट्टी के खिलौने, विवाह में महंगी साड़ी, बेटी की बिदाई में परिवार के साथ, रिश्तेदार, पड़ोसी, सखियों के आँखों में अश्रु आना, माँ का बेहोश होना, पारिवारिक झगड़े, हिंसा, विवाह के बाद बेटी का असली घर ससुराल होने की सामाजिक मान्यता एवं कठोरता, बेटी को त्यौहार पर साड़ी, बर्तन देने का रिवाज़ मिल की केन्टीन में दलितों के लिए पानी एवं चाय की अलग सुविधा, अस्पृश्यता, भेदभावपूर्ण व्यवहार, सत्याग्रह करते दलित, होटल प्रवेश तथा मंदिर प्रवेश के लिए दलितों का सत्याग्रह शिक्षित दलितों का समाज से संबंध टूटना, हीनता आना, ऐश–आराम के लिए समाज को दगा देते दलित, गरीबी, पारिवारिक संबंधों में आती दूरियाँ, आधुनिकता की दौड़ में स्वार्थी होती युवा पीढ़ी आदि। कहानी में गुजराती भाषा का प्रयोग किया गया है।

बी. केशरशिवम् की **'मेना'** कहानी में नदी के किनारे बसे गाँव के परिवेश में सरकार द्वारा दलितों की माँग पर दी गई नदी के किनारे की एक–एक एकड़ जमीन, नदी में से रेती निकालकर, क्यारी बनाकर उसमें तरबूजा, खरबूजा लगाते लोग, ईंट का चूल्हा, टूटे हुए तवे पर बनती रोटी, नमी वाली भूमि खोजकर उसमें खाद डालना, वर्षा ऋतु में सब कुछ बह जाना, प्रत्येक वर्ष दलितों का यही कार्यकलाप, हमेशा हाथ में फावड़ा रखना, नदी के दोनों ओर बाँस के पेड़, खुले आकाश में सोते बच्चे, बांध का पानी अचानक छोड़ने से मरते लोग, गाँव में दलितों से साग–सब्जी कोई सवर्ण नहीं

खरीदता, इसलिए शहर में टोकरी सिर पर रखकर साग बेचते दलित, खाद, बीज आदि के लिए मूड़ी की समस्या, सगे–संबंधी सभी की आर्थिक स्थिति का दयनीय होना, बीज–खाद के व्यापारियों द्वारा कागज पर अंगूठा लगवा, कर उनका आर्थिक शोषण करना, अधिक ब्याज वसूलते व्यापारी भाव एवं वनज के बगैर ही दलितों से आलू वगैरह अपनी शर्तों पर लूटते सवर्ण व्यापारी, परिश्रम करने वाले के हाथ में आधी रोटी और गद्दी, तकिये पर ठंडक में बैठने वालों के हाथों में पकवान, नदी के किनारे शराब का धंधा करते लोग, शराबी लोगों का उत्पाद, स्कूल का अभाव आदि।

बी. केशरशिवम् की **'डाईग डेक्लेरेशन'** कहानी में गुजरात के आदिवासी क्षेत्र के एक गाँव के परिवेश को लिया गया है, जहाँ गरीब आदिवासियों को व्याज पर उधार रुपये देकर उसके पूरे परिवार से वर्षों तक पारिश्रमिक वसूला जाता था किन्तु उधार की रकम दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ती जाती थी। पुरुषों को खेत में और स्त्रियों को अपने घर में सुबह से घर का पानी भरना, बर्तन माँजना, कपड़ा धोना, पशुओं को चारा देना, गोबर साफ करना, नीम के पत्ते जलाकर मच्छरों को चारा देना, गोबर साफ करना, घर का अनाज साफ करना आदि काम करवाकर बदले में एक समय का भोजन, पुराने कपड़े एवं पच्चीस रुपये महीने के मिलते। इसके अतिरिक्त परंपरागत रुप से चलता आर्थिक, जातीय शोषण, शराबी पुरुषों के अत्याचार, आदिवासियों के विवाह के अवसर पर सगे–संबंधियों को नए कपड़े देने का रिवाज, सिर पर कलगी लगा साफा बाँधे दुल्हा, हाथ तलवार, पैरों में जूता भोज का आयोजन, हल्दी की रस्म में देवर–भाभी एक दूसरे से हल्दी खेलते, विवाह के अवसर पर कर्ज़ लेना पनियारी की प्रथा आदि। कहानी में आदिवासी बोली का प्रयोग किया गया है।

बी. केशरशिवम् की **'जोगणी'** कहानी में शहर एवं ग्रामीण परिवेश में दलितों के रहन–सहन एवं स्थिति को देखा जा सकता है। गाँव में दलितों को अस्पृश्यता, अपमान, गालियाँ सुननी पड़ती, जातिगत झगड़े में घर जलाए जाते, आरक्षण के मुद्दे पर उन्हें पीड़ित किया जाता, रोजी–रोटी की अधिक मुश्किलें आतीं। शहर में जाति–पाँति का भेदभाव कम था किन्तु रहने के लिए दलित मोहल्ले में ही झोंपड़ी मिल सकती थी। कोई हाथलारी खींचता, कोई प्लास्टिक के टुकड़े बीनता, कोई अगरबत्ती बनाता तो कोई मजदूरी करता, बीमारी, गरीबी, हर घर की मुसीबत थी। अकेली युवा स्त्री मायके एवं ससुराल में चिंता का विषय बनी रहती है। शहर में भी लाज बचाने के लिए घूँघट निकालना, हाथ लारी के नीचे झूले में बच्चे को लिटाना, स्त्री द्वारा हाथलारी खींचना, वर्षाऋतु में बीजली का चमकना, मिट्टी के तेल से दीया जलाना, दुकानदारों की कुदृष्टि, आरक्षण के दंगे भड़कना आदि।

बी. केशरशिवम् की **'मंकोड़ा'** कहानी एक गाँव के दलित मोहल्ले के परिवेश को चित्रित करती है। सरकार द्वारा दलितों को मकान बनाने के लिए लोन देकर मकान बनवाना, एक वर्ष के भीतर ही दीवारों में दरारे, सिमेन्ट की जगह मिट्टी का इस्तेमाल, घर में से बिच्छू निकलना, नजदीक पोखर होने से बरसात में मकान डूबने का भय, लोन का हप्ता भरना, अंधविश्वास पूर्ण समाज, चींटी के काटने पर घांसीमा नामक देवी की मानता रखना, प्रसाद चढ़ाना, महिलाओं का घर एवं खेत में मजदूरी करना, सवर्ण पुरुषों का दलित स्त्रियों पर जातीय शोषण एवं हत्या करना, दलित पुरुषों की भीरुता, विवाह में हल्दी खेलने का रिवाज, चोट पर हल्दी का लेप लगाना, पारिवारिक

हिंसा, सुख–दुख में मोहल्ले का एकजुट होना आदि। कहानी में गुजराती बोली का प्रयोग किया गया है।

बी. केशरशिवम् की **'भोरींग'** कहानी एक गाँव के परिवेश को चित्रित किया गया है, जहाँ बच्चे घर के ईंधन के लिए लकड़ी, गोबर को टोकरी में बीनकर लाते, घर आकर गोबर के उपले बनाते, रास्ते में से ऊँट, गधे, हाथी, भेड़, बकरी, घोड़े आदि की लीद ले आते। कपास के छिलके को पीसकर उसे गोबर में मिलाकर उपले बनाते, खेतों में अनाज की सूखी लकड़ियाँ बीन लाते। गाँव में स्त्री–पुरुषेां का अनैतिक संबंध, दलित बच्चों का पशुओं की हड्डियाँ एकत्र कर बेचना, बाजरी की रोटी एवं दलिया खाना, चावल का अभाव, स्त्री–पुरुषों का मजदूरी करके भी पेट भर अनाज न मिलना, चावल के लिए बर्तन बेचना, भूखे पेट नींद न आना, अस्पृश्यता पूर्ण वातावरण, भूखे बच्चों का मक्का के कोमल छिलके खाना, मजदूरी के बदले रुपये न देकर जूठन देना, पुजारी एवं अन्य सवर्ण व्यक्तियों द्वारा दलितों को गालियाँ देकर ही बात करना आदि। आदिवासी परिवेश के अनुरुप आदिवासी बोली का प्रयोग किया गया है।

प्रवीण गढ़वी की **'गांठाण'** कहानी में एक ऐसे गाँव का परिवेश लिया गया है, जहाँ पशुओं के नाम तो रखे जाते थे, उनसे सभी प्रेम से व्यवहार करते, किन्तु दलितों को न तो अच्छा नाम रखने का अधिकार था, न ही उन्हें मनुष्य समझा जाता था। दलितों से बेगार करवाना बदले में जूठन, दूर से ही विशिष्ट एक ही पतरे के डब्बे में छाछ देना, पाँच सौ से अधिक निशान वाला डब्बा, बाजरे की रोटी मीर्च से खाना, पशओं की चमड़ी बेचना, दो–तीन दिन तक मरे पशुओं का मांस खाकर गुजारा करना, बचे हुए मांस को सूखाकर बाद में उसका भोजन के रुप में उपयोग करना, पटेलों का पालित पशु भेंस के प्रति प्रेम। दलितों के पास न खेत, न घर, था। आर्थिक अभावों के कारण दलित बच्चों का शिक्षा से वंचित रहना, ईधन एकत्र करने की समस्या, अस्पृश्यता, दलित स्त्री का सवर्ण द्वारा अपमान किया जाना, गाँव में अंधविश्वास के रुप में जीन पर विश्वास, मुसलमान के पीर की दरगाह पर जाना, सीकड़ से स्त्री को पीटना, तांत्रिकों का मुर्गी माँगना, नारियल, उड़द की दाल माँगना, भूत उतारने के नाम पर लोगों को लूटना। यहाँ लेखक ने संयमित निरुपण करके उस गाँव की नास्तवित सामाजिक स्थिति को हमारे समक्ष चित्रत किया है।

प्रीतम लखलाणी की **'फट रे भूंडा'** कहानी दलितों का मोहल्ला गाँव की सीमा पर होना, जन्माष्टमी पर गाँव के लोगों का नज़दीक के शहर में मेले में जाना, सिनेमा देखना, सवर्णों द्वारा दलित कुमारियों का शारीरिक शोषण, गाँव में नवरात्रि के अवसर पर शहरनाई, ढ़ोल बजना, सवर्णों के मोहल्ले में माताजी के मंडप खंभों को रंगों से सजाना, सितारों से सजाना, अस्पृश्यता, सर्पदंश वैध के अतिरिक्त ओझा पर विश्वास आदि।

दलपत चौहान की **'गंगामा'** कहानी में एक ऐसे गाँव के परिवेश को लिया गया है, जहाँ अस्पृश्यता, ऊँच–नीच का भेदभाव प्रसव के समय दलित स्त्री के दाई के कार्य में अत्यधिक कुशलता, दलितों के स्पर्श पर सोने गहने को पानी में डालकर उस पानी से घर का शुद्धीकरण करना, दलित दाई द्वारा स्पर्शी वस्तुओं जैसे चादर, गुदड़ी आदि को गरीबों को बाँट देना, सवर्णों द्वारा घर में शुभ प्रसंगों पर दलितों एवं गरीबों को दान, शुभ प्रसंग पर गुड़ बाँटना, साड़ी बाँटना, दलित स्त्रियों का सवर्णों द्वारा जातीय

शोषण, दलितों की निःस्वार्थ सेवा के बदले सवर्णों की क्रूर मानसिकता, का परिवेश देखा जा सकता है। उत्तर गुजरात की बोली का प्रयोग कहानी में किया गया है।

दलतप चौहान की **'मुंझारो'** कहानी में उत्तर गुजरात के एक गाँव में दलितों के एक मोहल्ले के परिवेश को लिया गया है। जहाँ अत्यंत गरीबी, दलितों द्वारा मृत पशुओं ढ़ोना, काटना, खाना, कुत्ते, गीध का मँडराना, मृत पशुओं को काटने पर रक्त का फूट पडना, सवर्णों द्वारा पाँच किलो बाजरी की लालच देकर बीमार पाड़े को दलित को सौंपना, ग्यारस का महत्त्व, चीलम पीना, सवर्णों की झूठी सिगरेट दलितों द्वारा पीना, तमाकु खाना, दलितों का परंपरागत शोषण, दलित की पाड़े की हत्या के दोष से मुक्त होने के लिए सोने का पाड़ा दान करने की चिंता, अत्यंत गरीबी, भीरुता, मृत पशु के मांस को पकाकर खाना आदि परिवेश का वर्णन उत्तर गुजरात की बोली में किया गया है।

विट्ठलभाई श्रीमाली की **'रेड कार्पेट'** कहानी में गाँव को उत्सव के अवसर पर अशोक के पत्तों से सजाना, सफाई करना, उत्सव में वृद्धों के साथ, स्त्री–पुरुष एवं बच्चों का उल्लास, दलितों के मंदिर प्रवेश पर प्रतिबंध, सवर्णों के तिरस्कार के बदले दलितों की उदारता, दलित युवती का कलेक्टर बनने पर गाँव के सवर्णों द्वारा उसका स्वागत, सम्मान एवं रेड कार्पेट बीछाना, गाँव में तहसीलदार, डी.डी.ओ. जिला पंचायत के प्रमुख का आना, दलित कलेक्टर शैली द्वारा महादेव के मंदिर में प्रवेश एवं आरती करना, पुजारी द्वारा फूलों की माला पहनाना, बाजे बजना, आदि। संपूर्ण कहानी में सवर्णों के दलितों के प्रति परिस्थितिवश आए विचारों के बदलाव को दिखाया गया है, किन्तु नई पीढ़ी के सवर्ण युवक दलितों का उनकी बराबरी का स्थान देने को तैयार नहीं है। सवर्णों की स्वार्थपरता, दलितों के प्रति ईर्ष्या को देखा जा सकता है।

हसमुख वाघेला की **'झाड़'** कहानी में एक गाँव की दलितों की बस्ती में अंधकार में उजाला करने वाली पूनम की रात, दूर–दूर तक सुनाई देने वाली कुत्तों की आवाज़, कोलाहल, हाथ में लकड़ी और मशाले, होली का त्यौहार, ढ़ोल बजना, अबीर गुलाल का रंग, सिर पर पगड़ी, बड़ी–बड़ी मुँछें, रुआबदार चेहेरे वाले सवर्ण, होली माता को नारियल चढ़ाना, हरिजन स्त्रियों का घूँघट निकालना, घूँघट में से कभी सवर्णों के समक्ष तो कभी होली के सामने देखना, खुले शरीर पर गमछा, लंगोट पहने दोनों हाथ जोड़े दयनीय चेहेरे दलित पुरुष, मुखीया का गाँववालों पर दबदबा, जलती होली में से नारियल निकालने की परंपरा, होलीमाता की जय–जयकार, खील और बीलीपत्र चढ़ाना, होली की प्रदक्षिणा लेना, बांस और लकड़ी से बने घर का जलना, जलते घर के उजाले में दलित स्त्री से अमानवीय व्यवहार किया जाना, चंद्रमा का शरमाकर बादलों में छिपना, सवर्णों के अत्याचार से भयभीत दलितों के समाजिक परिवेश को प्रस्तुत किया है।

मणिलाल न. पटेल 'जगतमित्र' की **'हड़सेलो'** कहानी में गाँव में सरपंच के चुनाव का माहौल, सरपंच की सीट का आरिक्षित आना, दलितों के मोहल्ले में भजन की आवाज, आर्थिक दयनीयता, सुरेश्वर के मेले में जाते दलित, दलितों की गरीबी का लाभ लेते सवर्ण, मजदूरी करती स्त्रियाँ, सुरेश्वर की बड़ी केनाल, अवसरवादी सवर्ण, भोले–भाले गरीब दलितों को प्रस्तुत किया गया है।

दलपत चौहान की **'चांल्लो'** काहनी में उत्तर गुजरात के एक गाँव के परिवेश को लिया गया है। सिद्धपुर गाँव, मठ, महादेव का मंदिर, सरस्वती नदी का पाली, नीम के पेड़ पर बैठा कौआ, ग्रामीणों में मेले के प्रति उत्सुकता, झूले, नए कपड़े, शृंगार के प्रति आकर्षण, दलितों पर नए कपड़े, पैरों में चप्पल, सिर पर पगड़ी पहने एवं तिलक लगाने पर सवर्णों का प्रतिबंध, दलितों का इस प्रतिबंध के बावजूद इन के प्रति आकर्षण, साहुकारों की स्त्रियों का मुक्तरुप से मेले में घूमना जबकि दलित स्त्रियों एवं पुरुषों का इस मेले में जाने की अनुमति न मिलना। सवर्णों के भय से दलित का चप्पल हाथ में कपड़े में छिपाना, दलित की पगड़ी को सवर्ण द्वारा लाठी से गिराना, अस्पृश्यता, पगड़ी का धूल–धुसरित होना, दलित को सरेआम अपमानित करना, सवर्ण के थूक से तिलक सिर घीसकर पुछवाना, लाठी से वार करना। आदि से उस गाँव में सवर्णों की कूरता एवं दलितों की दयनीय ग्रामीण परिवेश को उत्तर गुजरात की बोली में प्रस्तुत किया गया है।

जसुमती परमार की **'कालीनी राणी'** कहानी में दलितों की बस्ती के परिवेश को लिया गया है। आर्थिक स्थिति दयनीय है, बच्चों को स्कूल में एक समय का भोजन मिलता है, दलित बच्चों का पैबंध लगा स्कूल थैला, घर में अनाज की कमी, मिल में आँठ दस दिनों में काम मिलना, शराब की आदत, पत्ते खेलने का आदत, कुरुप स्त्री को काम न मिलना, फ्लेट–बंगलों में सुंदर नौकरानी रखने का माहौल, इस विषय में लेक कहते हैं–

> **''इसलिए मणि के भाग्य में कठिन परिश्रम का कार्य ही आता है। अथवा जो कोई न करे ऐसे काम उसे मिलते हैं। वैसे तो पुरे सीज़न में मीर्च मसाला कूटना यह उसका निश्चित कार्य। कभी तो बड़े–बड़े पत्थर उठाने का या प्रसूता के कपड़े या बच्चे की लंगोट धोने का कार्य मिलता। अन्य दिनों में तो मणि कंधे पर झोला लटकाए रहती। पूरा दिन कूडा टटोलती। शिशा मिल जाए, प्लास्टिक मिल जाय, कागज की रद्दी मिल जाय, कभी लोहे की कील–तार टुकड़े मिल जाए तो कभी टयूब–टायर के टुकडे जो हाथ में आए वह झोले में डालकर पस्तीवाले को बेचने ले जाती है। पाँच दस रुपये मिल जाते जिससे घर के गुजारे का सामान एकत्र करती हुई आती। सिर पर लकड़ी की गट्ठर और हाथ में तेल की बोतल..... ।''**[26]

इसके बाबजूद महादेव के मंदिर में मुफ्त के भोजन को ग्रहन करने में दलितों को शर्म आती है। लेखक ने दलितों के स्थिति एवं परिवेश का बड़ी ही यथार्थता से चित्रित किया है।

धरमाभाई श्रीमाली की **'नरक'** कहानी में सफाई–कर्मचारी समुदाय जीते जी नरक को झेलते हैं इस बात को कहानी कार ने उनके परिवेश से स्पष्ट किया है, जैसे मरे हुए, सड़े हुए, कीड़ों से भरे हुए कुत्ते खींचकर ले जाने के बदले में दाने और भोजन माँगकर लाने जैसा अनिच्छनीय कार्य करना। शहर में भी इतनी गंदगी थी, जो इस प्रकार कहानी में वर्णित है–

> **''अरे, मोहल्ले के आगे ही है। रोज़ सुबह जाती हूँ। किसी दिन साफ हो तो ठीक.....नरक जैसा बैठा जाए ऐसा कहाँ होता है.....परंतु फिर भी यहाँ**

बैठे और यहाँ उठे। दुर्गंध ही दुर्गंध.....बाहर निकले तब तक थूँक और थूक.....।''[27]

इसके अतिरिक्त शहर में सोसायटी में सफाई के बदले में दलितों का भोजन माँगने जाना, म्युनिसीपालीटी के दलित कर्मचारियों की स्थिति, झोंपड़ी के बाहर खुली गटर, शहर की गंदगी का ढेर, सार्वजनिक शौचालय का गंदगी से भरभरा रहना, टी.वी. में टूटे हुए टीन के डब्बे में मलमूत्र ढोते दलितों को दिखाना, गंदगी का चेहेरे पर टपकना आदि दृश्य जुगुप्सा उत्पन्न करते हैं।

शैलेष कुमार क्रिस्टी की **'कुलदीपक'** कहानी में शहर के एक किनारे बसी दलितों की बस्ती के परिवेश को चित्रित किया गया है। झोपड–पट्टी जतली सिगड़ी का धुँआ, खंभे पर जलती मध्धीम लाइट, कचरे का जत्था, मिट्टी के तेज को ढीबरी, मिल बंद हो जाने पर बेरोजगारी का फैलाब, शराब का नशा, देहव्यापार करने पर विवश दलित स्त्रियाँ, होठों पर लाली और गाल पर सस्ता पावडर लगाकर ग्राहक को लुभाने की विवशता, घर के नाम पर प्लास्टिक की थैलियों से बनी झोंपड़ी की दीवारें आदि।

मोहन परमार की **'कडण'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में किसानों की गिरवी जमीन को सवर्ण हड़प लेते हैं, कंगाल बने किसान मजदूर बन जाते है। सवर्णों का अत्याचार, सवर्णों द्वारा दलितों से अधिक परिश्रम करवाकर मजदूरी कम देना, आर्थिक शोषण करना, जबरन मजदूरी करवाना, बंदूक की नोक पर अपनी इच्छानुसार कार्य करवाते सवर्ण, अस्पृश्यता, दलितों के मोहल्ले का अनिच्छनीय वातावरण, सरोवर का किनारा दलित महिला का बलात्कार, सवर्णों का दबदबा आदि।

अरविंद वेगडा की **'रखोपाना साप'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में परंपरागत कर्ज़ तले दब दलित परिवार, उनका परंपरागत शोषण करते सवर्ण, बेगार करवाना बेगार न करने पर उन्हें शारीरिक, मानसिक यातनाएँ देना, संध्याकाल में सूर्यास्त का दृश्य, चूल्हे में लकड़ी का जलना, गेहूँ कटाई का समय, घर की दीवारों का गिरना, ठंडी से बचने के लिए चटाई का परदा करना, ईंट के घर का सपना देखना, घड़े में पानी भरने कुँए पर जाती महिलाएँ, कर्ज़ के बदले में घर एवं खेत में मजदूरी करवाते सवर्ण का क्रूर रुप हमारे समक्ष आता है। अलाव जलना, दलित स्त्री का जातीयशोषण, सवर्णों का अत्याचार आदि।

मधुकान्त कल्पित की कहानी **'अधुरा पुल'** में गरीब बस्ती का परिवेश लिया गया है, झोपड़ी में से निकलता धुँआ, मक्का की रोटी बनाती और चूल्हा फूँकती स्त्री, वृद्ध का खटीया पर बैठकर गांजा पीना, सामाजिक रुढ़िवादिता, अधूरे पुलका निर्माण कार्य, मजदूरों, की भीड़ ताड़पत्र एवं प्लास्टिक के टुकड़ों से बनाई झोंपड़ी पर पैबंद लगे हुए, ग्रीष्म ऋतु की गर्मी आदि।

हरीशकुमार की **'मूंगी चीस'** कहानी में दलित मजदूर परिवार का बेटा एक ऐसे गाँव में शिक्षक बनकर जाता है जहाँ का परिवेश अस्पृश्यता का वातावरण था। संपूर्ण गाँव में कोई दलित न होना, दलितों का पानी न मिलता, स्कूल में विद्यार्थियों, शिक्षकों, संचालकों द्वारा अस्पृश्यता का व्यवहार, अपमान पूर्ण व्यवहार, दलित शिक्षक का विद्यार्थियों द्वारा बहिष्कार, पत्थर मारना अस्पृश्यता निवारण कानून का पालन न होना,

डेप्यूटी का भी सवर्ण होने का अभिमान, दलित परिवार को शारीरिक, मानसिक यातनाएँ देना, सवर्णों का आतंक आदि से उस गाँव में दलितों की दयनीय दशा उभरकर आती है।

राघवजी माधड़ की **'मेली मथरावटी'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में अत्यंत ही गरीब दलितों की स्थिति को चित्रित किया गया है। मैले बिस्तर, ज्वार की रोटी छाछ से गले के नीचे उतारना, निर्धनता, भुखमरी, अस्पृश्यता, दलित की तपेली में दूर से छांछ उडेलती पटलानी, फटे वस्त्र पहने पर विवश दलित स्त्रियाँ, दवा के लिए रुपये न होना, अधिक वर्षा, जुताई–बोआई के कार्य में मजदूरी के भाव में बढ़ोतरी धन के बदले में दलित स्त्रियों की देह लुटते सवर्ण काली मजदूरी के बाद भी रोटी न जुटा पाते दलित, गाँव में सवर्णों एवं पुरुष वर्ग का एक तरफा न्याय आदि।

योगेश जोशी की **'नवी'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में अस्पृश्यता, अंधविश्वास, छुआछूत की भावना गाँव की सँकरी गलियों में कंची, गिल्ली–डंडा खेलते बच्चे, पहली रोटी गाय को, दूसरी कुत्ते का उसी तरह सफाई करते दलित के लिए भी रोटी एवं हांडवा आदि का हिस्सा रखते सवर्ण परिवार पुराने कपड़े, चप्पल, एवं वार–त्यौहार पर जैसे सातम का ठंडा भोजन, श्राद्ध के दिनों का भोजन में भी दलितों का हिस्सा रखने की परंपरा। वा..... निकलने पर दलित स्त्री से झाड़फूंक करने का अंधविश्वास मोहल्ले में बल्ली कुत्ते मर जाने पर दलितों को बुलाया जाता है, गाली–गलौज करता जमादार, जूठी सिगरेट के लिए झगड़ते दलित, घर की लिपाई–पुताई के लिए दलितों को न बुलाते सवर्ण आदि।

अरविंद वेगडा की **'होड'** कहानी में गरीब दलित परिवार गाँव में अधिक परिश्रम करके उसके बदले में पारिश्रमिक कम पाता है। मजदूरी कम मिलना, बीमारी के समय इलाज न करवा पाना, बीमारी होने पर देवी मां को सवा रुपया का धागा बंधवाने का अंधविश्वास, दूर–दूर से शियार के रोने की आवाज, कुत्ते की मोहल्ले मे रोने की आवाज़ नीम के झरते पत्ते की आवाज, बिल्ली द्वारा आगे–पीछे किए कवेलु में से चंद्रमा का मध्धम प्रकाश घर में कोहरे का वातावरण फैलाता है। दीवारों पर से झरती परतें कहीं–कहीं टूटे हुए बांस में झरता पावडर, मिट्टी के तेल का दीया टी.बी. की बीमारी, लंबा कोर्स, दवा, ग्लूकोस, इंन्जेक्शन आदि।

बी. केशरशिवम् की **'खील'** कहानी में शहरी एवं ग्रामीण परिवेश में दलितों की स्थिति को चित्रित किया गया है। शहर में हाथ में थैला लेकर कूड़े जत्थे फुटपाथ आदि से पोली थीन बेग, पुरानी स्लीपर, लोहा, लकडी इकट्ठा करके गुजारा करना, पैरों में चप्पल का अभाव दो रंगों की अलग–अलग चप्पल पहनना, बाजरी की रोटी, महुए के पेड़ की छाया आदि। ग्रामीण परिवेश में नंगो पाँव मजदूरी करते दलित, दलितों को चप्पल न पहनने का सवर्णों का हुकम, पहनने पर शारीरिक यातना देते सवर्ण गर्मी के दिनां पैरों के जलने पर भी चप्पल हाथ में रखने पर विवश दलित। इस विषय में कहानी में वर्णन इस प्रकार किया गया है–

> **''उसके बाद उका कभी गाँव की सीमा में चप्पल पहनकर नहीं गया था। उसने देखा था कि गाँव की सीमा में जाने से पहले मोहल्ले के लोग टोकरी में से चप्पल निकालकर पहन लेते थे। यदि गाँव का कोई सामने**

मिल जाए तो तुरंत पैरों में से चप्पल निकालकर उसे टोकरी में डाल देते थे। खेत में नंगे पाँव काम करना पड़ता था। चाहे कितने काँटे हों, दोपहर की तेज धूप हो तो भी चप्पल नहीं पहन सकते थे।''[28]

इसके अतिरिक्त दलित स्त्रियों का जातीय शोषण करते सवर्ण, गरीबी से त्रस्त दलित शहर एव गाँव दोनों के परिवेश में संघर्षरत देखे जा सकते हैं।

चन्द्राबेन श्रीमाली की **'रोकड़ी'** कहानी में गाँव में दलित विधवा जवान स्त्री के प्रति कुदृष्टि रखने वाले सवर्ण, दलितों की शोकसभी एवं मृत्यु पर सवर्णों की अनुपस्थिति, दलित द्वारा पानी के प्याऊ पर दलितों के अतिरिक्त सवर्णों द्वारा पानी न पीना, छूआछूत, चुनाव के समय वोट के लिए दलितों से हमदर्दी या अपनापन दिखाने की परंपरा, सवर्ण स्त्री द्वारा साड़ी दो पैरों के बीच दबाकर बैठना तांकि दलित से स्पर्श न हो जाए। चुनाव में दलितों का स्तमाल करना, चुनाव जीतकर सवर्णों का गाँव में दलाल को नियुक्त करके कमिशन प्रतिशत लेना, दलितों में विधवा स्त्री का पुर्नविवाह को समाज द्वारा स्वीकारा जाना, रिश्वत लेकर तबादला करना, पुरुष जाति को वासनामय व्यवहार आदि।

मौलिक बोरीजा की **'भींस'** कहानी में ग्रामीण परिवेश में दलितों की आर्थिक विकट स्थिति, दलितों में भी दहेज कम लोने पर परिवार एवं पति द्वारा शारिकि यातना दी जाना, दलित युवतियों की स्थिति धोबी के कुत्ते की तरह रहना, मायके वालों द्वारा विवाहित बेटी को घर में न रखना, आर्थिक कमी के कारण दलित स्त्री का शारीरिक शोषण, दोषी परिवार को समाज से निष्कासित करना, दो मन ज्वार का चबूतरे पर डालने का दंड़ समाज द्वारा दिया जाना, अस्पृश्यता, दलित स्त्री का दोहरा शोषण आदि।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रुप से देखा जाए तो हिन्दी और गुजराती दलित कहानियों में कई समस्याओं की साम्यता एवं वैषम्यता पाई जाती है। अस्पृश्यता की समस्या को केन्द्र में रखकर जो कहानियाँ मिलती हैं उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'अम्मा',** हरीश मंगलम् की **'दायण',** रत्नकुमार सांभरिया की **'फुलवा',** दलपत चौहान की **'गंगामां',** सुशीला टाकभौरे की **'सिलिया',** सूरजपाल चौहान की **'अत्तू और अम्मा',** बी. केशरशिवम् की **'राजीनामा',** आदि कहानियाँ हैं, जिनमें अस्पृश्यता की समस्या को ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में चित्रित किया गया है। चाहे ग्रामीण परिवेश की कहानी हो या शहरी परिवेश की कहानी अस्पृश्यता की समस्या दलितों का पीछा कहीं नहीं छोड़ती। शिक्षित हो या अशिक्षित, दलितों से छुआछूत का व्यवहार सवर्ण समाज द्वारा देखा जा सकता है। 21वीं सदी में दलितों को अस्पृश्यता का भोग नए ढंग से बनाया जा रहा है। कुछ कहानियाँ ऐसी भी मिलती हैं, जहाँ अस्पृश्यता का खंडन करते पात्रों का देखा गया है जैसे हिन्दी में हिन्दी में 'बदला', 'टिल्लू का पोता', 'सनातनी', 'फुलवा', गुजराती में 'रेड कार्पेट', 'मुखिया का भांजा'।

दलित स्त्री के जातीय शोषण की समस्या को हिन्दी और गुजराती की कहानियों में एक गंभीर समस्या के रुप में देखा जा सकता है। यह जातीय शोषण दलित स्त्री की सवर्णों पर आर्थिक निर्भरता के कारण, कामकाजी महिलाओं का जातीय

शोषण, सवर्णों की हवस वृत्ति के कारण, छल पूर्वक किया जाने वाला जातीय शोषण आदि दलित स्त्री की कमजोरी का लाभ उठाकर किया जाता रहा है। हिन्दी कहानियों में प्रेम कपाडिया की **'हरिजन'**, सी. बी. भारती की **'भूख'**, कुसुम मेघवाल की **'मंगली'**, विजयकांत की **'मरीधार'**, सुरेन्द्र नायक की **'खटिया की जाति'**, आदि कहानयाँ हैं, तो गुजराती कहानियों में बी. केशरशिवम् की **'चामड़ी घसावानी वेदना'**, विट्ठलराय श्रीमाली की **'सपायडो'**, मधुकान्त कल्पित की **'अधूरा पुल'**, पुष्पा माधड़ की **'गोमती'**, धरमा भाई श्रीमाली की **'दाझवुं ते'**, आदि कहानियाँ में जातीय शोषण की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियों पर कई कारणों से किये जाने वाले जातीय शोषण के प्रति कुछ दलित स्त्रिया' विद्रोह करती भी दृष्टिगत होती हैं, जबकि कुछ इस शोषण समक्ष प्रतिकार नहीं कर पाती हैं। यह समस्या दलित नारी के संपूर्ण जीवन को तहस–नहस कर देती हैं एवं उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाती हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी मिलती हैं जहाँ दलित नारी द्वारा इस समस्या से छुटकारा पाने का रास्ता स्वयं बनाते दिखाया गया हैं, इस समस्या से मुक्ति पाने का मार्ग कठिन अवश्य है किन्तु नामुमकिन नहीं कहा जा सकता है। गुजराती की कहानी में रत्नकुमार सांभरिया की **'बात'** कहानी में दलित नारी में जातीय शोषण के प्रति आई जागृति को देखा जा सकता है।

आर्थिक समस्याओं को दलितों से बहुत पुराना संबंध है। समाज का यह उपेक्षित वर्ग अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण सवर्णों का शोषण एवं अत्याचार सहता आता है। हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में आर्थिक समस्याओं को उजागर करने वाली कई कहानियाँ मिलती हैं–जैसे जोसफ मेकवान की **'रोटलो नजराई गयो'**, रत्नकुमार सांभरिया का **'डंक'**, बी. केशरशिवम् की **'भोरींग'**, **'डाईंग डेक्लेरेशन'**, अमर स्नेह की **'सनातनी'**, मोहनदास नैमिशराय की **'अपना गाँव'**, **'कर्ज़'** आदि। जब तक दलित इस समस्या से बाहर नहीं आ सकेंगे, तब तक उनकी स्थिति में सुधार नहीं आ पाएगा। कुछ दलित आज शिक्षित बनकर उच्च पद पर अवश्य पहुँचे हैं, किंतु अधिकांश दलित आज भी आर्थिक समस्याओं के कारण मानसिक, शारीरिक अत्याचार झेलने के लिए विवश किए जा रहे हैं।

जो दलित उच्चशिक्षा प्राप्त करके समाज में मान–सम्मान के पात्र बने हैं, उन्होंने अपने ही सगे–संबंधियों एवं जाति के लोगों से किनारा कर लिया है, जिसे जातिगत हीन भावना की समस्या कहा जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'अंधड़'**, बी. केशरशिवम् की **'आँखो खुली गई'**, मोहनदास नैमिशराय की **'सिमटा हुआ आदमी'**, सूरजपाल चौहान की **'घाटे का सौदा'**, रजत रानी मीनू की **'हम कौन हैं ?'**, आदि कहानियाँ इस समस्या को उद्घाटित करती हैं। विशेष बात यह है कि जातिगत हीन भावना हिन्दी और गुजराती की नारी पात्रों में नहीं, किन्तु पुरुष पात्रों में ही अधिकांश दिखाई देती है।

परिवेश की दृष्टि से हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में शहरी एवं ग्रामीण एवं कई कहानियों में दोनों परिवेश का वर्णन किया गया है। दलित ग्रामीण परिवेश में लिखी गई कहानियाँ ही अपनी समस्या, वातावरण, स्थिति को यथार्थ रुप में चित्रित कर पाई हैं। तो शहरी परिवेश की कहानियों में शहर में दलितों की स्थिति एवं उनकी समस्या को देखा जा सकता है। दलितों का मोहल्ला, सुअर बाड़ा, मच्छर, मक्खी, कीचड़, गंदगी, दुर्गध, धुँआ, झोंपड़ी, अंधेरा, ढ़ीबरी, भूखे बच्चे, अर्ध नग्न लोग, अंधविश्वास, रुढ़िवाद आदि को ही दलित कहानियों में प्रायः देखा जाता है, किन्तु कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जहाँ दलितों को आलीशान बँगले में सुसज्जित घरों में

शानो–शौकत के परिवेश में देखा जा सकता है। परिवेश की दृष्टि से दलितों की स्थिति के विषय में दृष्टि डालें, तो कहा जा सकता है कि गाँव की अपेक्षा शहर के परिवेश में दलित सुखी हैं, किन्तु शहरी परिवेश में उनकी समस्याएँ एवं स्थिति बहुत सुधरी हुई है यह नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार अंत में हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में समस्याओं की साम्यता अधिक है वैषम्यता कम कही जा सकती है। अधिकतर दलित स्त्रियाँ गरीबी, भुखमरी, जातीय शोषण की समस्याओं को झेलती दिखाई गई हैं। विशेष बात यह है, कि इन्हीं समस्याओं में रहते हुए वे अपनी स्वतंत्रता, सम्मान, अधिकार को पाने के लिए सवर्णों के शोषण, अत्याचार एवं गुलामी से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। आर्थिक रुप से अपने परिवार के भरण–पोषण में सहायक बनने वाली दलित नारी अपने लक्ष्य से भ्रमित नहीं होती है, क्योंकि वह नहीं चाहती कि जो अत्याचार उसने और उसके पूर्वजों ने झेला है, वह उसकी संतान या आने वाली भावि पीढ़ी का सहना पड़े। स्थिति को बदलने की उसकी जिद्द के समक्ष उसका परिवार एवं समाज अवश्य परिवर्तित होगा। इसका प्रारंभ हो चुका है और परिणाम अवश्य ही बेहतर होगा।

संदर्भ सूची

1. दलित साहित्य वार्षिकी 2003 पृ. सं. 93
2. हैरी कब आएगाा ? सं. सूरजपाल चौहान पाठकीय दृष्टिकोण पृ. स. 12
3. दलित नारी एक विमर्श–सकंलन स. डॉ. मंजू सुमन संपादन–ज्ञानेद्र रावत पृ. स. 34
4. समकालीन दलित साहित्य एक अध्ययन सं. डॉ. जीतूभाई मकवाणा पृ. स. 283–284
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोक तांत्रिका चेतना सं. हरपाल सिंह 'अरुष' पृ. स. 39–400
6. सूरजपाल चौहान की कहानियाँ में दलित जीवन सं. नारायण राठौड पृ. सं. 80
7. हैरी कब आएगा ? स. सूरजपाल चौहान पृ. स. 9 (भूमिका से)
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतंत्रिक चेतना स. हरपाल सिंह 'अरुष' पृ. स. 37
9. चर्चित दलित कहानियाँ स. डॉ. कुसुम वियोगी पृ. स. 29
10. नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ स. मुद्राराक्षस पृ. स. 111
11. नयी सदी की पहचान पृ. स. 133
12. सलाम स. ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. स. 114
13. सनातनी अमर स्नेह बयान जून 2008 पृ. स. 19
14. दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ पृ. स. 27
15. दलित महिला कथाकारो की चर्चित कहानयाँ स. डॉ. कुसुम वियोगी पृ. स. 37
16. जुड़ते दायित्व स. डॉ कुसुम मेघवाल पृ. स. 11
17. काल तथा अन्य कहानियाँ स. रत्नकुमार सांभरिया पृ. स. 13
18. दलित साहित्य वार्षिकी 2006 पृ. स. 258–259
19. हमारा जवाब स. मोहनदास नैमिशराय पृ. स. 79
20. हमारा जवाब स. मोहनदास नैमिशराय पृ. स. 130
21. दलित कहानी संचयन स. रमणिका गुप्ता पृ. स. 121
22. हंस अगस्त 2004 पृ. स. 177
23. साक्षी साबरनी स. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. स. 51
24. साक्षी साबरनी स. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. स. 66
25. साक्षी साबरनी स. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. स. 129
26. वणबोटी वारताओं सं. दलपत चौहान पृ. सं. 64
27. 'नरक' धरमाभाई श्रीमाली पृ. स. 1
28. राती रायण की रताश स. बी. केशरशिवम् पृ. सं. 322

पंचम अध्याय

''विशेष नारी पात्र''

अध्याय – 5

विशेष नारी पात्र

भारतीय समाज पुरुष प्रधान व ब्राह्मणवादी प्रकृति का समाज है। हमारे देश की स्त्रियाँ इक्कीसवीं सदी में पुरुष के समान सम्मान एवं अधिकार पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। उसी स्थिति में दलित वर्ग की महिलाओं की सामाजिक शैक्षिक और आर्थिक स्थिति सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा अधिक पिछड़ी, दयनीय और कमजोर है। सदियों से स्त्रियों पर धर्म के नाम पर अनगिनत अत्याचार होते चले आए हैं। दलित स्त्री तो शोषितों में भी शोषित है। स्वतंत्रता और समानता के अधिकार से तो उसे सदा से ही वंचित रखा गया है। महिला चाहे संभ्रात वर्ग की हो या निर्धन वर्ग की, महिलाएँ दलित ही हैं जब तक महिलाएँ पुरुष की दृष्टि में औरत है, तब तक कन्या से औरत होने तक के सफर में आए प्रत्येक पड़ाव जैसे–शिक्षा, बाल–विवाह, गरीबी, दुश्चरित्रता, श्रमिक–समस्या, अप्राकृतिक यौन–शोषण, वधुओं को जलाने वाली आधुनिक संस्कृति, बलात्कार से उत्पन्न बच्चे का अधिकार, लिंग परीक्षण, अशिक्षा और अन्याय शोषणों के विरुद्ध लेखनी, आवाज़ नहीं उठाई जाएगी तब तक हमारे समाज में जागृति नहीं आ पाएगी। जब तक महिलाओं को समान अधिकार नहीं मिलते तब तक महिलाएँ दूसरे दर्जे की नागरिक ही बनी रहेंगी। अपने अधिकारों के प्रति सकारात्मक जन–जागरण का बीड़ा स्वयं महिलाओं को उठाना पड़ेगा। सदियों से महिलाओं को दासता के बंधनों में जकड़कर रखा गया है, ताकि वे किसी भी वय में स्वतंत्र न हो सकें। स्त्री के मानवीय अधिकार को धर्म के नाम पर छीना गया था। 'मनु' स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं थे। महात्मा ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री फुले ने नारी–शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। खास तौर पर स्त्री और शुद्रों की शिक्षा के लिए उन्होंने अपना पहला कदम उठाया। बाद में डॉ. अम्बेडकर ने नारी को संवैधानिक–सामाजिक समता एवं स्वतंत्रता का अधिकार दिया। राघवजी ने अपने विचार दलित नारी के विषय में इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं–

> **''अभी तक दलित पात्रों में सबसे अधिक दयनीय दशा हो तो वह स्त्री पात्रों की है। दलित कहाँनी की स्त्री स्वपुरुष और पर पुरुष दोनों से सुरक्षित नहीं। अब की स्त्रियाँ शिक्षित होने लगी हैंद्व तर्कबद्व बहस करने लगी हैं। तब असहाय और लाचार स्त्रियों का चित्रण कितना योग्य है ? अब की कहानी की दलित स्त्री स्वाभिमान और आत्मनिर्भर होनी चाहिए, ऐसे मेरा मानना है। .....अबला नहीं वह सबला है ऐसा चित्र खड़ा होना चाहिए। ऐसा बिल्कुल ज़रुरी नहीं कि दलित कहानी के पात्रों के साथ अन्याय ही हो, अन्याय आर्थिक अथवा सामाजिक ही हो !..... ।''[1]**

जैसे–जैसे दलित नारियों में शैक्षणिक आलोक फैला बौद्धिक चेतना जागी वैसे–वैसे आज़ादी के बाद अनेकों स्त्री एवं कथाकारों ने नारी एवं दलित नारियों के उत्पीड़न के विरुद्ध जमकर कलम चलाई। अंधविश्वास, पाखंड, धार्मिक रुढ़िवादिता के बंधन से मुक्ति दिलाकर नारी अस्मिता के प्रश्न को उठाया। परिस्थिति में परिवर्तन आया और सदियों से चार दीवारों में बंद नारी में आत्मविश्वास जागा और वह अपनी अस्मिता अपने मौलिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए घर से बाहर निकलने का साहस कर पायीं।

जहाँ तक दलित नारी के जीवन, दीनचर्या, समस्या, उत्पीड़न, शोषण, गरीबी पर दृष्टि डालें, तो दलित नारी को सबसे पहले उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही संघर्ष करना पड़ता है। शिक्षा, समानता, अधिकार, स्वतंत्रता, अस्मिता जैसे प्रश्नों के समाधान के लिए तो उसे मात्र सवर्णों से ही नहीं अपने ही दलित समाज यहाँ तक की अपने ही परिवार के लोगों से भी संघर्ष करना पड़ता है। फिर भी आज की दलित नारी सभी अवरोधों को परे ढ़केलते हुए अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए किसी भी तरह का समझौता नहीं करना चाहती। यह बात भी उतनी ही सत्य है कि सभी दलित नारी आज सज़ग, जागरुक, शिक्षित और स्वतंत्र नहीं हो पायी है, किन्तु बात यहाँ शिक्षित और अशिक्षित दलित नारियों की नहीं बल्कि उन दलित नारियों की है, जो शोषित होकर भी न्याय के लिए आवाज़ नहीं उठाती है या शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलंद करने में भी हिचकिचाती नहीं है। दलित नारियों के विविध रुपों को हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में हम देख चुके हैं। यहाँ पर बात विशेष नारी पात्रों की हो रही है। दलित नारियों में भी कुछ पात्र हमारे समक्ष ऐसे आए हैं, जो शोषण को सहते हुए उसके आदी बन चुके हैं और उसे ही अपना भाग्य समझकर स्वीकार लेते हैं। जबकि कुछ नारी पात्र ऐसे भी हैं, जो अपने पर या दूसरों पर अत्याचार होते देखकर खामोश, लाचार या बुत बनकर नहीं बैठे रहते, जूल्म और अन्याय के समक्ष प्रतिकार करते हैं, चाहे उका जो भी परिणाम हो, किन्तु उसका निडरता से सामना करते हैं। दलित नारियों पर होने वाले परंपरागत अत्याचारों को कौन नहीं जानता ? हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों के ऐसे नारी पात्र मेरी दृष्टि में विशेष नारी पात्र होने का स्थान प्राप्त करते हैं, जिन्होंने लीक से हटकर अपने लिए, अपने परिवार एवं समाज के लिए अन्याय के समक्ष आवाज़ उठाई है। जो नारी आज की अन्य दलित नारियों के लिए एक आदर्श बन सकती हैं या फिर जिन नारी पात्रों ने पाठकों के मन–मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ी है।

हिन्दी की दलित कहानियों में 'क्रांति' (राजवाल्मीकि) की नायिका 'क्रांति', 'साज़िश' (सूरजपाल चौहान) की 'शांता', 'सिलिया' (सुशीला टाकभौर), 'रंपो का चेहेरा' (उमेश कुमार सिंह), की रंपो, 'सुनीता' (रजतरानी 'मीनू') की सुनीता, 'मंगली' (कुसुम मेघवाल), 'नई धार' (अनीता भारती), 'अम्मा' (ओमप्रकाश वाल्मीकि) की अम्मा, 'अंगूरी' (सूरजपाल चौहान) की अंगूरी।

1. हिन्दी की दलित कहानियों में विशेष नारी पात्र

1. सुशीला टाकभौरे की कहानी **'सिलिया'** की नायिका सिलिया दलित शिक्षित युवती है। वह सवर्णों द्वारा किए जाने वाले छुआछूत, भेदभाव के विषय में गंभीरता से विचार करती है। सवर्णों के समान सम्मान, इज्जत और बराबरी का दर्जा पाने के लिए वह 'झाड़ू' को अपने समाज के लिए दुष्चक्र समझती है। अपमानजनक गुलामी के चिह्न को छोड़कर वह हाथ में 'कलम' थाम लेती है। अपना भाग्य एवं अपने समाज का भाग्य स्वयं अपनी कलम से बदलने का दृढ़ निश्चय करके बीस वर्ष बाद वह उस स्थान पर पहुँचती है, जहाँ भरी सभा में विशाल जनसमूह के बीच उसको सम्मानित किया जाता है। यहाँ पर दलितों के हाथ में झाड़ू थमाने के विषय में सिलिया के यह विचार है कि–

''इस समाज में पैदा होना नहीं होना तो हमारे हाथ में नहीं था, परंतु इस अपमाजनक गुलामी के चिह्न को छोड़ना तो हमारे हाथ में है। यह हम अवश्य कर सकते हैं.....।''[2]

सिलिया के यही विचार उसे विशेष बनाते हैं। सिलिया मात्र अपनी ही प्रगति नहीं चाहती, बल्कि वह एक ऐसा मार्ग बनाना चाहती है, जिस पर चलकर दलितों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार मिले। उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है। सिलिया दलित युवतियों के लिए एक आदर्श नारी पात्र है, जो यह सिद्ध करती है कि व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान बन सकता है, क्योंकि जन्म व्यक्ति की शक्ति से परे है, परंतु कर्म व्यक्ति के वश में है।

सिलिया सवर्णों की दोगली मानसिकता से भलीभाँति परिचित है। तभी तो सवर्ण नेता सेठी द्वारा दिये गये ''शुद्र वधू चाहिए'' जैसे सुनहरे विज्ञापन की आड़ में छिपे पाखंड को वह बखूबी समझ लेती है। सवर्णों की लड़ाई में ढाल बन जाना उसे पसंद नहीं। अपने आत्मसम्मान के प्रति वह इतनी सजग है कि किसी भी सूरत में उसे गँवाना नहीं चाहती। उसके शब्दों में –

''हम क्या इतने लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहंमभाव है। उन्हें हमारी ज़रुरत है, हमको उनकी ज़रुरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहे ? अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएंगे।''[3]

अपनी अस्मिता की कीमत पर उसे ''दिखावे की चार दिन की इज्जत'' नहीं चाहिए। इतना मात्र ही नहीं, सिलिया संकल्प भी करती है वह पढ़ेगी, पढ़ती ही रहेगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी समृध्द बनाती रहेगी। साथ ही साथ, उन सभी परंपराओं के कारणों का पता लगाऐगी जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। इस संदर्भ में भारती गोरे का कथन है–

''प्रेमचंद की सिलिया (संदर्भः गोदान) से लेकर सुशीला टाकभोरे की सिलिया तक दलित स्त्री का संघर्ष कठोर रहा है। अन्याय को सहने से लेकर अन्याय के कारणों का पता लगाकर उन्हें मिटाने के संकल्प तक की उसकी मानसिकता उसके बदले हुए तेवर का संकेत देती हैं। अब दलित स्त्री को अपनी मुक्ति का मार्ग मिल चुका है और वह उस मार्ग पर अग्रसर भी हो चुकी है।''[4]

गरीबी, अशिक्षा दलितों की चेतना को सुलाये रखती है, जबकि शिक्षा प्राप्त कर सिलिया जैसी दलित युवती में जब चेतना जागृत होती है, तब उसकी माँ यहाँ तक की उसकी नानी भी सिलिया के विचारों से सहमती जताती हैं। यहाँ तीन पीढ़ी की दलित स्त्रियों में आई दलित चेतना को कहानीकार ने बखूबी चित्रित किया है।

2. 'मंगली' डॉ. कुसुम मेघवाल की कहानी की नायिका मंगली एक गरीब, अशिक्षित आदिवासी मजदूरिन है। उसका पति गरीबी के कारण एवं दवाईयों के अभाव में मर चुका है। मंगली पति की मृत्यु का शोक घर पर बैठकर नहीं मना सकती। आदिवासियों की सबसे बड़ी चुनौती है, उनकी बेरोज़गारी। ठेकेदारों की चंगुल में फँसे आदिवासी गाँव छोड़कर शहरों में जाते हैं। तो वहाँ भी सिवाय बीमारी–मौत के अलावा

कुछ नहीं पाते। मंगली पति की मृत्यु के बाद अकेले परिश्रम करके जीवन जीने का निर्णय लेती है। ठेकेदार उसे आश्रय देकर, धन, वस्तुओं का लोभ देकर अपनी वासनापूर्ति करना चाहता है, किन्तु मंगली के अंदर छिपी नारी शक्ति का ज्ञान उसे नहीं था। वह तो मंगली को बेचारी, अबला, गरीब और मजबूर समझकर उसे पाना सरल समझता था। मंगली उसकी वासनावृत्ति को जानकर उसे चेतावनी देते हुए कहती है–

> **''ठेकेदार साहब मुझे पता नहीं था कि आपके अंदर एक शैतान छिपा है और आप मुसीबत में मेरी मदद करने के बहाने अपना उल्लू सीधा करने के लिए मुझे यहाँ लाए हैं। किंतु मैं भी साफ कहे देती हूँ कि मैं भी एक भीलनी की जाई हूँ जो जंगल में लकड़ियाँ काटते हुए भी बच्चे को जन्म दे देती है और अपना नाल स्वयं काटकर बच्चे को गोद में उठाकर घर चली आती है। इसलिए अब और आगे बढ़ने की कोशिश मत करना वरना बकरे–सा काट के रख दूँगी।''**[5]

मंगली जब चूल्हे की लकड़ी से उस पर वार करती है, तो ठेकेदार बेसुध हो जाता है।

मंगली इन्हीं विशेष गुणों के कारण एक आदर्श आदिवासी स्त्री के रुप में हमारे समक्ष आती है। गरीबी एवं परिस्थितिवश मंगली ठेकेदार के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती तो, इस कहानी में कोई विशेष बात नहीं होती। आत्मसम्मान एवं आत्मरक्षा के गुण हर नारी में होना अति आवश्यक है। नारी चेतना एवं दलित चेतना की बात मंगली के चरित्र में देखी जा सकती है। ठेकेदार के खिलाफ पुलिस थाने पहुँचकर रिपोर्ट दर्ज करवाकर उसे गिरफ्तार करवाना मंगली जैसे साधारण पात्र को असाधारण बना देती है। क्योंकि सामान्य दलित महिला इतना साहस ही नहीं बटोर पाती, कि बिना किसी की सहायता के अकेले ही अपने दोषी को दंड दिलवा सके। दलित नारी में वर्तमान समय में आने वाली जागृतता मंगली जैसे पात्रों द्वारा दिखाकर कहानीकार ने आधुनिक युग में दलित नारी में आने वाली चेतना को हमारे समक्ष साकार रुप में उपस्थित कर दिया है। मंगली का पात्र पाठकों की स्मृति में सदा बना रहेगा।

3. **'सुनीता'** रजत रानी 'मीनू' द्वारा रचित कहानी की नायिका सुनीता दुहरे शोषण को झेलती है। एक तो इसलिए की वह स्त्री है, दूसरे इसलिए क्योंकि वह दलित स्त्री है। दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। उपेक्षापूर्ण व्यवहार का अहसास असह्य होता है। सुनीता से अधिक महत्त्व उसके छोटे भाई को दिया जाता है। यहाँ तक कि उसकी पढ़ाई को भी अधिक ज़रुरी एवं महत्त्वपूर्व नहीं समझा जाता। जिस समाज की सुनीता थी, वहाँ पुत्र को ही वंश बढ़ाने के लिए विशेष महत्त्व दिया जाता था। ऐसे समाज में चारों ओर केवल पुरुषों का बोल बाला था। सुनीता के लिए सवर्ण भी ताने मारते हुए कहते–

> **''चमारी पढ़ लिखकर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग तो लड़कियों को पढ़ाना जरुरी नहीं समझते पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।''**[6]

सुनीता के माता–पिता बेटे–बेटी में भेद–भाव रखते हैं एंव पुत्र की शिक्षा एवं देखभाल के लिए पुत्री की शिक्षा को हमेशा गौण समझते हैं। अपने ही माता–पिता द्वारा किऐ जाने

वाली अवहेलना सुनीता के लिए असहनीय थी, किन्तु सुनीता उन युवतियों में से नहीं थी, जो मुसीबतों के समक्ष कमजोर पड़ जाए। माता–पिता का कठोर व्यवहार होने पर भी विवाह के प्रस्ताव के समक्ष वह निडरता से इन्कार करने का साहस करती है और आगे पढ़ने की इच्छा जताती है। वह पढ़–लिख कर शिक्षिका बनती है, किन्तु उसका लक्ष्य आई.ए.एस. या आई.पी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करना रहता है। लेखिका के शब्दों में–

> **''उसे अपने वर्ग की चिंता सदैव सताती रहती थी सुनीता स्वयंसेवी मंचों पर जोरदार भाषण दिया करती थी और भाषणों में वह हमेशा स्त्री एवं दलित वर्ग की उपेक्षा के कारणों का खुलासा करती और निवारणों पर जोर देती थी।''**[7]

सुनीता मात्र स्वयं के सुख–चैन के लिए नहीं जीना चाहती, वह अपने दलित समाज के पुरुषों एवं स्त्रियों में चेतना लाना चाहती है। सुनीता दलित बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती ताकि आगे की पढ़ाई में आर्थिक मदद उसे मिलती। उसे सदैव दलित वर्ग के कल्याण की चिंता रहती। मन ही मन वह चिंतन किया करती। वह दलित का उत्थान करना चाहती थी। साथ ही अपने भाषणों में वह हरिजन शब्द को दलितों के लिए गाली बताती थी। सुनीता को अपने कैरियर की चिंता थी, किन्तु कलक्टर बनने के अपने सपने को वह भूल कर समाज के हितार्थ वह राजनीति में प्रवेश करती है और जीत भी प्राप्त करती है। वह अपने पिता एवं सवर्ण समाज के उन लोगों के समक्ष यह सिद्ध करके दिखा देती है, कि बेटे से भी अधिक एक बेटी अपने माता–पिता का नाम एवं कुल को रोशन करने की क्षमता रखती है। दलित ही नहीं सुनीता सवर्ण समाज के लिए एक मिसाल बन जाती है।

यहाँ सुनीता का संकल्प, उसकी इच्छाशक्ति अपनी शक्ति का परिचय देने के उसके हठ एवं संघर्ष की आग में तपकर वह स्वर्ण की तरह चमकने लगती है। सुनीता में दलित चेतना एवं नारी चेतना दोनों समान रुप में दिखाई देते हैं। सुनीता अपने परिवार, समाज एवं सवर्ण समाज में नारी शक्ति की अमिट छाप छोड़ती है।

4. सूरजपाल चौहान की **'साजिश'** कहानी में नायिका शान्ता ने भले ही उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, किन्तु वह अपने पढ़े–लिखे पति नथू से अधिक बुद्धिशाली, स्पष्टवक्ता एवं दूरदर्शी थी। नत्थू बैंक मैनेजर के पिगरी लोन दिलवाने के मश्वरे के षड़यंत्र को नहीं समझ पाता, जबकि शांता समझ जाती है, कि मैनेजर जैसे सवर्ण लोग आज भी दलितों को उनके परंपरागत कार्य में ही लगाए रखना चाहते हैं, ताकि दलितों में जागृति, समानता का अधिकार, सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर उन्हें न मिल सके। दलित मात्र झाड़ू लगाएँ, सफाई कार्य करें ताकि वे हमेशा निष्क्रिय ही रहें। शांता के नेतृत्व में एक विशाल जन–समूह बैंक की ओर चल देता है। एक साधारण सी दलित स्त्री शांता जिला प्रशासन, मैनेजर, पुलिस आदि सवर्ण लोगों को हिलाकर रख देती है। शांता अपने अधिकारों एवं सरकार की दी जाने वाली लोन की सहायता को सरलता से न मिलने पर उसे छीनना भी जानती है। दलितों में शिक्षा से चेतना आई है, परिणामस्वरुप दलित लोग परंपरागत पेशों–कार्यों से विमुख हुए हैं तथा सम्मानजनक माने–समझे जाने वाले दूसरे कार्यों को अपनाने के प्रति सचेत एवं सक्रिय हुए हैं। शान्ता के विषय में कथन है कि–

''यह तो नायक की पत्नी का साहस और जुझारुपन है कि वह पति द्वारा मानसिक रुप से सुअर–फार्म के लिए ऋण लेने को तैयार हो जाने के बावजूद टेंम्पो के लिए ही ऋण लेने पर अड़ जाती है और बैंक मैनेजर को टैम्पो खरीदने के लिए ऋण देना पड़ता है।''[8]

आज शांता जैसी सजगता एवं साहस अन्य दलित स्त्रियों में बहुत कम देखने को मिलता है। बैंक मैनेजर को शांता ऐसा सबक सीखाती है, ताकि वह अपने अधिकार एवं पद का दुरुपयोग जीवन पर्यंत कभी नहीं करेगा। आज के दलित पुरुषों के साथ दलित स्त्रियों के लिए भी यह ज़रुरी है, कि वे शांता की तरह अपने अधिकारों के प्रति सदैव सजग रहें एवं अपनी शक्ति एवं क्षमता को पहचानें। साथ ही अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने में हिचकिचाएँ नहीं।

5. सूरजपाल चौहान की कहानी **'अंगूरी'** की नायिका अंगूरी अपने पति गेन्दा के साथ गरीबी में जीवन व्यतीत करती है। बेगारी करने वाला गेंदा अपनी रुपवती पत्नी अंगूरी को सवर्णों की कुदृष्टि से बचाने में असमर्थ है। एक कहावत है, **'गरीब की जोरु, सबकी भाभी।'** अंगूरी की भी यही दशा थी। अंगूरी अपने आपको जवान, अधैड़, बूढ़ों से बचाती फिरती थी और हमेशा सजग रहती थी। लेखक ने इस विषय में लिखा है कि–

''अंगूरी इतनी रुपवती थी कि उसकी सुन्दरता व यौवन को देख कर युवक तो युवक गाँव के बड़े–बूढ़ों तक की नज़रें उससे न हटती। उम्र में दुगने लोग उसे 'भाभी' कह कर पुकारते और रंग–बिरंगे व्यंग्य–बाणों से उस पर प्रहार करते। उनके व्यंगों को सुनकर अंगूरी तिलमिला जाती थी। लेकिन करे क्या ? हाय री, दलित नारी की स्थिति !''[9]

गाँव का मुखिया पंडित चन्द्रभान अंगूरी को तरह–तरह का प्रलोभन देकर उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, किन्तु अंगूरी गरीबी में संपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकती थी, लेकिन अपनी मर्यादा का उलंघन नहीं कर सकती थी। एक स्त्री के लिए उसके चरित्र की शुद्धता से बड़ी कोई वस्तु नहीं होती। अंगूरी के लिए भी भेड़ियों की भीड़ में अपने आप को बचाना कठिन था, किन्तु इन भेड़ियों की फितरत को वह पहचानने लगी थी।

अंगूरी के पति को शहर भेजकर मुखिया अंगूरी को अकेली समझकर रात के समय उसके पास आता है, तब अंगूरी शेरनी बनकर उसका सामना करती है। उस पर हँसिये से एवं लातों से ऐसा वार करती है कि मुखिया वहाँ से जान बचाकर भागने पर विवश हो जाता है।

अंगूरी रुपवती होने के साथ–साथ बुद्धिशाली और चतुर भी थी। वह मुखिया के मनसूबों को पहले से ही जानती थी। उसके पति को गाँव से बाहर साजिश के तहत भेजा गया है और उसे जानबूझकर अकेली कर दिया गया। एकांत का लाभ उठाने मुखिया अवश्य आएगा। इसलिए वह अपनी आने वाली समस्या के पूर्व योजना बनाकर उस समस्या का सामना निडरता से करने के लिए सजग हो जाती है।

अभावों के बीच गरीबी में जीवन बसर करना दलित महिला की विवशता है, किंतु गरीबी के कारण अपने चरित्र की पवित्रता को नष्ट न होने देने वाली अंगूरी यह सिद्ध कर देती है कि हर दलित महिला अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण अपना शारीरिक शोषण नहीं सहती।

यहाँ अंगूरी अपनी आत्मरक्षा अकेली होने पर भी करती है। आम तौर पर स्त्रियों को पुरुषों के समक्ष अबला कहा जाता है, किन्तु स्त्री यदि निडरता एवं साहसी हो तो वह अंगूरी की तरह किसी पुरुष के समक्ष कमजोर नहीं हो सकती। अंगूरी मुखिया को ऐसा पाठ पढ़ाती है, कि वह कभी गलती से भी किसी दलित महिला की ओर कुदृष्टि डालने का साहस नहीं कर सकेगा। एक दलित अंगूरी न जाने कितनी दलित स्त्रियों को बचा लेती है। यही खासियत अंगूरी जैसे पात्र को विशेष नारी पात्र की कतार में लाकर खड़ा कर देती है।

6. दीपक कुमार 'अज्ञात' द्वारा रचित **'जोजना'** कहानी की सुकिया गाँव की गरीब दलित महिला है। सरकार की योजना के अनुसार दलित बच्चों को सरकारी स्कूल में दाखिला लेने पर हर महीने अनाज मिलता था। सुकिया के साथ गाँव के कई दलित परिवार जोगिन्दर मास्टर के घर–घर जाकर समझाने एवं फायदे की पढ़ाई का लालच देकर स्कूल में अपने स्वार्थवश बच्चों की संख्या बढ़ाते हैं। किन्तु संख्या अधिक हो जाने पर मास्टरजी सरकार से मिलने वाले अनाज को स्वयं ही खा जाते है। धीरे–धीरे गाँव के सभी दलितों को इस अन्याय का पता चलता है। गाँव के गरीब, निःसहाय दलित सब कुछ जानकर भी चुप रहते हैं, कोई जोगिन्दर मास्टर के पास अनाज माँगने या उसे उसके किए गए वादे की याद दिलाने नहीं पहुँचता, किन्तु सुकिया अकेली ही स्कूल जाकर इस अन्याय का विरोध करती है। न्याय न मिलने पर एवं जोगिन्दर मास्टर के अभद्र व्यवहार पर वह उसे झाड़ू से पीटती है। साथ ही सारा अनाज बिखेर देती है। किसी ने कल्पना नहीं की थी कि सुकिया जैसी दलित स्त्री अन्याय का इस प्रकार विरोध कर सकती है। दलितों के सहयोगी नेता का सहयोग लेकर सुकिया अखबार में जोगिन्दर मास्टर के काले कारनामे की पोल खोल देती है।

इस तरह सुकिया गरीब है, किन्तु गरीबी उसे बेबस, लाचार या उसके मनोबल को कमजोर नहीं कर पाती। अन्याय होता देख वह अकेले ही न्याय माँगने चल पड़ती है। अपमान जनक शब्द उसे सहन नहीं होते और वह दोषी को मुहतोड़ जवाब एवं दंड देने में नहीं पीछे हटती। सुकिया जैसे पात्र दलित महिलाओं में ग्रामीण क्षेत्रों में भी आने वाली चेतना एवं जागृति को प्रस्तुत करते हैं। सुकिया अन्य स्त्रियों के सहयोग के बिना ही उनका प्रतिनिधित्व करके न्याय पाने एवं दिलवान का साहस करती है। क्योंकि यदि जुल्म करना गुनाह है, तो जुल्म सहना भी गुनाह है।

7. ओमप्रकाश वाल्मीकि की बहुचर्चित कहानी **'अम्मा'** की अम्मा उन सभी दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जो गली–मुहल्लों में झाड़ू–कनस्तर थामें सुबह–सवेरे दिखाई देती हैं। अम्मा अपना संपूर्ण जीवन लोगों के घरों में जाकर उनकी गंदगी साफ करती हैं, किन्तु इस गंदगी से वह अपने बच्चों एवं बहूओं को हमेशा दूर ही रखती है, ताकि वे लोग इज्ज़त एवं सम्मान से जी सकें। एक सफाई कार्य करने वाली अम्मा के विचार बहुत ही उच्च हैं, वे अपने बच्चों को यही शिक्षा देती हैं, कि जीवन में ऐसा कोई कार्य मत करो जिससे तुम्हें सिर नीचा करना पड़े अर्थात् शरमिंदा होना पड़े। परिश्रम करके जो भी धन मिले उसी में ही अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए न कि गलत रास्ते पर चलकर धन कमाना चाहिए।
हरपाल सिंह 'अरुष' के शब्दों में

''अम्मा कहानी की अम्मा का अनेक कष्टों को सहकर संघर्ष और अनभय को अपने उपादान बनाकर अपनी अगली पीढ़ी को गलाजत भरे व्यवरन्याय से मुक्ति दिलाने की आकांक्षा पूर्ण होती दिखाई गयी है। कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ शान्त–एकान्त कमरे में काल्पनिक संघ्र्षो को केन्द्र बनाकर नहीं रची गयी हैं। ये तो दैनिक जीवन के यथार्थ को देख–परखकर, भोग–सहकर लिखी गयी हैं। इनको अभिलेखों और तत्थों की तरह ट्रीट करने की आवश्यकता है। इनका पाठ अशक्त करने वाले दिवास्वप्नों का चित्र तैयार करने के स्थान पर चलते–फिरते कराहते–तड़पते और उबरने के लिए संघर्ष करते मानवों का साकार पटल खोलता है। अपने आसपास काम करने वालों का दर्द जब लेखक को बेचैन कर देता है तब क्रूर व्यवस्था को उघाड़ने की बेचैनी ऐसे आस्थान उद्घाटित कर देती है। जो समाज की दिन चर्या का हिस्सा बन गये हैं।''[10]

अम्मा की सास ने उन्हें इस परंपरागत कार्य में धकेला था, मजबूरी वश वे इस कार्य में आई थीं, वे नहीं चाहती थीं, कि उनकी आने वाली पीढ़ी भी इस परंपरा को जारी रखें। इसलिए वे अपने बच्चों को पढ़ाती हैं और इस योग्य बनाती हैं कि वे सम्मान से कहीं नौकरी कर सके। अम्मा इतनी ईमानदार एवं स्वाभिमानी थीं कि अपने बुढ़ापे के सहारे अपने पुत्र को छोड़कर स्वतंत्र रुप में जीवन व्यतीत करना स्वीकारती हैं, क्योंकि उसका बेटा रिश्वत लेकर लोगों का कार्य करवाने का गलत कार्य करने लगता है। अम्मा विचार वात एक स्त्री हैं, इसलिए अपने गुमराह पोते से किसी युवती का विवाह करके उस युवती का जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती।

इस प्रकार अम्मा में एक परिश्रमी, ईमानदार, स्वाभिमानी, स्पष्टवक्ता, आदर्श माँ, आदर्श पत्नी एवं दलित स्त्रियों के लिए एक आदर्श एवं प्रेरणा के रुप में हमारे समक्ष आती हैं। अम्मा स्वयं जीवनभर गंदगी, दूर्गंध, कठोर परिश्रम करके अपने परिवार को एक स्वच्छ, सम्मानजनक वातावरण देने का प्रयास करती हैं।

8. राज वाल्मीकि की कहानी **'क्रान्ति'** की नायिका क्रान्ति एक उन्नीस वर्षीय युवती है, जो वाल्मीकि समुदाय की स्लम बस्ती में रहती है। बारहवीं का इम्तहान देकर वह अपने समाज के लोगों में शिक्षाद्व विशेषकर महिलाओं को जागरुक करने का प्रयास करती है। गोष्टी में स्त्री–पुरुष समानता के विषय पर ज्वालामुखी सी फूट पड़ती है और वहाँ मोजूद पुरुषों से कहती है–

''मत करिये आप लोग स्त्री–पुरुष समानता की बातें। आप लोग दोहरे मपदण्ड अपनाते हैं। घर में कुछ और बाहर कुछ और ! महिलाओं के सामने कुछ और उनकी पी पीछे कुछ और ! इस पितृ सत्तात्मक समान में सारे अधिकार परुषों को ही दिये गये हैं। वंचित वर्ग के पुरुषों ने भी स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित किया है। विडम्बना यह है कि जागरुक नहीं होने के कारण महिलाओं ने भी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था की कमान अपने हाथों में संभाल रखी है। और इस तरह से अपने पैरों में ही कुल्हाडी मार रही हैं। मैं तो बस्ती की महिलाओं से जाकर कहती हूँ कि पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था की अफीम के नशे ने

बेसुध महिलाओं जागो ! अपनी अस्मिता को पहचानो। शोषण मुक्त समाज बनाओ।''[11]

वह स्त्रियों को पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था से मुक्त करना चाहती है, ताकि महिलाएँ अपनी अस्मिता को पहचाने एवं शोषण मुक्त जीवन जीएँ। समाज सेवा के अतिरिक्त पेंटिंग एवं लेखन उसका शौक है।

क्रांति अपने ननिहाल में जाकर लोगों को 1993 का एक्ट के अनुसार मैला ढ़ोने की गैरकानूनी प्रथा से मुक्त करवाती है, साथ ही नानी को सीनियर सिटीजन की सरकारी सुविधाएँ उपलब्ध करवाती है। वहाँ की अन्य महिलाओं को पुनर्वास का लाभ दिलवाकर सम्माननीय कार्य से जोड़ती है। क्रांति में अन्याय एवं शोषण के खिलाफ एक आक्रोश देखा जा सकता है। वह संघर्ष से नहीं डरती। बाबा साहब ने जो तीन मूल मंत्र दिए हैं–**''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो''।** यह उसने अपने जीवन में उतार लिया है।

क्रांति के विचार में नयापन है। वह 'दलित' शब्द पर भी आपत्ति करती है। उसका कहना है–

''दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ तो आप लोग जानते ही होंगे फिर हम स्वयं को दलित क्यों कहें ? जब हम स्वयं ही दलित कहना पसंद करेंगे तो अन्य लोग तो हमें दलित कहेंगे ही। हम मनुष्य हैं तो हमें मनुष्य के रुप में ही जाना जाए।''[12]

यहाँ हम देख सकते हैं कि क्रांति के विचारों में हर दलित को उसकी जाति के आधार पर नहीं एक आम मनुष्य के रुप में ही पहचाना जाए। उसे आम मनुष्य से अलग न करके देखा जाए।

क्रांति एक जागरुक लड़की है। हर मुद्दे पर अपनी बेबाक राय रखती है। अन्याय एवं शोषण के खिलाफ उसके मन में आक्रोश की आग है। वह कहती है कि–

''अन्याय एवं शोषण के खिलाफ मेरे मन में एक आक्रोश–एक आग भरी हुई है। जब भी मैं अन्याय–शोषण देखती हूँ तो मेरा खून खौलने लगता है। मुझसे रहा नहीं जाता और मैं बीच में कूद पड़ती हूँ। हालाँकि मुझे परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पर मैं हिम्मत हारने वाली नहीं। अभी तो मेरे संघर्ष की शुरुआत है। अभी मुझे बहुत पढ़ना है। अपने समाज के लिए कुछ करना है। अपनी जैसी बहनों को जागरुक करना है। अनपढ़ माँ–बहनों के अंधविश्वास दूर करना है। उनके फिजूल के खर्चें कम कराने है। उन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाना है।''[13]

क्रांति अपने समाज की स्त्रियों को समझाती है कि लड़का–लड़की बराबर हैं। व्यवहार में बेटियाँ बेटों से ज्यादा वफादार साबित होती हैं। वह वंचित समाज को स्वाभिमान के साथ जीना सीखाती है। यही उसके जीवन का लक्ष्य था। वह वंचित समाज के लिए कुछ करना चाहती है। छोटी–सी उम्र में अन्याय–अत्याचार देखने वाली क्रांति की जुबान तीखी हो जाती है, वह किसी को नहीं बख्शाती। शराबी पिता दूसरी स्त्री से अवैध संबंध रखता है। लड़ाई–झगड़े करता है और क्रांति एवं उसकी माँ को छोड़कर चला जाता है। क्रांति की माँ अकेले ही उसकी परवरिश करती है। बचपन से

ही अभाव, गरीबी, अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि देखने वाली क्रांति परिस्थिति वश मायूश नहीं बनती, बल्कि कुछ अच्छी पुस्तकें पढ़कर जागरुक बनती है। अपना मानसिक विकास करती है। साथ ही वाल्मीकि समुदाय के लोगों को जोकि शैक्षिक रुप से पिछड़े हुए थे, उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयास करती है।

क्रांति के पात्र में हमें दलित चेतना लानेवाली क्रांति दिखाई देती है। स्वतंत्रता, समता, लैंगिक समानता, बंधुता, आत्मसम्मान का पाठ दलितों को पढ़ाने वाली क्रांति वाल्मीकि समाज के जीवन से अज्ञानता का अंधकार दूर करके ज्ञान का प्रकाश फैलाने का संकल्प करती है। क्रांति आधुनिक युग की दलित युवती है, जिसमें दलित चेतना एवं नारी शक्ति दोनों गुणों का समान रुप से देखा जा सकता है। आज दलित समाज में आवश्यकता है, क्रांति जैसी युवतियों की, जो स्वयं शिक्षित होकर अपने परिवार एवं समाज को भी जागृत करने का भरसक प्रयास करें। क्रांति की यही विशेषता बहुत कम दलित नारी पात्रों में दिखाई हैं।

9. अमर स्नेह की **'सनातनी'** कहानी की चन्द्रो एक सफाई कर्मचारी है। चन्द्रो स्वयं शिक्षित नहीं है, किन्तु अपने एक मात्र पुत्र अनुआ को शिक्षित बनाना चाहती है। अनुआ प्रथम गुरु अपनी माँ से सत्य–असत्य, पाप–पुण्य, सही–गलत आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। अपने पुत्र की शिक्षा पाने की तीव्र लालसा चन्द्रो के हृदय को बार–बार झकझोरती है। गाँव में दलितों से की जाने वाली परंपरागत अस्पृश्यता, अपमान, छुआछूत, दलितों को हीन समझने की प्रथा, उन्हें शिक्षा से सदैव वंचित रखने की कुटील वृत्ति, चन्द्रो जैसी दलित विधवा स्त्री के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी। दूसरी ओर अनुआ पाठशाला की खिड़की में से छिपकर शिक्षा प्राप्त करने में सफलता पाता है। कलयुग के एकलव्य की तरह अनुआ एक प्रतिभाशाली शिष्य बनता है। चन्द्रो की दी हुई शिक्षा अनुआ के लिए जीवनपयोगी मूल मंत्र बन जाता है। चन्द्रो के इन्हीं गुणों के कारण पाठशाला के पण्डितजी जो जीवनभर जातिगत भेदभाव को लेकर चले थे, उनका हृदय परिवर्तित हो जाता है। उन्हें आत्मग्लानि होने लगती है, उन्हें सत्य का परिचय हो जाता है। लेखक के शब्दों में

> **''जो पण्डित जी चन्द्रो के जाने पर हमेशा गंगाजल से पूरी पाठशाला और दिशाएँ शुद्ध किया करते थे। अचानक उन्होंने गंगाजल भरा लोटा जो उनके हाथ में था, अपने सर पर उड़ेल लिया।''**[14]

यहाँ चन्द्रो अपने विशेष गुणों से कलयुग के द्रोणाचार्य अर्थात् गुरु पण्ड़ितजी को सत्य से अवगत कराती है। चन्द्रो के अपमान, यातनाओं, शोषण एवं अमानवीय आचरण के लिए पण्डितजी स्वयं उससे क्षमा माँगते हैं एवं पश्चाताप की अग्नि में जलने लगते हैं। चन्द्रो की सच्ची लगन उसके पुत्र को उसके लक्ष्य तक पहुँचाती है, साथ ही समाज से अस्पृश्यता की समस्या को खत्म करने की पहल भी उसी के कारण संभव हो पाती है।

10. उमेश कुमार सिंह की **'रम्पो का चेहरा'** की नायिका रम्पो अपने पति भोला एवं दो बच्चों के साथ अत्यंत गरीबी में गुजर कर रही थी। ससुर सुखराम की मृत्यु के बाद दलित समाज के लोग भोला को गरीबी का एकमात्र सहारा उसकी तीन बीघा जमीन बेचकर पिता की तेरहवीं करने के लिए विवश करते हैं। भोला और रम्पो एक ओर

सवर्ण समाज के लोगों का अत्याचार सहते हैं, दूसरी ओर उन्हें अपने ही समाज के लोगों द्वारा दाने–दाने का मोहताज बनाने पर विवश किया जाता हैं। भोला दलित समाज के लोगों के समक्ष हुक्का पानी बंद होने के सामाजिक बहिष्कार से डर जाता है। रम्पो के विचार भोला से विपरीत हैं। वह पंच परमेश्वर के ऐसे निर्णय का सख्त विरोध करती है, जो उन्हें जीते जी मार डालेगा। वह समझती है कि मरने वाला कभी लौटकर नहीं आता, किन्तु उसके पीछे जीवित भी अपने आप को मौत के मुँह में ढकेल दें यह कतई उचित नहीं कहा जा सकता। वह अपने पति को समझाते हुए कहती है–

> **''देखो जी, पंच परमेश्वर के बराबर होते हैं। तो उन्हें भी न्याय की बातें करना शोभा देती हैं। परन्तु इन पंचों ने तो आंखों पर पट्टी बांध रखी है। हमें दर–दर के भिखारी बनाने पर तुले हुए हैं। मैं ऐसे पंचों के फैसले पर थूकती हूँ। ये कहते हैं कि तेरहवी करके कक्का राख में ही पड़े रहेंगे सब मूर्खों की सी बातें हैं। इन्हें खाना–पीना ही दीखता है। एक दिन मुंह चिपड़ने के लिए ज़िंदगी भर हमारे मुँह पर मुछका बांधने पर तुले हुए हैं। तुम तो मर्द होकर भी बस हुक्का पानी बंद करने से ही घबरा रहे हो। मैं इन पंचों के फैसले के खिलाफ विद्रोह का डंका बजाकर रहूँगी। मैं तुमसे भी कहे देती हूँ, तेरहवीं करने का नाम भी मत लेना। नहीं तो मैं कुएँ में कूदकर मर जाऊँगी।''**[15]

यहाँ दलित समाज के स्वार्थी परंपरावादी लोगों से रम्पो विद्रोह करने को तैयार रहती है। पुरुष प्रधान समाज में पति के निर्णय को ही अंतिम निर्णय माना जाता है। रम्पो इसका भी विरोध करते हुए कहती है–

> **''घर का हर फैसला करने का हक़ तो मर्दों का है। चाहे घर लुटा दें। मरद ग़लत होते हुए भी सही। औरतों का सही निर्णय भी ग़लत।''**[16]

यहाँ रम्पो पति के गलत निर्णय को भी चुनौती देती है। रम्पो अपने पति को मार्ग से भटकने नहीं देती एवं सच्ची सहधर्मिणी होने के कर्त्तव्य को निभाती है। रम्पो ऐसा करके अपने ही समाज द्वारा होने वाले अन्याय एवं परंपरावादी मान्यताओं के लिए अपने परिवार को बली का बकरा बनने से बचा लेती है। रम्पो का विद्रोह आज की दलित नारी में आने वाली चेतना को उजागर करता है। दलित महिलाओं की इसी चेतना के विषय में दीप्ति प्रिया महरोत्रा का कहना है–

> **''जब समाज में, रोजमर्रा की जिन्दगी में, पीड़ा व प्रताड़ना फैलती चली जाती है, तब महिलाएँ भड़क उठती हैं। दमन करने वालों के खिलाफ महिलाएँ अपनी आवाज सदा उठाती रही हैं, चाहे वो विदेशी शासक हों या स्थानीय जमींदार घरेलू जिन्दगी में असमानता और अन्याय झेलती हुई महिलाएँ आखिरकार अपने परिवार के रुढ़िगत ढाँचों, नियमों और पाबन्दियों पर भी नज़र डालने लगती हैं।''**[17]

रम्पो ने सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन के लिए कमर कसी है। सामाजिक परिवर्तन करने की पहल कोई दूसरा करेगा, रम्पो यह सोचकर बैठी रहती, तो वह साधरण दलित नारी कही जाती, किन्तु वह किसी दूसरे का इतज़ार न

करके स्वयं ही न्याय पाने के लिए निडर बनकर आगे बढ़ती है, यही उसकी विशेषता कही जाएगी।

2. गुजराती की दलित कहानियों में विशेष नारी पात्र

1. मोहन परमार द्वारा रचित **'थडी'** कहानी में दलित रेवती का जातीय शोषण गाँव का सवर्ण मानसिंह करता है। रेवी इस अत्याचार को छः वर्षों तक सहती है, उसे डर था, कि यदि उसने प्रतिकार किया तो उसके परिवार को मानसिंह कष्ट पहुँचा सकता है। मानसिंह के पाप का घड़ा भर जाने पर रेवी की सहनशक्ति खत्म हो जाती है। अपने पति, बच्चे और जेठ–जेठानी से मिलने वाले प्रेम एवं सम्मान को बनाए रखने एवं अपने आप को मानसिंह से हमेशा के लिए मुक्त होने की कामना से रेवी में नई शक्ति का संचार होता है। रेवी अपने भीतर की नारी शक्ति को पहचान जाती है और निर्णय लेती है कि वह स्वयं को और अपने परिवार को इस प्रकार घुट–घुटकर जीने से मुक्त कराएगी। अपने वैवाहिक सुखद जीवन को बचाने एवं बनाए रखने के लिए रेवी एक ऐसी युक्ति का प्रयोग करती है जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

रेवी मानसिंह से कहती है कि मैं हमेशा के लिए तुम्हारे घर में आना चाहती हूँ और जो सम्मान एवं अधिकार तुम्हारे घर की औरतों को मिलता है, वह मुझे भी मिलना चाहिए। तुमसे विवाह करके तुम्हारे घर के कुँए से पानी भरना, तुम्हारे घर में रहना आदि के बिना हमारा संबंध पूर्ण नहीं हो सकता।

रेवी में पहले जातिगत एवं स्त्री सुलभ भय अवश्य था, कि उसके और मानसिंह के अनैतिक संबंध की बात से उसका परिवार बिखर जाएगा और समाज में उसकी निंदा होगी। दूसरी ओर रेवी की इसी आर्थिक कमजोरी, जातिगत कमजोरी का भरपूर लाभ सवर्ण मानसिंह उठाता है। यह समस्या मात्र रेवी की ही नहीं कई दलित महिलाओं की है। किन्तु रेवी जातीय शोषण के जिस दलदल में धँसी थी उसमें में हमेशा के लिए बाहर आने का मार्ग वह स्वयं ही निकालती है। दलित नारी का शोषण के प्रति विद्रोह की यह नई सोच रेवी के पात्र का पाठकों की स्मृति में सदैव विशेष बनाए रखेगी।

रेवी के जातीय शोषण के मूल में तो वर्णव्यवस्था ही है। रेवी बहुत ही चतुराई से मानसिंह से छुटकारा पाने के लिए इसी वर्णवयवस्था का ब्रह्मास्त्र उस पर छोड़ती है, जिससे मानसिंह पराजित हो जाता है। रेवी को मिलने वाली मुक्ति उसके अपने मस्तिष्क एवं बुद्धी चातुर्य का परिणाम कहा जा सकता है। रेवी उन दलित महिलाओं के लिए मुक्ति का एक मार्ग खोलती है, जिसे अब तक कोई दलित महिला नहीं खोज पाई थी। रेवी इन्हीं गुणों के कारण विशेष दलित नारी पात्र कही जा सकती है।

2. हरिपार की **'सोमली'** की नायिका सोमली गाँव के सरपंच द्वारा होने वाले जातीय शोषण के समक्ष विवश एवं लाचार थी। उस समय उसकी रक्षा करने के लिए घर में न तो पति होता था और नहीं ही कोई और ही। जिस अन्याय एवं शोषण को वर्षों पहले वह सहती है, अपनी पुत्रवधू को वह उससे बचाती है। सरपंच की कुदृष्टि का भोग बनने से वह अपनी पुत्रवधू को स्वयं बचाने का साहस करती है। सोमली गंड़ासा से सरपंच की हत्या कर देती है। यहाँ सोमली का एक शक्तिशाली स्त्री रुप में चित्रण हुआ

है। न्यायाधीश द्वारा सोमली के पक्ष में फैसला सुनाना न्यायतंत्र की जीत है। गरीब सोमली को बचाकर न्यायतंत्र का तराजू संतुलित रखा है।

सोमली उन दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो सवर्ण पुरुषों के जातीय शोषण को परंपरागत रुप से सहती आई हैं। दलितों के उस समाज में स्त्रियों के जातीय शोषण के प्रति किसी पुरुष द्वारा विद्रोह नहीं किया जाता, बल्कि इस शोषण को सहने की उनकी परंपरा रही है। सोमली को अफसोस था कि यदि उसे बचानेवाला कोई होता तो उसे यह शोषण नहीं सहना पड़ता। इसलिए वह निर्णय लेती है ि कइस परंपरागत जातीय शोषण का भोग वह अपनी बहू को नहीं बनने देगी चाहे उसे इसके लिए स्वयं मरना पड़े या दूसरे को मारना पड़े, वह अब पीछे नहीं हटेगी।

यहाँ सोमली पुरानी पीढ़ी की दलित स्त्री के रुप में प्रस्तुत हुई है और उसकी पुत्रवधू नई पीढ़ी की दलित स्त्री। उस समाज में सवर्णों द्वारा दलित स्त्रियों का जातीय शोषण होना बड़ी बात नहीं थी, किन्तु दलित स्त्री इस परंपरागत शोषण के प्रति विद्रोह और अत्याचार के समक्ष प्रतिकार सोमली जैसी दलित स्त्री की विशेषता है।

3. बी. केशरशिवम् की **'राजीनामा'** कहानी की सीमा एक शिक्षित युवती है, जो कॉलेज में लेक्चरर है। अपने परिश्रम एवं योग्यता के बल पर वह इस मुकाम तक पहुँचती है। दलित होने के कारण उसके सवर्ण लेक्चरर से उसके प्रणय संबंध पर कॉलेज के आचार्य, स्टाफ विद्यार्थियों एवं अन्य सभी को एतराज होता है। यहाँ सीमा से जबरन राजीनामा अर्थात् त्यागपत्र माँगा जाता है। अपने परिवार के भरण–पोषण का एकमात्र सहारा सीमा चाहकर भी अपनी नौकरी नहीं छोड़ सकती। अपने ही कॉलेज के लोगों द्वारा उसका बार–बार अपमान किया जाता है, फिर भी सीमा अपने अधिकार के लिए लड़ती है, समाज या लोकलाज के डर से कमजोर नहीं पड़ती। आचार्य एवं स्टाफ की भूख हड़ताल के कारण वह त्यागपत्र दे देती है।

सीमा अपने परविार का भरण पोषण करके घर के बेटे की जिम्मेदारी पूरी करती है। अपने परिवार के लिए वह नकारात्मक वातावरण में भी नौकरी करने पर विवश है। जातिगत विवशता, उसकी नौकरी मिलने में दिक्कतें आती हैं। सीमा इन सारी समस्याओं के बावजूद अपनी शिक्षाद्व आत्मविश्वास, स्वाभिमान के बल पर वर्षों संघर्ष करती है। और उस स्थान पर पहुँचती है, जहाँ उसका खोया हुआ सम्मान उसे मिल जाता है। यह कठिनाई के बाद मिलने वाली सफलता उसके एवं उसकी तरह की अन्य दलित युवतियाँ के लिए प्रेरणा बन जाती है।

यहाँ सीमा एक शिक्षित दलित युवती होने के कारण अत्याचार एवं अन्याय के समक्ष अडिग रहकर उसका सामना करती है। अपनी योग्यता एवं न्याय के बल पर उसी कॉलेज में कुछ वर्षों बाद आचार्य बनकर उसकी वापसी होती है। यहाँ सीमा की न्याय पाने की लड़ाई कई वर्षों तक चलती है किन्तु जीत उसे ही मिलती है। सीमा का दृढ़ मनोबल, आत्मविश्वास, परिश्रम, लगन, साहस, स्पष्टवादी स्वभाव, स्वाभिमानी, आत्मसम्मान के लिए उसकी लड़ाई उसे और अधिक मजबूती और शक्ति प्रदान करती है। आधुनिक शिक्षित दलित युवतियों के लिए सीमा का पात्र एक आदर्श पात्र कहा जा सकता है।

4. बी.केशरशिवम् की **'मंकोड़ा'** कहानी की संतोक दलित चेतना की ज्वलंत दलित नारी पात्रों में से एक है। संतोक गाँव के सवर्ण रणछोड़ की कामुक वृत्ति का शिकार नहीं बनना चाहती थी। गाँव की अन्य दलित स्त्रियों का जातीय शोषण होते एवं

उनकी हत्या की बात सभी जानते थे, किन्तु इस अन्याय के समक्ष सभी दलित चुप्पी साधे बैठे थे। संतोक उनमें से विशेष थी, क्योंकि वह अन्य स्त्रियों की भाँति रणछोड़ की वासना का शिकार नहीं बनना चाहती थी। उसका पति गाभा इतना साहसी, निडर या शक्तिशाली नहीं था, कि गाँव के धनाढ्य, सबल एवं कामुक व्यक्ति से अपनी पत्नी की रक्षा कर सके। पति की कमजोरी एवं लाचारी संतोक जानती है, फिर भी वह स्वयं को कमजोर नहीं पड़ने देती। कामांध बने रणछोड़ को उसका पुरुषत्त्व काटकर संतोक ऐसा दंड देती है, कि वह किसी दूसरी स्त्री का जातीय शोषण न कर सके।

संतोक अपने गाँव की दलित स्त्रियों के जातीय शोषण की प्रथा को तोड़ने का साहस करती है। लीक से हटकर वह नारी स्वतंत्रता का नया मार्ग बनाती है। उसका रास्ता सही न होते हुए भी, परिस्थितिवश लिया हुआ निर्णय है। यहाँ दलित पुरुष से भी अधिक शक्ति दलित स्त्री में लेखक ने दिखाई है।

5. हरीश मंगलम् की **'दायण'** कहानी की बेनीमां एक अनुभवी दाई के रुप में हमारे समक्ष आती है। गाँव की दलित बुजुर्ग बेनीमां ने अपने दाई के कुशल गुणों से अपने जीवनकाल में प्रसव वेदना पीड़ित स्त्रियों को मृत्यु के मुख से बचाया था, साथ ही कितने ही बच्चों को जीवनदान दिया था। बेनीमां अपनी इस सेवा के बदले में मात्र एक नारियल की अपेक्षा रखती थीं। बेनीमां ने दलित एवं सवर्ण सभी स्त्रियों की निःस्वार्थ सेवा की थी। बीस वर्षों से दलितवास में एकाकी जीवन जीने वाली बेनीमां लोगों की इसी सेवा के कारण आदरणीय समझी जाती थीं। हालाँकि सवर्ण भी अपने स्वार्थ एवं संकट के समय बेनीमां की सेवा लेते आए थे, किन्तु स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर वे बेनीमां की अवहेलना भी करते थे।

बेनी की उदारता और सहन शक्ति उनके चरित्र की विशषताएँ हैं। वर्षों तक सवर्ण समाज को वे दाई की सेवा देती हैं, सभी को सम्मान देती हैं, किन्तु बाद में जिन सवर्ण बच्चों को एवं स्त्रियों को उन्होंने जीवनदान दिया था, वही उनका अस्पृश्य कहकर अपमान करते हैं। उस समय बेनी माँ की सहन शक्ति की परीक्षा होती है, किन्तु परोपकारी मनुष्य बेनी माँ की तरह काँटों के बदले में फूल ही बिचेरता है। बेनी माँ इस परोपकारी स्वभाव के कारण वह दलित महिलाओं एवं समाज में आदरणीय एवं आदर्श बन जाती है। बेनी माँ सभी को यह सिखा देती हैं कि सबसे बड़ा धर्म मानवता का है, जिसकी कोई जाति नहीं होतीद्व जो अस्पृश्यता, स्वार्थ के बंधन से सदैव मुक्त होता है। यह शुद्ध विचार बेनी माँ को पाठक के हृदय में विशेष एवं स्मरणीय बनाते हैं।

बेनी अत्यंत ही सहनशील, उदार, दयालु, स्वाभामानी, परिश्रमी, गंभीर एवं कुशल दाई होने के कारण विशेष दलित नारी पात्रों में हमारे समक्ष आती हैं। क्योंकि वर्षों से सवर्णों की सेवा के बदले में अपमान मिलने पर भी वे अपने स्वभाव एवं कर्त्तव्य को पूर्ण करने के सकारात्मक विचारों को नहीं छोड़ती। सवर्णों पर किए गए उपकार के बदले में अपकार मिलने पर उन्हें ठेस अवश्य पहुँचती है, किन्तु उस ठेस की पीड़ा से उठनेवाली आह उनके मुँह से नहीं निकल पाती। इतनी सहनशक्ति बेनीमां के पात्र को विशेष बनाती है।

6. बी. केशरशिवम् की कहानी **'राती रायण की रताश'** की केशली का सौन्दर्य परी से भी अधिक था। उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर गाँव के सवर्ण युवक दीपा की कुदृष्टि केशली पर रहती है। केशली बाह्य रुप में जितनी कोमल, सुंदर एवं आकर्षक थी, वही शेरनी की तरह दहाड़ मारकर अपने शत्रु अर्थात् उस पर बुरी दृष्टि डालने वाले

या अपशब्द कहने वाले दीपा को छठी का दूध याद दिला देती है। हर स्त्री में आत्मसम्मान की भावना तो होती है, किन्तु अपने आत्मसम्मान या अपने स्वाभिमान पर कीचड़ उछालने वालों के समक्ष प्रतिकार हर स्त्री के वश की बात नहीं होती। केशली अपमान सहकर चुपचाप नहीं रहती। वह दीपा के गिड़गिड़ाने पर भी उसे माफ नहीं करती, यहाँ तक कि दीपा उसके पैरों में पड़कर माफी माँगता है, डर से काँपने लगता है, किन्तु केशली उसे नहीं बख्शती।

यहाँ केशली का चरित्र लोक–लाज के डर से अन्याय सहकर खामोश होने वाला नहीं, बल्कि ईंट का जवाब पत्थर से देने वाली है। हर सुंदर दिखने वाली स्त्री अबला नहीं होती, वह केशली की तरह सबला नारी शक्ति का प्रतीक भी हो सकती है। सवर्ण दीपा के अपमानजनक शब्द पर जी भरकर गंदी गालियाँ देनेवाली केशली, दीपा को इतना भयभीत कर देती है, कि वह जीवन में किसी भी स्त्री के समक्ष कुदृष्टि तो क्या दृष्टि डालने से पहले चार बार सोचेगा। यहाँ दलित स्त्री के आक्रोश को लेखक ने नए रुप में चित्रित किया है। केशली का चरित्र अपने इन्हीं गुणों के कारण विशेष है।

7. विट्ठलराय श्रीमाली की **'सांकड़ा'** कहानी की लाली अपने रोगीष्ठ पति शनिया के जीवन में खुशियों की बहार ले आती है। लाली जितनी खुबसूरत थी, उतनी ही परिश्रमी, बुद्धीशाली एवं पतिव्रता नारी भी। घर का काम, खेतों का काम, पति की देखभाल, बच्चों की परवरिश आदि की जिम्मेदारी उसने अपने कंधों पर सहर्ष स्वीकार ली थी। अपने पति को ही अपना शृंगार समझने वाली लाली रोगीष्ठ, बलहीन शनिया को उतना ही सम्मान प्रेम एवं महत्त्व देती है, जितना की आम स्त्री अपने स्वस्थ, बलवान पति को देती हैं। उसकी दृष्टि में उसका पति एवं परिवार ही उसका सब कुछ था।

लाली वे सारे काम करती थी, जो आम तौर पर उस गाँव के पुरुष करते थे। जैसे बैलगाड़ी चलाना, अपने परिवार की देखभाल करना, खेतों की देखभाल करना आदि। गाँव के सरपंच भी लाली की तारीफ में कहते हैं, लाली को परेशान करने वाले भीमला को वह समझाते हुए कहते हैं–

> **''अरे भीमला, तेरे ये धंधे छोड़ दे। किसी दिन जान से हाथ धोना पड़ेगा तू देखता नहीं है कितनी तेज तर्रार बाई है। वह जब ब्याहकर आई तब उसके रुप से सेनमावास तो क्या पूरे गाँव में चर्चा का विषय बना हुआ था। उसका पति शनिया भले ही मरीज था, किन्तु वह घर बसाकर रही। उसने आकर शनिया के दुःख दूर कर दिए। नहीं तो वह भूखों मर रहा था। लाली ने कठोर परिश्रम करके खेत, घर और शनिया को आबाद किया। आज उसके घर को गाँव में लोग मान देते हैं। पुरुषों को लज्जित करे ऐसी स्त्री को क्या सताना चाहिए ? उसका उदाहरण लेकर हमें शुद्ध विचार रखने चाहिए।''**[18]

यहाँ सरपंच द्वारा लाली के गुणों का बखान किया जाना लाली की विशेषता का परिचय देता है। लाली सर्वगुण सम्पन्न नारी थी। सौन्दर्य एवं गुणों के साथ ही वह अपने पर बूरी दृष्टि रखने वाले भीमला की पीठ पर सांकड़ा (मोटी पैजेनी) से ऐसे वार करती है कि उसकी पीठ की हड्डी टूट जाती है। लाली शोषण सहकर गाँव की अन्य दलित स्त्रियों की तरह चुप नहीं रह सकती। वह तो दोषी को स्वयं दंड देती है।

स्त्री का गहना सांकड़ा उसके शरीर की सुंदरता बढ़ाता है, किन्तु यहाँ लाली अपने सांकड़ा का उपयोग आत्मरक्षा के हितार्थ करती है।

8. विट्ठलराय श्रीमाली की कहानी **'शैली का व्रत'** की शैली सोलह वर्ष की दलित लड़की है। अपनी सवर्ण सहेलियों के साथ वह भी जया पार्वती का व्रत करती है। अपने माता–पिता की एकमात्र कन्या शैली सुंदर होने के साथ–साथ परिश्रमी एवं होनहार विद्यार्थीनी भी थी। उसके माता–पिता उसे उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। शैली ने भी अपने माता–पिता का सपना पूरा करने का संकल्प लिया था। शैली जिस सोसायटी, स्कूल आदि में रहती थी, वहाँ अस्पृश्यता का सामना उसे नहीं करना पड़ा था, किन्तु जब वह मंदिर में सहेलियों के साथ पूजा की थाली लेकर सबेरे पहुँचती है, तब पुजारी उसे इसलिए रोकते एवं डाँटते हैं, क्योंकि वह दलित थी।

शैली अत्यंत ही स्वाभिमानी कन्या थी। पुजारी द्वारा किए गए अपमान एवं दुर्वव्यवहार को वह सह नहीं पाती। घर एवं समाज में हमेशा प्रेम पाने वाली शैली अपने गुणों से सभी का दिल जीत लेती थी, किन्तु यहाँ मंदिर के पुजारी को शैली के गुण नहीं उसकी जाति ही दिखाई देती है। शैली अपमान की आग में जलने लगती है और काँपने लगती है। वह क्रोधवश पूजा की थाली पुजारी के सिर पर मार देती है और वहाँ से भाग जाती है।

शैली अस्पृश्यता की सदियों पूरानी प्रथा को एक झटके में तोड़ देती है। अपने पुरुषार्थ पर सदा भरोसा रखने वाली शैली जाति से नहीं कर्म से व्यक्ति की पहचान में विश्वास करती है और अपने इसी पुरुषार्थ के बल पर वह एक दिन कलेक्टर के पद पर पहुँचती है।

निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि आज की दलित नारी पहले की तरह अत्याचार सहकर खामोश नहीं रहती, वह तो अन्याय, शोषण, रुढ़िवाद, अस्पृश्यता, परंपरागत जातीय शोषण, पारिवारिक शोषण, लिंग के भेदभाव आदि के समक्ष अपना विरोध प्रदर्शित करती है। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में जहाँ नारी अपने अस्तित्व की अपनी अस्मिता की पहचान बनाने में अपनी संपूर्ण शक्ति से पुरुषार्थ करके प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है, वहाँ दलित नारी भी अपनी क्षमता, शक्ति, आत्मसम्मान, स्वाभिमान, स्वतंत्रता, पहचान, अस्मिता, अधिकार आदि को पाने के लिए पहल कर चुकी हैं, जबकि कुछ नारियाँ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर भी चुकी हैं, किंतु अधिकतर नारियाँ आज भी संघर्ष कर रही हैं। सवर्ण नारियों की तुलना में दलित नारियों का जीवन संघर्ष अधिक कष्टमय है, क्योंकि उन्हें पहले स्त्री एवं दलित स्त्री दोनों के कारण दुगना संघर्ष करना पड़ता है। जो दलित स्त्रियाँ आज इस दुगने संघर्ष के बाद भी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर रही हैं, वास्तव में वे बधाई पान की हकदार हैं। साथ ही ऐसी दलित नारियाँ अन्य दलित नारियों एवं नई पीढ़ी की दलित युवतियों के लिए आदर्श भी कही जा सकती हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रस्तावना – गुजीरतह दलित कहाँनी और सामाजिक सं. राघवजी माधड हयाती सितम्बर–दिसम्बर 2007 पृ. सं 153

2. सिलिया – दलित महिला कथाकारो की चर्चित कहानियाँ सं. डॉ.कुसुम वियोगी पृ. सं. 28

3.

4. युद्धरत आम आदमी पृ. 61

5. मंगली – दलित महिला कथाकरों की चर्चित कहानियाँ सं. डॉ. कुसुम वियोगी पृ.33

6. सुनीता – दलित महिला कथाकरों की चर्चित कहानियाँ सं. डॉ. कुसुम वियोगी पृ.27

7. वही पृ. 60

8. साजिश – दूसरी दुनिया का यथार्थ सं. रमणिका गुप्ता पृ. 85

9. अंगुरी – हैरी कब आएगा सं. सूरजपाल चौहान पृ. 44

10.अम्मा – युद्धरत आम आदमी अक्टूबर–दिसम्बर 2005 पृ. 23

11.क्रांति – दलित साहित्य वार्षिकी 2007–2008 पृ. 213

12. वही पृ. 213

13. वही पृ. 217

14.सनातनी– बयान जून–2008 पृ. 20

15.रम्पो का चेहरा – हंस अगस्त 2004 पृ. 186

16. वही पृ. 186

17. आलोचना अक्टूबर–दिसम्बर 2004 जनवरी–मार्च 2005 पृ. 143

18.सांकडा – साक्षी साबरनी सं. विट्ठलराय श्रीमाली पृ. 147

षष्ठ अध्याय

''उपसंहार''

अध्याय – 6

उपसंहार

दलित साहित्य, साहित्य लेखन की चर्चित साहित्यिक नवीन विधा के रुप में उभर कर सामने आया है। इसके अंतर्गत उन लोगों के हितों की वकालत की जाती है, जो सदियों से शोषित, पीड़ित और उपेक्षित रहे हैं। दलित शब्द भले ही आधुनिक हो किन्तु इसके अर्थ की व्याप्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है। प्राचीन काल से भारतीय समाज में नारियों विशेषकर दलित नारियों के शोषण की अमानवीय परिपाटी चली आ रही है। यह परिपाटी उन्हीं विकृतियों के साथ बहुत कुछ आज भी समाज में विद्यमान है। इस तरह सदियों से स्त्रियों पर अनगिनत अत्याचार होते चले आए हैं। दलित स्त्री तो शोषितों में भी अति शोषित है। स्वतंत्रता और समानता के अधिकार से तो उसे सदा से ही वंचित रखा गया है। जाति के आधार पर शोषण हमारे समाज की कड़वी सच्चाई है तो जेंडर के आधार पर अत्याचार भी उसी समाज की वास्तविकता है। शुरु में दलित लेखकों ने दलित स्त्री के प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया था लेकिन कालांतर में उनकी दृष्टि इस ओर गई और उनकी रचनाओं में स्त्री–पीड़ा को भी स्थान मिलने लगा। दलित समाज के भीतर स्त्री का महत्त्वपूर्ण योगदान होने के बावजूद उसके साथ होने वाला भेदभाव विशेष चर्चा का विषय बना जब स्वयं दलित स्त्रियों ने अपनी स्थिति का बयान करना शुरु किया। दलित स्त्री तिहरे शोषण को झेलती है। एक तरफ वह स्त्री है इसलिए उसका शोषण होता आया है। दूसरे जाति विशेष में होने के कारण और तीसरे आर्थिक स्थिति की कमजोरी के कारण वह पीसती आई है। जिन प्रबुद्ध स्त्रियों ने दलित पितृसत्ता पर सवाल खड़े किए उनमें विमल थोरात, कौशल्या बैसंत्री, सुशील टाकभौरे, रजनी तिलक, रजत रानी 'मीनू', अनीता भारती आदि नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। दलित साहित्य में अपनी उपेक्षा का अनुभव कर दलित स्त्री अपनी समस्या, अपने प्रश्न को जितने यथार्थ रुप से प्रस्तुत कर सकती है, उतना एक पुरुष नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि दलित साहित्य में पुरुषों द्वारा लिखे गए साहित्य में स्त्री प्रश्नों को सही ढंग से नहीं उकेरा गया है। दलित साहित्य का उद्‌भव ही शोषण, अत्याचार, के विरुद्ध समानता, मुक्ति पाने के लिए हुआ है, ऐसे में दलित स्त्री की संवेदना को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करके उसके प्रति होने वाले अन्याय को रोकने का प्रयास और उसके प्रश्नों के जन समुदाय तक पहुँचाकर उसकी स्थिति में सुधार लाना कहा जा सकता है।

दलित स्त्रियों की सामाजिक धार्मिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह समझा जा सकता है कि दलित नारी सदियों से किस तरह अन्याय पूर्ण, कष्टमय जीवन जी रही हैं। किस तरह के संताप भोग रही है।

इक्कीसवीं सदी में हमारे देश ने प्रगति की बुलंदियों को छू लिया है। एक तरफ विज्ञान बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है और दूसरी तरफ मनुष्य अपनी सोच के दायरे को और भी संकुचित करता जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि यथार्थ में दलित महिलाओं के साथ सवर्णों द्वारा अमानवीय, अत्याचार, दुर्व्यवहार, बलात्कार उनके संघर्ष की चेतना कुंद करने और उनके दमन का सबसे घिनोना हथियार रहा है। देश में महिलाएँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। दलित महिलाएँ तो हवस के भूखे भेड़ियों की

आए–दिन शिकार होती रहती हैं। हमारे देश की विडंबना है कि जब किसी बड़े घर की बेटी, विदेशी या फिर नामी–गिरामी हस्ती के साथ बलात्कार होता है, तो बड़े चिंतित होते हैं लोग, किन्तु गरीब दलित की लड़की के साथ बलात्कार होता है, तो किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग अर्थात् निचले तबके के लोग आज भी शोषण और अत्याचार की चक्की में पिस रहे हैं। उसमें भी दलित नारी की दयनीय स्थिति व्यथा, उन पर होने वाले अत्याचार, उनका संघर्ष, उनमें आई चेतना, उनके प्रश्न, उनकी घुटन, उनकी आशाएँ उपेक्षाएँ हाशिए की स्थिति आदि कटु यथार्थ को उद्‌घाटित करने का प्रयास ''हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन'' (1980–2008) में किया गया है।

दलित समाज में जागृति लाने और संपूर्ण समाज में मानवीय गरिमा तथा स्वाभिमान का आंदोलन छेड़ने में ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, डॉ. भीमराब अंबेडकर का अभूतपूर्व योगदान रहा है, फुले और उनकी जीवन संगिनी सावित्री बाई फुले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले और अनेक हमले झेलते हुए अपना अभियान जारी रखा। ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की कर्मभूमि महाराष्ट्र समाज सुधार आंदोलनों और परिवर्तनवादी लेखन के मामले में अन्य प्रांतों की अपेक्षाकृत आगे रहा। मराठी में दलित लेखन का प्रभाव हिन्दी गुजराती एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लेखन पर पड़ना स्वाभाविक था।

पुरानी पीढ़ी से प्रेरणा लेती हुई दलित लेखकों की नई पीढ़ी सामने आई। इस नई पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षरों में हिन्दी के साहित्यकार **ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती, सी. बी. भारती, श्यौराज सिंह बेचैन, कुसुम मेघवाल, कर्मशील भारती, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, जय प्रकाश लीलावान, रजतरानी 'मीनू',** आदि है। गुजराती में **जोसेफ मेकवान, बी. केशरशिवम्, मोहन परमार, हरीश मंगलम्, प्रवीण गढवी, चन्द्राबहन श्रीमाली, विठ्ठलराय श्रीमाली, मधूकांत कल्पित, पुष्पा माधड, हरिपार,** आदि कहानीकार हैं। स्त्री और पुरुष दोनों मानव हैं। अतः उनमें मूल मानवगत वृत्तियाँ समान होती हैं परंतु दोनों के संस्कार अनुभव भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि कुछ अनुभव ऐसे हैं जिनसे केवल स्त्री ही गुजरती है स्त्रियों से भी सवर्ण स्त्री से दलित स्त्री के इस अनुभव की यह एकांतिकता जहाँ उसके विश्व को सीमित करती है, वहाँ उसके वैशिष्ट्य भी प्रदान करती है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में ऐसी ही दलित स्त्री की संवेदना को रेखांकित करने का एक नम्र प्रयास हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय दलित साहित्य से जुड़ा हुआ है, अतः दलित कौन? यह दलित विमर्श का आधारभूत बहस है। इसलिए दलित शब्द का संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी भाषा में शब्दकोशीय अर्थ क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। मेरे विचार से सदियों से जिस जाति का शोषण हुआ है, जिन्हें उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश किया गया है, जो सवर्णों द्वारा रौंदे गए हैं, जिन्हें हीन समझा गया है, अस्पृश्य, अछूत कहकर जिन्हें प्रताड़ित किया गया है, ऐसे सभी लोग दलित कहे जा सकते है, दलित शब्द का अर्थ निश्चित कर लेने के बाद यह जानना शेष रह जाता है कि दलित साहित्य किसे कहते हैं। दलित साहित्य की परिभाषा का प्रश्न तब उठा जब दलितों द्वारा लिखा साहित्य सामने आया और उसे दलित साहित्य कहा गया तब यह विवाद खड़ा हुआ कि दलित साहित्य के भीतर किस लेखन को रखा जाए। इस बात पर अधिकतर विद्वान सहमत रहे हैं कि जिस रचना में दलित जीवन और दलित प्रश्न केन्द्रीय हो वह दलित साहित्य है। किन्तु जन्मना दलित साहित्यकार और जो जन्म से

दलित नहीं हैं ऐसे साहित्यकारों द्वारा रचित दलित साहित्य दोनों के बीच बहस उठ खड़ी हुई। मेरे विचार से जिस साहित्य में दलितों के जीवन से जुड़ी समस्याओं, उनकी पीड़ा, वेदना, प्रश्नों, जीवन का यथार्थ रुप में चित्रण किया गया हो वह दलित साहित्य है चाहे वह गैर दलित द्वारा संवेदना के आधार पर लिखा गया हो या अनुभव के आधार पर दलितों द्वारा लिखा गया हो। किसी भी साहित्य को इस तरह सीमा में बाँधने से उसका विकास अवरुद्ध होता है। अतः हर साहित्य की तरह दलित साहित्य लेखन के लिए दलित, गैरदलित सभी को स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। कालीचरण 'स्नेही', वसन्त पाटणकर, राजमणिशर्मा, ओमप्रकाश वाल्मीकि, के. सच्चिदानन्द, जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, श्योराज सिंह बेचैन, तेजसिंह, राजनी तिलक, राजकुमार सैनी आदि साहित्यकारों के विविध मंतव्यों को जानने के लिए उनके द्वारा रचित ग्रंथ एवं लेखों को पढ़ जाना आवश्यक है।

दलित साहित्य का प्रयोजन क्या है ? यह प्रश्न दलित साहित्य के लिए विशिष्ट है। दलित साहित्य का प्रयोजन सबसे विशेष है, वह है सदियों से शोषित, वंचित दलितों में 'आत्मबल' और 'आत्मसम्मान' की भावना जागृत करना। दलित साहित्य के एक मात्र प्रयोजन है दलितों का उत्थान करना। हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्‌भव भले ही मराठी से प्रेरणा लेकर हुआ है, किन्तु आज इन दोनों भाषाओं में दलित साहित्य हर विधा में विकास की ओर बढ़ रहा है। विविध भाषाओं में दलित साहित्य रचना की बढ़ती संख्या को देखते हुए दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को लेकर भी विवाद खड़े हुए हैं। वास्तव में यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि दलित साहित्य की पहचान उसकी 'कला साधना' से न होकर विषय वस्तु से हुई है। शिल्प और कला का प्रश्न उसके लिए प्राथमिक नहीं है प्राथमिक है अन्तर्वस्तु। दलित साहित्य पाठकों के मनोरंजन करने, उन्हें आनंद प्रदान करने के लिए नहीं बल्कि दलित साहित्य दलितों की आत्मानुभुति की अभिव्यक्ति करके दलितों की पीड़ा, वेदना को प्रस्तुत करता है। इसीलिए कुछ लोग इसे सिर्फ वेदना का साहित्य भी कहते हैं। साहित्य को समाज का दर्पण इसीलिए कहा जाता है, क्योंकि साहित्य में वही प्रस्तुत होता है जो समाज में घटित होता है।

दूसरे अध्याय में हिन्दी की दलित कहानियों में नारी संवेदना को प्रस्तुत किया गया है। सन् 1980 से सन् 2008 तक की हिन्दी दलित कहानियों में **'बदबू', 'इस समय में', 'क्रान्ति', (राजवाल्मीकि) 'सूरज', 'सांग', 'लाठी', (जय प्रकाश कर्दम) 'युज एण्ड थ्रो', (डॉ. पूरन सिंह) और 'वह पढ़ गई', 'अंतिम बयान',(डॉ. कुसुम वियोगी) 'रिश्वत', 'सुमंगली', (कावेरी) 'सिलिया', 'मेरा समाज', (सुशीला टाकभौरे) 'मैं मइया थी' (सरिता भारत) 'सुनीता', हम कौन हैं ?', (रजतरानी 'मीनू') 'अब का समय' (प्रहलाद चन्द्रदास) 'सनातनी' (अमर स्नेह) 'कर्फ्यू' (अखिलेश कुमार) 'खटिया की जाति' (सुरेन्द्र नायक) 'फुलवा', 'डंक', 'बात', (रत्नकुमार सांभरिया) 'हरिजन' (प्रेम कपाड़िया) 'उपमहाद्वीप' (अजय नावरिया) 'मजूरी', 'कर्ज़', 'अपना मत', 'दर्द', 'आधा सेर घी', (मोहनदास नैमिशराय) 'अत्तू और अम्मा', 'साजिश', 'अंगूरी', (सूरजपाल चौहान) 'जंगल की रानी', 'अम्मा', 'चिड़ीमार' 'अंधड', (ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'बीती रात अंधेरी', 'अंगारा', 'मंगली' (कुसुम मेघवाल) 'उसका फैसला' (कालीचरण प्रेमी) 'बंदरिया' (लखनलाल पाल) 'मरीधार' (विजयकांत) 'पहली रात का अंत' (उमेश कुमार सिंह) 'लोकतंत्र में बकरी'** (उषा चन्द्रा) 'टटूता वहम', 'बदला' (डॉ. सुशीला टाकभौरे) 'भूख' (डॉ.सी.बी. भारती) **'कफ़न' (रुपनारायण सोनकर) 'आतंक' (राजेश कुमार बौद्ध) 'जंगल में आग' (गौरीशंकर**

नागदंश) 'रम्पो का चेहरा' (उमेश कुमार सिंह) जैसी कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है। यहाँ कुछ दलित शिक्षित महिलाएँ हैं तो कुछ दलित अशिक्षित महिलाएँ भी। दलित कामकाजी महिलाओं का शोषण किया जाता है तो कभी पारिवारिक शोषण का शिकार दलित महिलाएँ होती हैं। परिवार में पति एवं पिता की भूमि का महत्त्वपूर्ण रहती है दलित महिला को इन्हीं से संघर्ष करने के लिए ऊर्जा मिलनी चाहिए, किन्तु ऐसा न होने पर भी दलित महिलाएँ कमजोर नहीं बनती है। निम्न वर्गीय समाज में नारी अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त है क्योंकि परिवार के आर्थिक दायित्वों में उसका बराबर का सरोकार रहता है।

तीसरे अध्याय में गुजराती की दलित कहानियों में नारी की संवेदना को आलोच्य मुद्दे पर विचार हुआ है। **'जेल की रोटी', 'मेना', 'जोगन', 'मंकोड़ा', 'चमड़ी घीसने की वेदना', 'राजीनामा' (बी. केशरशिवम्) 'थड़ी', 'कडण', (डॉ. मोहन परमार) 'सोमली' (हरिपार) 'सपाटु पहेरवानु मन', 'दरुपदी', 'गाठाण', (प्रवीण गढ़वी) 'रखोपा का साँप' (अरविन्द वेगड़ा) 'दाझवुंते', 'नरक' (धरमाभाई श्रीमाली) 'भींस' (मौलिक बोरीजा) 'छगना को न समझ में आते सवाल', 'रोटलो नजराइ गयो' (जोसेफ मेकवान) 'दायण', एबोर्शन' (हरीश मंगलम्) 'अधूरा पुल' (मधुकान्त कल्पित) 'मेली मथरावटी' (राघवजी माधड़) 'सपायडो' (विट्ठलराय श्रीमाली) 'झाड़' (हसमुख वाघेला) 'गोमती' (पुष्पा माधड़) 'सगपण' (प्रज्ञा पटेल) 'नवी' (योगेश जोषी) 'फुट रे भुंडा' (प्रतीम लखमाणी) 'रोकड़ी', (चन्द्रा बहन श्रीमाली) 'गोरुचंदन', वंटोड', (भी. न. वणकर) 'गंगा माँ', 'मुंझारो', (दलपत चौहान) 'रेड कार्पेट', 'शैली का व्रत', 'मुखिया का भांजा', 'सांकडा' (विट्ठलराय श्रीमाली) 'गूँगी चीख' (हरीशकुमार मकवाणा) 'बोटेली वस' (डॉ. केशुभाई देसाई) 'होड़' (अरविंद वेगडा) 'लोही की लागणी' (डेनियल मेकवान) 'कुलदीपक' (शेलेष कुमार क्रिस्टी) आदि** लगभग **62** कहानियों को आधार रुप में लेते हुए गुजराती की दलित कहानियों में नारी की संवेदनाओं को विश्लेषित किया गया है। इस अध्ययन से कई तथ्य सामने आए हैं। दलित महिलाओं की अपनी समस्याएँ हैं, उनका जातीय शोषण किया जाना, सवर्णों की स्वार्थपरता का शिकार होना, परंपरा के प्रति दलित स्त्री का विद्रोह है, तो शोषण के प्रति भी दलित स्त्री का विद्रोह देखा जा सकता है। मात्र बाह्य लोग ही दलित स्त्री का शोषण नहीं करते पारिवारिक शोषण को भी दलित स्त्री झेलती है। गरीबी यह दलित स्त्री की बड़ी समस्या है, जिससे वह जीवनभर सहती है। गरीबी के कारण ही दलित महिला को न चाहते हुए भी शोषण सहना पड़ता है।

इस शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में नारी संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन पर अपने सामर्थ्य के अनुसार विचार–विमर्श किया गया है। हिन्दी और गुजराती कहानियों में दलित महिलाओं की कई समस्याएँ समान हैं जैसे अस्पृश्यता की समस्या, जिसे दलित नारी आजीवन झेलती है, जातीय शोषण को वे परंपरागत रुप से सहती आई हैं। इस शोषण के क्या कारण है ? और किन विवशताओं के कारण दलित महिलाएँ आज भी यह शोषण सह रही हैं, इस समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। सवर्णों पर आर्थिक निर्भरता, गरीबी, भुखमरी, की समस्या दलित महिलाओं को सदियों से संवर्णो की गुलामी करने पर विवश करती आई है। पेट की भूख उनसे कौन से कार्य नहीं करवाती ? यह कहानियों के माध्यम से उद्घाटित करने का प्रयास किया है। सवर्ण पुरुषों की हवस का शिकार दलित महिलाएँ हमेशा होती आई हैं, तो कई बार छलपूर्वक भी उनका जातीय शोषण किया जाता है। दलित स्त्री केवल बाहरी व्यक्तियों द्वारा ही शोषित हाती है ऐसा नहीं है

पितृ सत्तात्मक समाज में उसके परिवार के पुरुषों द्वारा भी उसका शोषण होता है। **'सुनीता', 'उसका फैसला', 'बदबू', 'नरक', 'इसमें सीता का क्या दोष',** जैसी कहानियों में यह समस्या देखी जा सकती है। वर्तमान समय में शिक्षित दलितों में जातिगत हीनभावना की समस्या भी गंभीर समस्या बनती जा रती है। जिसके शिक्षित दलित अपनी ही जाति के लोगों से किनारा करते देखे जा सकते हैं। जातिगत हीनताबोध के कारण दलित को मनोवैज्ञानिक दबाव से गुजरना पड़ता है। सवर्ण समाज में मान सम्मान पाने के लिए दलित अपने परिवार के लोगों से भी मतभेद करने को तैयार हो जाते हैं। हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों के अध्ययन के दौरान एक बात स्पष्ट होती है कि पुरुष लेखकों की उपेक्षा स्त्री लेखन में दलित नारी की संवेदना का चित्रण अधिक सघन रुप में प्रस्तुत हुआ है। हिन्दी और गुजराती के विभिन्न क्षेत्रों से ली गई दलित कहानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि चाहे भारत का कोई भी प्रदेश हो सभी जगह दलित स्त्री की स्थिति समान है। क्योंकि जिस तरह आसमान सभी जगह नीला होता है और कौए सभी जगह काले होते हैं। यह बात दलित नारी के विषय में भी उसी तरह कड़वी सच्चाई बनकर हमारे समक्ष आती है, कि चाहे हिन्दी की दलित कहानी हो या गुजराती की, दलित नारी की स्थिति अधिकतर समान ही है। हिन्दी और गुजराती कहानियों में क्रमशः **'अम्मा', 'क्रान्ति', 'टूटता वहम', 'सिलिया', 'रम्पो का चेहेरा', 'बात', 'मंगली', 'पहली रात का अंत', 'मंकोड़ा', 'थडी', 'गंगामाँ', 'राजीनामा', 'रोटलो नजराई गयो', 'दायण', 'सोमली',** जैसी कहानियों में नारी संवेदना सघन रुप से मिलती है। परिवेश की दृष्टि से हिन्दी और गुजराती की दलित कहानियों में शहरी ग्रामीण परिवेश का वर्णन है, तो कई कहानियाँ ऐसी है जहाँ शहरी एवं ग्रामीण दोनों परिवश में दलितों का जीवन उनकी यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करने वाला है।

इस अध्ययन के दौरान दलित महिलाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं, रहस्यों, रुपों, समस्याओं, परिस्थितियों आदि से गुजरने का अवसर मिला है। जिसके कारण कई ऐसी महिलाओं के चेहरे सामने आए हैं। दलित जाति में जन्म लेने वाली महिलाएँ बचपन से ही अस्पृश्यता, असमानता, लिंग भेद, गरीबी, अत्याचार, अपमान, शोषण आदि को झेलती हैं। इसीलिए दलित नारी का शोषित, दमित, पीड़ित, अतिश्रमिक रुप मिला है, वहाँ इन सबके बावजूद कुछ महिलाएँ ऐसी भी मिलती हैं जो शोषण के प्रति विद्रोह करने वाली तेज, तर्रार, जुझारु और संघर्षशील हैं, जिनकी जितनी तारीफ की जाय कम है। प्रस्तुत शोध–प्रबंध में ऐसी व्यक्तित्व सम्पन्न नारियों को उनकी विशेषताओं के कारण अलगाने और विश्लेषित करने का एक सन्निष्ट प्रयत्न हुआ है। समूचा पंचम अध्याय इनको समर्पित है। ये व्यक्ति सम्पन्न नारियाँ शिक्षित दलित नारियाँ ही हैं ऐसा नहीं है कुछ तो अतिसामान्य और अकिंचन परिवेश से आई हैं। **'सिलिया'** की सिलिया **(सुशीला टाकभौरे) 'मंगली'** की मंगली **(डॉ. कुसुम मेघवाल) 'सुनीता'** की सुनीता **(रजत रानी 'मीनू') 'साजिश'** की शान्ता **'अंगूरी'** की अंगूरी **(सूरजपाल चौहान) 'जोजना'** की सुकिया **(दीपक कुमार 'अज्ञात) 'अम्मा'** की अम्मा **(ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'क्रान्ति'** की क्रान्ति **(राज वाल्मीकि) 'सनातनी'** की चन्द्रो **(अगर स्नेह) 'रम्पो का चेहरा'** की रम्पो **(उमेश कुमार सिंह) 'थडी'** की रेवी **(मोहन परमार) 'सोमली'** की सोमली **(हरिपार) 'राजीनामा'** की सीमा, **'मंकोडा'** की संतोक **'राती रायण की रताश'** की केशली **(बी. केशरशिवम्) 'दायण'** की बेनीमा **(हरीश मंगलम्) 'सांकडा'** की लाली, **'शैली का व्रत'** की शैली **(विट्ठलराय श्रीमाली)** आदि का समावेश हो सकता है जो अपनी व्यक्तित्व की गध से पाठकों को मुग्ध कर देती हैं। इन नारी पात्रों की बुद्धि प्रतिभा, उनकी निरन्तर

संघर्ष–क्षमता, उनका अदम्य साहस, उनका आत्मविश्वास उन्हें अन्य भीरु, अबला, सहमे, कमजोर पात्रों से अलगाता है। ये नारी पात्र दलित नारी चेतना को अग्रसर करते हैं और हमारे देश में अवहेलना को झेलने वाली दलित नारी को न्याय दिलाने की निरन्तर कोशिश में जूझते रहते हैं। समाज में कुछ ऐसी दलित नारियाँ होती हैं जिनके कारण ही कहानी लेखन में इस प्रकार के अपवाद कहे जा सकने वाले पात्रों की निर्मित संभव हो सकी हैं। अतः इन नारी पात्रों को हम इस रुप में ले सकते हैं कि दलितों के भविष्य का इतिहास इनके द्वारा रचा जाएगा। दलित समाज में ऐसी स्त्रियाँ आज अवश्य ही कम हैं, परंतु दलितों के समाज इतिहास और उनके चिन्तन को नई दिशा ऐसी ही स्त्रियों से मिल सकती है।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध के अध्ययन के अंतर्गत हिन्दी गुजराती क्षेत्र की दलित नारी से जुड़ी कई समस्याएँ हमारे समक्ष आती हैं, इसी के साथ दलित समाज में मौजूद, अशिक्षा, अंधविश्वास, शराब आदि नशा करना, पारिवारिक हिंसा, पितृसत्तात्मक समाज, आदि वंशानुगत सफाई कार्य को सरल समझकर उसी से जुड़े रहने की इच्छा आदि ऐसी कमियाँ हैं जिसके कारण उनकी प्रगति में अवरोध उत्पन्न होता है। आज के दलित साहित्य में दलितों की पीड़ा, वेदना, दुःखी जीवन, कमजोर स्थिति, लाचारी, विवशता आदि का ही चित्रण किया जाता है। इस लिए दलित साहित्य को कुछ लोग **'Monotonous'** साहित्य भी कहते हैं। दलित साहित्य में नीरसता एवं एकसमानता का कारण है दलितों का यातनामय इतिहास। आम व्यक्तियों की तरह दलितों के जीवन में भी उल्लास, खुशियाँ, उपलब्धियाँ, आनंद, लक्ष्य की प्राप्ति, प्रसन्नता आदि सकारात्मक अनुभव होते हैं, किन्तु साहित्य में आज इसका अभाव है। आज वह समय आ गया है, जब दलितों के संपूर्ण जीवन अर्थात् नकारात्मक के साथ सकारात्मक अनुभवों के यथार्थ को पाठकों तक पहुँचाया जाए। दलित नारी का संपूर्ण जीवन संघर्षमय अवश्य है, किन्तु इस संघर्षमय जीवन को जीने के साथ उसके जीवन के सुखद पलों का चित्रण करने की भी उतनी ही आवश्यकता है। वह इसलिए ताकि दलित साहित्य मात्र वेदना का साहित्य बनकर न रह जाए। दलित साहित्य में भी संपूर्णतापूर्ण यथार्थ का वर्णन होने से उसके विकास को गति शीघ्रता से मिल सकती है।

समकालीन साहित्य में नारी–विमर्श और दलित विमर्श ये दो पहलू विशेषतः उभरकर आए हैं। प्रस्तुत अध्ययन में एक निश्चित सीमा–मर्यादा में उपलब्ध दलित कहानियों में नारी चरित्रों को समेकित किया गया है। अलग–अलग कालखण्डों में दलित नारी चरित्रों का इसी प्रकार का अध्ययन किया जा सकता है। आलोच्य लेखकों तथा लेखिकाओं की कहानियों पर हिन्दी एवं गुजराती में अलग–अलग कार्य भी सम्पन्न हो सकते हैं। पुरुष लेखक और नारी लेखक के एतद् विषयक विमर्शों पर तुलनात्मक दृष्टिपात हो सकता है। अंत में यही निवेदन है कि मेरे इस शोध कार्य से हिन्दी और गुजराती कहानियों की आलोचना को यदि कुछ गति मिलती है और दलित नारी–विमर्श के कुछ नये आयाम खुलते हैं तथा भविष्यत अध्येता एवं अनुसंधित्सु यदि इससे किंचित मात्र भी लाभान्वित होते हैं, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगी।

परिशिष्ट

1. मूल आधार ग्रंथ–हिन्दी

1. काल तथा अन्य कहानियाँ–
रत्नकुमार सांभरिया
प्रकाशन– रचना प्रकाशन
प्रथम संस्करण 2004
57 नाटाणी भवन,
मिश्रराजा जी का रास्ता,
चंदपोल बाजार,
जयपुर–302001 मूल्य : 125

2. चर्चित दलित कहानियाँ–
सम्पादन–डॉ.कुसुम वियोगी,
प्रकाशक–गौतम प्रकाशन
प्रथम संस्करण 2009 30/64,
गली नं. 8, विश्वास नगर,
शाहदरा दिल्ली 110032
मूल्य : 150

3.जाति–दंश की कहानियां–
सम्पादक–सुभाष चंद्र कुशवाहा,
प्रकाशक–सामयिक प्रकाशन,
प्रथम संस्करण 2009,
3320–21, जटवाड़ा,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली 110002,
मूल्य : 500

4.जुड़ते दायित्व–
डॉ.कुसुम मेघवाल
प्रकाशक–सिद्धार्थ प्रकाशन संस्थान,
प्रथम संस्करण 1996,
344, अम्बामाता स्कीम,
टीचर्स कॉलोनी, उदयपुर (राज.)
मूल्य : 60

5. टूटता वहम्–
डॉ.सुशीला टाकभौरे,
प्रकाशक–शरदप्रकाशन,
प्रथम संस्करण 1997,
पता :अक्षररचना : एन.पी. ग्राफिक्स,
61, एस.ई.रेल्वे कॉलोनी, प्रताप नगर
नागपुर–22 मूल्य : 70

6. दलित कहानी संचयन–

सम्पादन–रमणिका गुप्ता,
प्रकाशक–साहित्य अकादेमी,
प्रथम संस्कारण : 2003,
पता–रवीन्द्र भवन,
35,फीरोज़शाह मार्ग,
नयी दिल्ली 110001, मूल्य:200

7. दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ –सम्पादक–डॉ. कुसुम वियोगी,
प्रकाशक–संगीता प्रकाशन,
30/64, गली नं 8 विश्वास नगर,
शाहदरा, दिल्ली–110032
प्रथम संस्करण 2009
मूल्य : 150

8. नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ– सम्पादन–मुद्राराक्षस,
प्रकाशन–लोकभारती,
प्रथम सस्करण 2004
15–ए,महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहबाद–1 मूल्य : 60

9. सुरंग –

डॉ.दयानन्द बटोही,
प्रकाशन गौतम बुक सेन्टर,
'चन्दन सदन'सी–263–ए,गली नं. 9,
हरदेवपुरी, शांहदरा, दिल्ली–110093
फोन 2281380,
प्रथम संस्करण 2009, मूल्य 150

10. हमारा जवाब–

मोहनदास नैमिशराय
प्रकाशन–श्री नटराज प्रकाशन
प्रथम संस्करण 2005
ए–507/12, करतारनगर,
बाबा श्यामगिरी मार्ग,
साउथ गांवड़ी एक्सटेंशन,
दिल्ली–110053 मूल्य : 295

11. हिन्दी के दलित कथाकारों की प्रकाशित पहली कहानी–

सम्पादक–सूरजपाल चौहान,
प्रकाशक–अनुभव प्रकाशन,
प्रथम संस्करण 2004,
ई–28, लाजपत नगर,
साहिबाबाद–201005
ग़ाज़ियाबाद(उ.प्र) मूल्य : 200

12. हैरी कब आएगा ? –

सूरजपाल चौहान,
प्रकाशक–सम्यक् प्रकाशन,
32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक,
नई दिल्ली–63
द्वितीय संस्करण 2003 (बुद्धाब्द 2548)

मूल आधार ग्रंथ–गुजराती

1. अंतरव्यथा–

प्रवीण गढवी,
प्रकाशन–अमर ठाकोरलाल शाह,
गूर्जर ग्रंथरत्न कार्यालय,
रतनपोणनाका के सामने,
गाँधी मार्ग, अहमदाबाद–380001
प्रथम संस्करण 1996, मूल्य 70

2. गुजराती दलित वार्ता–

सम्पादक–मोहन परमार और
हरीश मंगलम्
प्रकाशन–भगतभाई भुरालाल शेठ,
आर. आर. शेठनी कंपनी
मुम्बई 400002
अहमदाबाद 380001
प्रथम संस्करण 1987, मूल्य 60

3. चकुनो वर–

चंद्राबेन श्रीमाली,
प्रकाशन–चंद्राबेन सुरेशभाई श्रीमाली
711, 'चाहना' सेक्टर–6/बी,
गांधीनगर–382006,
फोन नं. 079 3224957, मूल्य : 90
प्रथम संस्करण 18 मे 2003,

4. भींस–

सम्पादक–मौलिक बोरीजा,
प्रकाशक–मौलिक बोरीजा,
पता–बोरीज–अक्षरधाम पाणीनी टांकी,
गांधीनगर–382020
मो.नं. 7931010433
प्रथम संस्करण 2003, मूल्य : 60

5. मुंझारो–

दलपत चौहान,
प्रकाशक–हर्ष प्रकाशन,
प्रथम संस्करण 2002,
पता–ओझ दर्शन अेपार्टमेन्ट,
महालक्ष्मी चार रास्ता के पास,

6. दलित गुजराती वार्ता–1995–

संपादक–राजेन्द्रजाडेजा,
अजित ठाकोर,
प्रकाशन–चारुतर विद्यामंडल प्रकाशन,
पता–अंग्रेजीविभाग,स.प.युनिवर्सिटी,
वल्लभविधानगर–388120,

7. दलित चेतना नी वार्ताओ–

सम्पादक–भार्गव ओमगुरु,
प्रकाशन भार्गव ओमगुरु,
'शुण' प्लोट नं. 138/2, सेक्टर 1बी,
प्रकृति उधान के सामने,
गांधीनगर 382009,
फोन न. 3237835,
प्रथम संस्करण 200 मूल्य 1250

8. नरक–

धरमाभाई श्रीमाली,
प्रकाशन–धरमाभई श्रीमाली,
ब्लॉक नं. 96/2, 'छ' टाईप,
सेक्टर–23, गांधीनगर,
प्रथम संस्करण 2003, मूल्य : 60

9. राती रांयणनी रताश–

बी. केशरशिवम्
प्रकाशक–अशोक धनजीभाई शाह,
प्रथम संस्करण 2001,
पता–नवभारत साहित्य मंदिर,
134, प्रिन्सेस स्ट्रीट,
मुंबई–400002,
गांधी रोड, देरासर पासे,
अहमदाबाद–380001, मूल्य : 225

10. वार्तालोक–

सम्पादक–हरीश मंगलम्,
प्रकाशक–चारुल चौहान,
प्रथम संस्करण 2008,
प्राची ग्राफिकस,
गांधीनगर–38007, मूल्य 250

11. विलोपन–

भी. न. वणकर

12. वणबोटी वारताओ–

संपादक–दलपत चौहान,
प्रकाशक–अशोक धनजीभाई शाह,
प्रथम संस्करण अक्टूबर 2000
ता–नवभारत साहित्य मंदिर,
134, प्रिन्सेस स्ट्रीट,
मुंबई–400002

13. साक्षी साबरनी–

विट्ठलराय श्रीमाली,
प्रकाशक–विट्ठलराय नथुराम श्रीमाली,
प्रथम संस्करण 2003
62, न्यु व्रज सोसायटी,
वेजलपुर, अहमदाबाद–51,
मूल्य : 100
पालडी, अहमदाबाद–4, मूल्य : 80

2. समीक्षात्मक सहायक ग्रंथ–हिन्दी

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण –

डॉ. मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला,
प्रकाशन–चिन्तन प्रकाशन,
22 ए मछरिया रोड,

2. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतान्त्रिक चेतना –

सम्पादक–हरपालसिंह 'अरुष',
प्रकाशन–गोविन्द पचौरी,
जवाहर पुस्तकालय
हिन्दी पुस्तक प्रकाशन एवं वितरक
सदर बाजार, मथुरा (उ.प्र.)
281001 मों. 09897000951
प्रथम संस्करण 2008
मूल्य : 200

3. गुजराती साहित्य में दलित कलम–

रमणिका गुप्ता,
प्रकाशक–रमणिका फाउंडेशन,
मेन रोड, हजारीबाग (झारखंड)
फोन नं. 06546–277730
प्रथम संस्करण 2001, मूल्य : 200
नौबस्ता, कानपुर 208021,
प्रथम संस्करण 2001 मूल्य : 350

4. पुनर्वास–

सम्पादक–विपिन बिहारी,
प्रकाशक–सूरज प्रकाशन
77सी/52रु1, मुकेश नगर,
शाहदरा दिल्ली 110032,
प्रथम संस्करण 2006, मूल्य : 125

5. भारतीय समाज क्रान्ति के जनक महात्मा जोतिबा फुले–

डॉ. मु. ब. शहा
प्रकाशक–राधाकृष्ण प्रकाशन,
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
प्रथम संस्करण 1998 मूल्य : 50

6. दलित चिन्तन का विकास– (अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर)

डॉ. धर्मवीर,
प्रकाशक–वाणी प्रकाशन,
21 ए, दरियागंज, नयी,
नयी दिल्ली 110002
फोन नं. 23275710,
प्रथम संस्करण 2008,
मूल्य : 350

7. दलित नारी एक विमर्श–

सम्पादक–ज्ञानेन्द्र रावत,
प्रकाशक–सम्य प्रकाशन,
32/3, क्लब रोड,
पश्चिमपुरी चौक,
नई दिल्ली–63
दूरभाष 011–25216489,25216147,
प्रथम संस्करण 2004 मूल्य : 150

8. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता–

सम्पादक–डॉ.कालीचरण 'स्नेही',
प्रकाशन–आराधना ब्रदर्स,
124/152 सी–गोविन्द नगर,
कानपुर 208006, दूरभाष 2651490
प्रथम संस्करण 2004 मूल्य : 300

9. दलित साहित्य 1999–

जय प्रकाश कर्दम,
प्रकाशक–अतिश प्रकाशन,
9–बी, पॉकेट एफ–1,
जी–8 एरिया, हरिनगर, दिल्ली–64
प्रथम संस्करण 2001,मूल्य : 300

10. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–

डॉ. शरणकुमार लिंबाले
प्रकाशक–वाणी प्रकाशन,
नयी दिल्ली–11002,

11. दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार–

सम्पादक–रमणिका गुप्ता,
प्रकाशक–समीक्षा पब्लिकेशन्स,
एक्स 3284 ए, स्ट्रीट नं. 4,
रघुबरपुरा नं. 2,
गांधीनगर, दिल्ली 110031,
प्रथम संस्करण 2004 मूल्य : 180,

12. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषाएँ–प्रो. राजमणि शर्मा,
प्रकाशन–वाणी प्रकाशन,
21 ए, दरियागंज,
प्रथम संस्करण 2008
नयी दिल्ली 110002, मूल्यः 200

13. दलित वैचारिकी की दिशाएँ–

सम्पादक–बद्री नारायण,
प्रकाशन–राधाकृष्ण,
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज,
नई दिल्ली 110002,
प्रथम संस्करण 2008, मूल्य : 150

14. दलित साहित्य दशा और दिशा–

सम्पादक–माता प्रसाद,
प्रकाशक–भारतीय दलित साहित्य
अकादमी,133 टैगोर पार्क,
मॉडल टाउन, दिल्ली 110009
मूल्य : 250

15. दलित विमर्श की भूमिका–

कँवल भारती,
प्रकाशक–इतिहास बोध प्रकाशन,
बि 239, चंद्रशेखर आजाद नगर,
इलाहबाद 211004
दूरभाष 0532–546769
प्रथम संस्करण 2002,मूल्य : 35

16. निज घरे परदेसी–

(झारखंड के आदिवासियों पर केन्द्रित)
रमणिका गुप्ता,
प्रकाशक–वाणी प्रकाशन,
21–ए, दरियागंज,
नई दिल्ली 110002,
दूरभाष 011–23273167,23275710,
प्रथम संस्करण 2004 मूल्य : 75

17. रत्नकुमार साँभरिया की कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन–

ममता चौहान,
प्रकाशन–संकल्प प्रकाशन,
4532/15,नजदीक
टेलिफोन कार्याल
दरियागंज, नई दिल्ली–110002
दूरभाष 011–43556633,
प्रथम संस्करण 2011 मूल्य : 200

18. समकालीन हिन्दी दलित–साहित्य एक अध्ययन–डॉ. जीतूभाई मकवाणा,
प्रकाशक–दर्पण प्रकाशन,
7, शंकर पार्क, नडियाद 387001,
प्रथ्मम संस्करण 2004 मूल्य : 500

19. सूरजपाल चौहान की कहानियों में दलित जीवन –

नाराय राठौड़,
प्रकाशन–जवाहर पुस्तकालय,
सदर बाजार, मथुरा (उ.प्र)
281001
प्रथम संस्करण 2007
मूल्य : 150

20. शुद्रों का प्राचीन इतिहास–

रामशरण शर्मा,
प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन,
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली 110002,
प्रथम संस्करण 1992,मूल्य : 85

21. शोषित समाज की दशा और दिशा : समग्र मूल्यांकन–

सम्पादक–डॉ. आर.एम.एस.विजयी,
प्रकाशक–आकांक्षा प्रकाशन,
ए 2/193,
पूर्बी गोकलपुर (विस्तर),
लेनी रोड, दिल्ली 110094
प्रथम संस्करण 2000 मूल्य : 80

22. हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श–

सम्पादक–डॉ. दिलीप मेहरा,
प्रकाशक–बी. के. तनेजा,
क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी,
28, शॉपिग काम्प्लैक्स, कर्मपुरा,
नई दिल्ली 110015,
प्रथम संस्करण 2011

समीक्षात्मक सहायक ग्रंथ–गुजराती

1. गुजरातनी आंबेडकरी चणवण नो इतिहास 1920 से 1970–
पी.एच.डी. पदवी के लिए सरदार पटेल युनिवर्सिटी द्वारा स्वीकृत शोधप्रबंधक का ग्रंथ संस्करण, प्रकाशक–डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जन्मशताब्दी उज्वणी समिति गुजरात राज्य, ब्लोक 5, गांधीनगर, प्रथम संस्करण 6 दिसंबर 1991

2. डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जीवनचरित्र–
डॉ.पी.जी.ज्योतिकर, प्रकाशन–शिक्षण विभाग, गुजरात राज्य,ब्लोक 5, सचिवालय, गांधीनगर, मूल्य : 50 प्रथम संस्करण सप्टेम्बर 1995,

3. दलित साहित्य आंदोलन–
डॉ.चन्द्रकुमार वरठे, प्रकाशक–डॉ.आर.एच.वणकर 'स्नेहस्वरुप' मारुति सोसायटी, उपलेटा जि. राजकोट, प्रथम संस्करण 2003 मूल्य : 100

4. प्रतिध्वनि–
सम्पादक–हरीश मंगलम्, प्रकाशक–हरीश मंगलम्, 'प्रकंप' 7, दुर्गाकृपा सोसायटी, कीर्तिधाम तीर्थ पासे, चांदखेडा 382424 प्रथम संस्करण 2006 मूल्य : 100

5. दलित कथाविमर्श–
डॉ. कान्ति मालसतर, प्रकाशक–डॉ.कान्ति मालसतर, एच 3, अध्यापक कुटीर, प्रतापगंज, वडोदरा 390002 मो.न.9428032802 प्रथम संस्करण 2010 मूल्य : 200

3. कोश –संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी

संस्कृत –

1.संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश –	वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी पब्लिकेशन, दिल्ली, पुर्नर्मुद्रण 1981

हिन्दी–

1.अंग्रेजी–हिन्दी कोश –	फादर कामिल बुल्के, एस चन्द एण्ड कंपनी, दिल्ली, पुनः मुद्रित 1987
2.मानक हिन्दी कोश –	रामचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1993
3.संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर –	संम्पादक–रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारणी सभा, काशी नवम संस्करण सं–2044

गुजराती –

1.बृहद गुजराती कोश –	अध्या के. के. शास्त्री, युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद (गुजरात) प्रथम आवृत्ति 1981 खंड 2

अंग्रेजी –

1.The Oxford Hindi –English Dictionary -	R. S. Gragor, Oxford University Press] New Delhi, Forth imp.1999

4. पत्रिकाएँ–हिन्दी

1. अक्सर बीस : अप्रेल–जून 2012 –

सम्पादक–हेतु भारद्वाज,
ए 243, त्रिवेणी नगर,
गोपलपुरा बाईपास,
जयपुर 302018,(राजस्थान)

2. अपेक्षा वर्ष 2 अंक 8 जुलाई–सितम्बर 2004 –

सम्पादक–तेजसिंह,
27 घौंडली,
कृष्णा नगर, दिल्ली–51

3. पंचशील शोध समीक्षा बर्ष अंक 14 अक्टूबर–दिसम्बर 2011 –

सम्पादक–हेतु भारद्वाज,
पंचशील प्रकाशन,
फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता,
जयपुर–302003

4. बयान वर्ष 2 अंक 21 अप्रैल 2008–
वर्ष 2 अंक 23 जून 2008–
वर्ष 3 अंक 27 अक्टूबर 2008–

सम्पादक–मोहनदास नैमिशराय
बी.ए.जोगदंड, राजेश सिंह,
बी.जी.5ए/30 बी,
पश्चिम बिहार,
नई दिल्ली 110063 मूल्य : 10
मोबाइल न. 9350868898

5. दलित साहित्य वार्षिकी 1999, 2003, 2006, 2007–2008

सम्पादन–जयप्रकाश कर्दम,
प्रकाशन–अकादमिक प्रतिभा,
बी 634, डी.डी.ए फ्लैट्स,
ईस्ट ऑफ लोनी रोड,
दिल्ली–110093 मूल्य : 400

6. युद्धरत आम आदमी सितंबर 2008 अंक 93 अक्टूबर–दिसंबर–2002

संम्पादक–रमणिका गुप्ता

7.हंस अगस्त 2004 पूर्णांक 215, वर्ष 19, अंक 1–

सम्पादन–राजेन्द्र यादव
प्रकाशन– अक्षर प्रकाश प्रा.लि,
2/36, अन्सारी रोड,
दरियागंज,
नई दिल्ली–11002 मूल्य : 50

पत्रिकाएँ–गुजराती

1. दलित चेतना वर्ष 5 अंक 1–2 नवम्बर–दिसम्बर 2010– सम्पादक–मनोज परमार,
ए 25, परिमल सोसायटी,
कीर्तिधाम तीर्थ, के पीछे,
चांदखेडा–382424(गांधीनगर)

2. हयाती वर्ष 1 अंक 1 मार्च 1998– सम्पादक–मोहन परमार,
मधुकान्त कल्पित,
प्रकाशक–हरीश मंगलम्,
'प्रकंप' 7, दुर्गाकृपा सोसायटी,
कीर्तिधाम तीर्थ पासे,
चांदखेडा–382424,
अहमदाबाद,
फोन नं.–23291979,
मो.नं.–9408229253

3. हयाती (विशेषांक) वर्ष 15 अंक 59 मार्च 2012– सम्पादक–हरीश मंगलम्,